एमएएचडी–06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

कथा साहित्य

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

कथा साहित्य

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक
प्रो. (डॉ.) चन्द्रकला पाण्डेय
हिन्दी विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता

समन्वयक
डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. (डॉ.) सुदेश बत्रा**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **(डॉ.) कुमार कृष्ण**
  अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  हिमांचल विश्वविद्यालय, शिमला
- **प्रो. (डॉ.) नन्दलाल कल्ला**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
- **डॉ. नन्दकिशोर आचार्य**
  वरिष्ठ आलोचक व साहित्यकार, बीकानेर
- **प्रो. (डॉ.) जवरीमल पारख**
  अध्यक्ष, मानविकी विद्यापीठ
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- **प्रो. (डॉ.) रंजना बेन अरगडे**
  अहमदाबाद विश्वविद्यालय, गुजरात
- **डॉ. हेतु भारद्वाज**
  पूर्व प्राचार्य,
  पारीक महाविद्यालय जयपुर

संपादन एवं पाठ्यक्रम-लेखन

डॉ. हेतु भारद्वाज
पूर्व प्राचार्य,
पारीक महाविद्यालय जयपुर

डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्य एवं संयोजक, हिन्दी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई लेखक	इकाई सं.
डॉ. हेतु भारद्वाज पूर्व प्राचार्य, पारीक महाविद्यालय जयपुर	1,2,12
डॉ. देवेन्द्र कुमार गुप्ता प्रवक्ता, हिन्दी विभाग वनस्थली विद्यापीठ	3,4,14,17,23
प्रो. (डॉ.) सुदेश बत्रा पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	5,11
डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर	6,7
डॉ. मीता शर्मा सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	8
डॉ. रेणू शाह एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग मोहनलाल सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर	9
डॉ. कैलाश कौशल सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर	10

इकाई लेखक	इकाई सं.
डॉ. अरुणा व्यास अतिथि व्याख्याता व स्वतन्त्र लेखिका, हिन्दी वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	13
डॉ. सुनीता रानी रीडर, हिन्दी विभाग आगरा कॉलेज, आगरा	15,16
डॉ. रेखा मिश्रा व्याख्याता, हिन्दी विभाग खण्डेलवाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जयपुर	18
रजनीश भारद्वाज वरिष्ठ व्याख्याता, हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय, चिमनपुरा, जयपुर	19,21
डॉ. रमेश चन्द मीणा व्याख्याता, हिन्दी विभाग राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूंदी	20
डॉ. पल्लव सहायक आचार्य जा.रा.ना. राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर	22

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - फरवरी 2012 ISBN No.-13/978-81-8496-104-1

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

कथा साहित्य

खण्ड सं.	इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	**हिन्दी उपन्यास : सैद्धान्तिक विवेचन**		
	इकाई - 1	उपन्यास : परिभाषा, स्वरूप व प्रकार	11–28
	इकाई - 2	उपन्यास की परम्परा और विकास	29–60
2.	**प्रेमचन्द और गोदान**		
	इकाई - 3	प्रेमचन्द की औपन्यासिक दृष्टि व उनके उपन्यास	61–75
	इकाई - 4	गोदान : कथावस्तु, चरित्र चित्रण व शिल्प विवेचन	76–86
	इकाई - 5	गोदान का प्रतिपाद्य	87–97
3	**अज्ञेय और 'शेखर एक जीवनी'**		
	इकाई - 6	अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि व उनके उपन्यास	98–110
	इकाई - 7	शेखर एक जीवनी 'संवेदना व शिल्प'	111–121
	इकाई - 8	शेखर : एक जीवन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	122–143
4	**कृष्णा सोबती और 'समय सरगम'**		
	इकाई - 9	कृष्णा सोबती की औपन्यासिक दृष्टि व उनके उपन्यास	144–165
	इकाई - 10	समय सरगम : संवेदना व शिल्प	166–174
	इकाई - 11	समय सरगम का प्रतिपाद्य	175–185
5.	**हिन्दी कहानी : सैद्धान्तिक विवेचन**		
	इकाई - 12	कहानी का स्वरूप और वर्गीकरण	186–199
	इकाई - 13	कहानी की परम्परा और विकास	200–213
6	**हिन्दी कहानियों का विशिष्ट अध्ययन**		
	इकाई - 14	प्रेमचन्द कृत 'शतरंज के खिलाड़ी' का अध्ययन व विवेचन	214–225
	इकाई - 15	जयशंकर प्रसाद कृत 'मधुआ' का अध्ययन व विवेचन	226–240
	इकाई - 16	जैनेन्द्र कृत 'पत्नी' का विवेचन व विश्लेषण	241–258
	इकाई - 17	यशपाल की 'महाराजा का इलाज' का संवेदना व शिल्प विवेचन	259–269
	इकाई - 18	अमरकान्त कृत 'जिंदगी और जोंक' का अध्ययन व विवेचन	270–281
	इकाई - 19	ज्ञान रंजन कृत 'पिता' का अध्ययन व विवेचन	282–295
	इकाई - 20	राजेन्द्र यादव की 'टूटना' का संवेदना व शिल्प विवेचन	296–309
	इकाई - 21	उषा प्रियम्बदा कृत 'जिन्दगी व गुलाब' का अध्ययन व विवेचन	310–319
	इकाई - 22	कृष्ण बलदेव वेद की 'मेरा दुश्मन' का अध्ययन व विवेचन	320–330
	इकाई - 23	कृष्णा सोबती कृत 'सिक्का बादल गया' का अध्ययन व विवेचन	331–341

खण्ड-परिचय

एमए. उत्तरार्द्ध हिन्दी विषय के विद्यार्थियों के लिए **'कथा साहित्य'** के द्वितीय प्रश्न पत्र की इस पाठ्य सामग्री में खण्ड (1) से लेकर खण्ड (6) तक उपन्यास तथा कहानी विधाओं के अन्तर्गत इन विधाओं के सैद्धान्तिक पक्षों तथा पात्यक्रम में निर्धारित उपन्यासों तथा कहानियों का अध्ययन किया गया है।

कथा साहित्य के **खण्ड (1)** के अन्तर्गत 2 इकाइयाँ हैं जिनमें से इकाई संख्या 1 में उपन्यास के स्वरूप तथा उसकी परिभाषा का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में उपन्यास की संरचना आदि ज्ञान प्राप्त करेंगे तथा इसकी दूसरी इकाई में हिन्दी उपन्यास की परम्परा और इसके अद्यतन विकास की जानकारी मिल सकेगी। इस इकाई में यह भी समझाया गया है कि भारतीय जीवन में आने वाले परिवर्तनों के साथ हिन्दी उपन्यास ने किस प्रकार विकास किया।

कथा साहित्य के **खण्ड (2)** में पाट्यक्रम मे निर्धारित प्रेमचन्द लिखित 'गोदान' नामक उपन्यास का व्यापक अध्ययन करने का अवसर विद्यार्थियों को मिलेगा। इस खण्ड में भी तीन इकाइयाँ हैं। 'गोदान' हिन्दी की एक कालजयी कृति है जिसका मनीषी तथा शोधार्थी बार-बार विश्लेषण कर रहे हैं। इस खण्ड की इकाई संख्या तीन में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रेमचन्द की औपन्यासिक दृष्टि का विकास किस तरह हुआ और उनकी औपन्यासिक कृतियाँ कौन-कौन सी हैं। इसी इकाई में यह भी समझाया गया है कि प्रेमचन्द ने किस प्रकार हिन्दी उपन्यास को तिलस्मी और ऐय्यारी के बन्धन से मुक्त कर सामाजिकता की जमीन पर लाकर खड़ा किया। इस खण्ड की इकाई संख्या 4 में 'गोदान' उपन्यास की तात्विक विवेचना तथा इस उपन्यास की कथावस्तु चरित्र-चित्रण तथा उसके शिल्प-सौन्दर्य का विश्लेषण किया गया है। इकाई संख्या 5 में 'गोदान' उपन्यास के प्रतिपाद्य की विस्तृत समीक्षा की गई है तथा यह भी स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार यह उपन्यास अपने प्रतिपाद्य के बल पर अपने समय का अतिक्रमण करता हैं

कथा साहित्य के खण्ड (3) में अज्ञाएय का 'शेखर: एक जीवनी' उपन्यास निर्धारित है जिसकी इकाई संख्या 6 में अज्ञेय के रचना संसार, विशेष रूप से उपन्यासों का विस्तृत परिचय है। इसी इकाई में अज्ञेय की रचना-दृष्टि और उनकी उपन्यास विषयक मान्यताओं का परिचय भी सम्मिलित है। इकाई संख्या 7 में 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास की मूल संवेदना तथा इसके शिल्प विधान का परिचय दिया गया है। 'गोदान' की तरह 'शेखर एक जीवनी' भी हिन्दी का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसे अज्ञेय ने स्वच्छन्द चेतना प्रवाह शैली (स्ट्रीम ऑफ कॉमनसेन्स) में लिखा है। दो खण्डों में विभाजित इस उपन्यास की पूरी कथा लगभग 48 घंटे में समाप्त हो जाती है। प्रयोग की दृष्टि से यह सर्वथा अलग तरह का उपन्यास है। इकाई संख्या 8 में इस उपन्यास का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वस्तुत: यह उपन्यास एक सफल मनोवैज्ञानिक उपन्यास है क्योंकि इस उपन्यास में अज्ञेय ने नायक शेखर के मानसिक संघातों का बड़ी सूक्ष्मता के साथ विश्लेषण किया है।

कथा साहित्य के खण्ड (4) में पाठ्यक्रम में निर्धारित कृष्णा सोबती के 'समय सरगम नामक उपन्यास की विस्तृत समीक्षा की गई है। कृष्णा सोबती हिन्दी की एक अग्रणी कथाकार हैं तथा उनकी कथाकृतियों को उनकी जीवन दृष्टि और प्रस्तुति के कारण खूब प्रतिष्ठा मिली है। 'समय सरगम' उनका एक महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसमें उन्होंने वृद्ध जीवन की विसंगतियों के साथ इस पड़ाव में जीवन के उल्लास मय पक्ष का चित्रण किया है। इस खण्ड की इकाई संख्या 9 में कृष्णा सोबती की रचनात्मकता के

विभिन्न आयामों का परिचय दिया गया है । इकाई संख्या 10 में समय सरगम नामक उपन्यास की संवेदना तथा उसके शिल्प विधान का विस्तृत विवेचन तथा इस उपन्यास की मूल संवेदना अर्थात् वृद्ध जीवन का उल्लास, को अच्छी तरह समझाया गया है । साथ ही इस उपन्यास के रचना विधान की विशेषताओं को स्पष्ट किया गया है । इकाई संख्या 11 में 'समय सरगम उपन्यास के प्रतिपाद्य का विस्तृत विवेचन किया गया है तथा वर्तमान जीवन की समस्याओं को समझने का प्रयास किया गया है । यह भी स्पष्ट होता है कि अगर हम चाहें तो इस अवस्था के जीवन को उल्लासपूर्ण बना सकते हैं जिससे समाज में एक स्वस्थ संतुलन बना रह सकता है ।

कथा साहित्य के खण्ड संख्या (5) में कहानी की सैद्धान्तिक समीक्षा पर विचार किया गया है तथा इसकी इकाई संख्या 12 में कहानी विधा की परिभाषा, उसकी संरचना तथा उसके वर्गीकरण पर विचार किया गया है । इस इकाई में यह भी समझा जा सकेगा कि कहानी अन्य वेधाओं से किस प्रकार अलग है तथा यह कितने प्रकार की होती है । इकाई संख्या 13 में हिन्दी कहानी की परम्परा और उसके विकास की पूरी यात्रा का विवरण किया गया है । यहाँ यह भी रेखांकित किया गा है कि बहुत अल्प अवधि में कहानी किस प्रकार हिन्दी की केन्द्रीय विधा बनने का गौरव पा सकी । इस इकाई में कहानी के विकास में विभिन्न आन्दोलनों के महत्व को भी समझा गया है।

कथा साहित्य के खण्ड संख्या (6) में पाठ्यक्रम में निर्धारित 10 कहानियों का विशेष अध्ययन किया गया है । निर्धारित कहानियाँ इस प्रकार हैं :- शतरंज के खिलाड़ी (प्रेमचन्द) मधुआ (जयशंकर प्रसाद), पत्नी (जैनेन्द्र), महाराजा का इलाज (यशपाल), जिन्दगी और जोंक (अमरकान्त), पिता (ज्ञानरंजन), टूटना (राजेन्द्र यादव), जिन्दगी और गुलाब के फूल (उषा प्रियंवदा), मेरा दुश्मन (कृष्ण बलदेव वेद) तथा सिक्का बदल गया (कृष्णा सोबती)।इन कहानियों का अध्ययन इकाई संख्या 14 से इकाई संख्या 23 तक में किया गया है अर्थात् प्रत्येक कहानी की एक इकाई है । हर कहानी में जिन बिन्दुओं पर विचार किया गया है, वे इस प्रकार हैं - कहानीकार का परिचय, कहानी का प्रतिपाद्य व शिल्प का विवेचन। हर कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर भी विचार किया गया है। इसके साथ ही अगर किसी कहानी में कोई अलग विशिष्टता है तो उसका विवेचन भी पूरी विस्तार से किया गया है । जैसे ज्ञानरंजन की 'पिता कहानी में कथानक आदि तत्व उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं जितना यह भाव कि इस कहानी में पीढ़ियों के अन्तर को बहुत सूक्ष्मता से रूपायित किया गया है । इसी तरह सभी कहानियों के अपने वैशिष्ट्य को रेखांकित किया गया है । इस प्रकार इस खण्ड में कहानी के रचना-विधान को कहानियों के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है ।

स्पष्ट है कि कथा साहित्य का यह पाठ्यक्रम एम.ए. उत्तरार्द्ध के विद्यार्थियों को उपन्यास और कहानी विधाओं के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्षों की सम्यक समीक्षा का अवसर प्रदान करेगा।

इकाई- 1 उपन्यास : परिभाषा, स्वरूप व प्रकार

इकाई की रूपरेखा -

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 उपन्यास परिभाषा और स्वरूप

- 1.2.1 उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति और उसका अर्थ
- 1.2.2 उपन्यास की परिभाषा

1.3 उपन्यास के प्रकार

- 1.3.1 तिलस्मी, जासूसी, एय्यारी प्रधान उपन्यास
- 1.3.2 ऐतिहासिक उपन्यास
- 1.3.3 सांस्कृतिक उपन्यास
- 1.3.4 सामाजिक उपन्यास
- 1.3.5 आंचलिक उपन्यास
- 1.3.6 मनोवैज्ञानिक उपन्यास
- 1.3.7 प्रवाहवादी उपन्यास

1.4 उपन्यास का रचना विधान, उपन्यास के तत्व

- 1.4.1 कथा वस्तु
- 1.4.2 चरित्र चित्रण
- 1.4.3 कथोपकथन
- 1.4.4 वातावरण
- 1.4.5 भाषा शैली
- 1.4.6 उद्देश्य

1.5 सारांश

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.7 संदर्भ ग्रंथ

1.0 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी -

- उपन्यास का अर्थ व परिभाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- उपन्यास के स्वरूप की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- उपन्यास के विविध प्रकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- उपन्यास के रचना विधान से परिचित हो सकेंगे।
- उपन्यास के तत्वों के आधार पर विश्लेषण कर सकेंगे।
- उपन्यास विधा के महत्व को समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

सृष्टि के आरम्भ से ही मानव - स्वभाव जिज्ञासापूर्ण रहा है। इसी जिज्ञासा वृत्ति के कारण आज तक वह प्रगति के सोपान सिद्ध करता आया है। इस संसार के अगणित रहस्य और वैचित्र्य उसकी इसी जिज्ञासा वृत्ति को तीव्र करते रहते हैं। इन्हीं रहस्यों के उद्घाटन से ज्ञान विज्ञान की समस्त राहें खुली हैं। जहाँ रहस्य का भेद नहीं खुला, वहाँ मनुष्य ने कल्पना से काम लिया और कल्पना की उड़ान में उसने कहीं-कहीं अतिरंजित चित्र बनाये। इसी कल्पना शक्ति और अतिरंजित अभिव्यक्ति ने कथा-कहानी को जन्म दिया।

कथा-काव्य भारत के प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी देखने को मिलता है, किन्तु अधिकांशत: वह पद्यमय होता था। उपन्यास आधुनिक युग की लोकप्रिय विधा हैं। विषय और उद्देश्य की दृष्टि से प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासकारों ने परम्परागत कथा साहित्य को ही अपना आधार माना। दशकुमार चरित, कथा-सरित्सागर, पचतंत्र और हितोपदेश आदि घटना प्रधान रचनाओं का उद्देश्य मनोरंजन प्रदान करना और साथ ही साथ उनका सुधारवादी दृष्टिकोण होता था। इन कृतियों के समान ही जासूसी और तिलस्मी उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य होता था - मनोरंजन प्रदान करना। इसी कारण इस युग के उपन्यासों की प्रमुख विशेषता थी, इनका घटना प्रधान होना, स्वरूप की दृष्टि से इस युग के उपन्यास परम्परा से हटकर पश्चिम का नवीन शिल्प लेकर आये।

1.2 उपन्यास की परिभाषा, स्वरूप और प्रकार

1.2.1 उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति और उसका अर्थ

शास्त्रीय दृष्टि से उपन्यास शब्द की व्याख्या करें तो पता चलता है कि उपन्यास शब्द संस्कृत की 'अस्' धातु से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है रखना या असुक्षेपण। 'उप' और 'नि' उपसर्ग 'अस्' धातु में धम् प्रत्यय जोड़ने से ही उपन्यास शब्द बना है। उप का अर्थ है समीप और न्यास का अर्थ है थाती - इसका तात्पर्य हुआ मनुष्य के निकट रखी हुई वस्तु। इस दृष्टि से उपन्यास ऐसी रचना को कहा जा सकता है जिसे पढकर पाठक को वास्तविक जीवन की समीपता का बोध हो। इस व्याख्या के आधार पर कह सकते हैं कि ऐसी रचना जिसे पढ़कर लगे कि यह तो हमारी ही है, इसमें हमारे अपने जीवन का प्रतिबिम्ब है तथा यह हमारी ही भाषा में लिखी गयी है। आधुनिक युग में उपन्यास शब्द का प्रयोग एक विधा विशेष के लिए होता है।

उपन्यास शब्द का प्रयोग भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में किया है - प्रतिमुख संधि के एक उपभेद के रूप में वर्णित हुए इसे 'उपपत्तिकृतोऽयार्थ' तथा 'प्रसाधनम्' कहा है अर्थात् किसी अर्थ को युक्तिपूर्ण ढंग से उपस्थित करने वाला तथा प्रसन्नता प्रदान करने वाला। अत: यह हमारे लिये नया शब्द नहीं है तथा गुणाढ्य की वृहत्कथा', 'पंचतंत्र' बौद्धजातक कथाएँ, जैसी कृतियां तक इस सूत्र के अनुसार उपन्यास कही जा सकती है क्योंकि ये पाठक को प्रसन्नता तो प्रदान करती ही हैं। अंग्रेजी के 'नावेल' के तत्व भी हिरोडोटस में

पाये जा सकते हैं। किन्तु उपपत्तिकृतित्व और प्रसादनत्व - दोनों गुणों की रक्षा करते हुए भी आज उपन्यास शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में किया जा सकता हे।

उपन्यास आधुनिक युग की उपज है - उस युग की जिसमें व्यक्ति का महत्व समष्टि से कहीं अधिक बढ़ गया है, बाहरी संसार से मनुष्य के आंतरिक संसार को अधिक प्रमुखता दी जाने लगी है। इसलिए उपन्यास का स्वरूप बहुत लचीला हो गया है। जरूरी नहीं कि उसमें कथानक हो। आवश्यक नहीं कि घटनाएँ हो, आवश्यक नहीं कि पात्र वास्तविक जीवन के हों। उसकी कहानी एक दिन की भी हो सकती है, एक वर्ष की भी और एक युग की भी। कथा उत्तम पुरूष में भी कही जा सकती है और अन्य पुरूष में भी। अंग्रेजी में हार्डी कृत 'मेयर ऑफ कैस्टर ब्रिज' तथा जॉन आस्टिन की 'प्राइड एण्ड प्रैज्यूडिस' जैसी सुसंगठित और कसी हुई कृतियाँ भी उपन्यास हैं तो जेम्स ज्वायस कृत 'यूलीसिस' तथा मार्शलप्रूस्त की पुस्तकें 'एलाचर्च दुताप्येर्दू' जैसी स्वच्छंद प्रवाह में लिखी कृतियाँ भी उपन्यास हैं। हिन्दी में देवकी नन्दन खत्री की चन्द्रकांता संतति' भी उपन्यास है तो प्रेमचन्द का 'सेवासदन' भी उपन्यास है, धर्मवीर भारती का सूरज का सातवां घोड़ा' भी उपन्यास है तो हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'बाणभट्ट की आत्मकथा' भी उपन्यास है।

वस्तुत: उपन्यास वास्तविक मानव जीवन की काल्पनिक कथा है। इसीलिए प्रेमचंद ने कहा, मैं उपन्यास को मानव-जीवन का चित्रमात्र समझता हूँ।... मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। "न्यू इंगलिश डिक्शनरी' में उपन्यास की परिभाषा देते हुए कहा गया है - 'वृहत् आकार गद्य आख्यान या वृतान्त जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पात्रों और कार्यो को कथानक में चित्रित किया जाता है।'

अंग्रेजी के 'नावेल' को गुजराती में 'नवल कथा', मराठी में 'कादम्बरी' तथा बंगला और हिन्दी में उपन्यास कहते हैं। 'हिन्दी विश्वकोश' में उपन्यास शब्द के इतने अर्थ दिये गये हैं - 1. वाक्य का उपक्रम या बात का आरम्भ होना 2. वाक्य का प्रयोग 3. विचार 4. प्रस्ताव 5. दान 6. उपनिधि धरोहर 7. उपकथा, किस्सा। नाट्यशास्त्र में उल्लिखित प्रतिमुख सन्धि का एक उपभेद भी 'उपन्यास' कहलाता है।

परन्तु उपन्यास शब्द नॉवेल' के लिए इतना रूढ़ हो गया है कि इसके अन्य शाब्दिक और नाट्यशास्त्रीय अर्थ लुप्त हो गये हैं।

1.2.2 उपन्यास की परिभाषा

उपन्यास शब्द सामान्यत: सम्पूर्ण कथा साहित्य के लिए (फिक्शन) प्रस्तुत होता है। यूरोप में अठाहरवीं शताब्दी तक उपन्यास सामान्य कथा साहित्य के लिए प्रयुक्त होकर भी अपनी अर्थव्यापति में रोमांस' का भी सम्मिलित कर लेता था। साहित्य और जीवन में चार तरह के सम्बन्धों की कल्पना की जा सकती है - असम्भव, दुर्लभ, सम्भव, सुलभ। रोमांस प्रथम दो तरह के सम्बन्धों पर ही आधारित होता है। जबकि उपन्यास में अंतिम दो तरह के सम्बन्धों पर अधिक बल दिया जाता है। रोमांस काव्य में भी लिखे जाते थे जबकि उपन्यास तो सिर्फ गद्य में लिखे जाते हैं। क्लारारीव ने उपन्यास तथा रोमांस का अंतर इस प्रकार स्पष्ट किया है -

उपन्यास अपने युग का चित्रण करता है। रोमांस उदात्त भाषा में उसका वर्णन करता है, जो न घटित है और न घटमान। उपन्यास दैनिक जीवन की घटनाओं का सम्बन्ध बतलाता है जो हमारे मित्रों तथा हमारे जीवन में सम्भव हों। उपन्यास की सफलता इसमें है कि प्रत्येक दृश्य इस सरलता और स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत हो और उसे इतना सामान्य बनाया जाय कि उसकी वास्तविकता में विश्वास हो जाय, कम से कम जब तक हम उसे पढ़ते रहें। यहाँ तक कि पात्रों के सुख-दुःख से हम वैसे ही प्रभावित हों, मानो वे हमारे अपने ही हैं। '

उपन्यासों की विद्वानों ने अनेक परिभाषाएँ दी हैं। प्रेमचंद द्वारा दी गयी परिभाषा हम ऊपर दे आये हैं। हम कतिपय पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों द्वारा प्रदत्त उपन्यास की परिभाषाएँ दे रहे हैं-

एवेल चेवेल - "उपन्यास निश्चित आकार वाला गद्य रूप आख्यान है। "

अर्नेस्ट ए. बेकर - " उपन्यास को हम गद्यमय कल्पित आख्यान के माध्यम से की गई जीवन की व्याख्या कह सकते हैं। "

एडिथ ह्वाटन - " उपन्यास एक ऐसा कल्पित आख्यान है जिसमें सुन्दर कथानक और भली प्रकार चित्रित पात्र होते हैं। "

बोल्फर्ट - ' उपन्यास सक्रिय मानव जीवन की भाषा में भावों का गद्यानुवाद है। यह गद्यानुवाद इतना यथार्थ होना चाहिए कि उससे पाठकों का आत्मज्ञान बढ़े। "

बेवस्टर - " उपन्यास एक ऐसा कल्पित विशालकाय तथा गद्यमय आख्यान है, जिसमें एक ही कथानक के अन्तर्गत यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों और उनके क्रियाकलापों का चित्रण रहता है।

देवकीनन्दन खत्री ने उपन्यास की परिभाषा नहीं दी पर उन्होंने यह लिखकर 'चन्द्रकान्ता सन्तति' के प्रसंग से स्पष्ट कर दिया कि उपन्यास का कथानक कौतूहलवर्धक और मनोरंजक होता है -

"कुछ दिन की बात है कि मेरे मित्रों ने संवाद-पत्रों में इस विषय का आंदोलन उठाया था कि इसका (संतति का) कथानक सम्भव है या असम्भव। मैं नहीं समझता कि यह बात क्यों उठाई और बढ़ाई गई। जिस प्रकार पंचतंत्र और हितोपदेश बालकों की शिक्षा के लिए लिखे गए हैं उसी प्रकार ये लोगों के मनोविनोद के लिए। 'चन्द्रकान्ता' में जो बातें लिखीं गई हैं, वे इसलिए नहीं लिखी गई कि लोग उसकी सच्चाई-झुठाई की परीक्षा करें, प्रत्युत इसलिए कि उसका पाठ कौतूहलवर्द्धक है।"

अज्ञेय का मत है - " उपन्यास व्यक्ति की अपनी परिस्थितियों के साथ सम्बन्ध की अभिव्यक्ति के उत्तरोत्तर विकास का प्रतिनिधित्व करता है। "

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उपन्यास की बड़ी विशद परिभाषा दी है - " उपन्यास वस्तुतः नवल अर्थात् नया और ताजा साहित्यांग है, परन्तु फिर भी जिस मेधावी ने कथा, आख्यायिका आदि शब्दों को छोड़कर अंग्रेजी नॉवेल का प्रतिशब्द उपन्यास माना था, उसकी सूझ की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। जहाँ उसने इस नये शब्द के प्रयोग से यह सूचित किया है कि यह साहित्यांश पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं से भिन्न जाति का है, वहाँ इसके शब्दार्थ के द्वारा (उप = निकट, समीप; न्यास = रखना)

यह भी सूचित किया है कि इस विशेष साहित्यांश द्वारा ग्रन्थकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई अभिनव मत रखना चाहता है। इसलिए यद्यपि यह शब्द पुरानी परम्परा के प्रयोग के अनुकूल नहीं पड़ता, तथापि उसका प्रयोग उपन्यास की विशिष्ट प्रकृति के साथ बिल्कुल बेमेल नहीं कहा जा सकता है। "

उपन्यास की ऐसी परिभाषा देना तो कठिन है जो उसके व्यापक स्वरूप को समाहित कर सके तथापि व्यापक दृष्टि से कह सकते हैं कि उपन्यास -

1. गद्य साहित्य का एक अन्यतम रूप है।
2. उसका आधार कोई न कोई कथा होती है - कथा चाहे मनुष्यों की हो या मनुष्येत्तर प्राणियों की, वास्तविक हो या कल्पित, वर्तमान की हो या भूतकाल की।
3. यथार्थ और कल्पना के योग से सृजित होता है।
4. कथा प्रवाह में कौतूहल तथा पाठकों के मनोरंजन अथवा मन के उद्वेलन के तत्व विद्यमान रहते है।
5. मनुष्य के जीवन की गम्भीर समस्याओं का चित्रण है।
6. कथा परोक्ष रूप से मानव मूल्यों की स्थापना या रक्षा करती है।
7. जीवन का वृहत्तर रूप प्रस्तुत करता है।

देखा जाए तो उपन्यास यथार्थ जीवन की गद्य में लिखी प्रतिच्छाया है।

1.3 उपन्यास के प्रकार

मानव जीवन बहुत विशाल और व्यापक है इसलिए उसे प्रतिच्छायित करने गला उपन्यास भी अनेक प्रकार का हो सकता है। उपन्यास के प्रकार कई आधारों पर निर्धारित किये जा सकते हैं-

1. **कथाकाल के आधार पर** - पौराणिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, सांस्कृतिक उपन्यास, समसामयिक उपन्यास आदि।
2. **मानवीय भावों के आधार पर** - साहसिक कथानक वाल उपन्यास, रहस्य प्रधान उपन्यास, जासूसी, तिलस्मी, ऐय्यारी, भूत-प्रेतों की कथाओं वाले उपन्यास, काल्पनिक कथा वाले उपन्यास आदि।
3. **उपन्यास के तत्वों के आधार पर**

   घटना प्रधान उपन्यास, चरित्र प्रधान उपन्यास। घटना प्रधान उपन्यास भी अनेक प्रकार के हो सकते हैं जैसे ऐतिहासिक उपन्यास और काल्पनिक उपन्यास।

   चरित्र प्रधान उपन्यास भी मोटे रूप में दो प्रकार के हो सकते हैं - सामाजिक उपन्यास और मनोवैज्ञानिक उपन्यास। सामाजिक उपन्यास भी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, आंचलिक आदि अनेक प्रकार के हो सकते हैं।

   मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोविश्लेषणवादी विकृत मानसिकता वाले पात्रों पर आधारित उपन्यास हो सकते हैं।
4. **शैली के आधार पर**

   शैली के आधार पर वर्णनात्मक, विवरणात्मक, पत्रात्मक, डायरी शैली में लिखित, मुक्त प्रवाह शैली में लिखित, चित्रात्मक' आत्मकथात्मक उपन्यास आदि।

विभिन्न प्रकारों के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित कोटियों में रखकर दिया जा रहा है:-

1.3.1 तिलस्मी, जासूसी, एय्यारी प्रधान उपन्यास

सुगठित कथा वाला ऐसा उपन्यास जो पाठक को आद्यंत बांधे रहे तथा कथा के विकास के साथ पाठ की मनोभावनाओं को उद्दीप्त करता चले, इस कोटि में रखा जा सकता है। इन उपन्यासों में रहस्य बना रहता है और पाठक रहस्य जानने के लिए उत्सुक बना रहता है। पश्चिम में पो, कानन डायल, एडगर वैलेस आदि के नाम जासूसी-उपन्यास क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। आर्थर कानन डायल का शरलक होम्स पात्र (जासूस) तो स्वयं लेखक से भी अधिक लोकप्रिय हुआ। हिन्दी में गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यासों और कहानियों की परम्परा को समृद्ध किया। ठाकुरदत्त मिश्र का 'छिपा महल' तथा राजेश्वर प्रसाद का 'महान अपराधी' प्रसिद्ध जासूसी उपन्यास हैं तथा दुर्गाप्रसाद खत्री के 'रक्त-मंडल', 'सफेद शैतान, 'प्रतिशोध' तथा 'लाल पंजा' नामक चार उपन्यास भी बहुत प्रसिद्ध हुए। किन्तु हिन्दी में जासूसी उपन्यासों के लेखन की परम्परा को साहित्यिक दृष्टि से बहुत सम्मानजनक नहीं माना गया, इसलिए इन उपन्यासों को फुटपाथी साहित्य कहकर उपेक्षित किया गया। आधुनिक युग में युगलकिशोर पाण्डे, ओमप्रकाश शर्मा, कर्नल रंजीत आदि के नाम जरूर लिये जाते हैं, किन्तु इनके उपन्यासों का साहित्यिक महत्व नहीं है।

यूनानी शब्द 'टेलिस्मान' से तिलस्म शब्द बना है जिसका अर्थ है इन्द्रजाल, जादू अलौकिक कारनामे। जिस उपन्यास में आश्चर्यजनक कारनामों की भरमार हो, पात्रों के लिए कुछ भी करना असम्भव न हो, जहाँ पात्र अपनी चमत्कारिक शक्तियों के बल पर मौत की घाटी तक को पार कर लें तथा बलशाली-क्रूर पात्रों का भी नाश कर दें, सारी विघ्न-बाधाओं को पार कर सुरक्षित निकल आएँ, उन्हें तिलस्मी उपन्यास कह सकते हैं। देवकीनन्दन खत्री का 'चन्द्रकान्ता सन्तति' तथा किशोरीलाल गोस्वामी का 'लखनऊ की कब्र' उपन्यास श्रेष्ठ तिलस्मी उपन्यास हैं। 'चन्द्रकान्ता सन्तति' की लोकप्रियता तो इसी से प्रमाणित है कि इस उपन्यास को पढ़ने के लिए उस काल में लोगों ने हिन्दी सीखी। उसका वीरेन्द्र सिंह देखने मै निरीह, कमर झुकी हुई बुढ़िया, पर आफत की पुड़िया, लकलका बेहोश कर देने वाली दवा, जरा से संकेत पर बोलने वाली तथा तलवार चलाने वाली पत्थर की मूर्तियाँ, पलक मारते ही पैरों के नीचे खुल पड़ने वाली सुरंग जल्दी भूलने वाली चीजें नहीं हैं। 'लखनऊ की कब्र में' ऐसे पत्र हैं जो दिन में सफेद रहें, रात में पढे जा सकें, 'मास्टर की' जो सब तालों को खोल सके, सुरंग और जेबी खजानों की भरमार है। मनुष्य की शक्तियाँ सीमित हैं, पर वह अपने को सर्वसमर्थ देखना चाहता है। उपन्यास के पात्रों को इस तरह सर्वशक्ति-सम्पन्न, अलौकिक कर्मदक्ष देखकर पाठक अप्रत्यक्ष रूप में ही सही, पर अपनी ही शक्ति के विस्तार का दर्शन करता है और उसके हृदय की किसी मांग की पूर्ति होती है। इधर लोगों की रूचि बदली जरूर है और लोगों में यथार्थवादी दृष्टिकोण का उदय हुआ है, परन्तु इससे तिलस्मी उपन्यासों के प्रचार में कमी नहीं होगी, कारण कि ये किसी गहरी और मौलिक मांग पर आधारित हैं।

किशोरीलाल गोस्वामी के 'गुलबहार' 'कुसुम कुमारी' जैसे ऐतिहासिक उपन्यासों में भी तिलस्म का खूब रंग है। इन उपन्यासों का ऐतिहासिक महत्व है। 'चन्द्रकान्ता संतति' पर तो टी.वी. सीरियल बन चुका है जो बहुत लोकप्रिय भी हुआ। बच्चों के लिये भी बनाये गये 'शक्तिमान' जैसे सीरियल इसी कोटि में आते हैं।

एय्यार वे लोग कहलाते थे जो अपने स्वामी के कहने से असम्भव तथा असाधारण कार्यो को करने के लिए निकलते थे। इन के लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं था। ये भी वैसे तिलस्मी उपन्यास की कोटि में ही आते हैं।

इस प्रकार के उपन्यासों में चमत्कार प्रदर्शन, कुतुहलवृद्धि, जादू, घटना-संयोग का वैचित्र, प्रेम-प्रसंग, मिलन की उत्सुकता, विरह की व्याकुलता, कथानक की जटिलता, चरित्र-संघटन तथा सुखान्त की प्रवृत्ति है। किशोरीलाल गोस्वामी के स्वर्गीय कुसुम' में तिलस्मी घर, लवंगलता में गोल तिलस्मी कमरा, प्रणयिनी परिणय', 'कटे मूँड की दो-दो बातें' में तिलस्मी शीशमहल की तिलस्मी कथाएँ प्राप्त हैं। उनका प्रभाव देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति', नरेन्द्र मोहिनी', 'कुसुमकुमारी वीरेन्द्रवीर', देवीप्रसाद शर्मा उपाध्याय के सुन्दर सरोजिनी', जगन्नाथ-प्रसाद चतुर्वेदी के 'वसन्तमालती, देवीसहाय शुक्ल के दृष्टान्तप्रदीपिनी', 'जादूभरी बातें' तथा 'भयानक भेड़िया', 'प्रवीण पथिक', 'प्रमिला' में स्पष्ट प्रकट है। उपन्यास कला की दृष्टि से 'चन्द्रकान्ता' हिन्दी का प्रथम साहित्यिक उपन्यास है। काशीनाथ शर्मा के 'चतुर सखी' और विजयानन्द त्रिपाठी के 'सच्चा सपना' (अनूदित) में भी तिलस्म का चमत्कार हैं

इन उपन्यासों का महत्व मनोरंजन की दृष्टि से बहुत है। राजेन्द्र यादव ने देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता संतति' उपन्यास के सांस्कृतिक महत्व को स्वीकार करते हुए लिखा है,

'खत्रीजी के ये सारे तिलस्मी चमत्कार, ये आदर्शवादी, परम- नीतिवान न्याय-प्रिय सत्य-निष्ठावान राजा और राजकुमार, परियों जैसी खूबसूरत और अबला नारियाँ - या बिजली की फुर्ती से जमीन-आसमान एक कर डालने वाले एय्यार - सब एक खूबसूरत स्वप्न के ही प्रक्षेपण हैं..... आस-पास फैली ठीक इसकी उलट दुनिया से बच निकलने के चोर दरवाजे..... या पलायन-द्वार। मगर हिन्दी के शास्त्रीय समीक्षक जब इसको सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में या अन्वेषकीय दृष्टि से न देखकर सिर्फ सपाट ढंग से इसकी रोचकता, या इसमें आई भारतीय गरिमा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं तो तरस ही आता है। शायद ही कोई सोचता हो कि कहीं कौन-सा झूठ भारी पड़ गया है कि सारी स्थितियाँ, सारे चरित्र इतने उथले, इकहरे, निर्जीव और निष्प्राण हो गये हैं। काश, खत्रीजी आस-पास से इस तरह आँखें न फेर, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की द्वन्द्वात्मक कशमकश को सीधे या तिरछे ढंग से ला-पाते जो बदलते समाज की सचाई थी! हो सकता है तब इन चरित्रों में कहीं कुछ गहराई आ पाती और वे तिलस्मी पुतलों की तरह खुद भी पुतले न लगते जिनके बटन या डोरियॉ खत्रीजी के हाथ में हैं.... क्योंकि खत्रीजी सचमुच हिन्दी के वे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने समय की इस अनिवार्यता को गंभीरता से पकड़ा कि उपन्यास औद्योगिक सभ्यता की ही उपज है और पुराने-नये मूल्यों के द्वन्द्व से ही उसका जन्म होता है। "

1.3.2 ऐतिहासिक उपन्यास

इतिहास उपन्यास रचना के लिए बहुत महत्वपूर्ण स्रोत है। किन्तु इतिहास को आधार बनाकर उपन्यास की रचना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि एक ओर इतिहास की रक्षा जरूरी है तो दूसरी ओर उपन्यास की साहित्यिक कलावस्तु की रक्षा। उपन्यास इतिहास का अन्धानुकरण नहीं हो सकता किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना भी अनियंत्रित नहीं हो सकती। वस्तुत: इतिहास और उपन्यास दोनों की प्रकृति ही भिन्न है अत: दोनों को एक साथ साधना एक कठिन कार्य अवश्य है। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए एक सतर्क और जागरूक प्रतिभा की आवश्यकता होती है। पश्चिम मे सर वाल्टर स्कॉट तथा अलैक्जेंडर ड्यूमा जैसे लेखकों को ही ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में सफलता मिली।

हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की परम्परा किशोरीलाल गोस्वामी के 'कुसुम कुमारी' से आरम्भ मानी जा सकती है। किन्तु यह शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है क्योंकि इसमें एक ऐतिहासिक और सच्ची घटना को आधार बनाकर कथासूत्र विकसित किया गया है। इस दृष्टि से सेठ गोविन्ददास का 'इन्दुमती' ऐतिहासिक उपन्यास है किन्तु यह भी पूरी तरह ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है क्योंकि इस कृति में कांग्रेस के आंदोलन का तिथिवार वर्णन है और व्यक्तित्व महिमा की स्थापना अधिक हे। ऐतिहासिक उपन्यास की उपस्थिति को गरिमामय और गम्भीर बनाने का श्रेय वृंदावन लाल वर्मा को दिया जा सकता है। इसका कारण यह है कि उन्होंने इतिहास का गहन अध्ययन कर अपने उपन्यासों की आधारभूमि तैयार की। उन्होंने अपने उपन्यासों में इतिहास के प्रति वफादारी की रक्षा की है। उनके 'गढ़ कुंडार', विराट की पद्मिनी', झांसी की रानी', 'मृगनयनी' आदि उपन्यास इतिहास की रक्षा करते हुए कलात्मक कृतियों के रूप में पाठक को प्रभावित करते हैं। उन्हीं की परम्परा में प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'बंजारा का आँसू? तथा रांगेय राघव का मुर्दो का टीला' उपन्यास आते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासकारों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री 'वैशाली की नगरवधू 'वर्य रक्षाम:' 'सोमनाथ' जैसे उपन्यासों में इतिहास सत्य के साथ साहित्य रस को मिलाकर उपन्यासों की रचना करते हैं। अमृतलाल नागर का 'सुहाग के नूपुर' तथा यशपाल का 'दिव्या' उपन्यास भी इसी कोटि में आते हैं। इधर ऐतिहासिक उपन्यासों की धारा क्षीण हो चली है।

1.3.3 सांस्कृतिक उपन्यास

जैसे आचार्य चतुरसेन मानते हैं कि साहित्य रस (भाव रस) तथा इतिहास रस को मिलाकर भी उच्च कोटि के ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की जा सकती है। ऐतिहासिक उपन्यासकार का काम इतिहास का सूखा वितान खड़ा करना नहीं होता बल्कि उसे उपन्यास में ढालने के लिए प्राण-प्रतिष्ठा भी करनी पडती है। इसी बात को आगे बढ़ा दें तो सांस्कृतिक उपन्यास का स्वरूप उभरकर आ जायेगा। हजारीप्रसाद द्विवेदी के बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारूचन्द्रलेख' पुनर्नवा' उपन्यासों की कथाओं के स्रोत इतिहास में मिल जाते हैं पर वे इन कृतियों के माध्यम से इतिहास - चक्र को प्रस्तुत करना नहीं चाहते

बल्कि इन कृतियों से सम्बद्ध युगों के सांस्कृतिक परिदृश्य को प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि अमृतलाल नागर के 'मानस का हंस' तथा खंजन नयन' उपन्यास इतिहास के पात्रों को केन्द्र में रखकर लिखे गये हैं पर ये दोनों ही उपन्यास सांस्कृतिक उपन्यास ही हैं, ऐतिहासिक नहीं। इसी तरह उनका 'एकदा नेमिशारण्ये उपन्यास तो पूरी तरह सांस्कृतिक उपन्यास ही कहा जायेगा।

1.3.4 सामाजिक उपन्यास

वास्तव में वर्ण्यवस्तु की दृष्टि से उपन्यास के दो ही भेद हो सकते हैं - सामाजिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास। ऐसे उपन्यास की कल्पना भी नहीं की जा सकती जिसमें समाज का चित्रण न हो इसलिए सामाजिक उपन्यास एक व्यापक प्रत्यय है क्योंकि इसमें ही वैयक्तिक उपन्यास (जैसे अज्ञेय का 'शेखर: एक जीवनी') पारिवारिक उपन्यास (जैसे प्रेमचंद का 'सेवा सदन' और जैनेन्द्र कुमार का 'परख'), पौराणिक उपन्यास (जैसे भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' तथा नरेन्द्र कोहली का 'महासमर') भावना प्रधान उपन्यास (जैसे प्रसाद का कंकाल' प्रेमचन्द का रंगभूमि'), ग्रामीण जीवन पर आधारित उपन्यास (जेसे रेणु का 'मैला आंचल), शहरी जीवन से संबंधित उपन्यास (जैसे मोहन राकेश का 'अंधेर बंद कमरे'), राजनीतिक उपन्यास (जैसे श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी', मन्नू भंडारी का महाभोज') आदि सभी प्रकार के उपन्यास आ जाते हैं।

हर युग के समाज में जीवन को परिचालित करने वाली अनेक समस्याएँ और शक्तियाँ होती हैं जिनसे जुड़ना उपन्यास के लिए बहुत जरूरी है। जैसे जेन आस्टिन का प्रसिद्ध उपन्यास 'प्राइड एण्ड प्रेज्युडिस' एक पारिवारिक उपन्यास कहा जा सकता है क्योंकि उसमें एक सुखी पारिवारिक जीवन की कथा कही गयी है। किन्तु यह उपन्यास केवल एक परिवार की कथा भर नही है क्योंकि जब जेन आस्टिन ने अपने इस उपन्यास की रचना की वे बडे उथलपुथल के दिन थे- फ्रांस की राज्यक्रांति के, नेपोलियन के उत्थान और पतन के, साम्राज्यों के उत्कर्ष और अपकर्षो के जिनका आभास हमें इस पारिवारिक उपन्यास में भी हो जाता है भले ही जेन आस्टिन का उद्देश्य एक परिवार की कथा कहना ही रहा हो। प्रेमचंद का सेवा सदन' उपन्यास तो एक परिवारिक समस्या को लेकर लिखा गया है पर आगे चलकर यह व्यापक सामाजिक जीवन की समस्याओं को समाहित करने लगता हैं। हर उपन्यासकार को सामाजिक समस्याओं से जूझना पड़ता है। हिन्दी के आरम्भिक उपन्यास सुधारवादी दृष्टि से लिखे गये अत: उनमें वृद्ध विवाह, बाल विवाह, विधवा विवाह, छुआछूत, अंधविश्वास जैसी समस्याओं को उठाया गया। किन्तु समाज भी बदलता रहता है और उपन्यासकार का दृष्टिकोण भी। वस्तुत: समाज कोई एक आयामी इकाई नहीं होती और न उपन्यासकार का व्यक्तित्व ही सरल या एक आयामी। इन दोनों के अन्त: सम्बन्धों से उपन्यास की संरचना भी जटिल हो जाती है। इस सम्बन्ध में डॉ. देवराज उपाध्याय का यह कथन महत्वपूर्ण है-

"लेखक समाज की हाँ में हाँ मिलाने वाला निष्क्रिय पदार्थ नहीं होता, उसका अपना व्यक्तित्व होता है और वह अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से समाजिक समस्याओं पर विचार करता है। अत: सब कुछ होते हुए भी समाज का यथातथ्य चित्रण उपन्यास में नहीं आ

सकता। सामाजिक व्यक्ति जीवन से अधिक जीते रहते हैं, अत: औपन्यासिक जीवन से कुछ अधिक होगा या कम, अधिक इस अर्थ में कि उसमें लेखक के मत में जो समस्याएँ महत्वपूर्ण हैं उनके सम्बन्ध में लम्बे-लम्बे वाद-विवाद आ जायेंगे तथा अनेक अवान्तर प्रसंगों का भी समावेश हो सकता है; कम इस अर्थ में कि जिनसे कथा की प्रगति में कुछ भी योग न मिलता हो तथा जिनसे जीवन से भी अधिक जीने वाले पात्रों या घटनाओं का यथातथ्यता नहीं आ सकी हो और जिन बातों से लेखक का तात्कालिक सम्बन्ध न हो उन्हें छोड़ा जा सकता है। "

इस दृष्टि से प्रेमचंद का 'गोदान' सामाजिक उपन्यास का श्रेष्ठ उदाहरण है। इस उपन्यास में अनेक तरह की समस्याएँ एक साथ छेड़ी गयी हैं - ग्रामीण जीवन, शहरी जीवन, स्त्रियों के समानाधिकार, स्त्री शिक्षा, मुक्त प्रेम सम्बन्ध, जमींदारी प्रथा, किसानों का शोषण, आदि। आज समाज बहुत बदल गया है, उसकी समस्याएँ भी दूसरे तरह की हो गयी है तो उपन्यास का. ढाँचा भी बदल गया है। 'मैला आंचल' 'रागदरबारी', 'सूरज का सातवां घोड़ा', 'जुगलबंदी', 'अलग-अलग वैतरणी, बूंद और समुद्र, तमस झूठा सच, मुरदाघर, 'आधा गॉव', सूरजमुखी अंधेरे के, 'आपका बंटी, 'पहला गिरमिटिया आदि से लेकर कलिकथा वाया बाईपास', शेष कादम्बरी, समय सरगम, 'आवा' तक लिखे गये उपन्यास जहाँ उपन्यास की विकास यात्रा का चित्रण करते हैं वहीं समाज के बदलते स्वरूप का भी। हम उन उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक जीवन के बदलते स्वरूपों का भी परिचय पा सकते हैं।

1.3.6 आंचलिक उपन्यास

आंचलिक उपन्यास की अवधारणा फणीश्वरनाथ रेणु' के मैला आंचल उपन्यास के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी में आई। रेणु हिन्दी में विशिष्ट तरह के कथाकार है। उनके उपन्यासों की भावना पर छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की कविताओं की भावना का बहुत प्रभाव है। यह प्रभाव 'मैला आंचल' की भाषा पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। शीर्षक 'मैला आँचल' ही पंत की कविता 'भारत माता ग्रामवासिनी' से लिया गया है जिसमें वे भारत माता का 'धूल भरा मैला सा आंचल' कहते हैं। 'मैला आंचल' एक ओर उपन्यास के परम्परागत ढाँचे को तोड़ता है तो दूसरी ओर उपन्यास को एक नया आयाम प्रदान करता है।

यह उपन्यास इस रूप में विशिष्ट है कि यह एक अंचल विशेष के समग्र जीवन को चित्रित करता है। यहाँ न कोई पात्र प्रमुख है न सहायक, न कोई घटना केन्द्रीय है न सहायक। यहाँ तो पूरे अंचल के जीवन का स्पंदन ही सब कुछ है। बिहार के पूर्णिया जिले का मेरीगंज गॉव और उसके आसपास का जीवन, प्रकृति, लोक जीवन, पर्व, उत्सव, त्योहार, गरीबी, उल्लास और गम सभी कुछ है इस उपन्यास में। इसीलिए इसे आंचलिक उपन्यास कहा गया है। इस उपन्यास के विषय में नेमिचन्द्र जैन का यह कथन इस उपन्यास की पूरी प्रकृति को स्पष्ट कर देता है-

"मेरीगंज पुरैनिया अथवा पूर्णिया जिले का एक छोटा-सा गॉव है जिसमें तिरहुत के प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच, धान के लहलहाते खेतों, कमलों से भरे हुए सरोवरों-पोखरों और

ताड़ के वनों के साथ कमला नदी के किनारे, उत्तरी भारत के अन्य सहस्त्रों ग्रामों की भाँति, जीवन अपनी परिचित गति से चलता रहता है। महायुद्ध और देशव्यापी स्वाधीनता-आन्दोलन की लहरों ने यहाँ के जीवन में कम्पन पैदा नहीं किया हो, यह बात नहीं। पर आधुनिक जीवन से मेरीगंज का पूरा और वास्तविक सम्पर्क तब होता है, जब वहाँ मलेरिया-संबंधी अनुसंधान के उद्देश्य से डॉक्टर प्रशान्त एक अस्पताल खोलने के लिए आता हैं अचानक ही मानो उस गॉव के सामाजिक, राजनीतिक, मानसिक, आध्यात्मिक जीवन को अनगिनत तहें खुल पड़ती है। लगता है, जैसे बहुत दिनों से रूका हुआ प्रवाह एकाएक मार्ग पाकर हहराता हुआ दौड़ पड़ा हो। देहात की ऊपर से दीखने वाली स्थिरता और शांति, बल्कि जड़ता तथा निष्क्रियता, जैसे नष्ट हो जाती है। मैला आंचल के लेखक ने इस विक्षुब्ध जिन्दगी के ही बहुत से स्तर, बहुत से पर्त, बहुत से पहलू इस उपन्यास में प्रस्तुत किए है और यही नहीं, ये तमाम स्तर और पहलू इस प्रकार कितने ही भिन्न-भिन्न दृष्टि बिन्दुओं से दिखाए गए हैं कि जीवन एक साथ कई-कई एक सिम्तों में हमारे सामने प्रस्तुत होता है, बहुत कुछ चलचित्र की भाँति, समग्र होकर भी अलग-अलग भी, दूर से भी और समीप से भी।"

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं. है कि आंचलिक उपन्यास की श्रेणी में केवल वही उपन्यास आते हैं जो ग्रामीण जीवन से सम्बन्ध रखते हों। उदयशंकर भट्ट के 'सागर, लहरें और मनुष्य' उपन्यास को भी आंचलिक उपन्यास की श्रेणी में रखा गया है जिसमें मछुवारों की जिन्दगी का चित्रण है। नागार्जुन के 'बलचनमा' भी आंचलिक उपन्यास माना गया। 'रागदरबारी' (श्री लाल शुक्ल), 'आधा गॉव' (राही मासूम रजा), 'मुंरदाघर' (जगदम्बा प्रसाद दीक्षित) 'कब तक पुकारूँ' (रांगेय राघव) आदि उपन्यासों को भी आंचलिक उपन्यासों की कोटि में ही रखा गया है। जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का उपन्यास 'मुरदाघर' एक महानगर की किसी गली के जीवन को समग्रता में प्रस्तुत करता है। अजित कुमार की यह टिप्पणी भी यह संकेत करती है कि 'मुरदाघर' एक सफल आंचलिक उपन्यास हैं।

"यह उपन्यास एक 'रोचक' विषय में हमारे कुतूहल को रूग्ण या अस्वस्थ ढंग से नहीं उभारता बल्कि जीवन की जिस कड़वी सच्चाई के प्रति हम अपनी आँखें सुख से मूंदे हुए हैं, उसे हमारे सामने रखकर, चाहे थोड़ी देर के लिए ही सही, हमारा वर्ग-चरित्र बदल देता है। पोपट का सपना भले ही करूणोत्पादक हो, लेकिन वह मध्यवर्गीय अथवा उच्चवर्गीय जीवन के सुख-सुविधा विलास प्रधान सपनों के खोखलेपन को उघाड़कर रख देता है। साथ ही यह उपन्यास शिक्षित-सम्पन्न पाठक-वर्ग को जिस शर्म और अपराध की भावना से भर देता है, वह कोई फैशनेबल चीज नहीं, न आत्मदया ही है। इसी लिहाज से, उपन्यास में हर जगह मौजूद गलियों को भी मैं ठीक ही नहीं बल्कि जरूरी समझता हूँ। सिर्फ इतना ही नहीं कि जिन पात्रों या जिस स्तर के पात्रों का चित्रण उपन्यास में है, उनकी सहज बोलचाल गालियों से भरी होती है; अगर हम गौर करें कि वह ऐसी क्यों होती है तो यह समझना मुश्किल न होगा कि भुखमरी, बेरोजगारी, गिरफ्तारी, पिटाई वगैरह के खिलाफ उनके पास गाली के सिवाय ओर कुछ भी तो नहीं होता। गाली देने के अलावा वे और कर भी क्या सकते हैं। गाली उनके जिस उबलते हुए गुस्से, मजदूरी या निष्फलता का प्रतीक है, उसे हम ध्यान में रखें तो जाहिर हो जायेगा कि पैसे वालों की मन्द-मन्द

मुस्कान, नजाकत-नफासत और मीठी-मुलायम बातचीत इन्सानियत के लिए कही बड़ी और अश्लील गाली होती है। जिन्दगी की असली सड़ाँध और दुर्गन्ध यहाँ है, न कि मैना, वशीरन, पोपट, राजू या रोज के इर्द-गिर्द। बदशक्ल कौन है? - जूठन बीनकर खाते हुए बच्चे या हिवस्की-मुर्ग चखते हुए धनी-मानी? 'मुरदाघर' पढ़ने के बाद किसी के लिए यह कोरा सैद्धान्तिक प्रश्न नहीं बना रह सकता।"

1.3.6 मनोवैज्ञानिक उपन्यास

जीवन में मनुष्य दो स्तरों पर जीता है - स्थूल और सूक्ष्म और यों भी कह सकते हैं कि मनुष्य के दो रूप होते हैं - क्रियारत मनुष्य (Man in action) तथा विचारगत मनुष्य (Man in contemplation) क्रियारत मनुष्य का जीवन सामान्य: बाहरी होता है तथा वह असम्भव कार्यो को भी निष्पन्न कर सकता है जैसे पौराणिक कथाओं में मनुष्य हिमालय को भी हिला सकता है तो पुराने तिलस्मी उपन्यासों में पात्र हवा में भी तैर सकते हैं किन्तु जब मनुष्य विचाररत होता है तो उसका आन्तरिक जीवन या मन:लोक सामने आता है। यही मनुष्य का असल रूप होता है। उपन्यास के विकास के साथ-साथ देखते हैं कि उपन्यास का क्रियारत मनुष्य धीरे-धीरे विचाररत होता गया है और इस विचाररत मनुष्य का चित्रण जो उपन्यास करता है उसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास कह सकते हैं।

बाह्य से आन्तरिक की प्रक्रिया के इस अभियान में उपन्यास कला को चार सोपानों को पार करना पड़ा है:-

1 औपाख्यानिक उपन्यास (Episodic Novel) जैसे मुंशी इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी'।
2 कथा संघटित (Plot Novel) जैसे चन्द्रकांता संतति, भूतनाथ।
3 आत्मनिष्ठ उपन्यास (Subjective Novel) जैसे प्रेमचन्द का सेवा सदन।
4 मनोवैज्ञानिक उपन्यास (Psychological Novel) जेसे जैनेन्द्र का 'त्यागपत्र' अज्ञेय का 'शेखर: एक जीवनी'।

मनुष्य के अन्तर्जगत में तरह-तरह के विचारों का उत्कर्ष-अपकर्ष, संघर्ष-विसंघर्ष, कशमकश, रस्साकशी विचारमंथन चलता रहता है और उसकी बाहरी क्रियाएँ इन्हीं संघातों के स्थूल रूप होते हैं अर्थात् ये अन्त:क्रियाएँ उसके बाहरी व्यवहार को प्रभावित करती हैं। पहले मनुष्य की बाहरी क्रियाओं को उपन्यासों में महत्व दिया जाता था किन्तु वर्तमान युग में मनुष्य के मनोजगत की यात्रा ही उपन्यास का प्रमुख कथ्य बन गयी। अंग्रेजी में मेरिडिथ और हेनरी जेम्स ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की लेखन परम्परा का सूत्रपात किया जबकि हिन्दी में जैनेन्द्र और अज्ञेय ने।

पात्रों के चित्रण में जब सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है तो इन्हीं चरित्र प्रधान उपन्यासों को मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहा जाता है। आधुनिक काल में मनोविज्ञान के अनेक नये-नये सिद्धांत प्रतिपादित हुए हैं जिनमें फायड का यौन और स्वप्न सिद्धांत तथा एडलर और युंग का मनोविश्लेषण सिद्धांत। इस दृष्टि से कुछ मनोवैज्ञानिक उपन्यास ऐसे हैं जिनमें कामवासना को प्रधानता देकर उसी के आधार पर मनुष्य की अन्तश्चेतना के रहस्य का उद्घाटन किया जाता है। ऐसे उपन्यास का केन्द्रीय

भाव तो प्रेम ही होता है किन्तु उसमें शारीरिक यौन क्रियाओं और वासनामूलक भावों का अधिक चित्रण होता है। कई बार इन चित्रणों में विकृति या अश्लीलता भी आ जाती है। कुछ उपन्यासों में काम वासना से इतर दमित वासनाओं को उभारकर मानस ग्रंथियों को खोलने का प्रयास किया जाता है, इन्हें मनोविश्लेषणवादी उपन्यास भी कहा जा सकता है। मनोविश्लेषणवादी उपन्यास कभी कभी मनोविज्ञान - विशेषज्ञों के अध्ययन जैसे होते हैं जिसमें कथा की रोचकता का अभाव होता है। हिन्दी में इलाचन्द्र जोशी के 'जहाज का पंछी' जैसे उपन्यास इसी कोटि में आते हैं। यशपाल ने भी कुछ उपन्यासों में (दादा कामरेड, बारह घंटे आदि में) यौन सम्बन्धों का खुला चित्रण किया है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में लेखक प्रमुख रूप से तीन पद्धतियों का उपयोग करता है -_ 1 पूर्वदीप्ति (Flash back) पात्र पूरी कथा को स्मृति तरंगों से जोड़कर प्रस्तुत करता है जैसे अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' नरोत्तमनागर के 'दिन के तारे' आदि में। 2. चेतना प्रवाह पद्धति (Stream of Consciousness) कथा का अनिश्चित रूप से विकास - जैसे अज्ञेय के 'शेखर: एक जीवनी' प्रभाकर माचवे का 'परन्तु' में, होता है। 3. कथा सूत्रों की अवहेलना (Plotlessness) उपन्यास में कोई कथा होती ही नहीं जैसे गीतांजलि श्री के 'हमारा शहर उस बरस' उपन्यास में अखबारी खबरों के द्वारा उपन्यास रचा गया है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में घटनाक्रम की संघटना पर लेखक उतना बल नहीं देता जितना पात्रों के मानसिक संघर्ष के चित्रण पर देता है। डॉ. देवराज उपाध्याय के अनुसार मनोवैज्ञानिक उपन्यास में ये बातें प्राय: मिल जाती हैं।

1 सुसंगठित कथावस्तु का अभाव।
2 लम्बी - चौड़ी, दीर्घकालीन कथा का अभाव। 'नदी के द्वीप' में डेढ़ बरस की कथा है, पहाड़ी के 'सराय' और निर्देशक' में क्रमश: एक और तीन महीनों की कथाएँ हैं।
3 पात्रों की संख्या में कमी।
4 वार्तालाप की अधिकता।
5 वर्णनात्मकता से अधिक नाटकीयता की प्रगति।
6 पाठक की प्रतिक्रिया जो अन्य उपन्यासों के पाठक से भिन्न होती है। साधारण उपन्यासों का पाठक उपन्यासकार के मुख की ओर देखेगा, परन्तु मनोवैज्ञानिक उपन्यास के पाठक की दृष्टि उपन्यास के पात्रों की तरफ होगी।

1.3.7 प्रवाहवादी उपन्यास

कुछ लोगों का मानना रहा कि जीवन तो आकस्मिक और असम्बद्ध घटनाओं का मेला है। यहाँ कहीं आदि मध्य और अन्त नहीं है। यहाँ कुछ भी निश्चित नहीं है। सब कुछ प्रवाहमय है और हो रहा है। विधाता ने कहीं भी अपनी सृष्टि को समाप्त स्पर्श नहीं दिया है। यहाँ सब कुछ शतृ-प्रत्यायान्त है निष्ठा प्रत्यायान्त नही। उपन्यासकार सामान्यत: अपने पूर्वाग्रहों के आलोक में उपन्यास की रचना करता है इस तरह वह जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति नहीं करता। जब सृष्टि में ही कुछ पूर्व निर्धारित नहीं है तो उपन्यास में ही पहले कुछ तय कैसे हो सकता है। व्यावहारिक बाह्य जगत की कार्यकारणता को हटाकर आन्तरिक विचारजगत की अनुक्रमता की प्रतिष्ठा हुई और

चेतना प्रवाही उपन्यास का जन्म हुआ जो एक तरह से दिवास्वप्तमग्न मस्तिष्कोत्पन्न साहसिक उपन्यासों का ही रूप है।

डॉ. देवराज उपाध्याय ने प्रवाहवादी उपन्यासों के विषय में लिखा है - "चेतना प्रवाह मनोविज्ञान का शब्द है जिसका प्रयोग सर्वप्रथम विलियम जेम्स ने करते हुए कहा था, चेतना छोटे-मोटे टुकड़ों में विभक्त होकर उपस्थित नहीं होती, वह प्रवाहमयी होती है। ' मिस सिन्क्लेयर ने मिस डोरोथी रिचार्डसन के उपन्यास की आलोचना करते हुए 1915 में इस शब्द का प्रयोग किया था। तभी से आलोचना के क्षेत्र में भी इसका धड़ल्ले से प्रयोग होने लगा है। इस पद्धति का प्रयोग जेम्स ज्वायस के 'युलिसिस' नामक उपन्यास तथा वरजिनिया वुल्फ के द्वारा हुआ है।

हिन्दी में प्रभाकर माचवे का परन्तु' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। पर अज्ञेय, जैनेन्द्र तथा भगवतीप्रसाद वाजपेयी के (चलते-चलते) उपन्यासों में भी इस पद्धति का प्रयोग मिलता है। इसमें स्वगतोक्तियों की भरमार रहती है और चेतना के उस स्तर के भावों की अभिव्यक्ति की जाती है जो अभी शाब्दिक रूप धारण नहीं कर पाये हैं। अत: यहाँ की भाषा व्याकरण. के नियमों की पाबन्दी से मुक्त है। इसका सबसे प्रसिद्ध उदाहरण जेम्स ज्वायस के 'युलिसिस के अन्तिम पृष्ठ हैं जिनमें कहीं कोई विरामचिह्न नहीं, भाषा की बोधगम्यता की कोई परवाह नहीं, भाषा तात्कालिक भावोन्मत के दबाव के कारण गढ़ ली गयी है। नाटकों की स्वगतोक्तियाँ सविकल्प एवं शाब्दिक भावों की अभिव्यक्ति करती हैं और वे श्रोता की अवस्थिति मानकर ही अपने स्वरूप का निर्माण करती हैं। परन्तु प्रवाहवादी साहित्य की स्वगतोक्तियाँ चेतना के उस स्तर के भावों को अभिव्यक्त करती है जहाँ उन्होंने अभी शाब्दिक रूप धारण नहीं किया है। साथ ही वे किसी श्रोता के सुनने के लिए नहीं लिखी जाती है। अत: दोनों दो प्रकार की चीजें है। एक को स्वगतोक्ति ही कहकर रूक जाते हैं, पर दूसरे को आन्तरिक स्वगतोक्ति कहकर पार्थक्य प्रकट किया जाता है। "

इनके अतिरिक्त उपाख्यानात्मक उपन्यास, धार्मिक उपन्यास, वैज्ञानिक उपन्यास, समसामयिक उपन्यास आदि अनेक प्रकार के उपन्यास हो सकते हैं।

1.4 उपन्यास का रचना विधान : उपन्यास के तत्व

'तत्व' शब्द से तात्पर्य है वह उपकरण अथवा घटक जो किसी वस्तु के निर्माण में सहायक हो। उपन्यास के तत्व वे घटक हैं जिनके द्वारा उपन्यास का संघटन होता है। उपन्यास के तत्व निम्नलिखित हैं - कथावस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, भाषा-शैली और उद्देश्य।

1.4.1 कथावस्तु

कथावस्तु उपन्यास का मेरूदण्ड है और कथावस्तु का आधार होती है कथा। कथावस्तु और कथा परस्पर भिन्न होती हैं। कथा में काल-क्रमानुसार घटनाओं का वर्णन होता है। कथावस्तु भी घटनाओं का कथन है, किन्तु इसमें निहित रहस्य पर अधिक बल रहता है। श्रीनारायण अग्निहोत्री के अनुसार राजा मरा और उसके बाद रानी मर गई' यह कथा है।

राजा मरा और शोक से रानी मर गई' यह कथावस्तु है। (देखे - उपन्यास तत्व एवं रूप विधान, पृ. 12 यह विचार उन्होंने ई.एम. फॉस्टर से ग्रहण किया है।)

कथा का प्राण है उत्सुकता और कथावस्तु की जिज्ञासा। कथा में हमारा ध्यान होता है 'आगे क्या हुआ, पर कथावस्तु में हमारा ध्यान होता है - 'ऐसा क्यों हुआ? '

ई.एम. फॉस्टर के मतानुसार संयोगाश्रित घटनावली का श्रृंखलाबद्ध नियोजन कथावस्तु कहलाता है - (ऐस्पेक्ट्स ऑफ दि नॉविल, पृ. 116)

कथावस्तु में कथा की घटनाओं की संयोजित किया जाता है। कथावस्तु की घटनाओं में सामंजस्य होता है, उनमें उचित अनुपात होता है। एक घटना दूसरी घटना से निकलती प्रतीत होती है। संघटन के अभाव में घटनाएँ कथा बन सकती हैं, पर कथावस्तु नहीं। अत: कथावस्तु से अभिप्राय है घटनाओं का कुशल संघटन।

कथावस्तु के गुण

कथावस्तु में संघटन कौशल के साथ कुछ और गुण भी अपेक्षित हैं-

1 **सम्बद्धता:-** जिस प्रकार अनियंत्रित भीड़ को गोष्ठी का नाम नहीं दिया जा सकता, इसी प्रकार घटनाओं के जमघट को कथावस्तु नहीं कहा जा सकता। चुनाव के उपरान्त घटनाओं को सुसम्बद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। घटनाओं की पारस्परिक सम्बद्धता के अभाव में कथावस्तु की श्रृंखला टूट जाती है और कथा की प्रभावात्मकता को ठेस पहुँचती है।

2 **मौलिकता:-** जिस कथावस्तु में जितनी मौलिकता होती है, उस कथावस्तु का महत्व भी उसी अनुपात में बढ़ जाता है। कथा में विषय की नवीनता का होना अपने आप में आकर्षक होता है, किन्तु वर्णन का ढ़ंग अवश्यमेव नवीन होना चाहिए। मानव-सुलभ अनुभूति को अधिक विस्तार और सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करने की योग्यता मौलिकता को जन्म देती है।

3 **सत्यता:-** उपन्यास में सत्यता का गुण अथवा तत्व पाठकों में रचना के प्रति विश्वास जाग्रत करता है। साहित्य में सत्य से अभिप्राय है ऐसा चित्रण जो मानव-जीवन के आधार पर किया गया हो। भले ही कथा में वर्णित नाम, दिनांक एवं स्थान आदि वास्तविक न हों, किन्तु उसमें जो कुछ प्रस्तुत किया गया हो, वह मानव जीवन पर आधारित हो। घटनाएँ मानव-स्वभाव अथवा मनुष्य के चरित्र के अनुसार विकसित हों। साहित्य का सत्य मानव जीवन के परम लक्ष्य को समझने और समझाने का प्रगटन करता है। उदाहरण के लिए मनुष्य को भली भाँति जीने की प्रेरणा देने वाला दृष्टिकोण जीवन का सत्य है। जीवन का सत्य मानव-मात्र की एकता, पारस्परिक स्नेह, त्याग, बलिदान आदि का संदेश देता है।

4 **रोचकता:-** यद्यपि साहित्य के सभी रूपों का उद्देश्य मनोरंजन होता है, किन्तु उपन्यास तो विशेष रूप से मनोरंजन प्रधान होता है। अत: उपन्यास की कथावस्तु में रोचकता का गुण होना आवश्यक हे। रोचकता के लिए कौतूहल और नवीनता अपेक्षित है। आकस्मिक और अप्रत्याशित को भी उपन्यास में स्थान मिलना चाहिये। अप्रत्याशित ऐसा जो कार्य-कारण- श्रृंखला से बाहर न हो, पर पाठक की कल्पना से बाहर हो। रोचकता के लिए न तो ब्यौरे की आवश्यकता है और न उसकी उपेक्षा की।

1.4.2 चरित्र चित्रण

उपन्यास में चरित्र चित्रण सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है, क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व और उसकी पहचान उसके चरित्र में ही है। चरित्र द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व को जाना जा सकता है। चरित्र में मनुष्य का बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों समाहित होते हैं। बाहय में मनुष्य का आकार-प्रकार, वेश-भूषा, आचार-विचार, रहन-सहन, चाल-ढाल, बातचीत के विशेष ढ़ग (तकियाकलाम सम्बोधन आदि) और कार्यकलाप भी आ जाते हैं। आभ्यन्तर इन सब बातों द्वारा अनुमेय होता है। पात्र के आभ्यंतर का चित्रण उसके बाहय के चित्रण की तुलना में अधिक कठिन होता है। उसकी बाहरी परिस्थितियों के प्रति संवेदनशीलता, उसके राग-विराग, उसकी-. महत्वाकांक्षाएँ, उसके अन्धविश्वास, पक्षपात, मानसिक संघर्ष, दया, करूणा, उदारता आदि मानवीय गुण अथवा नृशंसता, क्रूरता, अनुदारता आदि दुर्गुण सभी बातों का चित्रण रहता है। चरित्र-चित्रण विश्लेषणात्मक और नाटकीय दोनों रीतियों से किया जा सकता है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण चाहे जिस रीति अथवा शैली से किया जाय, उसमें अनुकूलता, संगति और स्वाभाविकता अवश्य होनी चाहिए। उपन्यासकार को चाहिए कि पात्रों की प्रकृति के अनुकूल उनको चलने दें। उनके चरित्र से जैसा कार्य विकसित हो सके, उनसे वैसा ही काम लेना चाहिए। चरित्र-चित्रण में संगति होना भी आवश्यक है। चरित्र को बिना कारण बदलना भी उचित नहीं है। पात्र उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली न बन जाय। उनके चरित्र का परिवर्तन परिस्थितियों के अनुसार होना चाहिए। चरित्र-चित्रण के गुणों में स्वाभाविकता की आवश्यकता है। उपन्यास में पात्रों का आचार-व्यवहार वैसा होना चाहिए जैसा कि वास्तविक जीवन में होता है। ऐसा न होने से चरित्र-चित्रण में अस्वाभाविकता का दोष आ जायेगा।

1.4.3 कथोपकथन

पात्रों के परस्पर वार्तालाप को संवाद अथवा कथोपकथन कहा जाता है। इसका सम्बन्ध कथावस्तु तथा पात्र दोनों से है। पात्रों के व्यक्तित्व के उद्घाटन और कथाक्रम के विकास के लिए इसका उपयोग किया जाता है। कथोपकथन परिस्थिति और पात्र के बौद्धिक विकास के अनुकूल होने चाहिए। कथोपकथन की भाषा तथा उसमें व्यक्त विचारों के पात्र के अनुकूल न होने से उसमें अस्वाभाविकता आ जाती है। कथोपकथन में परिस्थिति के अनुकूल गांभीर्य, ओज अथवा माधुर्य आदि गुण होने चाहिएं। इसमें सार्थकता एवं संक्षिप्त के गुण भी अभीष्ट हैं।

1.4.4 वातावरण

उपन्यास में चित्रित मानव स्वतंत्र इकाई के रूप में नही होता। उपन्यास में मानव के चरित्र चित्रण के साथ वातावरण का चित्रण पृष्ठभूमि के रूप में आवश्यक हें वास्तव में कथा के सभी तत्वों कथा वस्तु, चरित्र-चित्रण, उद्देश्य, भाषाशैली और देशकाल का मिलाजुला साथ होता है। वातावरण की परिभाषा देते हुए श्री प्रखर लिखते हैं-

"कथानक की गतिविधि, पात्रों का व्यक्तित्व कहानी का देशकाल (अर्थात् वह जिस स्थान पर और जिस समय घटना होती हुई बताई गई है), कहानी की भाषा और शैली तथा कहानीकार के उद्देश्य को पाठक तात्कालिक रूप में अर्थात् कहानी पढते-पढ़ते जिस प्रक्रिया द्वारा ग्रहण करने की चेष्टा करता है, उस प्रक्रिया का नाम वातावरण है। "

(श्री लालचन्द्र प्रखर. कहानी दर्शन. पृ. 311)

उल्लेखनीय है कि उक्त वक्तव्य उपन्यास के सन्दर्भ में भी समान रूप से प्रासंगिक है। वातावरण में देशकाल का विशेष महत्व है। देशकाल के अन्तर्गत घटनाओं से सम्बन्धित स्थान और समय का वर्णन होता है। प्रकृति वर्णन और स्थानीय रंग देशकाल के अंग हैं। स्थानीय रंग में घटना स्थल के दृश्य चित्रण पर अधिक बल होता है।

1.4.5 भाषा शैली

भाषा और शैली - दो विभिन्न तत्व हैं, किन्तु दोनों के बीच घनिष्ठता के कारण दोनो को एक माना गया है, भाषा से अभिप्राय है कथ्य का शब्द रूपी शरीर और शैली से अभिप्राय है वह ढ़ंग जिसके द्वारा कथाकार अपने विचार और भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। भाषा- शैली भावों तथा विचारों की वाहक हैं। इस तत्व के बिना कथ्य कथा का रूप धारण नहीं करता। इस तत्व के समीप होने पर कथा के दूसरे तत्वों की दुर्बलता छिप जाती है।

1.4.6 उद्देश्य अथवा जीवन दर्शन

उपन्यास की आस्वादन प्रक्रिया में मनोरंजन होना स्वाभाविक है जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है किन्तु उसका एकमात्र- और ऐकान्तिक उद्देश्य मनोरंजन नहीं होता। मनोरंजन तो मूल उद्देश्य तक पहुँचने का साधन मात्र है जो मार्ग के श्रम को दूर करता है। कथा की घटना, उसके पात्रों के चरित्र तथा वातावरण के उपकरणों का पाठकों के मन पर निश्चित प्रभाव पड़ता है। इसी प्रभाव को कथा का उद्देश्य कहा जाता है। प्रत्येक कथा का अन्तर्निहित उद्देश्य होता है - 'सत्य का प्रतिपादन'। यहाँ सत्य से अभिप्राय है मानव जीवन का सत्य। प्रत्येक मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न होता है। 'मैं' और 'तू' की भावना के कारण वे एक-दूसरे को भिन्न समझते है। किन्तु भिन्न प्रतीत होने वाले मानव शरीरों में परस्पर एकता का एक अदृश्य सूत्र विद्यमान है। विभिन्न शरीरों को धारण करने वाली आत्माएँ उस महान सत्ता, परमात्मा का अंश हैं.. जो तत्व, मानव जीवन की अनेकता में एकता के सूत्र की पुन: स्थापना में सहायक होता है, वही जीवन का सत्य है। अहिंसा, दया, प्रेम, एकता आदि भाव जीवन के सत्य हैं। कथा-साहित्य इसी जीवन सत्य का प्रतिपादन करना है। उपन्यासकार अपनी रचना और सर्जन के द्वारा दया, सत्य, न्याय, प्रेम, एकता आदि उत्कृष्ट भावों का प्रतिपादन करता है और असत्य, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि भावों का तिरस्कार करता है।

1.5 सारांश

उपन्यास गद्य की सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली विधा है। अपनी क्षमता के कारण उपन्यास ने गद्य में महाकाव्य की संज्ञा प्राप्त कर ली है। अपने आकार और प्रकृति में

उपन्यास का फलक इतना विस्तृत और व्यापक है कि समग्र मानव जीवन का आख्यान उसमें समाहित हो सकता है। इसलिए उपन्यास को मानव जीवन की विशद व्याख्या कहा गया है। यह एक लोकप्रिय और मानव जीवन के सर्वाधिक निकट विधा है। यह मानव मन का रंजन भी करती है और उसे प्रशिक्षित भी करती है। इसीलिए हिन्दी ही नहीं विश्व की सभी अग्रणी भाषाओं में सर्वाधिक मात्रा में उपन्यास लिखे जा रहे हैं।

उपन्यास विधा अपनी समग्रता में विकासमान है तथा कहा जा रहा है कि इक्कीसवीं शताब्दी उपन्यास की शताब्दी होगी। गत वर्षा में नये-नये उपन्यास जिस गति से आये हैं उनसे यह आभास हो गया है कि इस विधा की सम्भावनाएं अकूत हैं तथा उपन्यासकारों की तीन पीढ़ियां इस समय रचनात्मक मोर्चे पर सक्रिय हैं।

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 'उपन्यास' शब्द की व्युत्पतिपरक व्याख्या कीजिए।
2 उपन्यास की परिभाषा देते हुए इसके स्वरूप का परिचय दीजिए।
3 उपन्यास के तत्वों का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
4 उपन्यास कितने प्रकार के होते हैं? उदाहरण देकर समझाइए।
5 उपन्यास और कहानी का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

1.7 संदर्भ ग्रन्थ

1 शिवनारायण श्रीवास्तव; हिन्दी उपन्यास
2 डॉ. हेतु भारद्वाज, डॉ. सुमनलता हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास
3 रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्य का इतिहास
4 डॉ. त्रिभुवनसिंह; हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद
5 डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (सम्पादक); हिन्दी' साहित्यकोश (भाग- 1)

इकाई-2 उपन्यास की परम्परा और विकास

इकाई की रूपरेखा -

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 हिन्दी उपन्यास का आरम्भ

- 2.2.1 नवजागरण और हिन्दी उपन्यास
- 2.2.2 हिन्दी का प्रथम उपन्यास
- 2.2.3 प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास

2.3 हिन्दी उपन्यास का नया युग

- 2.3.1 प्रेमचन्द का आविर्भाव
- 2.3.2 प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास

2.4 हिन्दी उपन्यास का विकास

- 2.4.1 यथार्थवादी उपन्यास
- 2.4.2 मनोविश्लेषणवादी उपन्यास

2.5 स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की विभिन्न प्रवृत्तियाँ

- 2.5.1 व्यक्ति के अन्तर्मुखी जीवन पर केन्द्रित उपन्यास
- 2.5.2 ग्रामीण परिवेश केन्द्रित उपन्यास
- 2.5.3 नगरीय तथा महानगरीय बोध के उपन्यास
- 2.5.4 सांस्कृतिक और ऐतिहासिक उपन्यास
- 2.5.5 राजनैतिक चेतना केन्द्रित उपन्यास

2.6 बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक हिन्दी उपन्यास का उत्कर्ष

2.7 सारांश

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.9 संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई की पाठ्य सामग्री का अध्ययन करने के उपरान्त विद्यार्थी:

- हिन्दी उपन्यास के विकास के सोपानों की विस्तृत जानकारी ग्रहण कर सकेंगे।
- हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा से परिचित हो सकेंगे।
- प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय आदि स्वतंत्रतापूर्व के उपन्यासकारों की उपलब्धियों की जानकारी के साथ यथार्थवादी उपन्यास तथा मनोविश्लेषणवादी उपन्यास का अन्तर समझ सकेंगे।
- स्वातन्त्र्योत्तर काल में हिन्दी उपन्यास किस प्रकार अपने उत्कर्ष पर पहुँचा और कितने प्रकार की उपन्यास धाराओं का उसके विकास में योगदान है, इसकी पूरी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

विषम परिस्थितियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी की जो सेवा की वह हिन्दी साहित्य में अमर है और इसीलिये उनका युग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र युग के नाम से विख्यात है। इस युग से हिन्दी साहित्य के इतिहास का आधुनिक काल शुरू होता है। इस युग से रीतिकाल की परंपराओं का अवसान और नवीन प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव होता है। सन् 1857 की जनक्रांति उस युग की जननी है। भारतीय इतिहास में यह घटना आँधी की तरह आयी और निकल गयी, परन्तु इसने भारतीय समाज को झकझोर कर रख दिया। धर्म, राजनीति, समाज, साहित्य और अर्थ क्षेत्र में जो भावनाएँ सुषुप्त थीं, उन्हें इसने जगा दिया। देश का कोना-कोना नई चेतना और नई स्फूर्ति से क्रियाशील हो उठा। पाश्चात्य सुसम्पन्न साहित्य, सभ्यता एवं राजनीति के आलोक में भारतीयों ने पहली बार अपनी हीनता को अनुभव किया जिसकी इस प्रकार की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप धर्म और राजनीति में ही नहीं अपितु साहित्य में भी नयी चेतना के स्वर सुनाई पड़ने लगे। साहित्यकारों ने प्राचीन आदर्शों को नवजागरण के अनुकूल बनाकर उन्हें साहित्य में स्थान देना आरंभ किया। कबीर, तुलसी, सूर, जायसी, बिहारी - सब पीछे छूट गये और उनके आदर्श हो गये शेक्सपीयर, वाल्टर स्कॉट, स्टील, बेकन और रस्किन। किन्तु इन पाश्चात्य साहित्यकारों का अनुकरण करने में उन्होंने अपनापन नहीं खोया। पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करके भी वे प्राच्य ही बने रहे। उन्होंने अपनी आवश्यकतानुसार ही अपने साहित्य के विभिन्न अंगों की सृष्टि एवं पुष्टि की।

भारतेन्दु युग की दूसरी विशेषता थी - विविध प्रकार का साहित्य प्रस्तुत कर हिन्दी के प्रति जनता में अनुराग उत्पन्न करना और हिन्दी साहित्य को लोकप्रिय बनाना। रीतिकालीन साहित्य साधना का आदर्श एकनिष्ठ था। वह रईसों, राजाओं और महाराजाओं के मनोरंजन और कवियों के कला विलास तक ही सीमित था। साहित्य का जनता और उसके जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। भारतेन्दु युग ने साहित्य का जनता के जीवन के साथ सीधा संबंध स्थापित किया और उसे अनेकरूपता प्रदान की। फलत: नाटक निबन्ध, उपन्यास, खण्ड काव्य, महाकाव्य, मुक्तक काव्य, भूगोल, दर्शन, विज्ञान इतिहास आदि सब एक साथ लिखे जाने लगे और उनमें जनजीवन की आवश्यकताओं का चित्रण होने लगा। ऐसी परिस्थिति में साहित्यकार, जो पहले अपने आश्रयदाता के प्रति उत्तरदायी था, जनता के प्रति उत्तरदायी हो गया।

भारतेन्दु युग की तीसरी विशेषता अभिव्यंजना के क्षेत्र में मनोभावों का सफल चित्रण करना था। रीतिकाल में श्रृंगारी कवि सामाजिकता और वास्तविकता से कोसों दूर चले. गये थे। फलत: उनकी रचनाओं में कल्पना की उडान तो थी, पर भावों का यथार्थ एवं वास्तविक चित्रण नहीं था। सन् 1857 के बाद जब सामंती सभ्यता का अन्त हो गया तब विवश होकर उन्हें जनता के बीच आना और उसकी मनोवृत्तियाँ का अध्ययन करना पड़ा। इसका फल यह हुआ कि साहित्य में जहाँ श्रृंगार की प्रधानता थी, वहाँ उसमें राष्ट्रीय भावनाओं की निर्मलधारा बहने लगी और जनजीवन की समस्याओं का मूल्यांकन होने लगा।

भारतेन्दु युग की चौथी विशेषता थी - उस समय सभी साहित्यकारों को साहित्य के परिमार्जन एवं परिवर्धन में एक-दूसरे का प्रशंसनीय सहयोग प्राप्त था। भारतेन्दु साहित्य जगत के नेता थे और उन्हीं के दिशा-निर्देश पर आधुनिक साहित्य का प्रणयन हो रहा था। उनके घर पर दूसरे-तीसरे दिन बराबर गोष्ठियाँ होती थीं और उनमें हिन्दी साहित्य की तत्कालीन आवश्यकताओं पर विचार-विनिमय होता था। कोई किसी का विरोधी नहीं था। सब एक साथ मिलकर हिन्दी के कल्याण में तत्पर थे।

2.2 हिन्दी उपन्यास आरम्भ

2.2.1 नवजागरण और हिन्दी उपन्यास

हिन्दी उपन्यास का भारतीय नवजागरण से गहरा रिश्ता है। बंगाल और महाराष्ट्र की तुलना में हिन्दी भाषा क्षेत्र में नवजागरण की प्रक्रिया विलम्ब से प्रारंभ हुई। अत: हिन्दी में उपन्यास' विधा का आरंभ भी बंगला और मराठी की अपेक्षा विलम्ब से ही हुआ। यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से हिन्दी क्षेत्र में पुनर्जागरण का आरंभ 1857 ई. के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से माना जाता है, किन्तु सामाजिक क्षेत्र में पुनर्जागरण का आरंभ मुख्यत: 'आर्य-समाज' (1875) की स्थापना और उसके आन्दोलन के साथ हुआ। बंगाल से आरंभ हुए पुनर्जागरण की लहर 1860 ई. के आस-पास हिन्दी भाषी क्षेत्र को छूने लगी थी। स्त्री-शिक्षा का आन्दोलन, विधवा-विवाह का समर्थन, बाल और वृद्ध विवाह का विरोध आदि इसी के परिचायक थे। हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का आन्दोलन भी इसी की अभिव्यक्ति था। दुर्भाग्य से वह अंग्रेजी विरोधी आन्दोलन न होकर उर्दू विरोधी आन्दोलन बन गया था, जिसके पीछे अंग्रेजी शासन की साजिश भी थी, पर उसके पीछे अपनी भाषा का प्रेम प्रेरक तत्व था, इसमें दो मत नहीं हो सकते। लगभग सातवें दशक के अन्त में आरंभ हुए खड़ी बोली हिन्दी साहित्य के आंदोलन के मूल में भी पुनर्जागरण की प्रेरणा ही प्रमुख थी।

जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850- 1885 ई.) हिन्दी साहित्याकाश में अवतरित हुए तो उनकी दृष्टि साहित्य के उपन्यास रूप की ओर पड़ी और उनके प्रोत्साहन से कितने ही बंगला उपन्यासों का अनुवाद हुआ और मौलिक उपन्यास भी लिखे गए। श्री राधाकृष्ण दास के अनुसार उपन्यासों की ओर पहले इनका ध्यान कम था। इनके अनुरोध और उत्साह से पहले - पहल 'कादम्बरी और दुर्गेश नन्दिनी' का अनुवाद हुआ। स्वयं भारतेन्दु ने एक उपन्यास लिखना आरंभ किया था जिसका कुछ अंश 'कवि वचन सुधा' में छपा भी था। उसका नाम था 'एक कहानी: कुछ आप बीती कुछ जगबीती'। इसमें वह अपना चरित्र लिखना चाहते थे। राधारानी' स्वर्णलता' आदि का उन्हीं के अनुरोध से अनुवाद हुआ। उन्होंने 'चन्द्रप्रभा' और 'पूर्ण प्रकाश' का अनुवाद कराकर स्वयं शुद्ध किया था।

'राणा राजसिंह' का अनुवाद भी पूरा हो गया था, प्रथम परिच्छेद स्वयं ने नया लिखा, आगे कुछ शुद्ध किया था। नवीन उपन्यास 'हमीर हठ' बड़े धूम से आरंभ किया था, किन्तु प्रथम परिच्छेद लिखकर ही चल बसे। इनके पीछे इसके पूर्ण करने का भार लाला श्रीनिवास दास ने लिया और उनके परलोकगत होने पर पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने। किन्तु संयोगवश वे भी दिवंगत हो गए और कुछ भी न लिख सके। यदि भारतेन्दु जी

कुछ दिनों और जीवित रहते तो उपन्यासों से भाषा के भण्डार को भर देते, क्योंकि उनकी रूचि अब इस ओर फिरी थी। 'चन्द्रप्रभा पूर्ण प्रकाश', राधा-रानी', सौन्दर्यमयी' आदि भी इसी प्रकार अनुवादित हुए थे। भारतेन्दु के जीवन चरित्र में राधाकृष्णदास ने भारतेन्दु द्वारा निम्नांकित आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है - 'रासलीला', 'हमीर हठ', (असम्पूर्ण-अप्रकाशित), राजसिंह (अपूर्ण), 'एक कहानी कुछ आप बीती, कुछ जग बीती, '(अपूर्ण), सुलोचना, मदालसोपाख्यान, शीलवती और सावित्री-चरित्र। इनमें से सुलोचना और सावित्री-चरित्र के विषय में वे स्वयं भी संदिग्ध हैं। 'पूर्ण प्रकाश चन्द्र प्रभा' मराठी से तथा राजसिंह बंगला से अनूदित हैं। रामलीला उपन्यास न होकर गद्य और पद्य में अभिनय के लिए लिखी गई अयोध्याकाण्ड तक की रामकथा है। "

इस प्रकार भारतेन्दु ने एक भी मौलिक उपन्यास की रचना नहीं की। एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती' का प्राय: दो पृष्ठों का प्रथम खेल मात्र प्रकाश में आ सका। फिर भी भारतेन्दु ने हिन्दी उपन्यास के लिए भूमि अवश्य तैयार की। उनके द्वारा अथवा उनकी प्रेरणा से बंगला, मराठी आदि भाषाओं से अनूदित होकर जो उपन्यास हिन्दी में आए उन्होंने हिन्दी लेखकों को भी इस दिशा में प्रेरित किया तथा पाठक भी तैयार किए। दूसरे, भारतेन्दु तथा उनके सहयोगियों ने अपने निबन्धों तथा सामाजिक प्रहसनों आदि में स्थान-स्थान पर घटना, परिस्थिति, वातावरण तथा पात्रों के सजीव चित्रण तथा व्यंग्य अर्थ आलोचनाओं के द्वारा कहानी उपन्यास के लिए परोक्ष रूप से मार्ग प्रशस्त किया।

2.2.2 हिन्दी का प्रथम उपन्यास : परीक्षा गुरू

उपन्यास आधुनिक युग की देन है। अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य से पहले परिचित होने के कारण 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग बंगाल में लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक में निश्चित हो गया था। तत्पश्चात् बंगभाषा के श्रेष्ठ उपन्यासों के अनुवादों के क्रम में तथा पुनर्जागरणकालीन चेतना से सम्पृक्त होने के कारण, हिन्दी के क्षितिज पर भारतेन्दु के क्रियाशील होने पर हिन्दी में इसका प्रचलन हुआ। इस रूप में हिन्दी का 'उपन्यास' शब्द अंग्रेजी के 'नॉवेल' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। किन्तु कुछ समालोचक विद्वान इस सत्य को झुठलाकर अपने पुरातनतावादी आग्रह के कारण हिन्दी उपन्यास को प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य की परम्परा का क्रमिक विकास मानते हैं, जो सर्वथा अनुचित है क्योंकि अधिकांश प्राचीन कथा-साहित्य पद्यबद्ध, कुतूहलदायक, अलौकिक घटनाओं से पूर्ण प्रेममूलक तथा उपदेश वृत्ति की भंगिमा से परिव्याप्त है। जबकि आधुनिक हिन्दी उपन्यास गद्य में लिखित, वैयक्तिक दृष्टिकोण, विश्वसनीयता, स्वाभाविकता तथा यथार्थपरक स्थितियों पर बल देता है, जो निश्चित रूप से पश्चिमी शिक्षा के सम्पर्क का परिणाम है।

हिन्दी का पहला उपन्यास किसे माना जाए, इस विषय में विचारकों में पर्याप्त मतभेद रहा है। यह मतभेद उपन्यासों के ऐतिहासिक कालक्रम, उसके वस्तु और शिल्प तथा कुछ विद्वानों की अस्पष्ट टिप्पणियों से मुखर हुआ है। हिन्दी के अधिकांश समीक्षक लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षागुरू को हिन्दी उपन्यास के प्रवर्तन का श्रेय प्रदान करते हैं लेकिन कुछ समीक्षकों ने 19 वीं शताब्दी के प्रथम चरण में लिखित आख्यानक कृतियों

से हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भ माना है। उन्होंने अपने सब तर्कों के आधार पर इंशाअल्लाह खाँ कृत 'उदेभान चरित या रानी केतकी की कहानी' को प्रथम उपन्यास की संज्ञा प्रदान की है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक पच्चीस वर्षों में लिखित तथा प्रथम उपन्यास के लिए प्रस्तावित कृतियों में इंशाअल्लाह खाँ कृत रानी केतकी की कहानी' का मुख्य स्थान है। लल्लूलाल जी कृत 'प्रेमसागर' एवं सदल मिश्र कृत 'नासिकेतोपाख्यान' की तरह इसमें कथा वाचन शैली को अंगीकार किया गया है, जिसमें लेखक श्रोता मण्डली की उपस्थिति के प्रति सजग होकर कहानी कहता है। लेकिन हिन्दी साहित्य के खड़ी बोली गद्य के विकास में इनका ऐतिहासिक महत्व है। 'प्रेम सागर' एवं नासिकेतोपाख्यान' धार्मिक-पौराणिक कथावस्तु पर आधारित गद्य आख्यान हैं। 'रानी केतकी की कहानी' की मौलिकता असंदिग्ध होते हुए भी इसमें आधुनिक औपन्यासिक कला का सर्वथा अभाव है। कदाचित् इसलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. गोपाल राय, प्रताप नारायण टंडन, शिव सिंह, प्रभूति विद्वानों ने इनके हिन्दी उपन्यास की कोटि में रखे जाने पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। उनका मंतव्य है कि इनमें न आधुनिक उपन्यास की भावधारा प्राप्त होती है और न शिल्प-विधि ही।

इस दृष्टिसे पं. गौरीदत्त कृत 'देवरानी जेठानी की कहानी' भी विचारणीय है। इनमे तत्कालीन वैश्य-समाज के आचार-विचारों को आम बोलचाल की भाषा में निबद्ध किया गया है। लेखक का उद्देश्य शिक्षित एवं अशिक्षित स्त्री के कार्य व्यवहार का तुलनात्मक विवेचन करके स्त्री शिक्षा के महत्व की प्रतिष्ठा करना है। उसने गार्हस्थ्य जीवन की समस्याओं को यथार्थवादी धरातल पर चित्रित करने का सराहनीय प्रयास किया है। किन्तु कहानी को बहुत सरलीकृत ढंग से रखे जाने तथा एकालाप की स्थिति के कारण नाटकीय शिल्प एवं मनोवैज्ञानिक स्थितियों का अभाव इसे हिन्दी उपन्यास के प्रवर्तन का श्रेय देने में बाधक है।

'देवरानी जेठानी की कहानी' की तरह मुंशी ईश्वरी दास एवं कल्याण राय द्वारा रचित 'वाम शिक्षक' भी समाज सुधारपरक कृति है। यह, स्त्रियों को आदर्शनारी एवं उपन्यास की सम्भावनाओं से रहित होने के कारण प्रथम उपन्यास का श्रेय नहीं पा सकती। डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने हिन्दी पुस्तक साहित्य में प्रथम हिन्दी उपन्यास के लिए 'मनोहर उपन्यास' (1871) नामक एक उपन्यास की चर्चा की है। उनके अनुसार""".... यह अनुवाद नहीं ज्ञात होता। क्योंकि इसे सम्पादकों द्वारा केवल संगृहीत और संशोधित कहा गया है। इसकी कथावस्तु के सम्बंध में भी कोई संकेत नहीं है।"

भारतेन्दु ने अन्य साहित्य-विधाओं में कार्य करते हुए अपने जीवन के उत्तरकाल में उपन्यास की ओर दृष्टिपात किया था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतेन्दु कृत 'चन्द्रप्रभा पूर्ण प्रकाश' नाम के उपन्यास का सर्वप्रथम सामाजिक उपन्यास' के रूप में उल्लेख किया है। लेकिन स्वयं द्विवेदी जी ने तथा अन्य विद्वानों ने भी इसे अनूदित घोषित करके इसकी मौलिकता पर ही प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। उनकी एक अपूर्ण तथापि उल्लेखनीय कृति 'एक कहानी: कुछ आप बीती कुछ जग बीती' है, जिसे कुछ विद्वानों ने यथार्थ चित्रण एवं नवीन शिल्प योजना के आधार पर उपन्यास' की

सम्भावनाओं से युक्त माना है। डॉ. विजयशंकर मल्ल ने परीक्षा गुरू ' की सांकेतिक भूमिका कहकर जहाँ इसकी सम्भावनाओं पर प्रकाश डाला है, वहीं डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने कृति में दी गई तिथि आदि के आधार पर इसे सरस शैली में लिखा गया संस्मरण' बताया है। स्पष्टतः भारतेन्दु को मात्र इस अपूर्ण रचना के आधार पर हिन्दी का प्रथम उपन्यासकार नहीं कहा जा सकता। डॉ. श्रीकृष्ण लाल के अनुसार हिन्दी का प्रथम साहित्यिक उपन्यास देवकी नन्दन खत्री का 'चन्द्रकान्ता' है, जो 1891 ई. में प्रकाशित हुआ। इसके विषय में मात्र इतना कहना पर्याप्त होगा कि यह हिन्दी उपन्यास की आद्यकृति न होकर उसका विकसित रूप है। शायद इसीलिए स्वयं श्री कृष्ण लाल ने 'श्री निवास ग्रन्थावली' में 'परीक्षा गुरू ' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास स्वीकार किया हैं।

डॉ. गोपाल राय ने राधाकृष्ण दास रचित 'निःसहाय हिन्दू' को 'पहला विशुद्ध उपन्यास' मानते हुए अपने प्रबन्ध में उसकी जोरदार वकालत की है। अनेक समीक्षकों ने इसे 'परीक्षा गुरू' का परवर्ती माना है। इसके अतिरिक्त भी शिथिल कथानक, विश्रृंखल विचार-प्रवाह, एवं आधुनिक हिन्दी उपन्यास की सम्भावनाओं से रहित होने के कारण इसे हिन्दी के प्रथम उपन्यास होने का गौरव प्रदान करना उचित प्रतीत नहीं होता।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 1877 ई. में श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' नाम के एक सामाजिक उपन्यास का उल्लेख किया है, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। इसके अनुसार 'भाग्यवती' नवजागरणकालीन आंदोलन के समय की एक लोकप्रिय कृति ज्ञात होती है। इसलिए इसके कथानक में सामाजिक स्थितियों के चित्र पर्याप्त मात्रा में दिखाई पड़ते है। कदाचित् इसी आधार पर विजयशंकर मल्ल, सुरेश सिन्हा आदि ने वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से इसे प्रौढ़ रचना स्वीकार कर लिया है। वस्तुतः यह एक उपदेशाख्यान है क्योंकि इसमें उपदेश विशेष के लिए कथा को गढ़ा गया है। इसकी कथा में न विश्वसनीयता है और न स्वाभाविकता ही। शैली शिल्प की दृष्टि से भी इसमें आधुनिक हिन्दी उपन्यास का रूपविधान प्राप्त नहीं होता।

हरिकृष्ण जौहर ने 'कुसुमलता', 'मायामहल', 'कमलकुमारी' व 'तिलस्म नीलम' आदि ऐय्यारी तिलस्मी प्रधान उपन्यासों की रचना की।

हरिकृष्ण जौहर ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने तिलस्मी ऐय्यारी के साथ- साथ जासूसी उपन्यास भी लिखे है। गोस्वामी जी की तरह इनके उपन्यासों में सब मिलीजुली खिचड़ी नहीं है और न ही गोस्वामी जी की तरह भाषा के साथ खिलवाड़ है। इनकी वर्णन शक्ति सजीव है। भाषा में चपलतापन है।

गोपालराम गहमरी ने हिन्दी में जासूसी उपन्यासों की परम्परा का श्रीगणेश किया। इन्होंने उपन्यासों के अतिरिक्त काव्य और नाटक और जासूसी, ऐतिहासिक, सामाजिक उपन्यास भी लिखे। किन्तु इनको हिन्दी साहित्य में ख्याति जासूसी उपन्यासकार के रूप में ही, प्राप्त हुई। गहमरी जी के उपन्यासों में अव्यवस्था के प्रति विद्रोह है। लोकहित की भावना निहित होने के कारण इनका साहित्य मनोरंजन मात्र के लिए नहीं था। इनका उद्देश्य कानून व न्याय के प्रति पाठकों की आस्था प्रगट करना था।

उपन्यासकारों में जयरामदास भी उल्लेखनीय हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं, 'लंगड़ा खूनी, 'बिना सवार का घोड़ा', 'भूतों का डेरा' व विचित्र खून', दो खून' और भयानक भेदिया या

विषम रहस्य। इन्होंने कौतूहलवर्द्धक तथा सनसनीखेज घटनाओं के बीच-बीच में कामोत्तेजक वर्णन भी किए हैं। इनकी भाषा का स्तर भी सामान्य हैं।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द पूर्व युग को निर्माण युग कहा जा सकता है। जासूसी और तिलस्मी घटना प्रधान उपन्यासों का इस युग में बोलबाला था। सरल बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर इन लेखकों ने उपन्यास विधा को लोकप्रिय बनाया।

2.2.3 प्रेमचन्द पूर्व सामाजिक उपन्यास

प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासकारों की एक लम्बी कतार सामने है। इस पंक्ति में सबसे पहले जिस उपन्यासकार का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है, वह है भारतेन्दु मण्डल का जगमगाता नक्षत्र लाला श्री निवासदास जिन्होंने 'परीक्षागुरू (1882) लिखकर हिन्दी में सामाजिक उपन्यास का शिलान्यास किया। प्रेमचन्द्र-पूर्व युग परम्पराओं और नये आविष्कारों के फलस्वरूप नये आदर्श एवं नई मान्यताओं के बीच एक विचित्र संघर्ष की स्थिति में डोल रहा था, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव 'परीक्षा गुरू' पर पड़ा।

हिन्दी में प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास की ख्याति के दो मुख्य स्तम्भ हैं - एक है नीतिपरक सामाजिकता तथा दूसरा स्तम्भ है मनोरंजन की प्रचुरता। नीतिपरक सामाजिकता का शिलान्यास तो बाबू श्रीनिवासदास ने किया, जबकि इस धारा को गति देने का श्रेय सर्वश्री बालकृष्ण भट्ट, अयोध्या सिंह उपाध्याय, लज्जा राम मेहता, ठाकुर जगमोहन सिंह, किशोरीलाल गोस्वामी तथा उन सैकड़ों कथाकारों को है, जिनका नाम भी अभी तक पाठकों के समक्ष नहीं आया। दूसरा स्तम्भ अधिक सशक्त रूप में आलोकित हुआ क्योंकि इसने हिन्दी में एक विशिष्ट पाठक वर्ग तैयार किया। इस सम्बन्ध में एक आलोचक लिखते हैं - 'उस युग में सामाजिक उपन्यासों का वांछित विकास नहीं हो सका। इसका बहुत बड़ा कारण कुतुहलवर्द्धन एवं उनका अत्यधिक प्रचार भी था। " श्री देवकीनन्दन खत्री ने सन् 1861 में तथा उसके बाद 'चन्द्रकान्ता' एवं चन्द्रकान्ता सन्तति' नामक उपन्यास प्रकाशित किये। इनके प्रकाशित होते ही हिन्दी जगत में एक धूम-सी मच गई और इनके आगे पूर्ववर्ती सामाजिक उपन्यास फीके पड़ गये।

प्रेमचन्द पूर्व काल में हिन्दी उपन्यास लगभग 25 वर्ष तक एकरसता की स्थिति में पड़ा रहा। एक ओर सर्वश्री श्रीनिवासदास (परीक्षागुरू), बालकृष्ण भट्ट (नूतन ब्रहमचारी) राधाकृष्ण (निस्सहाय हिन्दू, रतनचन्द प्लीडर (नूतन चरित्र) बालमुकुन्द शर्मा (मालती) श्यामसुन्दर लाल शर्मा (पंजाब पतन), कला प्रसाद (कुल कलकिनी), गौरी दत्त (गिरिजा), पुतनलाल सारस्वत (स्वतंत्र वाला) आदि कथाकार अपने-अपने उपन्यासों में कहीं रूढ़िवादिता का प्रचार तो कहीं इसका विरोध कर सामाजिक संक्रांति की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर रहे थे। दूसरी ओर मनोरंजन को ही अपना साध्य मानने वाले कथाकार देवकीनन्दन खत्री, चुन्नीलाल खत्री, (जबर्दस्त की लाठी), विट्ठलदास (किस्मत का खेल) मदनमोहन पाठक (आनन्द सुन्दरी, 5 भाग) सत्यदेव (आश्चर्य), रामप्रसाद वर्मा (राजकुमारी चन्द्रमुखी), लक्ष्मी नारायण शर्मा (समुद्र में गिरीन्द्र), गोपालराम गहमरी (चतुर चंचला) आदि उपन्यासकार थे। किशोरीलाल गोस्वामी (शीशमहल तारा, आदर्श सती आदि 65 उपन्यास), सूरजनाथ वैश्य (कटा हुआ सिर) आदि के अपने-अपने उपन्यासों में

अनेक प्रकार से पात्रों को मूर्छित कर पुन: अपनी दवा द्वारा चेतनावस्था में ले जाने, सहेलियों के साथ कभी बाग में तो कभी तालाब में रमण करती नायिकाओं, बटुए में छिपे नजूमी-रम्मालों, भूल-भुलैयों में खो देने वाले तिलस्मों, मेज पर पड़ी लाशों, बटुए में रखे हत्याओं के भेदों को पढ़कर लाखों करोड़ों पाठक एकरस मनोरंजन वृद्धि ही तो करते हैं।

इस काल में सामाजिक कुरीतियों यथा सती प्रथा, पर्दा प्रथा, विधवा समस्या, अनमेल विवाह समस्या, स्त्री शिक्षा, दासी प्रथा, देवदासी प्रथा, वेश्या समस्या, छुआछूत समस्या आदि विषयों पर लज्जा राम मेहता, राधाकृष्णदास, ब्रजनाथ भट्ट (क्या इसी को सभ्यता कहते हैं, देवदत्त (सच्चा मित्र), रामगोपाल (सुदामा), किशोरीलाल गोस्वामी (प्रणयिनी परिणय) लोचन प्रसाद पाण्डेय (दो मित्र), द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी (सावित्री-सत्यवान), अवध नारायण (विमाता), रामचरित उपाध्याय (देवी द्रौपदी) आदि सशक्त उपन्यास लिखे गये, वहीं दूसरी ओर शुद्ध मनोरजनात्मक घटना प्रधान तिलस्मी तथा एय्यरी एव जासूसी उपन्यासों की एक ऐसी बाढ़ आ गई जिसमें जन रूचि विकृत होकर आकण्ठ तक डूब गई।

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास में बुद्धिजीवियों के लिए बहुमूल्य सामग्री के नितान्त अभाव की बात का समर्थन हिन्दी गद्य साहित्य के समालोचक डॉ. रामदरश मिश्र ने किया है। वे लिखते हैं कि ' हिन्दी में उपन्यास की वास्तविक शक्ति और स्वरूप को सही रूप में पहले - पहल प्रेमचन्द जी ने ही पहचाना। प्रेमचन्द के पूर्व के हिन्दी उपन्यासों में विषय और उद्देश्य की दृष्टि से कुछ वैविध्य भले रहा हो लेकिन वे कहीं-कहीं एक रस हैं और वे सब के सब उपन्यास को वास्तविक गरिमा प्राप्त करने में असमर्थ हैं। डॉ. मिश्र के इस कथन में भी प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास में एकरसता की स्थिति की पुष्टि होती है।

2.3 हिन्दी उपन्यास का नया युग

2.3.1 प्रेमचन्द का आविर्भाव

प्रेमचन्द युग राष्ट्रीय आन्दोलन और नवजागरण का युग है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में नवजागरण का जो उन्मेष हुआ वह बीसवीं सदी में और अधिक व्यापक और गहन होता चला गया। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में नवजागरण की प्रक्रिया किंचिंत विलम्ब से प्रारंभ हुई। महाराष्ट्र और बंगाल में यह प्रक्रिया पहले शुरू हो गई थी। यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द ने इस उद्बोधन की प्रक्रिया को यथार्थोन्मुखी बनाया। प्रेमचन्द ऐसे कथाकार हैं, जिनकी कृतियों में इनके युग की सामाजिक अवस्था का यथार्थ चित्रण मिलता है। उन्होंने उन समस्याओं और मान्यताओं के जीते जागते चित्र अंकित किये हैं जो मध्य वर्ग, जमींदार, पूँजीपति, किसान, मजदूर, अछूत और समाज के बहिष्कृत व्यक्तियों के जीवन को संचालित करती है। साहित्य के क्षेत्र में वे साहित्य के साथ-साथ समाज के सृष्टा भी कहे जा सकते हैं।

प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यास साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कथाकार हैं। उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना है। उनके उपन्यासों में हमें अपने युग की ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई देती है। प्रेमचन्द की श्रेष्ठता और महत्ता का सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने हिन्दी के प्राचीन उपन्यासकारों द्वारा संस्थापित परम्पराओं का ध्वंस कर

पुरानी मान्यताओं का परित्याग कर, हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में नवीन आदर्शों की स्थापना की और चिर उपेक्षितों को भी पढ़े-लिखे समाज के आकर्षण का केन्द्र बनाया।

मानव जीवन के अन्तर्गत प्रेमचन्द की गहरी पैठ थी। मानव की विचारधारा, उसके सोचने के तौर-तरीके, उसकी दुर्बलताओं का उन्हें अच्छा अध्ययन था। दूसरे शब्दों में, प्रेमचन्द एक सफल मनोवैज्ञानिक और बौद्धिक प्राणी थे। कृषकों के वे बड़े ही संवेदनशील या हिमायती लेखक थे। उनके दुखों, दर्दो और कठिनाइयों का उन्होंने बड़ी सहानुभूति और संवेदनशीलता के साथ चित्रण किया है। अध्ययन, चिन्तन और अनुभव ने प्रेमचन्द के व्यक्तित्व में अविराम-द्रष्टा की शक्ति उत्पन्न कर दी थी।

प्रेमचन्द की दृष्टि भारतीय कृषक जनता की सभी समस्याओं को बड़े व्यापक परिप्रेक्ष्य में देख रही थी। किसानों की एक-एक समस्या से वे परिचित थे। 'गोदान', 'कर्मभूमि' और 'प्रेमाश्रय' में उन्होंने किसानों की दुर्दशा, व्यथा, शोषण और विषमताओं आदि दोषों का विस्तार से चित्रण किया है। इन्हीं उपन्यासों में भारतीय किसानों के पारस्परिक संघर्ष का भी विस्तृत वर्णन है।

किसानों का शोषण जंहाँ एक ओर जमींदार, कारकुन, सरकारी अहलकार, पटवारी महाजन करते हैं, साथ ही उनके शोषण का आधार हैं गॉव की पंचायतें तथा उनके संचालक पंच और सरपंच । ये. पैच समाज के उच्च वर्गो में उत्पन्न होते हैं। 'गोदान' की दुनिया और समाज को पीड़ा पहुँचाने, उसे विकृत 'और विषादमय बनाने का श्रेय उन्हीं पंचों और सरपंचों का जाता है। ये ही किसान का अमानवीय शोषण करते हैं और उसके जीवन में विष घोला करते हैं और किसानों के श्रम को हड़प जाते हैं। मरघट के कुत्तों के सदृश ये पंच अवसर की तलाश में रहते हैं। जब भी उन्हें शोषण का मौका मिलता है, ये चूकते नहीं है। पटेश्वरी, नोखेराम, झींगुरीसिह दातादीन आदि गॉव के भाग्य-विधाता और किसानों का सर्वनाश करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। इनमें से कोई पंच ऐसा नहीं है जिसे दया, करूणा, ममत्व, अपनत्व आदि मानव सुलभ कोमलताओ ने किसी भी अंश में स्पर्श किया हो। ये सभी अभिजात वर्ग के प्रतिनिधि हैं और ब्राहमण और क्षत्रिय कुल में जन्मे हैं। फिर भी क्षमा और दया से सर्वथा वंचित हैं। होरी जीवन पर्यन्त इन्हीं पंचों की कृपा से कंगाल बना रहा।

वस्तुत: प्रेमचन्द ने उपन्यास के लिए एक नयी ढंग की जमीन तैयार की और इसी अर्थ में उन्होंने युगान्तर भी उपस्थित किया। उनकी रचनाओं का उद्देश्य मनोरंजन मात्र न था। बल्कि उनका मानव जीवन और समाज में उपयोग वांछित था। प्रेमचन्द का कथा-साहित्य समस्या प्रधान है जिसमें समाज और व्यक्ति की समस्याओं का व्यापक चित्रण मिलता है। विषय की दृष्टि से भी प्रेमचन्द ने नवीनता उपस्थित की जहाँ साहित्यिक-दृष्टि-विस्तार के लिए बडा अवसर था। उन्होंने साहित्य को रूढिबद्ध परम्परा से मुक्त किया और मानवता के जीवन चित्रण द्वारा कला की सार्थकता अनुभव की। प्रेमचन्द ने स्पष्ट शब्दों में कला को जीवन-शक्ति से अनुप्राणित देखने में विश्वास प्रकट किया। न केवल उपन्यास-साहित्य में वरन् समस्त हिन्दी-साहित्य में प्रेमचन्द ने नवीन और स्वस्थ साहित्यिक परम्परा का प्रवर्त्तन किया, जो समाज की आधारभूत मानवता के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करती है।

प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यासों के कलात्मक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया। चरित्र चित्रण, कथोपकथन और भाषा शैली की दृष्टि से उन्होंने हिन्दी उपन्यास को नई दिशा प्रदान की। उन्होंने चरित्र-चित्रण को उपन्यास की आधार शक्ति मानते हुए लिखा है-

"मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। .....उपन्यास के चरित्रों का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहन और विकासपूर्ण होगा, उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा।"

अपने उपन्यासों के चरित्रांकन में प्रेमचन्द ने परिस्थितियों का प्रभाव दिखाकर गतिशील पात्रों की सृष्टि की। कुछ आदर्शवादी पात्रों को छोड़कर उनके चरित्र मानव-प्रकृति की बहुमुखी अन्त:वृत्तियों का गहरा प्रभाव अंकित कर जाते हैं। उपन्यासों में कथोपकथन के महत्व पर भी उनकी दृष्टि थी। उनके कथोपकथन स्वाभाविकता के अपूर्व उदाहरण हैं। उपन्यासों में प्रेमचन्द ने जैसी सरल, सरस, सजीव एवं प्रभावोत्पादक भाषा शैली का प्रयोग किया, वैसी आज तक दूसरा उपन्यासकार नहीं कर पाया है। पूर्ववर्त्ती उपन्यासों में जिस सहज गतिशील प्रवाह का अभाव दृष्टिगत होता है, वह प्रेमचन्द की कृतियों में नहीं है।

सन् 1904 के लगभग प्रेमचन्द का लघुकाय उपन्यास प्रेमा' प्रकाशित हो चुका था किन्तु 1914 से 1936 का युग प्रेमचन्द के साहित्य-सृजन का वास्तविक युग है जिसका आरम्भ सेवासदन' से और अन्त गोदान' से होता है। एक साहित्यिक और विचारक के नाते प्रेमचन्द अपने युग की प्रवृत्तियों को साहित्यिक चेतना के संसर्ग में समझते रहे थे। उनके युग की राजनीतिक और आर्थिक प्रवृत्तियों को उनके साहित्य में पूरी पैठ मिली है। 'प्रतिज्ञा', 'वरदान', 'सेवासदन' और 'गबन' में प्रेमचन्द ने सामाजिक समस्याओं और प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात किया है। 'प्रतिज्ञा' में विधवाओं की समस्या और 'सेवा सदन' में वेश्याओं की समस्या के अतिरिक्त मध्यवर्ग की दैनिक आर्थिक कठिनाइयों का चित्रण किया गया है। 'गबन' में समाज की अपेक्षा व्यक्ति को प्रमुखता दी गयी है। प्रेमचन्द ने सामयिक आन्दोलनों विशेष रूप से गाँधी जी के आन्दोलनों को अपने उपन्यासों की विषयवस्तु बनाया है। कर्मभूमि में राजनीतिक जीवन का सजीव चित्रण हुआ है। आर्थिक प्रवृत्ति चित्रण में प्रेमचन्द का ध्यान जमींदार किसान सम्बन्ध पर विशेष रूप से गया है। यह शोषण का सम्बन्ध था। देहात में रहकर प्रेमचन्द ने देखा था कि किसान की कीमत पर सामंती और पूँजीवादी शक्तियाँ जी रही थीं। बेगार, बेदखली, नजराना कर लगाने के नाम पर सामंती शक्ति के अवशिष्ट भूमिपति निर्दयतापूर्वक कृषक वर्ग का शोषण कर रहे थे और उधर औद्योगीकरण विकास उन्हें पूँजीवाद के शोषण का लक्ष्य बना रहा था। 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द ने दिखाया है कि बढ़ते हुए उद्योग-धन्धों के लिए कृषकों की जमीन छीनी जा रही है। इस नोंच खसोट से भी शोषक-वर्ग की इच्छा पूरी न होने पर किसानों के उत्पीड़न में अधिकारी-वर्ग का सहयोग लिया जाता। चारों ओर से प्रहार सहते-सहते किसान जर्जर हो गया था। 'प्रेमाश्रम और 'गोदान' में प्रेमचन्द ने यही दिखाया है। जीवन का परिश्रम, भार, दमन और क्षुधा-पीड़ित पेट की ज्वाला में भस्म हो रहा था। अशिक्षा-रूढ़िवादिता और निर्धनता से जड़ मानवता का जिन क्रूरतम उपायों से शोषण

किया जा रहा था, उसे प्रेमचन्द ने देखा था। साथ ही उन्होंने यह भी देखा था कि कृषक-वर्ग किसान आंदोलनों के फलस्वरूप जाग रहा था और अधिकारों के लिए उठकर दमन की शक्तियों का सामना कर रहा था। प्रेमाश्रम' और कर्मभूमि' में तद्विषयक चित्रण हुआ हैं। जीवन-मृत्यु के संघर्ष में व्यस्त इस मानवता के प्रति प्रेमचन्द की अपार सहानुभूति थी। अपनी कला को दलित मानवता के उद्धार की साधना का माध्यम बनाकर प्रेमचन्द ने एक जागरूक कलाकार के दायित्व का निर्वाह किया था।

2.3.2 प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास

बीसवीं सदी का प्रारम्भ सामाजिक सुधार की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। इस काल में समाज के बहुसंख्यक लोगों की दृष्टि समाज की हीनदशा की ओर गई और उसके निराकरण के लिए अनेक प्रकार के प्रयास हुए। विभिन्न धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं - जैसे 'आर्य समाज', के विभिन्न सुधार-मूलक कार्य-जैसे विधवा-विवाह का श्रीगणेश, अनाथ महिलाओं के लिए आश्रमों की स्थापना आदि इसी सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के अंग हैं। प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासकारों ने सामाजिक दुरावस्था को दूर करने वाली इन गतिविधियों के सम्यक् अनुशीलन से इनकी संभावनाओं और त्रुटियों का सही आकलन किया और अपनी लेखनी द्वारा सामाजिक पुनर्जागरण की भूमिका में दत्तचित्त हुए।

प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने दो सामाजिक उपन्यास लिखे हैं- 'कंकाल' और तितली'। इनमें भी कौटुम्बिक विघटन की रूपरेखा अंकित की गई है। 'कंकाल' यथार्थवादी उपन्यास है, - परन्तु आलोचकों का कहना है कि वह उपन्यास यथार्थवाद के आवरण में आदर्शवादी है, यद्यपि ऊपर से देखने में यथार्थवाद का रंग अधिक भास्वर है। प्रसाद भी प्रेमचन्द की तरह आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी कलाकार है। 'इरावती' उनका अपूर्ण उपन्यास है।

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों की दूसरी प्रधान प्रवृत्ति मध्य-वर्ग का चित्रण है। मध्य-वर्ग समाज का सबसे बड़ा और विविध-आयामी-वर्ग है। मध्य-वर्ग दो उप-वर्गो में विभक्त है - उच्च-मध्य-वर्ग कहलाता है और दूसरा जो निम्न वर्ग को छूता है - निम्न मध्य-वर्ग है। प्रताप नारायण श्रीवास्तव के उपन्यासों में जिसे उच्च-वर्ग कहा गया है, वह वास्तव में उच्च मध्य-वर्ग ही है। उदाहरण के लिए 'विदा' के माधवचन्द को लीजिए। वे ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट हैं। बंगले में रहते हैं, अंग्रेजी रहन-सहन के अभ्यस्त हैं लेकिन वे इतने से ही उच्च-वर्ग के सदस्य नहीं हो जाते। मध्य-वर्ग की सीमाएँ और विशेषताएँ उनके साथ हैं।

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों के प्रगतिशील पात्र विवाह की तरह धन को भी अनावश्यक मानते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में कितने ही पात्र धन का विरोध करते हैं जैसे 'कायाकल्प' का चक्रधर और 'कर्मभूमि' का अमरकान्त। तितली के इन्द्रदेव अपनी जमींदारी त्याग देते हैं और शहर जाकर बैरिस्ट्री करने लगते हैं। बैरिस्ट्री अच्छी तरह नहीं चलती किन्तु फिर भी वे मगन हैं।

प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यासों में यथार्थनिष्ठता के बढ़ते हुए प्रभाव को एक-दूसरे रूप में भी देखा जा सकता है - वह है आंचलिकता की प्रवृत्ति। आंचलिकता पर विचार करने पर हम उसे सहजता से दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं - 1. सामान्य आंचलिकता या

आंचलिकता का सहज स्वाभाविक रूप 2. असामान्य आंचलिकता अथवा आंचलिकता का उग्र और स्फीत रूप

सामान्य आंचलिकता हिन्दी के लिए बड़ी चिर परिचित प्रवृत्ति रही है। इसे वृन्दावन लाल वर्मा, निराला और प्रेमचन्द तक में देखा जा सकता है। चाहे बुन्देलखण्ड का अंचल विशेष हो या उत्तर प्रदेश का, ठेठ अवध ला, अपनी विशेष भौगोलिकता, भाषा और रहन-सहन के कारण उपर्युक्त लेखको में आसानी से पहचाने जा सकते हैं। यदि स्फीत आंचलिकता ली बात ले, तो बाबू शिवपूजन की 'देहाती दुनिया' का नाम लेना सुविधाजनक होगा। आज की किसी भी आंचलिक कृति से 'देहाती दुनिया' कम आंचलिक नहीं है लेकिन उसने आंचलिकता का दावा इसलिए नहीं किया था कि तब आंचलिकता एक फैशन या प्रवृत्ति ले रूप में सामने नही आई थी।

2.4 हिन्दी उपन्यास का विकास

प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास की जो सुदृढ़ नींव रखी उससे हिन्दी उपन्यास ने बहुआयामी विकास किया। प्रेमचंद के बाद इस क्षेत्र मैं नये-नये प्रयोग हुए तथा इस विधा की समृद्धि निरंतर बढ़ती गयी। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास मैं प्रमुख रूप से हमें दो धाराएँ देखने को मिलती हैं

1 यथार्थवादी उपन्यास

2 मनोविश्लेषणवादी उपन्यास

2.4.1 यथार्थवादी उपन्यास

यथार्थवादी ने कला का सम्बंध विज्ञान से स्थापित किया है और उसे विश्लेषण शक्ति से विभूषित किया है। यथार्थवाद कट्टर सामाजिक व्यवस्थाओं, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के प्रति अनास्था का भाव प्रकट करता है। यथार्थवाद की सीमाएँ केवल उच्च वर्गीय व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है। वह मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय व्यक्तियों को भी समान से अपने चित्रण का आधार बनाता है। वह पात्रों की चारित्रिक दुर्बलताओं को स्वीकार करता है और आदर्शवादियों की भाँति उन्हें एक विशिष्ट मोड़ दे देना उसे स्वीकार्य नहीं हैं। यर्थाथवाद लघुता के प्रति कभी अपनी विरक्ति नहीं प्रकट करता है और न ही दैवीय शक्तियों के प्रति उसकी आस्था रहती है। यथार्थवाद जीवन के सत्य को चित्रित करता है और उन जीवन सत्यों में किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखता। यथार्थवाद स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर उन्मुख होता है और परिवर्तनशील परिस्थितियों तथा वैचारिक दृष्टिकोणों से प्रेरणा ग्रहण कर कला को नवीन वातावरण में गतिशील करता है। यथार्थवाद व्यक्ति को समाज का अभिन्न अंग स्वीकार कर उसकी अखण्डता के प्रति आस्थावान है। यथार्थवाद की दृष्टि बहुमुखी है और वह जीवन के विविध पक्षों के चित्रण के प्रति पूर्ण कलागत ईमानदारी से प्रयत्नशील होती है। यथार्थवाद यथातथ्यवाद नहीं है और वह तथ्यों का आकलनं मात्र नहीं करता, वरन् कल्पना से उन्हें मॉजकर, संवार कर, प्रभावशाली बनाकर इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि वे अपने आप में एक आदर्श बन जाते हैं और सम्पूर्ण मानवता को नवीन अभियान के प्रति दिशोन्मुख करने के प्रतीक स्वरूप बन जाते हैं।

यथार्थवाद उपन्यासों की मूलभित्ति है। यदि उपन्यास जीवन के सत्य का प्रतिनिधित्व करते हुए मानव जीवन की सम्पूर्णता का चित्रण करते हैं, तो यह कार्य बिना यथार्थवाद की सहायता से सम्भव हो ही नहीं सकता - यह निश्चित है। यथार्थवाद उपन्यासों के माध्यम से न केवल ऐसे तथ्यों एवं सत्यों से हमें परिचित कराता है, जो आधुनिक युग में साहित्य के सबसे बड़े आकर्षण हैं, वरन् उपन्यास में इस दृष्टि से भी यथार्थवाद आवश्यक है, क्योंकि वह मानव-स्वभाव के अध्ययन में सहायक होता है। एक लेखक चाहे आदर्शवादी हो या यथार्थवादी उसे व्यापक परिवेश में पूरी सृष्टि के परिप्रेक्ष्य में मानव-जीवन के चित्रण तथा प्रगतिशील तत्वों को उत्कर्ष प्रदान करना चाहिए, जिससे कोई भी चित्रित जीवन को चाहे इस आँख से या उस आँख से देखे - उसे यथार्थ एवं स्वाभाविक प्रतीत हो। साहित्य का दायित्व निर्माण का होता है, विध्वंस का नहीं। विध्वंस साहित्य को साहित्य की संज्ञा से किन्हीं भी परिस्थितियों में अभिहत नहीं किया जा सकता, चाहे उन्हें कुछ और भले ही कहा जाए। ऐसे कठिन निर्माणाधीन और नवोन्मेष की भावना से प्रेरित युग में केवल महान् एवं सत्यता से प्रेरित यथार्थवाद ही साहित्य के इन दायित्वों को पूर्ण कर सकता है, कोई अन्य औपन्यासिक प्रवृत्ति या साहित्यिक परम्परा नहीं।

यथार्थवाद की अपनी कुछ सीमाएँ भी होती हैं। आज का यथार्थवादी केवल यथार्थवाद का प्रतिबिम्ब ही नहीं उतार देता, उसे यथार्थ से लगाव होता है, वस्तुतः यही चीज उसे लेखक का यथार्थ स्वरूप प्रदान करती है। वह यथार्थ के क्रम का यथातथ्य रूप में अनुगमन न कर अपनी इच्छानुसार वस्तुओं का चयन कर उसका पुनर्गठन करता है। वह सृष्टि को खण्ड-खण्ड कर फिर उन खण्डों से एक भवन निर्मित करता है, जो यथार्थ से पूर्ण होता है। अतः यथार्थवाद सृजनशील होता है।

यथार्थवाद ने उपन्यास शिल्प के ऊपर भी अपना विशिष्ट प्रभाव डाला है। महान् यथार्थवादियों द्वारा चित्रित पात्र स्वयं अपना व्यक्तिगत जीवन जीते हैं। उनका पतन एवं उत्कर्ष तथा उनकी स्थिति का निर्णय उनके अपने सामाजिक जीवन एवं वैयक्तिक अस्तित्व के माध्यम से ही होता है। यथार्थवाद सत्य तथ्यों से परिचित कराने के साथ ही जातीय पात्रों का परिस्थितियों में यथार्थ ढंग से पुनर्जीवन देता है। उपन्यासों के पात्रों के व्यक्तित्व की वही विशेषताएँ होनी चाहिए, जो साधारण जीवन में उसी प्रकार के किसी भी व्यक्ति को हो सकती है। इसके लिए उपन्यासकार में अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का होना आवश्यक होता है, जिससे वह अपने चारों ओर के लोगों के जवीन की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को भी समझ सके और उसी स्वाभाविकता से उपन्यास के पात्रों में भी मूर्तिमान कर दे।

यथार्थवाद ने कुछ समस्याएँ उपस्थित कर दी जो यदि नैतिकता से नहीं तो सुरूचि से सम्बन्धित हैं और जिन्होंने इसके क्षेत्र को व्यापकता प्रदान कर जीवन के उन क्षेत्रों को भी ग्रहण किये जाने का आग्रह प्रकट किया, जिसके प्रति उपन्यास की आँखें बन्द रहती थी। यह स्वीकारना पड़ेगा कि स्वच्छन्दतावाद ने केवल अच्छाइयों एवं शुद्धता से ही अपना सम्बन्ध बनाये रखा। यथार्थवादी उपन्यास जो कर सकते हैं-और सचमुच उन्होने यही किया भी है-वह यह किगंभीर एवं ज्वलन्त समस्याओं के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित किया। मानवीय भावनाओं पर उपन्यास क्या प्रभाव डाल सकते हैं, वह ऐसे

यथार्थवादी उपन्यासों से स्वयंमेव स्पष्ट हो जाता है। सामाजिक समस्याओं को यथार्थपूर्ण ढंग से निभाना इतना कठिन होता है कि बहुत से उपन्यासों में यदि नैतिकता कथानक के साथ पृष्ठभूमि में कदम से कदम मिलाती हुई नही प्रतीत होती, तो उसका यही कारण है कि उपन्यासकारों की भाग्यवादी भावना स्वयं नैतिकता को ही पलायनवादी बना देती है। नैतिकता के यथार्थ चित्रांकन के सम्बन्ध में दूसरी बात यह आवश्यक है कि राजनीतिक और सामाजिक जीवन में ऐसी अनेक लज्जाजनक बातें हैं जो पूर्णतया अशोभन है। इनका चित्रण उपन्यास में बड़ी सतर्कता से करना चाहिए। इन्हें संकेतों के रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। पर यदि उन्हें विशेष रूप में उपस्थित करना आवश्यक हो ही जाए तो उसका प्रस्तुतीकरण इस रूप में होना चाहिए कि उनमें पाठक भी भाग ले सकें और उसे कुछ बेहतर रूप में होना चाहिए।

यथार्थवाद के सम्बन्ध में अन्तिम बात यह रह जाती हैं कि प्राय: उपन्यास समाचार पत्रों का रूप धारण कर लेते हैं और उनमें हाल के मानव-अनुभवों का ब्यौरा भर दिया जाता है। उपन्यासकार को इस बात की जैसे बहुत जल्दी होती है कि वह उन बातों का चित्रण शीघ्रता से कर दें, जो लोग अभी करते ही रहते हैं और जो समाप्त भी नहीं होने पातीं। कला का सर्वप्रमुख उद्देश्य स्थायित्व का होता है, तो उस विशेष समय के निकल जाने के बाद उसकी कृति की भी उपयोगिता समाप्त हो जाती है।

समाज के यथार्थवादी चित्रण की दृष्टि से यशपाल के उपन्यास महत्वपूर्ण हैं। जीवन के प्रति उनकी एक निश्चित दृष्टिं है और सामाजिक अवस्था के चित्रण में उन्होंने अपनी इसी दृष्टि को समाज-दर्शन का माध्यम बनाया है। मार्क्सवादी विचाराधारा से प्रभावित होने के कारण उनकी कृतियों में पूँजीवादी अथवा सामंती व्यवस्था के वैषम्य से उद्भूत मानवीय उत्पीड़न की कथा वर्णित है।

प्रेमचन्द के उपरान्त राजनीतिक विषयों पर उपन्यास लिखने वालों में यशपाल अग्रणी हैं। किन्तु प्रेमचंद तथा यशपाल के दृष्टि में बड़ा अन्तर है। प्रेमचंद ने युग की उथल-पुथल को कलाकार की सम्पूर्ण सच्चाई के साथ केवल चित्रित करने का प्रयत्न किया है किन्तु यशपाल ने उपन्यास को सिद्धान्त प्रचार का साधन बनाया है। उपन्यास के माध्यम से वे एक निश्चित ध्येय की सिद्धि चाहते थे। जिन प्रबल भावनाओं ने उन्हे 'गाँधीवाद की शव-परीक्षा' लिखने की प्रेरणा दी थी वे ही भावनाएं उनकी कला का भी नियन्त्रण कर रही थी।

'देशद्रोही' (1943) उपन्यास की लीला भूमि बड़ी विस्तृत है। इसमें भारतीय, बजीरी अफगान, रूसी आदि कई प्रकार की जातियों का चित्रण किया गया है। 'देश-द्रोही' एक अभागे जीवन की व्यर्थता की कहानी है जो लेखक के इशारे पर संपूर्ण जीवन नाचता रहा है और अन्त में नितांत असहाय अवस्था में मर गया। दादा कामरेड (1941) देशद्रोही (1943) दिव्या (1945) मनुष्य के रूप (1949) अमिता (1996), बारह घंटे, झूठा सच (दो भाग) 'तेरी मेरी उसकी बात' आदि यशपाल के प्रमुख उपन्यास है। इनमें दिव्या' ऐतिहासिक उपन्यास है और बिलकुल भिन्न तरह का उपन्यास है। 'झूठा सच' महाकाव्यात्मक उपन्यास है।

इसी धारा में उपेन्द्रनाथ अश्क (सितारों का खेल गिरती दीवारें गर्म राख, बड़ी-बड़ी आंखें पत्थर-अल-पत्थर) भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा आदि का नाम विशेष महत्व रखता है।

2.4.2 मनोविश्लेषणवादी उपन्यास

उपन्यास और कहानी दोनों के लिए प्रेमचन्द ने मनोविज्ञान की उपयोगिता को स्वीकार किया था। 1925 में लिखे अपने उपन्यास' शीर्षक निबंध में उन्होंने स्पष्ट कहा था - "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। "कहानी-कला पर लिखे गये अपने एक अन्य निबन्ध में उन्होंने कहा था- 'वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। "प्रेमचन्द की इन मान्यताओं को हम उनके उपन्यासों और कहानियों में प्रतिफलित होते देखते हैं जिसके कारण दैनन्दिन जीवन की छोटी-छोटी सी घटनाओं और मामूली स्त्री-पुरूषों को लेकर चलने वाली उनकी कथा रचनाएँ महत्वपूर्ण. बन सकी हैं। उनके उपन्यासों में जो मनोविज्ञान हमें मिलता है वह सामान्य मनोविज्ञान है, असामान्य मनोविज्ञान नहीं। फिर भी इतना निश्चित है कि पात्रों की मनोगति के चित्रण में प्रेमचंद की कथा रचनाओं में सूक्ष्मता आ रही थी। इसका प्रमाण हमें उनकी कई कहानियों के अतिरिक्त उनके उपन्यास 'निर्मला' (1925) में मिलता है। इस उपन्यास के नवें परिच्छेद में मानव-मन की विचित्र गति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है - मन! तेरी गति कितनी विचित्र है, कितनी रहस्य से भरी हुई, कितनी दुर्भेद्य! तू कितनी जल्दी रंग बदलता है। इस कला में तू निपुण है। आतिशबाज की चरखी को भी रंग बदलते कुछ देर लगती है, पर तुझे रंग बदलने में उसका लाभांश समय भी नहीं लगता।"

बीसवीं शताब्दी के चिन्तन और साहित्य को जिन मनीषियों के सिद्धांतों ने सर्वाधिक प्रभावित किया. वे हैं मार्क्स और फ्रायड। वास्तव में मनोवैज्ञानिक उपन्यास उन्हीं उपन्यासों को कहा गया है जो फायड के या उसके परवर्ती मनोविश्लेषण- शास्त्रियों के सिद्धांतों के प्रभाववश लिखे गये हैं या जिनमें उनके सिद्धांतों की झलक दिखाई दी। दूसरे शब्दों में, मनोवैज्ञानिक उपन्यास केवल उन्हीं उपन्यासों को माना गया जिनमें मानव मन की असमान्य गतिविधियों को पकड़ने का प्रयास किया गया। इसीलिए पश्चिम में 1912-13 में फायड के सिद्धांतों से प्रभावित मार्सल, प्रूस्त, डोरोथी, रिचर्डसन, जेम्स, वरजीनिया वुल्फ इत्यादि के उपन्यासों से मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात हुआ। हमारे यहाँ मार्क्सवाद और मनोविश्लेषणवाद थोड़ी देर से पहुँचे। अत: हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात जैनेन्द्र के प्रथम उपन्यास 'परख' (1929) से हुआ। तत्पश्चात् इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, डॉ. देवराज, प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, रघुवंश, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भारतभूषण अग्रवाल इत्यादि के उपन्यासों ने हिन्दी मे मनोवैज्ञानिक उपन्यास को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने में सहयोग दिया।

जैनेन्द्र के उपन्यास हैं - 'परख' (1929), सुनीता' (1935), 'त्याग पत्र' (1937), कल्याणी' (1939), 'सुखदा' (1952), विवर्त' (1953), 'व्यतीत' (1953), जयवर्धन' (1956),

मुक्तिबोध' (1965), 'अनन्तर' (1968) और 'अनाम स्वामी' (1974)। ये उपन्यास हिन्दी उपन्यास को एक नयी दिशा प्रदान करने वाले उपन्यास है।

उनके पहले ही उपन्यास 'परख' की कट्टो प्रेम तो करती है सत्यधन से किन्तु उसका विवाह होता है बिहारी से। 'सुमीता' मे त्रिकोण का रूप थोडा बदलता है। सुनीता का पति श्रीकान्त अपने क्रान्तिकारी मित्र हरी प्रसन्न को व्यवस्थित जीवन जीने की राह पर लगाने का कार्य सुनीता को सौंपता है। हरिप्रसन्न सुनीता की ओर आकर्षित होता है। एकान्त मे वह सुनीता को पूरा पा लेना चाहता है, किन्तु निर्वसना सुनीता को देखकर हमेशा के लिए पलायन कर जाता है। सुनीता जो कुछ करती है, अपने पति की इच्छा से और जानकारी मैं कहती है। 'त्याग-पत्र' में प्रेम का त्रिकोण 'परख' वाले त्रिकोण का ही किंचित भिन्न रूप है मृणाल का प्रेम होता है शीला के भाई से और विवाह होता है एक दुहाजू से, जिससे सामंजस्य नहीं बैठ पता और मृणाल की त्रासदी घटती है। कल्याणी' में भी कल्याणी और उसके पति डॉक्टर असरानी के बीच सामंजस्य न बैठ पाने की समस्या है। इसी से मिलती-जुलती स्थितियाँ और समस्याएँ सुखदा', विवर्त', और 'व्यतीत' में हैं। 'जयवर्धन' से जैनेन्द्र एक नई दिशा ग्रहण करते प्रतीत होते हैं, किन्तु व्यक्तित्व के सूक्ष्म विश्लेषण की प्रवृत्ति बढ़ी है। इस प्रकार जैनेन्द्र के उपन्यासों के दो भाग हो जाते है: एक 'परख' से 'व्यतीत' तक जिसमें मुख्य समस्या स्त्री के सतीत्व की, मूल नैतिकता की खोज की है और दूसरा, जयवर्धन' से 'अनाम स्वामी' तक, जिसमें मुख्य समस्या व्यक्तित्व को पा लेने की है। जैनेन्द्र के दोनों ही प्रकार के उपन्यासों में कथा तत्व अत्यन्त क्षीण है और पात्रों की संख्या अत्यन्त कम है। जहाँ प्रेमचन्द के उपन्यासों के पात्रों के साथ उनका समाज अनिवार्यत: सम्बद्ध हैं, वही जैनेन्द्र के उपन्यासों के पात्रों के साथ उनका समाज सम्बद्ध नहीं है। उनमें देश और काल का विशेष महत्व नहीं है। जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक पक्ष असामान्य है। वे सामान्य स्त्री-पुरूषों से भिन्न रूप में आचरण करते हैं।

जैनेन्द्र के उपन्यास मनोवैज्ञानिक हैं, क्योंकि उनमें मानव-मन के असामान्य क्रियाकलापों की गवेषणा की गई है। उनकी दृष्टि मनुष्य की आन्तरिक सूक्ष्मता को पकड़ने पर केन्द्रित है, बाहय क्रियाकलाप पर नही। आधुनिक मनोविश्लेषण शास्त्र की खोजों को कहीं उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से ग्रहण किया है, कहीं अप्रत्यक्ष रूप से।

इलाचन्द्र जोशी हिन्दी के दूसरे महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। उन्होंने जैनेन्द्र के साथ ही उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया। जोशी जी साग्रह और सचेत भाव से मनोविश्लेषण के सिद्धांतों को अपने उपन्यासों में आरोपित करते है। वे उपन्यास का स्वाभाविक अंग नहीं बन पाये हैं। उसका कारण यह है कि उन्होंने जीवन को महत्व देने के स्थान पर अपने अध्ययन और शास्त्र को महत्व दिया है। उनकी यह प्रवृत्ति उनके सभी उपन्यासों - संन्यासी' (1940) 'प्रेत और छाया' (1944), 'पर्दे की रानी' (1945), निर्वासित' (1946), 'मुक्तिपथ (1950), 'सुबह के भूले' (1951), 'जिप्सी' (1952), 'जहाज का पंछी' (1956), 'ऋतुचक्र', 'भूत का भविष्य' (1973) में विद्यमान हैं।

अज्ञेय ने हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को इस अर्थ में आगे बढ़ाया कि उनके उपन्यासों में मनोविज्ञान और उपन्यास कला का सुन्दर सामंजस्य है। अब तक उनके

तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं - 'शेखर: एक जीवनी' (पहला भाग 1940, दूसरा भाग 1944) 'नदी के द्वीप' (1951) 'तथा 'अपने-अपने अजनबी' (1961)। 'शेखर: एक जीवनी' रोम्याँ रोलां के 'ज्याँ क्रस्तोफ' से प्रेरित उपन्यास है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी जी ने लिखना प्रेमचन्द के जीवनकाल में ही शुरू कर दिया था। उनका पहला उपन्यास 'प्रेमपथ' 1926 में प्रकाशित हुआ था। प्रेमचन्द की मृत्यु के वर्ष तक उनके सात उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। उनके कुल उपन्यासों की संख्या 40 से ऊपर है।

डॉ. देवराज साहित्य में 'मानव-जीवन की समग्रता' और उसे अभिव्यक्त करने के प्रयत्नों की अपेक्षित पूर्णता को महत्व देते हैं। 'पथ की खोज' (दो भाग) उनका पहला उपन्यास है, जो 1951 में आया था। उसके बाद बाहर-भीतर' (भीतर का घाव), 'रोड़े और पत्थर', 'मैं, वे और आप' 'अजय की डायरी' और 'दूसरा सूत्र (1978) उपन्यास प्रकाश में आये। इनमें उनके दो उपन्यास विशेष महत्वपूर्ण हैं - 'पथ की खोज' तथा 'अजय की डायरी' है। इसमें मध्यवर्गीय समाज की कुण्ठाओं का उद्घाटन किया गया है।

अन्य उपन्यासकार

उपर्युक्त उपन्यासकारों के अतिरिक्त अन्य अनेक उपन्यासकारों की गणना हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के रूप में की जाती है। सियारामशरण गुप्त के उपन्यास नारी' को कई दृष्टियों से जैनेन्द्र के त्यागपत्र' से तुलनीय माना जाता है। प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने अपने उपन्यासों में नगर के अभिजात वर्ग के मनोविज्ञान का उद्घाटन किया है। स्वतन्त्रयोत्तर काल में भी अपने ढंग से यह परम्परा चलती रही है। धर्मवीर भारती ने 'गुनाहों का देवता' (1949) में स्नेह और वासना, भावना और शरीर के द्वन्द्व का चित्रण करके वासना और शरीर की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। डॉ. प्रभाकर माचवे के 'आभा', 'परन्तु', 'साँचा' नरेश मेहता के 'डूबते मस्तुल' (1954) 'यह पथ बन्धु था' (1962) 'धूमकेतु: एक श्रुति', गिरिधर गोपाल के चाँदनी के खण्डहर' (1954) सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के 'सोया हुआ जल' (1955) कृष्ण बलदेव वैद के उसका बचपन' (1957) डॉ. रघुवंश के 'तन्तुजाल (1958) लक्ष्मीकान्त वर्मा के 'खाली कुर्सी को आत्मा' (1958) एक कटी हुई जिन्दगी एक फटा हुआ कागज' (1965) मोहन राकेश के 'अंधेरे बन्द कमरे' (1961) निर्मल वर्मा के 'वे दिन' (1964) ऊषा प्रियंवदा के 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' तथा रूकोगी नहीं राधिका' राजकमल चौधरी के 'नदी बहती थी', 'शहर या शहर नहीं था', 'मछली मरी हुई, 'देहगाथा', योगेश गुप्त के 'छविनाथ', उनका फैसला', 'अकारण', 'उपसंहार', अंधेरा और अंधेरे', 'अनायास' मृदुला गर्ग के 'उसके हिस्से की धूप' 'वंशज', चित्तकोबरा और 'अनित्य', भारत भूषण अग्रवाल के 'लौटती लहरों की बांसुरी' इत्यादि उपन्यासों में ये समस्याएँ उठी हैं। जाने अनजाने इन सब उपन्यासकारों पर मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों का प्रभाव है। यह अलग बात है कि ये उपन्यासकार पात्रों की मनोवैज्ञानिक समस्याओं को प्रस्तुत करते समय उस समाज पर भी दृष्टि रखते हैं जिस समाज से ये पात्रों को उठाते हैं।

2.5 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की विभिन्न प्रवृत्तियाँ

स्वतंत्रता के पश्चात् साहित्य में भी बदलाव के लक्षण स्पष्ट रूप से रेखांकित किये जा सकते है। स्वतंत्रता परवर्ती साहित्य स्वतंत्रतापूर्व साहित्य से अनेक रूपों और अर्थो में विशिष्ट था। सर्वप्रथम यह कि स्वातंत्र्योत्तरकाल में बदलती हुई परिस्थितियों और संदर्भ में युगीन सत्य को पहचानने और उसे अभिव्यक्त करने में साहित्यकारों ने विशेष सजगता और जागरूकता दिखायी। यथार्थ के विभिन्न स्तरों और आयामों को उद्घाटित करते हुए वे जनसाधारण की मानसिकता, पारिवारिक सम्बन्धों में उलटफेर, नारी की प्रतिष्ठा आदि का उल्लेख स्वातत्र्योत्तर साहित्य में बराबर करते रहे हैं।

स्वातंत्र्योत्तरकाल में हिन्दी उपन्यास ने उल्लेखनीय उपलखियाँ अर्जित की हैं। उसमें स्वातंत्र्योत्तर जीवन-यथार्थ का विशद और बहुआयामी चित्रण हुआ है। इस दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तरकाल की निम्नलिखित कृतियाँ जैसे- 'मैला आँचल', झूठा सच' 'अमृत और विष, 'आधा-गॉव, 'अपने लोग, राग दरबारी, बलचनमा, 'अलग-अलग वैतरणी', परती-परिकथा आदि विश्वस्तरीय हैं और उन पर किसी भी भाषा को गर्व हो सकता है। इनमें स्वातंत्र्योत्तरकाल की लगभग तीन दशकों की आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक प्रगति और अवनति का इतिहास लिपिबद्ध है।

यद्यपि कतिपय उपन्यासकारों ने शिल्पगत चमत्कार दिखाने का प्रयत्न भी किया है और उन्हें इसके लिए प्रशंसा और प्रतिष्ठा भी मिली हैं, तथापि अधिकांश उपन्यासकार शिल्प को लेकर उतने सजग नहीं रहे हैं, जितने कथ्य के प्रति। वे लगातार नयी कथा-भूमियों की तलाश करते रहे हैं। उन्होंने बहुसंख्यक वर्ग के संघर्ष, आशा और आकांक्षा को ही अभिव्यक्ति दी है। हालांकि कथ्य के स्तर पर कथ्य की मौलिकता के साथ शिल्पगत नवीनता भी देखने को मिलती है।

स्वातंत्र्योत्तर काल की राजनीतिक घटनाओं और नये सामाजिक संदर्भो ने समूचे हिन्दी साहित्य को बहुत गहरे प्रभावित किया था। विभाजन की विभीषिका-स्वतंत्रता मिलने का उत्साह और आर्थिक संकट से उत्पन्न परिस्थितियों ने वस्तु और शिल्प के स्तरों पर हिन्दी उपन्यास में एक युगान्तर सा उपस्थित कर दिया। पुरानी पीढ़ी के कुछ उपन्यासकार इस परिवर्तित परिवेश में अपना सामंजस्य नहीं बिठा सके। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण परम्परागत ही रहा। यशपाल, अमृतलाल नागर और रांगेय राघव जैसे उपन्यासकारों ने बदले हुए जीवन बोध को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद के उपन्यासों का कथ्य उतना मौलिक और नया नहीं है। किन्तु 1953-54 के आस-पास लिखे उपन्यासों में कथ्यगत रूपांतरण स्पष्ट झलकता है। स्वतंत्रतापूर्व के उपन्यास नागरिक जीवन से विशेष रूप से जुड़े हुए थे, लेकिन स्वतंत्रता के बाद विभिन्न अंचलों की ओर भी कथाकार की दृष्टि गयी। इस तरह से आंचलिक उपन्यासों का प्रादुर्भाव हुआ।

अस्तित्ववादी चिन्तन के फलस्वरूप अजनबी और अकेलेपन की अनुभूतियों को लेकर भी उपन्यासों का प्रणयन हुआ। उपन्यासकारों ने स्वातंत्र्योत्तरकाल में उभरी राजनीतिक विसंगतियों को भी उपन्यासों का विषय बनाया। नगरीकरण और औद्योगीकरण के

सामाजिक, राजनीतिक प्रभावों को भी उपन्यासकारों ने मानवीय धरातल पर चित्रित किया। परिवार, मुहल्ले और गॉव के स्तर पर पुकारती हुई सम्बन्धहीनता और हृदयहीनता भी उपन्यासों की विषय-वस्तु बनी। स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में जो मूलगामी परिवर्तन हुआ है तथा सेक्स के प्रति मान्यताओं और दृष्टिकोणों में जो परिवर्तन आया है, उसे भी उपन्यासकारों ने बड़ी बारीकी और संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया। उपन्यासकारों ने जीवन के विधिवत् पक्षों को उपन्यासों में सूक्ष्मता के साथ उभारा है। इसलिए स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का परिदृश्य बहुत समृद्ध और वैविध्यपूर्ण है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास ने अन्य साहित्यिक विधाओं को बहुत पीछे छोड़ दिया है क्योंकि जीवन यथार्थ के विभिन्न स्तरों को जितनी गहराई और संवेदनशील सूक्ष्मता के साथ उपन्यास ने उकेरा है, उतना अन्य किसी विधा ने नहीं। जिस गति से जीवन बदला है, उसमें यथार्थ कोई इकहरा प्रत्यय नहीं रह गया है क्योंकि मनुष्य पर आन्तरिक और बाह्य दबावों का सिलसिला निरंतर जटिल होता गया है। जीवन की यथार्थ जटिलताओं को समझने और उन्हें अभिव्यक्त करने का जितना साहस उपन्यास ने किया है उतना अन्य किसी विधा ने नहीं। स्वातंत्र्योत्तरकाल में उपन्यास का परिदृश्य इतना वैविध्यपूर्ण, कलात्मक और यथार्थपरक है कि इस विधा का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है - व्यक्ति के आन्तरिक संसार की जटिलताओं (अंधेरेबंद कमरे, आपका बंटी), कुंठाओं (मित्रो मरजानी मछली मरी हुई), ग्रामीण जीवन की विषमताओं (मैला आंचल रागदरबारी), महानगरीय विद्रूपताओं (मुर्दाघर, उखड़े हुए लोग), राजनैतिक क्रूर विसंगतियों (महाभोज, दारूलशफा), ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संकटों (पुनर्नवा, मृगनयनी), सामाजिक विषमताओं (बूँद और समुद्र, झूठा सच) आदि अनेक क्षेत्रों का विश्वसनीय विश्लेषण हिन्दी उपन्यास ने किया है। शिल्प और भाषा की दृष्टि से देखें तो एक छोर पर 'मैला आंचल, 'रागदरबारी, 'आधा गाँव है तो दूसरे छोर पर 'चारूचन्द्र लेख, 'मानस का हंस', 'शैलूष' है। 'सूरज का सातवीं घोड़ा, 'अजय की डायरी, 'कलिकथा वाया बाईपास' जैसे शिल्पगत प्रयोग हैं तो 'झूठा सच', 'पहला गिरमिटिया जैसे महाकाव्यात्मक आख्यान हैं, 'सूरजमुखी अंधेरे में, 'चित्त कोबरा जैसे मानसिक कुंठाओं को चित्रित करने वाले उपन्यास हैं तो 'अमृत और विष, 'धरती, धन न अपना' जैसे सामाजिक सरोकारों वाले मानवीय संवेदना भरे उपन्यास हैं। इसलिए स्वातंत्र्योत्तरकाल में हिन्दी उपन्यास को हम अनेक धाराओं में रख सकते हैं।

डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार स्वतंत्रता परवर्ती हिन्दी उपन्यास की दो प्रमुख धाराएँ हैं। पहली धारा के अन्तर्गत 'अन्धा विद्रोह, नितान्त वैयक्तिकता और घोर अन्तर्मुखता के उपन्यास' आते हैं जबकि 'मानव-मूल्य और मर्यादा स्थापित करने वाले उपन्यासों' की गणना दूसरी धारा के अन्तर्गत होती है। डॉ. सिन्हा ने प्रथम वर्ग के उपन्यासों (अपने-अपने अजनबी, वे दिन, नदी के द्वीप) के कथ्य की कटु आलोचना की है। उनकी धारणा है कि इन उपन्यासों में मनुष्य का जीवन जितना अर्थशून्य, सतही और यान्त्रिक चित्रित किया गया है उतना वास्तव में भारतीय समाज में लक्षित नहीं होता। द्वितीय वर्ग में आने वाले उपन्यास (बूँद और समुद्र, अमृत और विष, सूरज का सातवाँ घोड़ा, अलग-अलग वैतरणी, यह पथ बड़ा था, मैला आंचल और आपका बंटी) समकालीन मूल प्रश्नों

एवं समय-सत्य से साक्षात्कार करने का प्रयत्न करते हैं। "इनमें उपन्यासकारों के अनुभव तथा अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या सामाजिक परिप्रेक्ष्य में हुई है आज की परिस्थितियों से उत्पन्न वास्तविक संत्रास का चित्रण एवं अस्तित्व की सही चुनौतियों का सार्थक ढंग से स्वीकार करने का प्रयत्न इन उपन्यासों में प्राप्त होता है।"

डॉ. बच्चनसिंह ने स्वतन्त्रता परवर्ती हिन्दी उपन्यास (सन् 1950 के बाद लिखित) को पाँच वर्गो में विभक्त किया है:-

1 ग्रामांचल के उपन्यास
2 मनोवैज्ञानिक उपन्यास
3 सामाजिक चेतना के उपन्यास
4 प्रयोगशील उपन्यास
5 आधुनिकता बोध के उपन्यास

डॉ. बच्चनसिंह ने 1965 के बाद महानगरीय माहौल में लिखे गये उपन्यासों का भी एक महत्वपूर्ण वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने ऐसे उपन्यासों को तीन वर्गो में बाँटा है:-

1 'यौन विच्युतियों में पनाह खोजने वाले उपन्यास', जिनमें 'बेघर', सूरजमुखी अँधेरे के' आदि उपन्यास हैं।
2 'दी हुई मानव स्थितियों में मिसफिट व्यक्तियों को चित्रित करने वाले उपन्यास', इस वर्ग में रूकोगी नहीं राधिका', 'आपका बंटी' आदि उपन्यास हैं।
3 'व्यवस्था की घुटन को अपनी नियति मानने या विरूद्ध युद्ध करने वाले उपन्यास', इस वर्ग में यह पथ बन्धु था' तथा एक चूहे की मौत' आदि उपन्यास आते है।

डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की पाँच प्रवृत्तियों को रेखांकित किया है। डॉ. तिवारी के अनुसार सबसे प्रमुख प्रवृत्ति आधुनिकता के बोध और व्यक्ति स्वातन्त्र्य की है। अन्य प्रवृत्तियों में यथार्थ की व्यापक स्वीकृति, आंचलिकता अन्तर्राष्ट्रीयता और टेकनीक के मोह की प्रवृत्तियाँ प्रधान हैं। 'अंधेरे बन्द कमरे', 'यह पथ बन्धु था' प्रथम वर्ग के अन्तर्गत आते हैं जबकि समुद्र में सोया हुआ आदमी', चाँदनी के खण्डहर' आदि दूसरे वर्ग के उपन्यास हैं। 'वे दिन' और 'अपने-अपने अजनबी' में अन्तर्राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति है जबकि 'मैला आँचल', बलचनमा आदि आंचलिक उपन्यास है। टेकनीक मोह की प्रवृत्ति बया का घोंसला और साँप' तथा 'बाहर घंटे' आदि में देखी जा सकती है।

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने द्वितीय महायुद्ध के बाद उभरे उपन्यासकारों को (जिनमें अधिकतर स्वतंत्रता के बाद चर्चित हुए) दो वर्गो में विभक्त किया है। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत हम स्वातंत्र्योत्तार हिन्दी उपन्यास को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित वर्गो में रखेंगे-

1 व्यक्ति के अन्तर्मुखी वैयक्तिक जीवन पर केन्द्रित उपन्यास -
   (क) सैक्स जीवन से सम्बद्ध उपन्यास।
   (ख) आत्म निर्वासन, अकेलेपन, अजनबीपन, निराशा, अनिश्चय आदि के अनुभवों से सम्बद्ध उपन्यास।
2 समाज और परिवेश को चित्रित करने वाले उपन्यास -

(क) ग्रामीण जीवन की पहचान को रेखांकित करने वाले उपन्यास।

(ख) नगर बोध और महानगरबोध पर केन्द्रित उपन्यास।

(ग) राजनैतिक विसंगतियों और जटिलताओं पर केन्द्रित उपन्यास।

3 ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना सम्बद्ध उपन्यास।

2.5.1 व्यक्ति के अन्तर्मुखी वैयक्तितक जीवन पर केन्द्रित उपन्यास

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों का एक काफी बड़ा वर्ग ऐसा रहा है जिनके लिए व्यक्ति की आन्तरिक दुनिया ही उनके उपन्यास का प्रतिपाद्य रही है। इन उपन्यासों में उपन्यासकारों ने व्यापक समाजिक संदर्भो को या तो स्पर्श ही नहीं किया और यदि किया भी है तो एक व्यक्ति के संदर्भ में ही। मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे', इसका अच्छा उदहारण है। इसी तरह कृष्णा सोबती का सूरजमुखी अंधेरे' के, एक व्यक्ति की अतृप्त यौन आकांक्षाओं का ही चित्रण करता है।

इस वर्ग के उपन्यासों को दो श्रेणियों में रख सकते हैं-

(क) सैक्स जीवन से सम्बद्ध उपन्यास

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास में मनोवैज्ञानिक तथा मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों की जो धारा प्रवाहित हुई उसने आगे चलकर यौन सम्बन्धों पर ही बल दिया। कुछ तो फायड के काम सिद्धांत का प्रभाव रहा, कुछ आधुनिक उपन्यासों में डॉ.एच. लारेंस, ब्लादिमीर नाबोकाब के उपन्यासों से प्रभावित होकर उन्मुक्त प्रेम, स्वच्छंद यौन संबंध तथा मुक्त काम संबंधों का उन्मुक्त और नग्न चित्रण हिन्दी उपन्यासों मे होने लगा। इस श्रेणी के उपन्यासों को भी कई वर्गो में रखा जा सकता है -

दाम्पत्य जीवन और सैक्स

यौन सम्बन्धों पर आधरित प्रेम ही दाम्पत्य जीवन का आधार रहा है। साहचर्य, रोमांस और बौद्धिक प्रेम आदि सुखी दाम्पत्य के लिए आवश्यक हैं। इनकी अनुपस्थिति में दाम्पत्य जीवन में कड़वाहट और विसंगतियाँ, अतृप्तिजन्य वितृष्णा और कुंठा उत्पन्न होते हैं। नदी के द्वीप (अज्ञेय), एक पति के नोट्स (महेन्द्र भल्ला), बेघर (ममता कालिया), मछली मरी हुई (राजकमल चौधरी), मित्रो मरजानी (कृष्णा सोबती), नदी और सीपियाँ (शानी), सफेद मेमने (मणि मधुकर) आदि इसी कोटि के उपन्यास हैं। इनमें मित्रों मरजानी नदी के द्वीप जैसे कलात्मक उपन्यास भी हैं जिनमे काम कुण्ठाओं का बड़ा विश्वसनीय चित्रण हुआ है तो 'सफेद मेमने', 'मछली मरी हुई' जैसे बनावटी और गर्हित यौन सम्बन्धों पर केन्द्रित उपन्यास हैं।

काम-नैतिकता के बदलते प्रतिमान

स्वातंत्र्योत्तरकाल में हमारे समाज ने जिस संक्रमण को झेला है, उसमें काम शुचिता के मानदण्ड एकदम बदल गये हैं। विवाह पूर्व काम सम्बन्ध अब असामान्य नहीं रह गये हैं और न विवाहेतर काम सम्बन्ध अनैतिक। 'सूरजमुखी अंधेरे के' (कृष्णा सोबती) की रतिका उर्फ रत्ती एक नहीं सात पुरूषों के सम्पर्क में आती है। उन्मुक्त सहवास के बाद रत्ती सहज भी हो जाती है जबकि 'दूसरी बार' (श्रीकांत वर्मा) का मैं' सहज नहीं हो पाता

क्योंकि सम्भोग में वह बहुत जल्दी फ्यूज हो जाता है। मित्रो मरजानी, 'आपका बंटी, नदी के द्वीप', 'दूसरी बार' आदि उपन्यास इस वर्ग में आते हैं।

ऊब और एकरसता के बीच असफल यौन सम्बन्ध

स्वातंत्र्योत्तर काल में अनेक हिन्दी उपन्यासों में यौन सम्बन्धों को पात्रों की ऊब और एकरसता को उकेरने का माध्यम बनाया गया है। एक पति के नोट्स' में (महेन्द्र भल्ला) अविनाश संख्या से यौन सम्पर्क स्थापित करता है पर निरर्थकता की पर्ते और कड़ी हो जाती है। इस तरह इन उपन्यासों के पात्र यौन सम्बन्धों के द्वारा जिस निरर्थकता से मुक्ति पाना चाहते हैं वह और घनीभूत हो जाती है।

असामान्य यौन सम्बन्ध

इस कोटि में आने वाले कतिपय उपन्यासों में असामान्य और असाधारण यौन प्रसंगों का चित्रण हुआ है। कहीं समलैंगिक सम्बन्ध हैं तो कही विवाहेतर विकृतियाँ हैं। 'मछली मरी हुई' (राजकमल चौधरी) में शीरी और प्रिया के बीच समलैंगिकता की त्रासदी है। उपन्यासकारों ने समलैंगिकता का कारण यौन अतृप्ति ही बताया है किन्तु इस तरह के यौनाचार उच्च वर्ग की विकृतियों को ही उदघाटित करते हैं। मणि मधुकर ने तो सफेद मेमने' उपन्यास में तो पशु मैथुन का भी चित्रण है। दरअसल इस तरह के उपन्यास किसी रचनात्मक ऊर्जा से अभिप्रेरित नहीं है।

स्थूल और नग्न सम्भोग चित्रण

काम मानव जीवन की नैसर्गिक ऊर्जा है जो उसे रचनात्मकता की ओर प्रेरित करती है। किन्तु पश्चिम के प्रभाव से तथा नयेपन की ललक से हिन्दी उपन्यासों में स्थूल तथा नग्न सम्भोग वर्णन हुए हैं। इसमें अज्ञेय, यशपाल से लेकर मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा तक के उपन्यासों में इस प्रकार के स्थूल चित्र विद्यमान हैं। यों इन दृश्यों को मनोविज्ञान के खाते में डालकर सही बताया जा सकता है पर इनमें रचनात्मक कला बहुत कम है। प्रेम और सम्भोग परस्पर सम्बद्ध जरूर हैं पर इनके बीच सब कुछ दैहिक ही नहीं है। इस तरह के दृश्यों से हमारे उपन्यास भरे पड़े है। यहाँ दो उदाहरण दृष्टव्य हैं-

"सहसा भुवन ने कम्बल हटाया, मृदु किन्तु निष्कम्प हाथों से रेखा के गले के बटन खोले और चाँदनी में उभर आये उसके कुचों के बीच की छाया भरी जगह को चूम लिया। फिर अवश भाव से उसकी ग्रीवा को, कंधों को, कर्णमूल को, पलकों को, ओठों को, कुचों को ..... और फिर उसे अपने निकट खींचकर ढक लिया।"

(नदी के द्वीप-अज्ञेय)

"शीरी पलंग पर खड़ी हो गयी। खड़ी होकर नीचे झुकी। सिर के बाल सामने आ गये। स्तन घुटनों से चिपक गये। शीरी ने अपने हाथ जाँघों के बीच डाल दिये और वह चीखकर बिस्तर पर गिर पड़ी। स्प्रिंगदार पलंग थरथराने लगा।

(मछली मरी हुई-राजकमल चौधरी)

इन उपन्यासों में जो यौन-चित्रण है उनमें भावनात्मक गहराई लगभग नगण्य है तथा स्त्री-पुरूष के बीच सम्बन्ध भी आक्रांता-आक्रांत के हैं।

आत्मनिर्वासन. एकाकीपन तथा अजनबीपन की औपन्यासिक अभिव्यक्ति

अजनबीपन, अकेलेपन का बोध आधुनिक चिंतन में कई तरह से चित्रित है। अस्तित्ववादियों ने इस पर बहुत विस्तार से विचार किया है। "विसंगतियों में घिरी हुई मनुष्य की स्वतन्त्रता कामी चेतना वातावरण और परिवेश के प्रति अपने आपको अजनबी पाती है और निर्वासित अनुभव करती है। इस बोध को अस्तित्ववादियों ने आत्म-परायेपन का बोध कहा है।" (प्रकाश दीक्षित) अस्तित्ववादियों में सर्वप्रथम कीर्कगार्द ने आत्म-परायेपन की समस्या को उठाया। सार्त्र का विचार है कि वरण के क्षण में मनुष्य का आत्म-परायापन समाप्त होकर उसे अपने आत्म का बोध होता है। अस्तित्ववाद में व्यक्ति को बलपूर्वक सर्वाधिक महत्वपूर्ण करने का एक फल यह भी हुआ है कि अकेला व्यक्ति और भी अलग, अकेला और आत्मनिष्ठ बनता गया है।

अजनबीपन और अकेलेपन का बोध विश्व-दर्शन के इतिहास में नया नहीं है। हिन्दू जीवन-दर्शन में भी आत्मा के अकेलेपन की चर्चा है, लेकिन वहाँ वह निर्वासन के रूप में स्वीकृत न होकर आत्मा का स्वभाव माना गया है। अस्तित्ववादियों से पूर्व हीगेल और मार्क्स इस आत्म निर्वासन या परायेपन की ओर संकेत कर चुके हैं।

हिन्दी के उपन्यासकारों ने कामू काफ्का और सार्त्र के अनुकरण पर अपने परिवेश में स्वयं को अजनबी अनुभव करने तथा भीड़ में भी अकेले होने के अनुभव से गुजरने वाले पात्रों की सृष्टि की है। चूँकि यह अनुकरण है इसलिए ऐसे उपन्यास का कथ्य न तो मूल्यवान है और न उसका स्थायी महत्व है। आत्म-परायेपन जैसी अनुभूतियाँ नगर-बोध और महानगर-बोध का अंग हैं। भारतीय परिवेश में आज भी इस प्रकार की अनुभूतियाँ के लिए अधिक अवकाश नहीं है। यूरोप में दो महायुद्धों के फलस्वरूप व्यक्ति स्वयं को जितना अकेला और असहाय अनुभव करता है, ऐसी स्थिति भारत में देश-विभाजन की विभीषिका के बावजूद पैदा नहीं हुई। अतः इस प्रकार की विदेशी अनुभूतियों को ढोने वाले उपन्यास यदि उपलब्धि नहीं बन सके हैं तो यह आकस्मिक नहीं है। अस्तित्ववादियों के अजनबीपन और आत्म-निर्वासन को अपनाने का दुष्परिणाम यह हुआ कि 'अंधेरे बन्द कमरे' तथा 'पचपन खम्बे लाल दीवारें' आदि उपन्यासों का कथ्य भौतिक जमीन पर और नयी भंगिमा के बावजूद बहुत अच्छा प्रभाव नहीं छोड़ता।

अजनबीपन तथा अकेलेपन को लेकर हिन्दी में ढेरों उपन्यास लिखे गये जिनमें बनावटी स्थितियों का चित्रण हुआ। नरेश मेहता का यह पथ बंधु था' राही मासूम रजा का 'आधा गॉव', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी, बदीउज्जमा का एक चूहे की मौत', गोविन्द मिश्र का 'वह अपना चेहरा' मृदुला गर्ग का 'अनित्य' आदि उपन्यासों में व्यर्थताबोध, अकेलापन, मूल्यहीनता, टूटन आदि को अभिव्यक्ति तो मिली है पर ये कथाकार कहीं न कहीं मूल्यवत्ता और मानवीयता की रक्षा करते दिखते हैं। अलगाव की यातना भोगने वाले पात्र अराजक और मूल्यहीन नहीं हो गये हैं और कहीं न कहीं वे नये मूल्यों के निर्माण के लिए छटपटाते दिखते हैं। जैसे यह पथबंधु था' उपन्यास में मूल्यहीनता, व्यर्थता और अकेलेपन का साक्षात्कार करने के बाद जब श्रीधर मनुष्यता का इतिहास लिखने का संकल्प करता है तो कई प्रश्न उठते हैं।

इस कोटि में आने वाले उपन्यासों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है-

1 यौन विकृतियों का खुलकर चित्रित करने वाले उपन्यास जैसे मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे, निर्मल वर्मा का 'वे दिन, श्रीकांत वर्मा का दूसरी बार, ममता कालिया का 'बेघर, मृदुला गर्ग का चित्त कोबरा', गिरिराज किशोर का यात्राएँ,', कृष्णा सोबती का सूरजमुखी अंधेर के' आदि, - उपन्यास।

2 दी हुई जीवन स्थितियों में अनुकूलन न कर पाने वाले पात्रों का चित्रण करने वाले उपन्यास जैसे उषा प्रियंवदा का 'रूकोगी नहीं राधिका, बदी उज्जमा. का 'एकचूहे की मौत', काशीनाथ सिंह का 'अपना मोर्चा', नरेन्द्र कोहली का आश्रितो का विद्रोह' आदि उपन्यास।

3 व्यवस्थाजन्य तनाव को अपनी नियति के विरूद्ध संघर्ष को चित्रित करने वाले उपन्यास जैसे मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी' यशपाल का 'मेरी तेरी उसकी बात', अमृतलाल नागर का 'बूंद और समुद्र' उपन्यास।

किन्तु अजनबीपन तथा अकेलेपन के नाम पर कुछ ऐसे भी उपन्यास लिखे गये, जिन्हें अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित कहा जा सकता है, जैसे अज्ञेय का 'अपने-अपने अजनबी' उपन्यास जिसकी पूरी कथा और संवेदना विदेशी है। कृष्णबलदेव वैद के उपन्यास भी आधुनिक भावबोध की मशक्कत करते हैं पर पाठक को कुछ देते नहीं। 'विमल उर्फ जाएँ तो जाएँ कही' 'उसका बचपन' आदि उनके ऐसे ही उपन्यास है।

2.5.2 ग्रामीण परिवेश पर केन्द्रित उपन्यास

भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है - यह कोई भावुक उक्ति नहीं है बल्कि भारतीय जीवन का यथार्थ है। यहाँ की अर्थव्यवस्था आज भी ग्रामीण-व्यवस्था पर काफी कुछ निर्भर करती है। पर यहाँ का ग्रामीण जीवन अभिशप्त रहा है और ग्रामीण जीवन की समस्याओं का रेखांकन हिन्दी उपन्यास में प्रेमचंद ने बड़ी विश्वसनीयता के साथ आरम्भ किया। 'गोदान' को भारतीय ग्रामीण जीवन की महागाथा के रूप में आज भी जाना जाता है। प्रेमचंद के पश्चात् निराला तथा नागार्जुन जैसे कवियों तक ने ग्रामीण जीवन पर उपन्यास लिखे।

किन्तु ग्रामीण जीवन से सम्बद्ध उपन्यासों की धारा को नया मोड़ दिया फणीश्वरनाथ रेणु के 1954 में प्रकाशित उपन्यास "मैला आंचल" ने और वही से आंचलिक उपन्यास की अवधारणा का सूत्रपात हुआ। इस उपन्यास ने एक अंचल विशेष को ही केन्द्रीय पात्र के रूप में स्थापित करने का कार्य किया। 'मैला आंचल' की रचना के मूल में न कोई केन्द्रीय चरित्र है न कोई स्थिति। क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित वस्तु-संगठन की दृष्टि भी यही नहीं है। लगता है एक अंचल उपन्यास में रचनात्मक स्तरों पर सक्रिय हो उठा हो। इसलिए उपन्यास में एक आंचलिक परिवेश की अंतर्विरोधपूर्ण सक्रियता विद्यमान है जिसमें अनेक प्रसंग, अनेक स्थितियाँ उठती-गिरती आती हैं, बिना परस्पर संबद्ध हुए बिखर जाती हैं या फिर प्रसंग और स्थितियाँ एक-दूसरी बार चढ़ती हुई जुड़ती-कटती और परस्पर टकराती हुई आती हैं। इस बिखराव को कलात्मक अर्थ में सार्थक बनाने में व्यंग्य

की सर्जनात्मक शक्ति का भरपूर लाभ उठाया गया है। इसकी दृष्टि और संरचना में एक विशिष्ट संबंध और संतुलन का काम हुआ है।

स्वातंत्र्योत्तर युग का कथाकार गॉव में आये बदलाव को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देख रहा है- कभी मात्र द्रष्टा की तरह, कभी भोक्ता की तरह, कभी एक निमर्म निस्संगता के साथ कभी एक दर्द के साथ। मैला आंचल के बाद के जिन उपन्यासों में गॉव का बदला हुआ क्रूर यथार्थ चित्रित हुआ है, वे हैं 'आधा गॉव' (राही मासूम रजा), रागदरबारी' (श्रीलाल शुक्ल), 'अलग अलग वैतरणी' (शिवप्रसाद सिंह), जल टूटता हुआ (रामदरश मिश्र), बबूल' (विवेकी राय), अंधेरे के विरूद्ध' (उदयराज सिंह), सफेद मेमने' (मणि मधुकर)। राग दरबारी' एक निर्मम निस्संगता से गॉव के क्रूर यथार्थ को देखता है, जबकि 'अलग-अलग वैतरणी' एक दर्द के साथ। 'राग दरबारी' के गॉव में अब कोई मानसिक द्वन्द्व या मूल्यहीनता और मूल्यवत्ता का संघर्ष शेष नहीं है। वह पक्के घड़े की तरह अपने हरामीपन में पक गया है जबकि 'अलग-अलग वैतरणी' का गॉव अभी पूरा पका हुआ नहीं है, उसमें अभी भी स्वार्थ की जड़ता और विवेक की चेतना का, यथार्थ और स्वण का हलका-हलका द्वन्द्व बाकी है।

ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित 'उपन्यासों में उल्लेखनीय उपन्यास हैं - धरती धन न अपना (जगदीश चन्द्र), 'गंगा मैया' (भैरवप्रसाद गुप्त), 'परती परिकथा' (रेणु), 'बबूल' (विवेकी राय), 'आधा गॉव' (राही मासूम रज), 'कब तक पुकारूँ ' (रांगेय राघव), 'अलग, अलग वैतरणी' (शिवप्रसाद सिंह), सफेद मेमने' (मणि मधुकर) आदि। यह यात्रा आज भी जारी है तथा उपन्यासकार बदलते गॉव को सर्वथा नयी दृष्टि से चित्रित कर रहे है।

2.5.3 नगरीय तथा महानगरीय बोध के उपन्यास

स्वातंत्र्योत्तरकाल में नगरों तथा महानगरों का बड़ी तेजी से विकास हुआ है तथा गाँवों का भी शहरीकरण लगातार हो रहा है। वस्तुतः आज स्थितियाँ ऐसी हैं कि जीवन यथार्थ को गॉव शहर में बाँटकर देखना भी सम्भव नहीं रहा है। 'मैला आंचल' से जैसे आंचलिक उपन्यास की आवधारणा विकसित हुई वैसी ही आचीलकता शहरी क्षेत्रों के चित्रण को लेकर हुई। इस दृष्टि से जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का 'मुर्दाघर' उपन्यास सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इस उपन्यास में ठेठ बंबइया भाषा के जबरदस्त सर्जनात्मक प्रयोग द्वारा समाज के एक निम्नतम वर्ग की हालत का एहसास कराया गया है। यहाँ भाषा के परिचित ढाँचे को तोड़कर, भाषायी बनावट को शुरू से अंत तक, काव्यात्मक आवेग में क्रियावान रखा गया है। दीक्षित की औपन्यासिक भाषा की विशेषता यह है कि इसकी संरचना और वाक्य विन्यास में कविता की लय का प्रयोग हुआ है, अलग से कवित्व की चमक कहीं नहीं है। इस भाषा से स्थितियों को सीधे और ठेठ रूप में प्रस्तुत करने और उत्कृष्ट संवेदनात्मक बोध जगाने की क्षमता अर्जित की गई है।

नगर-जीवन और उसके माध्यम से देश के सामाजिक जीवन की अनेक समस्याओं और यथार्थ के विविध स्तरों को उद्घाटित करने वाले उपन्यासों में प्रमुख हैं 'झूठा सच' (यशपाल), 'भूले बिसरे चित्र' (भगवतीचरण वर्मा), 'बूंद और समुद्र' (अमृतलाल नागर), 'यह पथ बंधु था' (नरेश मेहता), 'धूपछांही रंग' (गिरीश अस्थाना)।

'झूठ सच' दो भागों में लिखित महाकाय उपन्यास है। इससे भारत विभाजन की पूर्व पीठिका, विभाजन की और उसके उत्तर प्रभाव का बहुत विशद और जीवंत चित्र उभारा गया है। पूरे उपन्यास को दो भागों में बांट सकते हैं। (यों ये दोनों यथार्थ एक दूसरे से जुड़े हुए हैं) । एक तो उसका परिस्थितिगत यथार्थ है, दूसरा है परिस्थितिजन्य आंतरिक सत्य। यशपाल दोनों को एक में जोड़ कर चलते हैं।

'भूले बिसरे चित्र' में कथा पूरे राष्ट्रीय धरातल पर पीढ़ियों और वर्गो के संघर्षों के माध्यम से उभरती है। इस उपन्यास में 1850 और 1930 के बीच के भारत की चार पीढ़ियों की कथा है।

'बूंद और समुद्र' स्वातंत्र्योत्तर भारत के व्यक्ति और समाज के टूटते संबंधों का उपन्यास है। इस श्रेणी में आने वाले अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास हैं - कालाजल (शानी), एक सड़क सत्तावन गलियाँ (कमलेश्वर) उखड़े हुए लोग (राजेन्द्र यादव), चाँदनी के खंडहर (गिरधर गोपाल), शहर में घूमता आईना (उपेन्द्रनाथ अश्क), कड़ियां (भीष्म साहनी), सीमाएँ (मनहर चौहान), कच्ची पक्की दीवारें (रामकुमार भ्रमर), कुरू कुरू स्वाहा (मनोहर श्याम जोशी), कोई तो (विष्णु प्रभाकर), अनित्य (मृदुला गर्ग), उपसंहार (योगेश गुप्त), सावित्तरी (शैलेश मटियानी), सुबह के इन्तजार तक (सूर्यबाला), आदि।

2.5.4 सांस्कृतिक और ऐतिहासिक उपन्यास

स्वातस्पोत्तरकाल में जो महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये उनमें प्रमुख हैं - बाणभट्ट की आत्मकथा, चारूचन्द्र लेख, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा (हजारी प्रसाद द्विवेदी), मृगनयनी भुवन विक्रम (वृंदावन लाल वर्मा), मुर्दो का टीला (रांगेय राघव), शतरंज के मोहरे, एकदा नैमिषारण्ये मानस का हंस, खंजन नयन (अमृतलाल नागर), मौत की सराय (मिक्खु), सोमनाथ (आचार्य चतुरसेन) अमिता, दिव्या (यशपाल) तांबे के पैसे (आनन्द प्रकाश जैन), आदि।

2.5.5 राजनैतिक चेतना केन्द्रित उपन्यास

यह आकस्मिक नहीं है कि आधुनिक रचनाकार राजनीतिक प्रश्नों से टकरा रहा है। राजनीति ने हमारे पूरे जीवन को इस कदर ग्रस लिया है कि उसकी छाया पारिवारिक जीवन तक पर पड़ रही है। इसलिए हमारे लेखकों ने स्वातंत्र्योत्तर काल में राजनैतिक व्यक्तियों, घटनाओं, आकस्मिकताओं, साजिशों तथा उठा-पटक को अपने उपन्यासों में विन्यस्त किया है। यों थोड़ी बहुत राजनीति तो हर सामाजिक उपन्यास में मिलेगी किन्तु सबहिं नचावत राम गुसाई (भगवतीचरण वर्मा), एक और मुख्यमंत्री (यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र), हरा समंदर गोपी चंदर (लक्ष्मीनारायण लाल), काली आधी (कमलेश्वर), हीरक जयंती (नागार्जुन), महाभोज (मनू भण्डारी), जिन्दाबाद मुर्दायाद (दयानंद वर्मा), पक्षधर (विश्वम्भरनाथ उपाध्याय), समय साक्षी है (हिंमाशु जोशी) आदि में राजनीति पूरी तरह सक्रिय है।

इस उपन्यासकारों की दृष्टि मे हमारे राजनेता कर्त्तव्यच्युत, स्वार्थी और चारित्रिक दृष्टि से भ्रष्ट हैं। मौजूदा व्यवस्था यदि जन-साधारण की आकांक्षाओं अपेक्षाओं की पूर्ति में

सक्षम नहीं हो पा रही तो इसकी बड़ी जिम्मेदारी तथाकथित नेताओं की स्वार्थ-लिप्सा और सत्ता-प्रियता को है।

2.6 बीसवीं शताब्दी का अन्तिम दशक : हिन्दी उपन्यास का उत्कर्ष

श्री गिरिराज किशोर ने अपनी एक टिप्पणी 'उपन्यास और कुछ नोट्स' मे लिखा है कि हिन्दी मैं उपन्यास-विधा हाशिए पर है। एक तो अच्छे हिन्दी उपन्यास कम लिखे जा रहे हैं, दूसरे जो लिखे जा रहे है, वे स्पर्धा से बाहर है। दसवें दशक के उत्तरार्द्ध की इस टिप्पणी से हिन्दी उपन्यास का निराशाजनक बिम्ब बनना स्वाभाविक है। जब टिप्पणी करने वाले स्वयं एक प्रतिष्ठित उपन्यासकार हों तो उसका महत्व और बढ़ जाता है। दूसरी ओर डॉ. विजय मोहनसिंह जैसे आलोचको का स्पष्ट विचार है - "इस शताब्दी का आखिरी दशक औपन्यासिक दृष्टि से अधिक समृद्ध माना जायेगा, कविता और कहानी दोनों की अपेक्षा। "इन दो विरोधी मंतव्यों के बीच इसी दशक में उपन्यास को लेकर एक नजरिया यह उभरा है कि बहुत यांत्रिक ढंग से लेखन हो रहा है। ज्योतिष जोशी के अनुसार 'इसी से जुड़ी एक कठिनाई यह भी है कि उपन्यास को अपने समय की घोषणा बनाने पर क्यों जोर दिया जाता है। दसवें दशक के तमाम उपन्यासों से गुजरते हुए हिन्दी उपन्यास से सम्बंधित अनेक आपत्तियाँ और मंतव्य कौंधते हैं और बहस की माँग करते हैं।

दसवें दशक का आरंभ इतिहास का अत, उत्तर आधुनिकता के उदय, साम्प्रदायिकता के उफान, सत्ताशीर्ष पर दलितों की उपस्थिति, आर्थिक उदारीकरण आदि की घोषणाओं के साथ हुआ था। बाद में राजनीतिक-आर्थिक-सांस्कृतिक संक्रमण के दृश्य दिखायी दिये। सूचनाक्राति के साथ अपसंस्कृति के प्रसार का नजारा देखा गया। कारगिल में संघर्ष ने देश को एक और युद्ध का स्वाद चखाया। इस दशक में जहाँ कट्टरवादी शक्तियों के साथ उदारवादी और प्रगतिशील ताकतों का संघर्ष ध्यान आकर्षित करता है, वहीं खुला बाजार, निजीकरण, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के वर्चस्व आदि से देश के आर्थिक हितों की हानि भी द्रष्टव्य है। ऊपरी तौर पर समूचा परिदृश्य हताश और निराश करने वाला है। लेकिन संदेहों-आशंकाओं के बीच नयी शुरूआत की आकांक्षा से सम्पन्न सामाजिक परिवर्तन की शक्तियाँ उभर रही हैं, जो समग्रत: आमूलचूल परिवर्तन की हामी हैं।

दसवें दशक में कई पीढ़ियों के रचनाकारों को उपन्यास-विधा के प्रति गंभीरता से समर्पित देखा जा सकता है। कई दशकों से लिख रहे विष्णु प्रभाकर, निर्मल वर्मा, रामदरश मिश्र, भीष्म साहनी, विवेकीराय, यादवेन्द्र शर्मा, 'चन्द्र' कृष्णा सोबती, कन्हैया लाल ओझा, अमरकांत, जगदीश चन्द्र, शिव प्रसाद सिंह आदि के उपन्यास इस दशक में प्रकाशित हुए। इनके साथ युवा लेखकों-अशोक लव, शकुन्तला दुबे, प्रियवंद, जयप्रकाश कर्दम आदि ने भी अपनी उपस्थिति जतायी है। एक बड़ी संख्या में लेखिकाएँ इस दशक में सक्रिय रहीं। यह आकस्मिक और अस्वाभाविक नहीं है कि इस दशक में नारी की नियति और उसकी मुक्ति कामना पर केन्द्रीत उपन्यासों की संख्या सर्वाधिक है। नारी केन्द्रित उपन्यासों की सूची इस प्रकार है - 'मुझे चाँद चाहिए' (सुरेन्द्र वर्मा), 'मीनारें' (शशि प्रभा शास्त्री), उठाव' (क्षितिज शर्मा), इच्छा-पत्र (जगन सिंह), 'छिन्नमस्ता' 'पीली ऑधी, अपने-

अपने चेहरे (प्रभा खेतान), 'परछाई अन्नपूर्णा' (क्षमा शर्मा), यामिनी कथा' (सूर्य बाला), 'अवान्तर कथा' (अनामिका), सुन्नर पांडे की पतोहू (अमरकांत) 'मानदण्ड' (इंदिरा दीवान), 'आवर्तन' (कमल कुमार), 'एक पत्नी के नोट्स' (ममता कालिया), 'बेतवा बहती रही', 'चाक' (मैत्रेयी पुष्पा), 'अपने-अपने कोणार्क', वितस्ता बहती है' (चन्द्रकान्ता), वह रास्ता उसी अस्पताल को जाता है' (सुधा अरोडा), सुरंग' (भीमसेन त्यागी), 'औरत' (शिवप्रसाद सिंह), रंगी हुई चिड़िया' (धर्मेन्द्र गुप्त), 'कलिककथा वाया बाईपास' (अलका सारावगी), 'कीर्ति कथा' (कश्मीरी लाल), 'निष्कवच' हाजी सेठ) 'शाल्मली' (नासिरा शर्मा) 'अर्द्धनारीश्वर' (विष्णु प्रभाकर), 'वंश' (प्रबोध कुमार गोविल), गंजी' (मंजुल भगत), 'कठगुलाव' (मृदुला गर्ग), एक नौकरानी की डायरी', 'नर नारी' (कृष्ण बलदेव वैद) 'कुतो', नीलू नीलिमा नीलोफर' (भीष्म साहनी), साधना' (शशिभूषण) आदि।

अनुभवों की पूंजी की वैचारिक ऊर्जा से ऊष्म और दीप्त किये जाने के प्रमाण नारी की नियति और नारी मुक्ति से सम्बन्धित स्वर उपन्यासों में मुखर हैं। समता, समानता और न्याय पर बल देने वाली व्यवस्था में नारी का दूसरे दर्जे की हैसियत को उपन्यासकारों ने चिंता की दृष्टि से देखा हैं।

कई उपन्यासों में नारी की मुक्ति आर्थिक स्वावलम्बन, पुरूष-प्रधान मूल्यों से सतत् और संगठित संघर्ष में आंकी गयी है और नारी को स्वयं तक सीमित नहीं रहकर 'जन-संघर्ष' का अंग बनने की आवश्यकता भी संकेतित है। रंगी हुई चिड़िया' में नारी चेतना का एक रूप शीला रामेकर है, जिसकी एक आवाज पर हजारों मजदूर एकत्र हो जाते हैं। 'आवां' में विमला बेन का चरित्र इसी प्रकार का है।

अधिकतर नारी केन्द्रित उपन्यासों का निर्णयात्मक मुद्रा के साथ समापन हुआ और अधिकतर निर्णय सकरात्मक और मानवीय मूल्यों से समर्थित हैं। सुरंग' में विवाहिता नारी परपुरूष से गर्भधारण पर कतई संकुचित या हतप्रभ नहीं है। वह पति से स्पष्ट कह देती है - 'मैं तुम्हारी या किसी और की दी हुई उधार जिन्दगी नहीं जीना चाहती। जितना जीना चाहती हूँ पूरी तरह अपनी। हर फैसला मेरा अपना फैसला होगा। बच्चा मेरा अपना बच्चा।' 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा, 'चाक' की रेशम, एक जमीन अपनी' की नीता, बिना विवाह के गर्भधारण और संतानोत्पत्ति को अनुचित नहीं मानतीं। 'पीली आधी' की सोमा अपना स्वतंत्र मार्ग चुनकर बंगाली युवक से विवाह करने का साहस करती हैं।

एक स्थान पर डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है - 'इन दिनों अनेक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, जिनका सम्बंध इतिहास से है। विद्यासागर नौटियाल का सूरज सबका है', कामतानाथ का कालकथा अलका सारावगी का कलिकथा वाया बाईपास। असगर वजाहत का उपन्यास सात आसमान' भी एक खानदान की कई पीढ़ियों का इतिहास है। एक ओर जब इतिहास के अन्त की घोषणा की जा रही है तो हिन्दी के कथाकार इतिहास को रचनाओं का आधार बना रहे हैं।' 'पहला गिरिमिटया' (गिरिराज किशोर), 'बेदखल', पाहीघर (कमलकांत त्रिपाठी), 'गोविन्द-गाथा' (भगवती शरण मिश्र), विश्रामपुर का संत' (श्रीलाल शुक्ल), मुंशी रायजादा (लक्ष्मीकांत वर्मा), 'परछाई नाच' (प्रियवंद), 'कुहरे में युद्ध', 'दिल्ली दूर है' (शिवप्रसाद सिंह), पीढ़ियाँ' (अमृतलाल नागर) आदि उपन्यासों में भी कमोवेश इतिहास के संदर्भ और विडम्बनाएँ हैं।

साम्प्रदायिकता को लेकर जिन कृतियों में गहरी चिंता है, वे 'इतिहास' का आश्रय लेकर ही तार्किक विमर्श और संवेदनात्मक अभिव्यक्ति में जुटी है। उन्माद' (भगवान सिंह), 'तकसीम', कह कैम्प' (द्रोणवीर कोहली), हमारा शहर उस बरस' (गीतांजलि श्री), 'शीर्षक (चन्द्रकिशोर जायसवाल), 'जिंदा मुहावरे (नासिरा शर्मा), 'कितने पाकिस्तान' (कमलेश्वर), जलसा' (अभय) 'वे जहाँ कैद हैं' (प्रियंवद) 'त्रिशूल' (शिवमूर्ति) 'मुखड़ा क्या देखे' (अब्दुल विस्मिल्लाह), सभापर्व' (बदउज्जमाँ), आदि इसी प्रकार के उपन्यास हैं। इन उपन्यासों से गुजरते हुए लगता है कि कुछ कृतियों में इतिहास की मौजूदगी एक 'जरूरत' के तौर पर है तो कुछ कृतियों में 'इतिहास' इस धारणा के तहत आया लगता है कि इतिहास, संस्कृति दर्शन की पृष्ठभूमि के बिना अच्छा उपन्यास नहीं लिखा जा सकता है। इसीलिए कुछ उपन्यासों में अनावश्यक स्फीति है।

दसवें दशक के तीन उपन्यास जुलूसवाला आदमी' (रमाकांत), 'काला-बाजार' (तेजिन्दर), 'बीच में विनय' (स्वयं प्रकाश) देश में कम्युनिस्ट आन्दोलनों की उपलब्धियों सीमाओं को आत्मलोचन के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इन उपन्यासों में भी इतिहास पृष्ठभूमि में है। सोवियत संघ के विघटन के बाद स्वयं प्रकाश तेजिन्दर और रमाकांत आदि उपन्यासकारों ने साम्यवादी राजनीति के अन्तर्विरोधों की चीन्हने का प्रयास किया है।

दसवें दशक में साम्प्रदायिकता एक बड़ी भयावहता बनकर बुद्धि जीवियों और संवेदनशील रचनाकारों को संत्रस्त करती रही हैं। राममंदिर और बाबरी मस्जिद के नाम पर जो 'अयोध्याकांड' घटित हुआ और उसकी बम्बई आदि शहरों में जो प्रतिक्रिया हुई, उससे जनतंत्र में विश्वास रखने वालों के मन में गंभीर चिंता जन्मी है। 'उन्माद' में भगवान सिंह ने साम्प्रदायिकता को दिमागी बुखार की तरह खतरनाक माना है।

इसी तरह की सुविधाजनक राह का पड़ाव 'कितने पाकिस्तान' (कमलेश्वर) है। दाराशिकोह और औरंगजेब के प्रसंग में मुस्लिम धर्मान्धता पर एक नजर डालने की गुंजाइश थी, लेकिन वहाँ भी 'मुल्क और वतन के हिन्दू वाशिंदों..... की एहसान फरामोशी और भितरघात निशाने पर है।

जिन उपन्यासों में साम्प्रदायिकता को लेकर विमर्श कम, संवेदनात्मक अभिव्यक्ति अधिक है, वे अधिक प्रभावित करते हैं। 'जिन्दा मुहावरे' में नासिरा शर्मा की कोशिश है कि पाठक उस सेतु पर खड़ा हो, जो एक इंसान तक जाता है और जिसके नीचे ,मुहब्बत का समन्दर ठाठें मारता है। प्रियंवद ने 'जहाँ वे कैद है' लिखा है - मैं सबसे पहले तैयार हूँ धर्म छोड़ने के लिए पर आज कोई शासन कहे कि धर्म का सार्वजनिक प्रदर्शन उसी तरह अश्लील समझा जायेगा, जैसे सार्वजनिक संभोग। कोई कहे कि सारे मंदिरों, मस्जिदों, गिरजों, गुरूद्वारों को अस्पताल, अनाथालयों, स्कूलों में बदल दिया जायेगा। अब्दुल बिस्मिल्लाह का उपन्यास हालाँकि ग्रामीण पृष्ठभूमि में बहुआयामी सरोकारों से सम्पन्न है, लेकिन साम्प्रदायिकता' उसका एक खास मुद्दा है।

हड़बड़ी में किसी तात्कालिक घटना या ज्वलंत मुद्दे की रचना का विषय बनाने पर कई आशंकाएँ मँडराती रहती हैं। दसवें दशक के अनेक उपन्यासकारों ने राम जन्मभूमि बाबरी मस्जिद के विवाद को प्राय: बहस का मुद्दा बनाया है और कभी खुले रूप में और कभी संकेतों में अपने मानवीय सोच से अवगत कराया है। रमकांत के 'जुलूस वाला आदमी' में

'इमाम चौक' और रामचौतरा का विवाद वृहत्तर संकेतों से युक्त है, इसी तरह 'मंगल भवन' (विवेकीराय) में विक्रम मास्टर हिन्दूवादी बेटे के दृष्टिकोण से असहमत होते हैं और साफ-साफ कह देते हैं कि देश की समस्या केवल राममंदिर नहीं है। 'निन्यानबे' (रवीन्द्र वर्मा) में अयोध्या की दुर्घटना का बहुत संवेदनात्मक और मार्मिक उपयोग किया गया है। काला पहाड़' और इदन्नमम' में ग्रामीण अंचल में मंदिर-मस्जिद विवाह प्रतिक्रिया का अंकन हुआ है। 'पाथर टीला' (रूप सिंह चंदेल) में इस विवाह से गॉव की सुख-शांति खतरे मे पड़ जाती है। इन उपन्यासों से रचनाकारों की परिवेश के प्रति सजगता का पता चलता है।

जिन उपन्यासों में समकालीन चुनौतियों से पिछड़े ग्रामीण अंचल के संदर्भ में मुठभेड़ की गयी है, उनमें 'इदन्नमम', 'झूलानट', 'अल्माकबूतरी', 'चाक' (मैत्रेयी पुष्पा), मंगल भवन', 'नमामि ग्रामम्' (विवेकीराय), 'बीस बरस', (रामदरश मिश्र), 'ऐसी नगरिया में केहि विधि रहना' (जयनंदन), 'पार' (वीरेन्द्र जैन), वंश वृक्ष' (कृष्णावतार पांडेय)" 'टूटते अंधेरे' (विद्याभूषण), आगपानी आकाश' (रामधारी सिंह दिवाकर) सोन बरसा' (ज्योतिष जोशी), 'जंगल जहाँ से शुरू होता है, (संजीव), जहाँ बाँस फूलते हैं। (श्रीप्रकाश मिश्र), 'छप्पर' (जयप्रकाश कर्दम), 'यह अंत नहीं' (मिथलेश्वर), 'उकाव' (क्षितिज शर्मा), 'अर्द्ध विराम' (अमरनाथ शुक्ल), 'सहराना' (पुन्नी सिंह), 'गमना' (हबीब कैफी), 'काला पहाड़' (भगवानद दास मोरवाल), 'कसक' (देवसिंह पोखरिया) आदि प्रमुख हैं। जनजातियों पर लिखे उपन्यास साबित करते हैं कि कई हिन्दी उपन्यासकार बंद कमरे में बैठकर अपने सीमित अनुभवों को विचार-विमर्श के रंग रोगन से आकर्षक बनाने के सुविधाजनक तरीकों का अतिक्रमण करते है। 'गगन घटना गहरानी' में मनमोहक पाठक ने ओरांव जनजाति के क्षोभ और आक्रोश को स्वर दिया है। यह उपन्यास नवें, दसवें दशक के संधिकाल में छपा है।

जहाँ 'उकाव' जैसे कुछ उपन्यास पर्वतीय जीवन की मुश्किलों से साक्षात् कराते हैं तो 'काला पहाड़' में मेवात का ग्रामांचल है। 'दूटतेअंधेरे', 'मंगल भवन' और 'बीस बरस' में पूर्वी उत्तरप्रदेश का संक्रमणशील ग्राम जीवन है। 'छप्पर' मे दलित जीवन की कुरूपताओ और कठिनाइयाँ केन्द्रस्थ हैं। डॉ. पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी ने 'छप्पर' का उद्देश्य उस ब्राह्मण या पुरोहितवाद की बखिया उधेड़ना माना है जो आज तक हमारे समाज को खोखला करने में सक्रिय है। छप्पर की परम्परा में ही 'माटी की सौंगंध' (प्रेम कपाड़िया), 'जस तस भई सवेर' (सत्यप्रकाश), 'उस शहर तक' (तेजिन्दर), 'नरदंश' (राकेश वत्स) आदि उपन्यास दलित अस्मिता की पहचान के लिए सचेष्ट दिखायी देते है। 'दीवार मे एक खिड़की रहती थी' (विनोद कुमार शुक्ल) में गॉव का एक टुकड़ा है लेकिन यह उपन्यास पृष्ठभूमि या कथ्य' के बजाय अपनी शैली की विशिष्टता के चलते चर्चित हुआ है।

2.7 सारांश

हिन्दी का वर्तमान उपन्यास आधुनिक काल की उपलब्धि है। प्राचीन भारतीय साहित्य में कथा आधारित रचनाओं की परम्परा तो मिलती है किन्तु जिस रूप में आधुनिक उपन्यास विकसित हुआ है, वह पाश्चात्य प्रभाव की देन है। किन्तु चकित कहने वाली

बात यह है कि इस विधा ने लोकप्रियता के साथ कलात्मक उत्कर्ष भी बहुत जल्दी प्राप्त किया। श्री निवासदास का 'परीक्षा गुरू' उपन्यास हिन्दी का पहला उपन्यास माना गया। देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों ने इस विधा को लोकप्रिय बनाया। इतना कि उनके उपन्यास पढने के लिए लोगों ने हिन्दी सीखी। किन्तु प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को जासूसी और एय्यारी के कारावास से मुक्त किया और उसे सामाजिक जीवन से जोड़ दिया। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों से यह सिद्ध कर दिया कि उपन्यास एक महाकाव्यात्मक विधा है। उनका 'गोदान' भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य ही है।

प्रेमचन्द के पश्चात हिन्दी उपन्यास की दो धाराएँ स्पष्ट रूप से दिखायी दीं - यथार्थवादी उपन्यास और मनोविश्लेषणवादी उपन्यास। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी उपन्यास ने नये-नये कीर्तिमान स्थापित किये तथा उसका विकास अनेक प्रवृत्तियों में हुआ। 20वी सदी के अंतिम दशक तक हिन्दी उपन्यास अपने शिखर पर पहुँच गया है और अभी भी विकासमान है।

उपन्यास विधा अपनी समग्रता में विकासमान है तथा कहा जा रहा है कि इक्कसवीं शताब्दी उपन्यास की शताब्दी होगी। गत वर्षा में नये-नये उपन्यास जिस गति से आये हैं उनसे यह आभास हो, गया है कि इस विधा की सम्भावनाएँ अकूत है तथा उपन्यासकारों की तीन पीढियाँ इस समय रचनात्मक मोर्चे पर सक्रिय हैं।

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 उन परिस्थितियों की विवेचना कीजिए जिनमें हिन्दी उपन्यास ने जन्म लिया?

2 हिन्दी उपन्यास के विकास की आरम्भिक स्थिति का परिचय देते हुए स्पष्ट कीजिए कि आप हिन्दी का पहला उपन्यास किसे मानते है?

3 प्रेमचन्द पूर्वकाल में हिन्दी के सामाजिक उपन्यास की दिशा क्या थी?

4 हिन्दी उपन्यास के विकास में देवकीनन्दन खत्री के योगदान को रेखांकित कीजिए?

5 हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचन्द ने क्या योगदान दिया?

6 प्रेमचन्द की उपन्यास कला पर निबन्ध लिखिए?

7 हिन्दी के यथार्थवादी उपन्यासों की विकास यात्रा पर निबन्ध लिखिए?

8 हिन्दी के मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए जैनेन्द्र के योगदान को रेखांकित कीजिए?

9 स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की विभिन्न धाराओं का परिचय दीजिए?

10 इन उपन्यासों पर विस्तृत टिप्पणियाँ लिखिए-मैला आंचल, राग दरबारी, अलग अलग वैतरगी बाणभट्ट की आत्मकथा, शेखर - एक जीवनी, बूंद और 'समुद्र', मानस का हंस, पहला गिरमिटिया, मुझे चांद चाहिए, समय सरगम, सूरज का सातवां घोडा और कितने पाकिस्तान।

11 बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की औपन्यासिक उपलब्धियों का रेखांकन करते हुए हिन्दी उपन्यास के भविष्य पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

1 डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (सम्पादक); हिन्दी साहित्यकोश (भाग- 1)

2 डॉ. गोपालदास; हिन्दी उपन्यास का इतिहास

3 शिवनारायण श्रीवास्तव; हिन्दी उपन्यास
4 डॉ. रामदरश मिश्र; हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा
5 डॉ. हेतु भारद्वाज, सुमनलता; हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास
6 डॉ. अमरनाथ; हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली
7 रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्य का इतिहास

इकाई-3 प्रेमचन्द की औपन्यासिक दृष्टि और उनके उपन्यास

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 प्रेमचन्द की औपन्यासिक दृष्टि
3.3 प्रेमचन्द के उपन्यासों का परिचय
3.4 शब्दावली
3.5 सारांश
3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम प्रेमचन्द की औपन्यासिक दृष्टि एवं उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन करेगें। इस इकाई के अध्ययन में आप -

- प्रेमचन्द की औपन्यासिक दृष्टि के बारे में जान सकेंगे।
- प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- प्रेमचन्द के प्रमुख उपन्यासों की विषय वस्तु से परिचित हो सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास में प्रेमचन्द का नाम सर्वोपरि है। उन्हें 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि से विभूषित किया गया। वास्तव में प्रेमचन्द ही वह रचनाकार हैं जिन्होंने हिन्दी उपन्यास को मजबूत आधार प्रदान कर विश्व उपन्यास साहित्य में सम्मानजनक स्थान प्रदान कराया। उन्होनें छोटे-बड़े लगभग चौदह पूर्ण उपन्यास लिखे और एक उपन्यास अधूरा रह गया। इस इकाई में हम जहाँ एक ओर उनकी औपन्यासिक दृष्टि को समझ सकेगें वहीं उनके उपन्यास साहित्य से परिचित हो सकेगें। आइये सबसे पहले उनकी औपन्यासिक दृष्टि का अवलोकन करें।

3.2 प्रेमचन्द की औपन्यासिक दृष्टि

उपन्यास गद्य साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। इसमें जीवन का चित्रण व्यापक धरातल पर किया जाता है। प्रेमचन्द ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा है कि "मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।" प्रेमचन्द यह मानते थे कि साहित्य केवल मनोरंजन की चीज नहीं है बल्कि वह जीवन की विभिन्न समस्याओं पर भी विचार करता है और उनका समाधान देता है। इसी कारण वे साहित्य के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए कहते है- "साहित्य की सर्वोतम परिभाषा जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबन्ध के रूप में हो, चाहे कहानियों या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना

या व्याख्या करनी चाहिये।" उसे जीवन के अन्य क्षेत्रों के समान राजनीति का भी उचित पथ-प्रदर्शन करना चाहिये ताकि समाज का विकास सम्भव हो सके। वे लिखते हैं- "साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली चीज नहीं है, उसके आगे-आगे चलने वाली एडवाँस गार्ड है। वह उस विद्रोह का नाम है, जो मनुष्य के हृदय में अन्याय, अनीति और कुरूचि से उत्पन्न होता है।" आर्दशवाद और यथार्थवाद के सम्बन्ध में भी प्रेमचन्द जी के विचार उल्लेखनीय हैं। "जहॉ यथार्थ और आदर्शवाद का समन्वय हो गया हो। उसे आप आदर्शवादी यथार्थ कह सकते हैं। विचार को सजीव बनाने के लिये यथार्थ का उपयोग होना चाहिये और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है। उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि करना है जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर लें। जिस उपन्यास के चरित्रों में यह गुण नही है वह दो कौड़ी का है। चरित्रों को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिये यह जरूरी नहीं कि वह निर्दोष हों। महान से महान पुरूषों में भी कुछ - न - कुछ कमजोरियाँ होती है।" उनका मानना था कि "सहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है। यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। सहित्यकार का पद इससे कहीं ऊँचा है। वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है। कम-से-कम इसका यही उद्देश्य होना चाहिये।" प्रेमचन्द ने सामाजिक दृष्टि से उपयोगी व हितकर साहित्य की रचना की। वे किसी वाद या मत के अंधसमर्थक नहीं थे। उनकी स्वतन्त्र जीवन दृष्टि थी। उन्होंने जीवन को यथार्थ के धरातल पर देखा और उसी को अपनी रचना का आधार बनाया। वास्तव में प्रेमचन्द हिन्दुस्तान की नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। वे आशावादी दृष्टिकोण से युक्त थे। उनकी मान्यता थी कि 'यह अंत नही है और आगे बढ़ो आगे और बढ़ी जब तक कि रंगभूमि में विजय न हो, जब तक कि देश का कायाकल्प न हो'

प्रेमचन्द ने किसान जीवन का व्यापक चित्रण किया है। किसान और मजदूरों के प्रति जहाँ सहानुभूति है वहीं पूंजीपति व जमींदारों की षोशण-वृत्ति का खुलकर विरोध किया है प्रेमचन्द ने किसानों की स्वाधीनता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका मानी है। उनका मानना था कि इस वर्ग के भाग लेने से देश जल्दी ही परतन्त्रता की बेड़ियां तोड़ देगा। प्रेमचन्द गाँधीवाद के समर्थक थे किन्तु उससे पूरी तरह सहमत नहीं थे। प्रेमचन्द ने वर्ग संघर्ष की खुलकर अभिव्यक्ति की है।

प्रेमचन्द परिवार की समस्याओं को अच्छी तरह जानते थे। इस कारण नारी, पुरूषों, बालकों व वृद्धों की मन: स्थिति का उन्होनें अच्छी तरह चित्रण किया है। मानव जीवन के हर पहलू पर प्रकाश डाला है। संयुक्त परिवार व्यवस्था के समर्थक होते हुये भी प्रेमचन्द बाद में परिस्थितियों को देखते हुये एकल परिवार का चित्रण करने लगे थे। प्रेमचन्द ने बाल मनोविज्ञान का चित्रण किया है। बच्चों की चेतना पर ईर्ष्या भाव व स्वार्थ के सामाजिक भाव नहीं होते इस कारण उनके संबंधों में ज्यादा मानवीयता होती है। वे साहित्य के तीन लक्ष्य मानते थे- परिष्कृत, मनोरंजन और उद्घाटन। लेखक का मनोरंजन भाव परिष्कार युक्त होता है। उसका उद्घाटन भी परिष्कृति को सामने रखकर

ही होता है। साहित्य का सबसे ऊँचा लक्ष्य दूसरों को उठाना और उन्नत करना है। वह मानते थे कि कहानियों के प्लाट जीवन से लियें जाएँ, जो जीवन की समस्याएँ हल करे। प्रेमचन्द राष्ट्रीय आंदोलन के प्रबल पक्षधर थे। उन्होंने बनारसीदास चतुर्वेदी को जो पत्र लिखा उसमें उनकी भावनाएं इस तरह व्यक्त हुई है "मेरी आकांक्षाएं कुछ नहीं हैं। इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य संग्राम में विजयी हों।" इसी प्रकार राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि समाज की बुनियाद भाषा है और जिस दिन हम अंग्रेजी भाषा छोड़कर अपनी एक राष्ट्रभाषा बना लेंगे उस दिन हम स्वराज्य का दर्शन कर लेंगे।

जाति के नाम पर होने वाले भेदभाव का प्रेमचन्द डटकर विरोध करते हैं। अस्पृश्यता को वे भारतीय समाज के लियें घातक मानते थे। उन्होंने 'कर्मभूमि उपन्यास में अछूतों को मन्दिर में प्रवेश दिलाकर मानवीय अधिकारों की पुष्टि की है। अपने लेखन के द्वारा जगह-जगह धर्म का व्यवसाय चलाने वालों की पोल खोल कर रख दी है। उनका मानना था कि मनुष्य अपनी सामर्थ्य एवं संघर्ष से अपनी स्थिति में बदलाव कर सकता हैं।

प्रेमचन्द ने साम्प्रदायिकता को राष्ट्रीय एकता में बाधक माना और इसका डटकर विरोध किया। साम्प्रदायिकता उत्पन्न करने वाले मूल कारणों पर प्रकाश डाला और धर्मनिरपेक्षता की भावना पर बल दिया।

वास्तव में प्रेमचन्द जनता के रचनाकार थे। उनके कष्टो और समस्याओं से भली-भाँति परिचित थे। शोषित-पीड़ित और अभावग्रस्त लोगों के स्वर को अपनी लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्ति दी। उन्हें इस कार्य को करने से कोई प्रलोभन डिगा नहीं सका। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास साहित्य में जीवन की विभिन्न समस्याओं को उठाया है और उनका हल देने का प्रयास किया है।

कथानक उपन्यास का प्रमुख तत्व है। आलोचक अच्छे कथानक के लिए सरलता, मैलिकता और रोचकता को आवश्यक मानते हैं। प्रेमचन्द कथानक के सम्बन्ध में मानते थे- "प्लाट सरल होना चाहिए। बहुत उलझा हुआ, पेचीदा, शैतान की ऑत, पढ़ते-पढ़ते जी उकता जाये, ऐसे उपन्यास को पाठक ऊबकर छोड़ देता है। एक प्रंसग अभी पूरा होने आया कि दूसरा आ गया, यह अभी अधूरा ही था कि तीसरा प्रंसग आ गया, इससे पाठक का चित्त चकरा जाता है पेचीदा प्लाट की कल्पना इतनी मुश्किल नहीं है, जितना किसी प्लाट की। सरल प्लाट में बहुत से चरित्रों की कल्पना नहीं करनी पड़ती, इसलिये लेखक को अल्पसंख्यक चरित्रों के भाव-विचार, गुण-दोष,आचार-व्यवहार को सूक्ष्म रूप में दिखाने का अवसर मिल जाता है, इससे उसके चरित्रों में सजीवता आ जाती है और वह पाठक के हृदय में अपना अच्छा या बुरा असर छोड़ जाते है। यह बात बहुसंख्यक चरित्रों के साथ नहीं प्राप्त हो सकती। प्लाट की मौलिकता का होना भी जरूरी है। जिस बात या विषय को अन्य लेखकों ने लिख डाला हो, उसे कुछ हेर फेर करके अपना प्लाट बनाने की चेष्टा करना अनुपयुक्त है।"

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के लिए जिन कथानकों का चयन किया है। वह भारतीय जन जीवन के विविध पक्षों से ही सम्बद्ध है। उनमें ग्राम्य एवं नागरिक जीवन के सजीव चित्र हैं। समाज सुधार, राष्ट्रीय आन्दोलन का जीवन्त चित्रण उनके उपन्यासों में हुआ है।

प्रेमचन्द अतीत के खण्डहरों में नहीं भटके बल्कि वर्तमान समाज एवं उसकी समस्याओं को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की। नारी भारतीय समाज एवं साहित्य में उपेक्षित ही रही। वह प्राय: भोग्य वस्तु ही बनी रही। प्रेचचन्द ने नारी जीवन से जुड़ी समस्याओं को पूरी मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत किया। सेवा सदन' एवं 'निर्मला उपन्यासों के कथानक नारी जीवन की विडम्बनाओं और त्रासदियों के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं। 'सेवा सदन' में दहेज की समस्या, अनमेल विवाह एवं वेष्या समस्या को सबलता के साथ उठाया गया है। वहीं 'निर्मला' में दहेज की समस्या के परिणामस्वरूप होने वाले अनमेल विवाह को नारी के साथ पारिवारिक त्रासदी के रूप में प्रस्तुत किया है। 'गबन' एवं 'कर्मभूमि' उपन्यासों में नारी में मौजूद नेतृत्व क्षमता को उद्घाटित किया है। डॉ० राम विलास शर्मा लिखते हैं- "समाज का सबसे दलित अंग नारी -राष्ट्रीय पराधीनता और घरेलू दासता, दोनों में पिसती हुई नारी-स्वाधीनता के लियें हाथ फैलाने लगी थी। प्रेमचन्द ने इस परिवर्तन को देखा था, उसका स्वागत किया था, उसे बढ़ावा दिया था।"

यह विडम्बना ही है कि कृषि प्रधान देश भारत में किसान की दशा सदैव शोचनीय ही रही है और साहित्य में भी वह हाशिये पर ही रहा है। ब्रिटिश शासन काल में तो उसकी स्थित और भी अधिक दयनीय हो गयी। प्रेमचन्द ने भारतीय किसान जीवन का विस्तार से चित्रण किया है। यह कहा जा सकता है कि - प्रेमचन्द के उपन्यास 'प्रेमाश्रम' 'कर्मभूमि' और 'गोदान' किसान जीवन की विस्तृत गाथा हैं। प्रेमचन्द में सामन्त वर्ग के स्वार्थपरक जीवन का चित्रण है। इसके साथ-साथ किसान के शोषण एवं विद्रोह के दृश्य अंकित हैं। 'कर्मभूमि' उपन्यास गरीब किसानों पर किये जा रहे अत्याचार एवं उनके द्वारा एकजुट होकर किये गये संघर्ष की तस्वीर प्रस्तुत करता है। 'गोदान' उपन्यास तो कृषक जीवन की महागाथा है। महाजन और जमींदार और ब्रिटिश सरकार के कर्मचारी मिलकर जोंक की तरह किसान का रक्त चूसते हैं। किसान खेती छोड़कर मजदूर बनने के लिए विवश हो जाता है। और अन्त में मृत्यु से साक्षात्कार करता है। उपर्युक्त त्रासदी को प्रेमचन्द ने गोदान में यथार्थ के धरातल पर अंकित किया है।

प्रेमचन्द सामाजिक प्रतिबद्धता से युक्त रचनाकार थे। अन्याय और अत्याचार पर आधारित व्यवस्था के विरूद्ध वे कलम के सिपाही के रूप में उतर कर आये। दलित समाज सदियों से इस शोषणमूलक व्यवस्था का शिकार रहा। उसे मानवीय जीवन जीने से वंचित किया गया, दूसरे शब्दों में कहें तो उससे पशुवत् व्यवहार किया गया। प्रेमचन्द ने दलितों की समस्याओं एवं संघर्षो को 'रंगभूमि' में प्रस्तुत किया है। जिसका नायक दलित सूरदास है। जो पूंजीवादी सभ्यता और संस्कृति के विरूद्ध आजीवन संघर्ष करता है। पूरे उपन्यास का कथानक उसके इर्द-गिर्द ही बुना गया है। 'कर्मभूमि' उपन्यास में दलित समस्या को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया है। 'गोदान' में मातदीन-सिलिया प्रकरण दलितों के साथ होने वाले अनाचारों के विरूद्ध उनके आक्रोश को अभिव्यक्त करता है।

'कायाकल्प' उपन्यास में साम्प्रदायिकता की समस्या को उठाया गया है तथा इस समस्या के मूल में विद्यमान शक्तियों का पर्दाफाश करने का प्रयास है। प्रेमचन्द मानव मनोविज्ञान के पारखी रचनाकार थे 'गबन' उपन्यास में वह स्त्रियों की आभूषणप्रियता

तथा मनुष्य की दिखावे की भावना से पाठक को साक्षात्कार कराते हैं। वहीं दूसरी ओर इस उपन्यास में ब्रिटिश पुलिस के दमनात्मक रूप से साक्षात्कार कराते हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों के कथानक समाज के विभिन्न वर्गो से सम्बद्ध है। अपने समय की सामाजिक समस्याएं उनके उपन्यासों के कथानकों की अभिन्न अंग रहीं हैं।

पात्र एवं चरित्र चित्रण उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। प्रेमचन्द ने उपन्यासों के चरित्र ग्रामीण एवं शहरी- दोनों जनजीवनों से लिए है। उनके यहॉ विविध चरित्र दिखाई पड़ते हैं। वे जमींदार, किसान, पूंजीपति, सरकारी अधिकारी, पुरोहित, महंत, वकील, दलित वर्ग से संबंधित हैं। इन वर्गो का चित्रण करने के साथ ही साथ प्रेमचन्द ने उनकी मनोवृतियों और क्रियाकलापों का भी सटीक उद्घाटन किया है। उनके पात्र काल्पनिक जगत की उत्पत्ति नहीं हैं बल्कि इसी संसार की यथार्थ भूमि के चरित्र हैं। उनके पात्रों की मनोदशा, बोल-चाल, वेशभूषा एव- क्रिया कलाप हमारे अपने समाज की प्रतीत होते हैं। प्रेमचन्द के पात्रों का चरित्र चित्रण इसलिए और भी स्वाभाविक बन गया है क्योंकि उन्होंने पात्रों के चरित्रों का चित्रण वर्ग, स्थिति, समय और परिवेश के सापेक्ष में किया है। पात्रों का सम्बन्ध जिस व्यवस्था या वर्ग से है उसी के अनुरूप परिवेश भी अभिव्यक्त हुआ है। प्रेमचन्द ने आदर्शवादी चरित्रों का भी सृजन किया है। और यथार्थवादी चरित्रों का भी। प्रेमचन्द ने संघर्षशील चरित्रों के सृजन में अपार सफलता प्राप्त की है। प्रेमचन्द लिखते हैं कि "वह अब आर्दश चरित्रों की कल्पना नहीं करता। उसके चरित्र अब उस श्रेणी से लिये जाते हैं जिन्हें कोई प्यूरिटन छूना पसंद न करेगा। मेक्सिम गोर्की, अनातोल फांस, रोमां रोलां, एच०जी० वेल्स आदि यूरोप के, स्वर्गीय रतननाथ सरशार, शरदचन्द्र आदि भारत के-ये सभी हमारे आनन्द के क्षेत्र को फैला रहे हैं, उसे मानसरोवर और कैलाश की चोटियों से उतार कर हमारे गली कूचों में खड़ा कर रहे हैं। वह किसी शराबी को, किसी जुआरी को, किसी विषयी को देखकर घृणा से मुँह नहीं फेर लेते। उनकी मानवता पतितों में वह खूबियाँ, उससे कहीं बड़ी मात्रा में देखती हैं, जो धर्म-ध्वजाधारियों में और पवित्रता के पुजारियों में नहीं मिलती। बुरे आदमियों को भला समझकर, उससे प्रेम और आदर का. व्यवहार करके उसको अच्छा बना देने की जितनी सम्भावना है, उतनी उससे घृणा करके, उसका बहिष्कार करके नहीं। मनुष्य में जो कुछ सुन्दर है, विशाल है, आदरणीय है, आनन्दप्रद है, साहित्य उसी की मूर्ति है।" 'रंगभूमि' उपन्यास का सूरदास और गोदान का 'होरी' इसके उदाहरण है। प्रेमचन्द के चरित्रों की एक विशेषता यह भी दिखाई पड़ती है कि वे मानवीय सबलताओ और दुर्बलताओ के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। नारी चरित्रों के वर्णन में भी प्रेमचन्द को पूर्ण सफलता मिली है। 'प्रेमाश्रम' की गायत्री, 'सेवासदन' की सुमन, 'कायाकल्प' की मनोरमा, 'गबन' की जालापा, 'कर्मभूमि' की सुखदा और 'गोदान' की धनिया एवं मालती जैसे चरित्र हिन्दी उपन्यास की सामर्थ्य को दर्शाते हैं। वास्तव में मानव चरित्र की सूक्ष्म अभिव्यक्ति करने में प्रेमचन्द को पूर्ण सफलता मिली है। पात्रों के जीवन का कोई पक्ष उनकी दृष्टि से- ओझल नहीं हुआ है।

उपन्यास में देशकाल अथवा वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि यह पृष्ठभूमि के अतिरिक्त समय की परिस्थितियों से साक्षात्कार कराता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में इस तत्व का उपयोग सफलतापूर्वक हुआ है। उनके उपन्यासों में देशकाल

एवं वातावरण का चित्रण इतने सजीव रूप में हुआ है कि वह घटनाओं, पात्रों और उनके क्रियाकलापों को वास्तविकता के धरातल पर लाकर खड़ा कर देता है। 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' एवं 'गोदान' उपन्यासों में ग्राम्य वातावरण जीवन्त हो उठा है। उदाहरण के लिए 'गोदान' उपन्यास का यह दृश्य देख सकते हैं - "भोला का पुरवा था तो छोटा, मगर बहुत गुलजार। अधिकतर अहीर ही बसते थे और किसानों को देखते इनकी दशा बहुत बुरी न थी। भोला गॉव का मुखिया था। द्वार पर बड़ी सी चरनी थी जिस पर दस-बारह गाय भैंसें सानी खा रही थीं। ओसारे में बड़ा सा तख्त पड़ा था जो शायद दस आदमियों से भी न उठता। किसी खूँटी पर ढोलक लटक रही थी, किसी पर मंजीरा। एक ताख पर कोई पुस्तक बस्ते -में बंधी रखी थी जो शायद रामायण हो।" इसी तरह नगरों के वातावरण को बखूबी चित्रित किया है। सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य के संबंध में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के गॉधी युग का इतिहास प्रेमचन्द के उपन्यासों से ज्ञात किया जा सकता है। इसे हम इस तरह भी कह सकते हैं कि प्रेमचन्द के उपन्यासों के माध्यम से गॉधी युग के इतिहास को समझा जा सकता है। वास्तविकता यह है कि प्रेमचन्द ने अपनी खुली ऑखों से जो देखा, कानों से जो सुना, हृदय से जो अनुभव किया वही सब कुछ उनके उपन्यासों में व्यक्त हुआ है।

संवाद योजना उपन्यास मूल अंग है। उपन्यास में कथानक के विकास, पात्रों की चारित्रिक व्याख्या तथा उद्देश्य को व्यक्त करने में महत्ती भूमिका होती है। संवादों के संबंध में प्रेमचन्द का विचार था कि "उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो, और लेखक की कलम से जितना कम लिखा जाये, उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा। वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होने चाहिए। प्रत्येक वाक्य को जो किसी चरित्र के मुँह से निकले - उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए। बातचीत को स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल, सरल और सूक्ष्म होना जरूरी है।" प्रेमचन्द ने अपनी मान्यता के अनुरूप पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा चरित्रों का उद्घाटन किया है। संवाद कथानक के विकास के साथ ही साथ पात्रों के परिचय एवं विकास में सहायक है। उदाहरण के रूप में हम 'रंगभूमि' उपन्यास में सूरदास और मिठुआ के वार्तालाप को देख सकते हैं। जिसमें सूरदास की संघर्षशीलता और दृढ़शक्ति का परिचय मिलता है-

"मिठुआ पूछता है - दादा, अब हम रहेंगे कहॉ?

सूरदास - दूसरा घर बनायेंगे।

मिठुआ - और कोई फिर आग लगा दे?

सूरदास - तो हम फिर बनायेंगे

मिठुआ - और जो कोई हजार बार लगा दे?

सूरदास - तो हजार बार बनायेंगे।"

संवाद योजना करते समय प्रेमचन्द ने चरित्रों के वर्ग, परिवेश, व्यवसाय एवं परिस्थितियों का विशेष ध्यान रखा है। जिससे वे स्वाभाविक लगते हैं। संक्षिप्तता, अर्थपूर्णता सम्बद्धता उनकी संवाद योजना की विशेषताऍ हैं, कहीं-कहीं संवाद लम्बे भी हो गये हैं लेकिन कथावस्तु के अनुकूल हैं, स्वाभाविक हैं।

उपन्यास की सफलता में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उपन्यास के लिए वही भाषा उपयुक्त कही जाती है जो सरल तथा स्वाभाविक हो। भाषा कथानक, पात्र एवं वातावरण को स्पष्ट करने का आवश्यक साधन है। प्रेमचन्द के संदर्भ में कहा जा सकता है कि भाषा पर उनका असाधारण नियंत्रण है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के सम्बन्ध में कहा है कि 'वे वाणी के डिक्टेटर हैं।' यह बात प्रेमचन्द पर भी शत प्रतिषत लागू होती है। उन्हें भारतीय जन जीवन का व्यापक अनुभव था इसलिए उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग अपने पात्रों के द्वारा कराया है जो स्वाभाविक, सरल एव सहज लगे तथा परिस्थितियों के अनुकूल हो। उनके उपन्यासों में उर्दू मिश्रित खड़ी बोली तथा शुद्ध सस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग भी मिलता है। मुहावरे उनकी भाषा को सजीव बनाते हैं। उनकी भाषा में व्यंग्य का भी पुट है। उनकी भाषा में गम्भीरता का दिग्दर्शन भी होता है- "वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपनी माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है।" इसके साथ ही रोचकता से भरपूर भी है - "तुम इन बदमाशों से अमारा माल दिलवाइये, नई अमम तुमको उठा ले जायेगा, अपनी कोठी में जश्न मनायेगा। तुम्हारा हुस्न पर अम आशिंक हो गया। या तो अमको एक हजार अभी-अभी दे दे या तुमको हमारे साथ चलना पड़ेगा। तुमको हम नही छोड़ेगा। हम तुम्हारा आशिक हो गया है। अमारा दिल और जिगर फटा जाता है। हमारा इस जगह पचीस जवान है। इस जिला में हमारा पॉच सौ जवान काम करता है। हम अपने कबीले का खान है।"

निःसन्देह प्रेमचन्द के उपन्यासों की लोकप्रियता में उनकी भाषा की भी अहम् भूमिका रही है। पाठक को यह सहज एवं स्वाभाविक लगती है, वह उसको आतंकित नहीं करती बलिक हृदय को छूती है।

साहित्य की अन्य विधाओं की भांति उपन्यास में उद्देश्य अनिवार्य तत्व है। साहित्य के लक्ष्यों के सम्बन्ध में प्रेमचन्द कहते हैं- "अब साहित्य केवल मन बहलाव की चीज नहीं है। मनोरंजन के सिवाए उसका और कुछ उद्देश्य है। अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है।" अपने इन्ही विचारों के अनुरूप उन्होंने अपने उपन्यासों में विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एव सांस्कृतिक समस्याओं को उठाया है और उनका समाधान करने का प्रयास किया है। उन्होंने सामजिक कुरीतियों, साम्प्रदायिकता, धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों एवं अनाचारों का मुखर विरोध किया है। स्त्री जीवन एवं दलित जीवन से जुड़े सवालों को पूरी ईमानदारी के साथ उठाया है और उनका हल देने की जागरूक पहल की है। किसानों की दयनीय दशा के मार्मिक चित्र अंकित करके व्यवस्था पर प्रश्न चिहन लगाये हैं।

प्रेमचन्द की औपन्यासिक दृष्टि निश्चित रूप से हिन्दी उपन्यास को जहॉ सुदृढ़ आधार प्रदान करती है वहीं उपन्यास के मापदण्ड तय करती है।

3.3 प्रेमचन्द के उपन्यासों का परिचय

प्रेमचन्द का पहला उपन्यास 'असरारे मुआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य' 08 अक्टूबर 1903 से 01 फरवरी 1905 तक बनारस के उर्दू साप्ताहिक 'आवाज खल्क' में क्रमश: प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में धार्मिक स्थानों में व्याप्त विलासिता एवं पाखण्डों का पर्दाफाश किया गया है। इसके उपरान्त उनके 'प्रेमा', 'किशना' और 'रूठी रानी. नामक छोटे-छोटे उपन्यास प्रकाशित हुये। इसके पश्चात् प्रेमचन्द उर्दू के साथ-साथ हिन्दी में भी लिखने लगे और सेवा सदन' से शुरू हुई उपन्यास यात्रा 'गोदान' पर समाप्त हुई। इस बीच अनेक महत्वपूर्ण उपन्यासों की रचना की। यहॉ हम उनका संक्षेप में परिचय प्राप्त करेंगें।

सेवासदन

सेवासदन 1918 के लगभग प्रकाशित हुआ। इसमें नारी जीवन से सम्बन्धित कई समस्याओं को उठाया गया हैं। प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में दर्शाया है कि दहेज के अभाव में अनमेल विवाह होता है और अनमेल विवाह के परिणामस्वरूप नारी का जीवन त्रासद हो जाता है। 'सेवा सदन' में भोली बाई नामक एक वेश्या आयी है उसके पिता ने उसे दौलतमंद बड़े मियां के गले मढ़ दिया था जिसकी सूरत से ही उसे नफरत थी। कुछ महीने तो किसी तरह वह उसके साथ बिता सकी। लेकिन बार-बार उसके मन ने उसे यह कह कर उत्तेजित किया कि वह कोई भेड़ बकरी तो है नहीं कि मॉ-बाप जिसके गले मढ़ दें उसी की होकर रहे। और फिर विद्रोह करके वह घर से निकलकर बाजार में चली आई। भोली बाई के अनमेल विवाह का परिणाम है उस का असफल दाम्पत्य जीवन। भोली बाई को अपने वैवाहिक जीवन से असंतोष हुआ और अन्त में वह वेश्या बन गई।

'सेवासदन' की सुमन ऐसे पिता की पुत्री है जिसके स्वभाव में किफायत का नाम न था और जो अपने बाल-बच्चों को आराम के साथ रखना अपना कर्तव्य समझता था। सुमन के पिता दरोगा कृष्णचन्द को अगले कल की चिन्ता कभी हुई ही नहीं। घर में बेटी स्यानी होती जा रही थी, पत्नी गंगाजली बेटी के ब्याह का मसला उसके सामने रखती है लेकिन दरोगा जी की कठिनाई यह थी कि उनके पास दहेज देने के लिए धन नहीं था। पहले तो वह यह सोचकर खुश होते थे कि समाज में दहेज प्रथा के विरूद्ध आन्दोलन चल पड़ा है और बेटियों के ब्याह में दहेज की चिन्ता उनके आगे नहीं रहेगी। कन्या के प्रति पिता का जो उत्तरदायित्व हो सकता है उसका कृष्णानन्द ने पूरा निर्वाह किया। उसने लड़कियों को पढ़ाया लिखाया। यही नहीं नये फैशन का सीना-पिरोना ईसाई लेडी से सिखाया। उनकी बेटियों में ऐसे हुनर थे कि समाज में उनकी कद्र होनी चाहिए थी। लेकिन हमारा समाज है जिसकी ऑखों में कन्या के निजी गुणों की कोई कीमत नहीं है इसलिए दरोगा कृष्णचन्द्र जो रिश्वत को काला नाग समझता है विवश होकर अपनी बेटी के विवाह के लिए रिश्वत की रकम स्वीकार करता है। इस कला में नौसखिया होने के कारण हराम का माल कृष्णचन्द्र पचा नहीं सका और उसे सजा मिली। घूस के रूपये मुकदमें में खर्च हो गये और सुमन के विवाह के दहेज के लिए धन का कोई प्रबध न हो सका। अन्त में दहेज के अभाव में सुमन का विवाह गजाधर नामक गरीब दुहाजू व्यक्ति के साथ होता है। इस अनमेल विवाह के कारण गजाधर और सुमन अलग-अलग हो जाते

हैं। प्रेमचन्द ने यह भी स्पष्ट किया है कि पति द्वारा त्यागी गई स्त्री के लिये हमारे तथाकाति सभ्य समाज में कोई स्थान नहीं है और उसे विवश होकर वेश्या जीवन स्वीकार करना पड़ता है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने वेश्याओं की स्थिति पर बहुत ही सहानुभूति पूर्ण ढंग से विचार किया है और इसके लियें समाज की भ्रष्ट व्यवस्था को जिम्मेदार माना है। इस समस्या के सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारणों पर गंभीरता से प्रकाश डाला है।

वरदान

यह उपन्यास सन् 1921 में प्रकाशित हुआ। यह उर्दू में 'जलवए ईसार' नाम से प्रकाशित हुआ था। प्रेमचन्द अपने सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य को ध्यान में रखकर भारतीय जनता में चेतना जाग्रत करवे का प्रयास कर रहे थे। 'वरदान' उपन्यास में उनकी यही प्रतिबद्धता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इस उपन्यास में एक ओर आर्थिक विशमता की कहानी है तो दूसरी ओर देश सेवा का दृढ़ निश्चय। आर्थिक विषमता सामाजिक सम्बन्धों का निर्धारण करती है, इस तथ्य की ओर प्रेमचन्द ने संकेत किया है। आर्थिक रूप से कमजोर प्रताप का विवाह सम्पन्न परिवार की लड़की विरजन से नहीं हो पाता है। जिस समय प्रेमचन्द 'वरदान' उपन्यास की रचना कर रहे थे उस समय कांग्रेस का उद्देश्य देश सेवा ही था। उपन्यास के प्रारम्भ में सुवामा अष्ट भुजा देवी से देश सेवक पुत्र प्राप्त करने की याचना करती है और देवी के आर्शीवाद से उसे प्रताप जैसा देश सेवक पुत्र प्राप्त होता है।

प्रेमाश्रम

'प्रेमाश्रम' 1921 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के रचनाकाल से पूर्व रूस में क्रान्ति हो चुकी थी। किसानों और मजदूरों की सत्ता का सपना साकार हो चुका था लेकिन भारत में किसानों की दशा दिन प्रतिदिन बदतर होती जा रही थी। प्रेमचन्द ने किसान जीवन. को आधार बनाकर इस औपन्यासिक कृति की रचना की। वास्तव में किसान जीवन पर यह हिन्दी का पहला उपन्यास है। प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम' में किसान वर्ग की अनेक समस्याओं को प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द का उद्देश्य समग्र रूप से भारत के कृषक वर्ग की समस्याओं को मुखरित करना था। इसी से उपन्यास में किसी विशिष्ट व्यक्ति को नायक रूप में उपस्थित न करके उन्होंने सारे गॉव को उपन्यास का नायक बना दिया है। इसी कारण 'प्रेमाश्रम' हिन्दी उपन्यास की एक नई दिशा का सूचक हो जाता है। इसमें प्रेमचन्द ने जमींदार तथा किसानों के संघर्ष को दिखाया है। किसानों के ऊपर होने वाले अन्याय, अत्याचार और शोषण की जीवन्त दास्तान प्रस्तुत की है। 'प्रेमाश्रम' में उन मुख्य कारणों को ही प्रत्यक्ष करते हैं जिनके परिणामस्वरूप किसान मिट रहे हैं बर्बाद हो रहे हैं।

भारत के किसानों का शोषण अकेले न तो जमींदार करता था और न सरकार करती थी। प्रेमचन्द ने अनुभव किया कि इस देश में मुट्ठी भर अंग्रेज षासकों ने शोषकों की एक विशाल फौज खड़ी कर ली है और उसके निहित स्वार्थ की तलवार किसानों की गर्दन पर सीधी पड़ी हुई है। यह शोषक कौन है? उत्तर सीधा है - जमींदार और नौकरशाही। प्रेमचन्द कहते हैं - "कार्तिक का आरम्भ होते ही एक अन्य प्रकार के जन्तु देहातों में निकल पड़ते हैं और अपने खेमों तथा छोलदारियो से समस्त ग्राम मण्डल को उज्ज्वल

कर देते हैं। वर्षा के प्रारम्भ में राजसिक कीट पतंग का उद्भव होता है, उसके अन्त में तामसिक कीट और पतंग का।" प्रेमचन्द ने जिन तामसिक कीट पतंगों का उल्लेख किया है - सरकारी मुलाजिम जो नियुक्त तो हैं जनता की सेवा और भलाई के लिए लेकिन फसल के समय जोंक बनकर किसान का खून चूसने देहातों में पहुँच जाते हैं। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द ने जमींदारों और नौकरशाही के अनाचार अत्याचार की पृष्ठभूमि में किसान वर्ग की समस्याओं का मर्मस्पर्शी विवरण प्रस्तुत किया है। वास्तव में भारतीय किसान एक दुधारू गाय है जो सबसे दुही जाती है।

रंगभूमि

1924-25 में प्रकाशित 'रंगभूमि' उपन्यास प्रेमचन्द का आकार की दृष्टि से सबसे बड़ा उपन्यास है। यह उपन्यास असहयोग आंदोलन के दौरान लिखा गया था, इसका प्रभाव उपन्यास में सर्वत्र दिखाई देता है। इस उपन्यास पर गॉधीवाद का भी व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। रामदीन गुप्त ने सूरदास को गांधीजी का प्रतिरूप और उनका लघु साहित्यिक संस्करण कहा है।

इस उपन्यास में दलितों एवं गरीबों का विस्तार से चित्रण है। इस उपन्यास का नायक सूरदास दलित है। उसमे गजब का जीवट है। वह बाधाओं से मुँह नहीं मोड़ता बल्कि संघर्ष करता रहता है। रंगभूमि' के सूरदास का पूंजीपति जान सेवक के साथ जमीन के मामले को लेकर संघर्ष होता है। अपने पुरखों की जमीन की रक्षा के लिए वह दृढ़ता से जुटा है। वह जानता है कि वह शक्तिहीन है, दुर्बल है, गरीब है, अपने विरोधियों से लड़ सकने की स्थिति में नहीं है। फिर भी वह आत्मसमपर्ण नहीं करता। ईश्वर पर पूर्ण आस्था रखकर अपने स्वत्व की रक्षा के लिए सत्याग्रह करता है। सूरदास यह जानता है कि आज की दुनिया में रूपये वाले सब कुछ कर सकते हैं। उसे यह भी अच्छी तरह मालूम है कि उसकी जमीन उसके न देने पर भी उसके हाथ से निकल जाएगी। लेकिन इससे निराश होकर वह अन्याय और शोषण को सह ले यह भी तो अधर्म है। अन्याय करना और अन्याय सहना दोनों से अन्याय को ही पोषण मिलता है। सूरदास परिणाम के प्रति सर्वथा निरपेक्ष रह कर शक्ति भर अन्याय का विरोध करता है। रंगभूमि' में प्रेमचन्द एक क्रांतिकारी कदम उठाते हैं वे सूरदास की मृत्यु के अवसर पर छूत और अछूत दोनों को एक ही पंक्ति में बैठाकर भोज कराते हैं।

कायाकल्प-

कायाकल्प 1926 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास उस दौर में लिखा गया जब देश साम्प्रदायिक हिंसा की चपेट में आ गया था। इस उपन्यास का कथानक दो रूपों में सामने आता है। एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। भौतिक पक्ष में साम्प्रदायिक समस्या को उठाया गया है। साम्प्रदायिक विद्वेष की आग जब भड़कती है तब सारे रिश्ते नाते समाप्त हो जाते हैं। 'कायाकल्प' के पण्डित यशोदा नन्दन और ख्वाजा महमूद परस्पर बाल सखा हैं। साम्प्रदायिक आवेश में आकर यशोदा नन्दन हिन्दू-मुस्लिम दंगे की भेंट चढ़ जाता है तो वही ख्वाजा अश्रुपूरित नेत्रों से कहता है - "हम दोनों दिल से मेल करना चाहते थे, पर हमारी मरजी के खिलाफ कोई गैबी ताकत हमें लड़ाती रहती थी।"

'कायाकल्प' में आगरे के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच होने वाले जिस साम्प्रदायिक दंगे का वर्णन आया है - उसके पीछे भी सरकारी शह ही है। प्रेमचन्द ने उपन्यास में बताया है कि हाकिम जिला को दोनों समुदायों के नेता अर्थात् ख्वाजा महमूद और पं. यशोदानन्दन सलाम बजाने जाया करते थे और उसके समक्ष अपनी अपनी राजभक्ति का राग भी अलापते थे।

इस दंगे में पं. यशोदानन्दन की मृत्यु तो होती ही है उनके घर में भी आग लगा दी जाती है। उनकी पुत्री अहल्या का अपहरण भी ख्वाजा महमूद के पुत्र द्वारा होता है। इसी में अहल्या के हाथों उसके अपहरणकर्ता की भी हत्या होती है। प्रेमचन्द ने उपन्यास में यह स्पष्ट किया है कि साम्प्रदायिक दंगों का सिलसिला तब तक चलता रहेगा जब तक दोनों संघर्षरत सम्प्रदाय अपने पागलपन का दण्ड नहीं भुगत लेंगे। 'कायाकल्प' के चक्रधर ने ठीक ही कहा है कि - "मुश्किल यह है कि जिन महान् पुरूषों से अच्छी धर्मनिष्ठा की आशा की जाती है वे अपने अशिक्षित भाइयों से भी बढ़कर उद्दण्ड हो जाते हैं।" 'कायाकल्प' में साम्प्रदायिक दंगे का जो अंतिम परिणाम दिखाया गया है वह संकेत करता है कि सरकार की ओर से शह पाकर भिन्न सम्प्रदायों के नेताओं ने परस्पर द्वेष, घृणा और उत्तेजना का भयंकर, विषाक्त वातावरण बना रखा था। सरकार ने स्वार्थी साम्प्रदायिक नेताओं को प्रोत्साहन देकर जो विषवृक्ष खड़ा किया था उसका विनाशकारी प्रभाव पड़ा।

प्रेमचन्द समाज को टूटने से बचाने के लिए पुरजोर कोशिश करते हैं। साम्प्रदायिक शक्तियों को बेनकाब कर वास्तविकता से साक्षात्कार कराते है।

प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में उन तथ्यों की ओर संकेत किया है जो साम्प्रदायिकता को जन्म देते हैं तथा उसका पोषण करते हैं। आध्यात्मिक पक्ष में आध्यात्मिक चेतना, लोक-परलोक की बात तथा अलौकिक चमत्कार इत्यादि दिखाये गये हैं। इस उपन्यास में गरीबों की दयनीय दशा, दुख, विवशता तथा उन पर होने वाले अत्याचारों का भी चित्रण किया गया है।

निर्मला

'निर्मला' 1927 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास नारी जीवन की करूण दास्तान प्रस्तुत करता है। दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीति के परिणामस्वरूप नारी का जीवन त्रासद हो जाता है। दहेज प्रथा के परिणामस्वरूप अनमेल विवाह होते हैं। दहेज न दे पाने के कारण वृद्ध के साथ किशोरी की शादी हो जाती है। जहॉ शोकमय, लज्जाहीन, यंत्रणापूर्ण जीवन का निर्वाह नारी को करना पड़ता है। उसके जीवन की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। इस उपन्यास की नायिका निर्मला इसका शिकार बनी है। दहेज की कुप्रथा के कारण तोताराम से उसका विवाह होता है।

विवाहोपरान्त अपने भरे-पूरे परिवार में निर्मला को किसी प्रकार का अभाव झेलना नहीं पड़ा किन्तु अपने पति तोताराम के पास बैठने और उसके साथ हंसने बोलने में उसे एक प्रकार का संकोच होता था। प्रेमचन्द ने इस संकोच का कारण यह बताया है कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था। अब उसी उम्र का यह तोताराम उसका पति है। तोताराम के प्रेम प्रदर्शन के प्रति उसे घृणा होती थी। फिर भी निर्मला परिस्थितियों के

साथ समझौता करने की चेष्टा करती है। अपने सौतेले बेटों के प्रति वह स्नेह का व्यवहार भी करती है। किन्तु यही उसका भयंकर अपराध हो जाता है। नवयुवक मंशाराम और निर्मला के परस्पर संबंध में तोताराम को वात्सल्य की पवित्रता के स्थान पर कलुशता नजर आती है।

दहेज प्रथा का अभिशाप निर्मला की जिन्दगी खराब तो करता ही है तोताराम के परिवार को भी छिन्न-भिन्न कर डालता है। प्रेमचन्द इस उपन्यास में स्पष्ट करते हैं कि दहेज की इस कुप्रथा का परिणाम किसी एक व्यक्ति को ही नहीं भुगतना पड़ता है बल्कि पूरे परिवार की स्थिति त्रासद हो जाती है।

प्रतिज्ञा

यह उपन्यास जनवरी 1927 से नवंबर 1927 तक 'चॉद' में क्रमश: प्रकाशित हुआ। अपने लेखन के प्रारम्भिक दौर में लिखे उपन्यास 'प्रेमा' के ही कथानक को उन्होंने विकसित किया। यह उपन्यास सुधारवादी दृष्टिकोण के साथ लिखा गया है। इसमें विधवा स्त्री की दयनीय दशा को उजागर किया गया है। विधवा नारी के प्रति समाज में व्याप्त घृणा, अत्याचार, और अन्याय का यथार्थ अंकन हुआ है। उस समय समाज सुधारक विधवा पुर्नविवाह के लियें सक्रिय कार्य कर रहे थे और स्वयं प्रेमचन्द ने भी बाल-विधवा शिवरानी देवी से विवाह किया था लेकिन वास्तव में समाज में इसे स्वाभाविक स्वीकृति नहीं मिल पा रही थी। उपन्यास का एक चरित्र अमृतराय विधवा से विवाह की प्रतिज्ञा करता है लेकिन उसका विधवा से विवाह नहीं हो पाता।

गबन-

प्रेमचन्द का 'गबन' उपन्यास 1931 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने निम्न मध्यमवर्ग के झूठे बडप्पन अर्थात् दिखावा, स्त्रियों की आभूषणप्रियता, विधवाओं की दुर्दशा एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के सेनानियों अर्थात देशभक्तों के प्रति ब्रिटिश पुलिस के अत्याचारों का सजीव अंकन किया हैं।

प्रेमचन्द को भारतीय समाज की गहरी समझ थी। मध्यमवर्ग भी उनसे अछूता नहीं था। वे अच्छी तरह जानते थे कि आमदनी अधिक न होने पर भी यह वर्ग दिखावे के लिए खर्च करता है और अनेक विपणियों को स्वयं निमंत्रण देता है। उपन्यास में दयानाथ अपने बेटे रमानाथ के विवाह में अपनी हैसियत से अधिक खर्च करता है। रमानाथ भी अपने पिता से कम नहीं है बलिक इस कार्य में अपने पिता से पांच कदम आगे ही हैं। उसकी पत्नी जालपा में भी आभूषणों के प्रति स्वाभाविक लगाव है। रमानाथ अपनी पत्नी को प्रसन्न रखने के लिए भ्रष्टाचार का सहारा लेता है। परिणामस्वरूप घोर संकट में फंस जाता है। विधवाओं की दुर्दशा की ओर प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में भी संकेत किया है। रतन को पति की मृत्यु के पश्चात् उचित अधिकार से वंचित कर दिया जाता है।

ब्रिटिश पुलिस झूठी गवाही का सहारा लेकर देशभक्तों को फंसाने का प्रयास करती है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने पुलिस की काली करतूतों और ब्रिटिश साम्राज्यवाद का पर्दाफाश किया है। प्रेमचन्द को सबसे अधिक विश्वास देश के श्रमजीवी वर्ग पर था। उपन्यास का एक चरित्र देवीदीन परोपकार, साहस और निर्भीकता से युक्त है। उसके बच्चे शहीद हो गये लेकिन वह निराश नहीं हुआ बल्कि सत्याग्रही बनना चाहता है। वह

क्रांतिकारी देशभक्तों का समर्थन करता है। उसे बड़े लोगों से राष्ट्र उन्नति के कार्य में कोई आशा नहीं हैं। गबन ब्रिटिश कालीन भारतीय परिवेश को उजागर करने वाली एक उत्कृष्ट कृति है।

कर्मभूमि-

'कर्मभूमि' प्रेमचन्द का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1932 ई. में हुआ। इस उपन्यास में तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलन, जमींदारों का शोषण और उनका विरोध, अछूतोद्धार तथा मजदूरों की समस्याएँ आदि के चित्र हैं और उनका समाधान सत्याग्रह के द्वारा दिया गया है।

'कर्मभूमि' में दलित सवालों को प्रमुखत: के साथ उठाया है। इस उपन्यास में अछूतोद्धार आन्दोलन के दो केन्द्र हैं- शहर और गॉव। नगर में इस आन्दोलन की शुरुआत मंदिर प्रवेश के प्रश्न को लेकर होती है। लेकिन धीरे-धीरे यह आर्थिक और राजनीतिक रूप धारण कर लेता है। धार्मिक समानता के प्रश्न को लेकर आरम्भ होने वाला यह लघु आन्दोलन अनुकूल परिस्थितियॉ पाकर व्यापक जन-आन्दोलन में परिवर्तित हो जाता है। यह मंदिर प्रवेश तक ही समाप्त नही हो जाता बल्कि अच्छे मकान और आवास की समस्या मुख्य हो जाती है। 'कर्मभूमि' में अछूतोद्धार का दूसरा केन्द्र गंगा के किनारे स्थित रैदास परिवारों का एक छोटा सा गॉव है। उपन्यास का नायक अमरकान्त घर छोड़ने के पश्चात् इसी गॉव में आकर रहता है। वह दलितों में शराब और मुर्दा मांस खाने की प्रथा को बद कराता है तथा शिक्षा का प्रसार करता है। लेकिन दलितों की असल समस्या आर्थिक है। प्रेमचन्द ने इस उपन्यास के माध्यम से दलितों की दरिद्रता के ऐसे चित्र खीचें हैं कि हृदय कांप उठे। प्रेमचन्द इस उपन्यास में स्पष्ट कर देते हैं कि शोषण और विषमता विशुद्ध रूप से मानव कृत है। ईश्वर या अन्य किसी दैवीय शक्ति का इसमें कोई हाथ नहीं है।

इस उपन्यास में प्रेमचन्द सामूहिक संघर्ष की ताकत को दर्शाते हैं। जनता के संघर्ष के सामने शोषकों, पूंजीपतियों तथा सरकार को झुकना पड़ता हैं इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने नारी की सक्रिय सामाजिक भूमिका को भी दर्शाया है कि नारी भी कुषलता के साथ नेतृत्व कर सकती है।

गोदान-

प्रेमचन्द का अंतिम एवं सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 1936 में हुआ।

इस उपन्यास को तत्कालीन ग्रामीण जीवन की महागाथा कहा जाता है। अगर इस उपन्यास को समग्रता में देखें तो पाते हैं कि इसमें बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक के बीच के भारतीय समाज के सजीव चित्र हैं, जिनमें ग्रामीण तथा शहरी जीवन की समस्याओं का विश्लेषण है।

इस उपन्यास का मुख्य कथा क्षेत्र भारतीय गॉव ही है। उपन्यास का नायक होरी पॉच बीघे जमीन का एक साधारण किसान है। धनिया उसकी पत्नी है एक बेटा गोबर तथा दो पुत्रियॉ सोना और रूपा हैं। कुल मिलाकर पीच आदमियों का परिवार है लेकिन मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। होरी के मन में बहुत दिनों से गाय पालने की साध है। भोला के माध्यम से उसकी यह साध पूरी होती है। गाय को देखकर सारा परिवार प्रसन्न हो जाता

है लेकिन इसके साथ ही लगान एवं ऋण की चिन्ता होरी को लगी रहती है। होरी के दो भाई शोभा और हीरा हैं जो होरी के घर गाय आने पर प्रसन्न नहीं है। शीघ्र ही जहर के कारण गाय मर जाती है। गाय के मरने पर पुलिस हीरा के घर की तलाशी लेना चाहती है। होरी यह नहीं चाहता कि उसके रहते उसके छोटे भाई की तलाशी ली जाये। वह घूस देकर दरोगा को विदा करना चाहता है। लेकिन धनिया ऐसा होने नहीं देती। इसी बीच गोबर और भोला की विधवा पुत्री झुनिया में प्रेम सम्बन्ध प्रगाढ़ हो जाते हैं और गोबर गर्भवती झुनिया को छोड़कर भाग जाता है। गॉव की पंचायत सामाजिक मर्यादा के नाम पर होरी पर जुर्माना करती है, धनिया इसका विरोध करती है लेकिन होरी कर्ज में दबे होने के बावजूद मरजाद की खातिर जुर्माना अदा करता है। होरी की हालत दिन पर दिन बदतर होती जाती है। दातादीन, झिंगुरी सिंह, पटेश्वरी और नोरवेराम आदि महाजन जोंक की तरह खून चूसते रहते हैं। शोषण और अन्याय पर आधारित इस व्यवस्था में होरी निरन्तर संघर्ष करने के बाद किसान से मजदूर बनने के लिए विवश हो गया। अन्त में करूण अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

इस मुख्य कथा के साथ-साथ 'गोदान' में एक प्रासंगिक कथा भी है जिसके माध्यम से प्रेमचन्द ने शहरी जीवन की समस्याओं, पूंजीपति वर्ग, सामन्ती तत्वों एवं मध्यवर्गीय जीवन से साक्षात्कार कराया है। यह कथा मुख्य कथा से पूर्णता समबद्ध है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने पूरी तल्लीनता के साथ यथार्थ के धरातल पर भारतीय जनजीवन का अंकन किया है।

3.4 शब्दावली

परिष्कृत	:	शुद्ध
प्लाट	:	कथानक
प्रलोभन	:	लालच
पेचीदा	:	मुश्किल
विद्यमान	:	मौजूद
पारखी	:	जानकारी रखने वाला
यंत्रणा पूर्ण	:	कष्टदायक
प्रफुल्लता	:	प्रसन्नता
विषमता	:	भेद, अन्तर
पलायन	:	भागना
गरिमापूर्ण	:	सम्मानजनक
सम्बद्ध	:	जुड़ा हुआ
महती	:	महत्वपूर्ण
कुरीतियाँ	:	बुराईयाँ
ताख	:	आलमारी
शोषित	:	सताया हुआ
लक्ष्य	:	उद्देश्य

सुदृढ़ : मजबूत

2.5 सारांश

प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। उसे विश्व उपन्यास-साहित्य में गरिमापूर्ण स्थान दिलाया। 'सेवा सदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'निर्मला, 'कर्मभूमि' एवं 'गोदान' उनकी ही नहीं हिन्दी उपन्यास की अमूल्य निधि हैं। उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता उनके उपन्यासों में कथानक से लेकर भाषा तक में दिखाई पड़ती है। उनके उपन्यासों में आम आदमी को अपनी और अपने आस पास की तस्तीर दिखाई पड़ती है। सामाजिक समस्याओं को उठाना और उनका हल देने का प्रयास करना उनके गहरे सामाजिक सरोकारों को ही इंगित करता है। वास्तव में जनजीवन से गहरा जुड़ाव ही उन्हें बेहद लोकप्रिय रचनाकार बनाता है।

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रेमचन्द की औपन्यासिक दृष्टि पर प्रकाश डालिए।
2. प्रेमचन्द की उपन्यास कला की समीक्षा कीजिए।
3. प्रेमचन्द ने नारी जीवन की त्रासदी को प्रमुखता से किन उपन्यासों में उद्घाटित किया है? स्पष्ट कीजिए।
4. 'प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के चरित्र जन-जीवन से लिये हैं।' सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
5. 'गबन' उपन्यास की विशय वस्तु पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
6. प्रेमचन्द के प्रमुख उपन्यासों के कथानकों की समीक्षा कीजिए।
7. 'प्रेमचन्द ने किसान जीवन के विविध पहलुओं का विस्तार से उद्घाटन किया है। इस कथन की व्याख्या कीजिए।
8. प्रेमचन्द के उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना को स्पष्ट कीजिए।
9. प्रेमचन्द के उपन्यासों में उनके युग का व्यापक चित्रण है। स्पष्ट कीजिए।
10. साहित्य के लक्ष्यों के संबंधों में प्रेमचन्द के विचारों का उल्लेख कीजिए।

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. राम विलास शर्मा; प्रेमचन्द और उनका युग, राज कमल प्रकाशन, दिल्ली
2. अमृतराय; प्रेमचन्द, कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
3. प्रेमचन्द; प्रेमचन्द के विचार भाग-2, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
4. इन्द्रनाथ मदान, प्रेमचन्द प्रतिभा; सरस्वती प्रेस, नई दिल्ली
5. शंभुनाथ; प्रेमचन्द का पुनर्मूल्यांकन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
6. ए. अरविंदाक्षन; प्रेमचन्द के आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
7. कुँवरपाल सिंह; हिन्दी उपन्यास, सामाजिक चेतना, पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली
8. सदानन्द शाही; दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचन्द, प्रेमचन्द साहित्य संस्थान, गोरखपुर

इकाई- 4 गोदान : कथावस्तु, चरित्र- चित्रण व शिल्प विवेचन

इकाई की रूपरेखा -

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 'गोदान' की कथावस्तु का विवेचन
4.3 'गोदान' उपन्यास के प्रमुख पात्र एवं उनका चरित्र चित्रण
4.4 'गोदान' उपन्यास का शिल्प विवेचन
4.5 शब्दावली
4.6 सारांश
4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
4.8 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

आप 'गोदान' उपन्यास का अध्ययन कर रहे हैं। इस इकाई में उक्त उपन्यास की कथावस्तु, चरित्र-चित्रण व शिल्प पर विचार किया जायेगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- 'गोदान' उपन्यास की कथावस्तु का विवेचन कर सकेंगे।
- 'गोदान' के प्रमुख पात्रों से परिचित होकर उनका चरित्र-चित्रण कर सकेंगे।
- 'गोदान' उपन्यास की शैली, भाषा एवं संवादों का विवेचन कर सकेंगे।
- 'गोदान' उपन्यास के प्रतिपाद्य को समझ सकेंगे।
- 'गोदान' उपन्यास की समीक्षा कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

'गोदान' हिन्दी उपन्यास साहित्य में मील का पत्थर है। इस उपन्यास में तत्कालीन भारतीय समाज जीवन्त हो उठा है। किसान भारतीय अर्थव्यवस्था एवं समाज का अभिन्न अंग रहा है लेकिन ब्रिटिश कालीन भारत में इसकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी। प्रेमचन्द गहन संवेदना से युक्त रचनाकार थे। उन्होंने किसान जीवन पर केन्द्रित विपुल साहित्य का सृजन किया। इस दृष्टि से 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' उल्लेखनीय औपन्यासिक कृतियॉ हैं। 'गोदान' में किसान की बद से बदतर होती स्थिति तथा इसके लिये जिम्मेदार शोषणतंत्र का यथार्थ अंकन हुआ है। 'गोदान' की कथावस्तु, पात्र एवं उनका चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक है। जिसके परिणामस्वरूप पाठक भारतीय ग्राम की वास्तविक स्थिति से सहज ही परिचित हो जाता है। आइये, 'गोदान' की कथावस्तु पर विचार करें।

4.2 'गोदान' की कथावस्तु का विवेचन

कथावस्तु उपन्यास के तत्वों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है यह उपन्यास का प्राण होती है। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में दो समानान्तर कथावस्तुओं की सुघड़ योजना की है। इसमें अधिकारिक रूप में गॉवों की कथा और प्रासंगिक रूप में शहर की क्या है। कुछ आलोचक यह कहते है कि यह दुहरी समानान्तर वस्तु योजना आपस में कोई तालमेल नहीं रखती, यह राय उचित नहीं है। वास्तव में दोनों कथायें साथ-साथ चलती है दोनों परस्पर सम्बद्ध है। प्रेमचन्द ने गॉव के दयनीय जीवन और शहर के चमक-दमक वाले जीवन-दोनों को चित्रित करके कथावस्तु को विस्तृत आधार प्रदान किया है। गॉव और शहर की घटनायें परस्पर इतनी सम्बद्ध हैं कि उपन्यास का प्रतिपाद्य भली-भांति स्पष्ट हो जाता है और रोचकता विद्यमान रहती है।

'गोदान' कृषक जीवन का महाकाव्य माना जाता है। इस उपन्यास की प्रधान कथा में ग्रामीण जीवन का व्यापक एवं यथार्थ अंकन हुआ है। इस उपन्यास का नायक होरी बेलारी गॉव का रहने वाला एक किसान है उसके परिवार में उसकी पत्नी धनिया, बेटा गोबर और सोना एवं रूपा-दो पुत्रियॉ हैं। शोभा और हीरा उसके दो भाई है। होरी कठिन परिश्रम से अपनी जीविका चलाता है। भाईयों में बॅटवारा हो जाने के पश्चात् आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है। होरी सेमरी गॉव में रहने वाले जमींदार राय साहब अमरपाल सिंह को प्राय: सलाम करने जाता है। एक दिन जमींदार के यहॉ जाते समय भोला की गाय देखकर उसके हृदय में गाय की लालसा उत्पन्न होती है। वह भोला को उसका दूसरा विवाह करा देने और मुफ्त भूसा देने का प्रलोभन देता है। वह गोबर को साथ लेकर भोला के घर भूसा डाल भी आता है। इसी अवसर पर गोबर तथा भोला की विधवा लड़की दूरियाँ एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो जाते हैं। शाम को गोबर गाय ले आता है। गॉव के सभी लोग गाय देखने आये लेकिन हीरा और उसकी पत्नी पुनिया नहीं आये। एक दिन मौका पाकर हीरा गाय को जहर दे देता है और घर छोडकर भाग जाता है। होरी की पत्नी धनिया इस घटना पर तूफान मचा देती है। गॉव के चौकीदार की सूचना पर थानेदार हीरा के घर की तलाशी लेना चाहता है होरी कुल की मर्यादा को बचाये रखने के लिए इस बात का विरोध करता है। तलाशी रोकने के लिए वह कर्ज लेकर थानेदार को रिश्वत देने को भी तैयार हो जाता है। लेकिन धनिया के आक्रोश और उग्र रूप धारण कर लेने से थानेदार को विवश होकर खाली हाथ वापस लौट जाना पड़ता है। होरी अपनी मर्यादा को बचाये रखने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करता है। इसके परिणामस्वरूप उसकी आर्थिक दशा निरन्तर बिगड़ती गयी। गोबर और झुनियॉ के प्रेम प्रसंग को लेकर पंचायत ने उस पर जो जुर्माना किया उसे भी उसने अपना घर गिरवी रखकर अदा किया। गोबर घर छोडकर लखनऊ शहर में मजदूरी करने लगता है और इधर होरी महाजनों के शिकंजे में पूरी तौर से फॅस गया लेकिन इसके बावजूद वह झुनिया को अपने घर में आश्रय देता है और अपने भाई हीरा की पत्नी पुनिया की मदद भी करता रहता है। भोला भी उससे अपने रूपयों के लिए बार-बार तकाजा करता है और एक दिन उसके बैल खोल ले जाता है। मजबूर होकर होरी पं. दातादीन के साझे में आधी बॅटाई पर खेती करता है। वह गॉव

के महाजनों के शोषण के चलते दातादीन का नौकर हो जाता है साथ में धनिया, सोना और रूपा भी मजदूरी करती हैं। गोबर इसी बीच गॉव वापस आता है और गॉव में अपना खूब रौब जमाता है वह चाहता है कि होरी आपना सीधापन छोड़ दे लेकिन होरी उसके विचारों से सहमत नहीं होता। अंत में गोबर झुनियॉ और बच्चे को लेकर फिर लखनऊ वापस चला जाता है। होरी कर्ज लेकर सोना का विवाह करता है। इसके साथ ही गॉव की दलित लड़की सिलिया को भी अपने घर में आश्रय देता है लेकिन वह कर्ज में बुरी तरह डूब जाता है। जीवन के संघर्ष में वह चूर-चूर हो जाता है। मजदूरी करते हुए उसे एक दिन लू लग जाती है और आखिरकार उसकी मृत्यु हो जाती है। वास्तव में 'गोदान' में किसान जीवन की करूण गाथा है।

इस उपन्यास की प्रासंगिक कथा नगरीय जीवन से सम्बन्धित है इस प्रासंगिक कथा के प्रमुख पात्र राय साहब अमरपाल सिंह, 'बिजली' पत्र के संपादक पं. ओंकार नाथ, बीमा कम्पनी के दलाल मि. तनखा, प्रो0 मेहता, लेडी डॉक्टर मालती, मिल मालिक खन्ना उनकी पत्नी गोविन्दी, मिर्जा जी आदि हैं। रामलीला में धनुष यज्ञ के अवसर पर सभी एक दूसरे से मिलते हैं और अपने-अपने वर्ग के अनुसार सामाजिक-राजनीतिक विचार प्रकट करते हैं। मिर्जा जी के कारण इस मित्र मण्डली का मनोरंजन होता रहता है। अभिनय, शिकार, कबड्डी आदि से इन लोगों का मनबहलाव होता है। मालती और मेहता नगरीय जीवन से सम्बन्धित पात्र हैं। प्रारम्भ में उन दोनों के विचारों में बहुत साम्य नहीं है। मालती बाहर से तितली, भीतर से मधुमक्खी है। आरम्भ में मेहता अपने भावुकता पूर्ण आदर्श के कारण उसे ठीक-ठाक नहीं समझ पाता। खन्ना रसिक व्यक्ति है। उसके अपनी पत्नी गोविन्दी से सम्बन्ध ठीक नहीं है और वह रूपये के बल पर मालती के हृदय पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करता है किन्तु असफल रहता है। वास्तव में वह पूरा व्यवसायी और पूंजीपति है। स्वार्थ साधना उसके जीवन का लक्ष्य है। मजदूरों की हड़ताल का सामना करने के बाद जब उसकी मिल जल जाती है तो उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है और उसे अपने पिछले जीवन पर पश्चाताप होता है। मेहता और मालती धीरे-धीरे एक दूसरे के निकट आ जाते हैं लेकिन विवाह बधन में न बंधकर मित्र भावना से समाज सेवा में लिप्त हो जाते हैं।

उपन्यास का अंत अत्यन्त मार्मिक है। यह विडम्बना ही है कि दिन-रात परिश्रम करने वाला किसान अभाव की जिन्दगी ही जीता और मरता है। होरी जीवन भर संघर्ष करने के बाद भी गाय की लालसा पाले ही मरता है। वह धनिया से कहता है - "मेरा कहा सुना माफ करना धनिया! अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गयी अब तो यहॉ के रूपये क्रिया-करम में जायेंगे।" आखिरकार गौ पालन की प्रबल इच्छा रखने वाले होरी का गो दान होता है।

'गोदान' में कई घटनाओं का भी चित्रण है यह उपन्यास के प्रतिपाद्य को स्पष्ट करने में सहायक हैं। इसके साथ-साथ ये बदलते हुए परिवेश की ओर संकेत करती हैं। 'गोदान' में सामाजिक मर्यादा के अतिक्रमण की दो घटनाऐ होती हैं। एक है, गोबर-झुनियॉ काण्ड और दूसरी मातादीन-सिलिया काण्ड। शहर में तो ऐसी घटनाओं की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। लेकिन हमारे गॉव हैं जो अपने पुराने आचार धर्म को जिन्दा रखे हुए हैं।

लेकिन ये दोनों घटनाएँ बताती हैं कि हमारी जर्जर सामाजिक मर्यादाएँ गॉवो में भी टूटने लगी हैं।

गॉवों में अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन नहीं हुआ है। गोबर ने अपनी जाति से भिन्न जाति की झुनिया को अपनी पत्नी बना लिया है और होरी ने भी उसे यह कहते हुए स्वीकार किया है, "डरो मत बेटी, डरो मत, तेरा घर है, तेरा द्वार है, तेरे हम हैं, आराम से रह जैसी तू भोला की बेटी है वैसी ही मेरी बेटी है।" लेकिन हमारा समाज, होरी की बिरादरी इतनी उदार कहॉ। धर्म और समाज के तथाकथित ठेकेदार होरी पर डांड लगा देते हैं और होरी भी इस अन्याय को समाज और बिरादरी के खातिर चुपचाप स्वीकार कर लेता है।

पं. दातादीन का पुत्र मातादीन सिलिया से प्रेम करता है, जो निम्न जाति से है। दलितों का इस काण्ड के विरूद्ध विद्रोह होता है और वे मातादीन के मुँह में मॉस की हड्डी लगा कर उसे सिलिया की जाति दे देने का उत्पात करते हैं। मातादीन का धर्म इसी खानपान, छूत-अछूत के विचार पर टिका हुआ है। इस घटना से उसके धर्म की जड़ कट गई। उसे लगा कि उस हड्डी के टुकड़े ने उसके मुँह को नहीं उसकी आत्मा को भी अपवित्र कर दिया। मातादीन ने धर्म के जिस रूप को जाना-समझा है वह चूल्हे चौके में प्रकट होता है। समाज ने धर्म की मर्यादा की रक्षा के लिए व्यवस्था कर रखी है जिसके अनुसार गोबर खिलाकर, गंगाजल पिलाकर प्रायश्चित करके मातादीन की गई हुई जाति उसे फिर वापस दी जा सकती है। वह आज भी तिलक लगाता है, पोथी-पत्रा वांचता है, कथा भागवत कहता है, धर्म संस्कार कराता है। नित्य स्नान पूजा करके अपने पापों का प्रायश्चित कर लेता है।

भोला की बेटी को घर में आश्रय देने के अपराध में होरी का हुक्का पानी बंद हो जाता है। लेकिन मातादीन का काम गंगा-स्नान करके ही चल जाता है। यह इसलिए ही तो कि पं. मातादीन सम्पन्न है और होरी गरीब।

समाज और धर्म के पाखण्ड के प्रति विद्रोह का भाव गॉवों में भी पनपने लगा था। सिलिया अपने पेट में उसका गर्भ धारण किए मजूरी करती है। यह तो होरी और धनिया की दया समझिए की उन्होंने उसे आश्रय दिया अन्यथा वह मर गई होती। अन्ततः मातादीन समझ जाता है कि समाज के नाते आदमी का भी कुछ धर्म है। धर्म का पालन करने से समाज आदर करता है, मगर मनुष्य धरम का पालन करने से ही ईश्वर प्रसन्न होता है। अन्ततः मातादीन समाज की निर्जीव मान्यताओं को तोड़कर सिलिया को अपना लेता है। गोदान में प्रेमचन्द जर्जर और पाखण्डी सामाजिक धर्म का विरोध करते हैं तथा मानवीय धर्म की स्थापना करते हैं। वास्तव में धर्म का यही रूप मनुष्य एवं समाज के विकास में उपयोगी है।

'गोदान' की कथावस्तु में नारी प्रश्नों को भी उठाया गया है। गोदान के युग का शिक्षित नारी समाज यह मानने को तैयार नहीं था कि संसार में स्त्रियों का क्षेत्र पुरूषों से बिल्कुल भिन्न है। इस युग की नारी चूल्हें-चौके की दुनिया से बाहर आकर पुरूषों के समान अधिकार की मांग करने लगती है। वीमेन्स लीग की ओर से डॉ. मेहता का भाषण आयोजित हुआ है। मेहता का कहना है कि "हंस के पास उतनी तेज चोंच नहीं है, उतने

चंगुल नहीं है, उतनी तेज ऑख नहीं हैं, उतने तेज पंख नहीं हैं और उतनी तेज रक्त की प्यास नहीं है। उन अस्त्रों का संचय करने में उसे सदियॉ लग जायेंगी फिर भी वह बाज बन सकेगा या नहीं, इसमें संदेह है मगर बाज बने या बने वह हंस न रहेगा-वह हंस जो मोती चुगता है।" अस्तु बाज को चिड़ियों का शिकार करते देख हंस को यह -शोभा नहीं देगा कि वह मानसरोवर की आनन्दमयी शांति को छोडकर चिड़ियों का शिकार करने लगे। मेहता कहता है कि स्त्री को शिक्षा तो चाहिए लेकिन वह शिक्षा नहीं जिसके कारण पुरूष ने संसार को हिंसा का क्षेत्र बना रखा है। मेहता ने और भी स्पष्ट होकर कहा है कि हमारी बहनें पश्चिम का आदर्श ले रही हैं जहॉ नारी ने अपना पद खो दिया है और स्वामिनी से गिर कर विलास की वस्तु बन गयी है। पश्चिम की स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती है, इसलिए कि वह अधिक से अधिक विलास कर सके। मेहता के अनुसार हमारे देश की माताओं का आदर्श कभी विलास नहीं रहा उन्होंने तो केवल सेवा के अधिकार से गृहस्थी का संचालन किया है। भला ऐसे भाषण से सरोज जैसी महिलाओं को जो पुरूषों के साथ समानाधिकार खोजती. थी, कैसे संतोष होता। इसी से तो उसने उत्तेजित होकर कहा है - "हम पुरूषों से सलाह नहीं मांगती। मगर वह अपने बारे में स्वतंत्र है तो स्त्रियॉ भी अपने विषय में स्वतंत्र है।" वह पुरूषों के समान वोट के अधिकार की मांग करती है। इधर मेहता है जो वोट को नये युग का मायाजाल, मरीचिका, कलंक और धोखा समझता है। वह कहता है कि वोटों से मानव जाति का उद्धार नहीं होगा। दफ्तरों और अदालतों में पुरूषों की तरह कलम चलाने से नारियों का उद्धार नहीं हो सकता।" सरोज कहती हे- "युवतियां अब विवाह को पेशा नहीं बनाना चाहती। वह अब केवल प्रेम के आधार पर विवाह करेंगी।" लेकिन, मेहता उसके धोखे को प्रत्यक्ष करते हुए कहता है- "जिसे तुम प्रेम कहती हो वह धोखा है- उद्दीप्त लालसा का विकृत रूप।" मेहता के अनुसार सच्चा आनन्द सच्ची शांति केवल सेवा में है वह कहता है- "सेवा ही वह सीमेन्ट है जो दम्पत्ति को जीवन पर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है जिस पर बड़े-बड़े आघातों का भी कोई असर नहीं होता। जहॉ सेवा का अभाव है वहीं विवाह विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है।"

'गोदान' में एक पात्र सरोज है जो नारी-स्वातंत्रय आन्दोलन का पक्ष लेती है स्वयं जागरित नारियों का प्रतीक है और दूसरी ओर मेहता है जो हृदय से यह तो चाहता है कि भारत की नारियों का उद्धार हो किन्तु यह नहीं चाहता कि भारतीय नारी समाज पश्चिम का अंधानुकरण करे।

'गोदान' की कथावस्तु भारतीय समाज के अनेक प्रश्नों को अपने अंदर समाहित किये हुए है। इनमें से बहुत से सवालों के जवाब हमें आज भी खोजने है।

4.3 'गोदान' उपन्यास के प्रमुख पात्र एवं उनका चरित्र चित्रण

चरित्र चित्रण उपन्यास का प्रमुख अंग है। प्रेमचन्द के उपन्यासों के चरित्र जन-जीवन से आये हैं। 'गोदान' में भी पात्रो का विकास बहुत ही स्वभाविक और मनोवैज्ञानिक है। इस उपन्यास के प्रधान पात्र व्यक्ति नहीं है बल्कि अपने वर्ग का प्रतीक है। इस उपन्यास के पात्र ग्रामीण एवं शहरी - दोनों क्षेत्रों से लिए गये हैं। ये पात्र अपनी समस्त मानवीय

सबलताओं और दुर्बलताओं के साथ उपन्यास में मौजूद हैं। होरी, धनिया, भोला, गोबर, सोना, रूपा, सिलिया, झुनिया, झिंगुरीसिंह, दातादीन, मातादीन ग्रामीण परिवेश से सम्बद्ध हैं तो मेहता, मालती, ओंकारनाथ, मिर्जा, खन्ना शहरी जीवन से जुड़े हुए हैं और राय अमरपाल सिंह एक सेतु की तरह हैं जो गॉव और शहर दोनों से जुड़े हुए हैं। इस उपन्यास के पात्रों में शोषक, शोषित, शोषण में सहायक तथा शोषण के विरोधी मौजूद हैं। इसी तरह इस उपन्यास में उच्च वर्ग, मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग के पात्र दिखाई पड़ते हैं। होरी इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है। वह छोटे किसान का प्रतिनिधि है। उसके माध्यम से छोटे किसान के दुख-सुख, आशा-आकांक्षा, सफलता-असफलता की मार्मिक झांकी प्रस्तुत की गई है। होरी भारतीय किसान का जीता, जागता चित्र है। उसमें गुण भी हैं, दुर्गुण भी। होरी की दुर्बलताएँ भारतीय किसान की सामान्य चरित्रगत दुर्बलताएँ है। वह साधारण जीवन जीता है। वह राज सुख नहीं चाहता, भोग-विलास उसका ध्येय नहीं है, बल्कि मोटा खाना और कपड़ा तथा मरजाद के साथ जीना चाहता है वह नम्र स्वभाव का तथा संवेदनशील है। उसके स्वभाव में आस्था, निष्ठा, श्रद्धा, सहिष्णुता, परोपकारिता, जिंदादिली और भक्तिभावना मौजूद है। वह अपने भाईयों से प्रेम करता हैं। उनके प्रति अपने कर्त्तव्य-बोध का अहसास है। उनकी मान-मर्यादा समझता है। उसे ईश्वर से भय है, किन्तु सबसे बडा भय बिरादरी का है, जो अन्ततोगत्वा उसे तोड़ डालती है।। रीति-रिवाज, आचार-विचार, रूढि-परम्परा सबको स्वीकार कर लेता है। किसी के प्रति भी रंचमात्र विद्रोह भाव नहीं है। वह सब कुछ स्वीकार कर लेता है, परिणामस्वरूप आर्थिक रूप से जर्जर हो जाता है। किसान से मजदूर बन जाता है। उसका शरीर साथ नहीं दे पाता और अन्ततः मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यह वस्तुतः उसकी ही करूण कहानी नहीं है, वरन् छोटे भारतीय किसान की करूण दास्तान है।

प्रेमचन्द ने 'गोदान' में नारी की संघर्ष क्षमता को जीवन्त किया है। उसका यह संघर्ष केवल स्वयं के लिए नहीं बल्कि व्यवस्था की विद्रूपता के प्रति है। धनिया के चरित्र को एक सशक्त नारी चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। आर्थिक शोषण और जर्जर सामाजिक परम्पराओं के विरूद्ध वह आवाज उठाती है। जो बात उसके हृदय को उचित प्रतीत होती है, उसके लिए परम्परागत सामाजिक बन्धनों की परवाह नहीं करती। वह अपने पुत्र गोबर के किये हुए परम्पराविहीन प्रेम को अपने साहस से पाप बनने से बचा लेती है। गोबर विधवा झुनिया को गर्भवती बना देता है और भय से शहर की ओर पलायन कर जाता है। धनिया तब समाज के भय से झुनिया को घर से भगाती नहीं, बल्कि उसे स्वीकार करके अपने पुत्र की कायरता को धिक्कारती हैं। वह समाज और धर्म के ठेकेदार पं. दातादीन से कहती है - "हमको कुल परतिसठा इतनी प्यारी नहीं महाराज, कि उसके पीछे एक की हत्या कर डालते। ब्याहता न सही; पर उसकी बाँह तो पकड़ी है मेरे बेटे ने ही। किस मुँह से निकाल देती? वही काम बड़े-बड़े करते है, मुदा उनसे कोई नही बोलता, उन्हें कलंक ही नही लगता। वही काम छोटे आदमी करते है, तो उनकी मरजाद बिगड़ जाती है। नाक कट जाती है। बड़े को अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी होगी, हमे तो अपनी नाक इतनी प्यारी नहीं।"

गोदान' में झिंगुरी सिंह, पं. दातादीन, लाला पटेश्वरी जैसे 'विलेज बैरिस्टर' हैं, जो किसानों की दशा को और दारूण बना देते हैं। वे एक तरफ किसानों को महाजनी चंगुल में फंसाते हैं और दूसरी ओर आचार-विचार के ठेकेदार बन जाते हैं। दातादीन गॉव में धर्म की ध्वजा लेकर चलता है। वह बड़ा ही धूर्त है। उसने जमींदार को कभी लगान नहीं दिया। जब कभी जब्ती-कुर्की का सवाल आया तो वह अपने ब्राह्मणत्व की धौंस बताकर कुंए में डूबने जाता है और जब्ती व्यर्थ हो जाती है। उसका चरित्र विश्लेषण करते हुए प्रेमचन्द ने कहा है - "वह चोरी तो न करते थे, उसमें जान-जोखिम था, पर चोरी के माल में हिस्सा बंटाने अवश्य पहुँच जाते थे। कहीं पीठ में धूल न लगने देते थे।" पं. दातादीन को लोकरीति की मर्यादा का दूसरों से पालन कराने की बड़ी फिक्र रहती थी। कहीं किसी से लोक मर्यादा के विरूद्ध कोई आचरण हो गया तो बस पं. दातादीन दण्ड व्यवस्था करने में मुस्तैद हो जाते। गॉव में जिन दो चार पैसे वाले लोगों ने खेत क्यार वाले छोटे-मोटे किसानों को कर्जदार बनाकर उनको भूमि वंचित कर देने का षडयंत्र रचा है उनमें यह पंडित दातादीन भी है। बेलारी गॉव में एक दूसरा धार्मिक व्यक्ति भी है - लाला पटेश्वरी लाल। यह लाला पटेश्वरी हर पूर्णिमा को सत्यनारायण की कथा सुनता है।. लेकिन यही आसामियों को आपस में लड़वाता भी है। क्योंकि उनके लड़ने से ही उसका उल्लू सीधा होता है। गरीबों को दस-दस, पाँच-पॉच रूपये कर्ज देकर इसने हजारों की सम्पत्ति खड़ी कर ली है। सारे गॉव में इसके पुण्यात्मा होने का शोर है और सारा गॉव इससे कांपता भी है।

गोबर में शोषण के विरूद्ध आक्रोश है, लेकिन परिस्थिति के सम्मुख विवश है। मेहता के माध्यम से प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक सवालों को उठाया है। ये सवाल आज भी सार्थक है। मेहता मानवीय संवेदना से युक्त चरित्र है, उसकी सहानुभूति जनसामान्य के प्रति है। जनजीवन में ही उसे वास्तविक जीवन एवं सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। नारी सम्बन्धी उसके दृष्टिकोण को लेकर विवाद हो सकता है लेकिन हमें यह भी देखना चाहिए कि नारी के सम्बन्ध में उसके दृष्टिकोण में बदलाव अवश्य आया है, लेकिन हमारा बुद्धिजीवी वर्ग इक्कसवीं सदी में भी स्त्री को व्यवहार में अपने समकक्ष अथवा अपने से ऊपर के पद पर कार्य करते देखना पसन्द नहीं करता है। उसकों को तो 'ओंख में पानी लिए हुए अबला ही पसन्द है। वह उसे देवी' ही बने रहने देना चाहता है, मनुष्य का दर्जा देने में संकोच करता है। मेहता एक ऐसे चरित्र के रूप में अभरकर आता है, जिसकी कथनी-करनी में अन्तर नहीं है। वह सस्ती लोकप्रियता से दूर रहता है।

'गोदान' की मालती एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व की धनी है, जो अब तक की भारतीय समाज की परिकल्पना से बिल्कुल हटकर है। अब तक समाज में किसी नारी की प्रतिष्ठा बिना पति के सम्भव नहीं थी। मालती एक ऐसे नारी चरित्र के रूप में उभरकर आती है, जो बिना पति और पिता के संरक्षण के स्वयं को समाज में स्थापित करती है और अपनी इच्छानुसार जीवन जीती है। आरम्भ में वह अराजक और उच्छृंखल दिखाई पड़ती है, लेकिन बाद में वह समाज के बदलाव में प्रोफेसर मेहता के साथ सक्रिय भुमिका निभाती है। मालती उस नई नारी का प्रतीक है जो परम्परागत सीमाओं को तोड़ती है।

राय अमरपाल सिंह इस उपन्यास का एक महत्वपूर्ण चरित्र है। वह पतनशील जमींदारी सभ्यता का प्रतिनिधित्व करता है। वह स्वयं बड़े महाजनों का कर्जदार है। वह कहता है - "किसी को भी दूसरों के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। समाज की ऐसी व्यवस्था, जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें, कभी सुखद नहीं हो सकती।" लेकिन गॉव में वे स्वयं उपजीवी बनकर जीवन-यापन करता है। उसके सिद्धान्त और व्यवहार में व्यापक अन्तर है। उसे मीठी बोली बोलकर शोषण करने में महारथ है। वह किसानों का शोषण करने में अन्य जमींदारों से कम नहीं है। बेगारों के काम करने से इंकार करने पर वह कहता है - "चलो, मैं इन दुष्टों को ठीक करता हू। जब कभी खाने को नहीं दिया, तो आज यह नयी बाज क्यों? एक आने रोज के हिसाब से मजदूरी मिलेगी जो हमेशा मिलती रही है, और इस मजदूरी पर उन्हें काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े।"

'गोदान' में सभी पात्रों का चित्रण वास्तविकता के धरातल पर हुआ है। उपन्यास के कथानक से जुड़कर उसे महाकाव्यत्व स्वरूप प्रदान करते हैं।

4.4 गोदान उपन्यास का शिल्प विवेचन

प्रेमचन्द जनजीवन के इतने निकट थे कि उनकी कला मे उसका प्रभाव साफ दिखाई पड़ता है। उनकी रचनाओं का शिल्प अत्यन्त सरल एवं सुबोध है। वास्तव में उनकी रचनाओं का शिल्पं कथावस्तु को वहन करने का साधन है, साध्य नहीं। उनकी रचनाओं में शिल्पगत चमत्कार नहीं मिलता। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि - "कथा को बीच में शुरू करना, या इस प्रकार शुरू करना कि जिसमें ड्रामा का चमत्कार पैदा हो जाय, मेरे लिए मुश्किल है।"

'गोदान' प्रेमचन्द की ही नहीं बल्कि विश्व उपन्यास साहित्य की महत्वपूर्ण कृति है। इसमें इसके कथ्य के साथ-साथ इसके शिल्प का भी योगदान है। गोदान की भाषा इतनी स्वाभाविक है कि पूरा परिवेश पाठक के सम्मुख सजीव हो जाता है। 'गोदान' में होरी की निर्धनता का एक शब्द चित्र दृष्टव्य है - "बेवाय फटे पैरों को पेट में डालकर, हाथ को जॉघों के बीच में दबाकर और कम्बल में मुँह छिपाकर अपनी गर्म सॉसों से अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था। लेकिन तार-तार कम्बल फटी हुई मिर्जई और शीत के झोंकों से गिली पुआल इतने शत्रुओं के सम्मुख आने का नींद को साहस न था।" 'गोदान' की भाषा में समाहार एवं सामाजिक शक्ति भी पर्याप्त है। उपन्यास में कई स्थलों पर बहुत थोड़े शब्दों में पात्रों के मनोभाव एवं चरित्र प्रत्यक्ष हो उठे हैं। मातादीन और सिलिया प्रकरण में एक उदाहरण देखिये जिसमें विवशता, समर्पण एवं स्वार्थपरकता स्पष्ट उजागर हो रही है - "सिलिया ने उस पक्षी की भांति जिसके मालिक ने पर काट कर पिजरे से निकाल दिया हो, मातादीन की ओर देखा।" प्रेमचन्द की अभिव्यक्ति शैली इतनी सशक्त है कि पात्रों का व्यक्तित्व स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है। मालती के व्यक्तित्व चित्रण के समय अपनायी गयी भाषा का एक नमूना देखिए - "मालती बाहर से तितली, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हॅसी ही हॅसी नहीं है, केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है और जिए भी तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हँसती है,

इसलिये कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना इसलिये नहीं है कि वह चहकने और चमकने को ही जीवन समझती है, या उसने निजत्व अपनी ऑखों से इतना बढ़ा लिया है कि जो कुछ करे अपने लिये करे। नहीं, वह इसलिये चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है।" 'गोदान में पात्रों का चरित्र चित्रण सरल एवं स्पष्ट भाषा में हुआ है। मिर्जा खुर्शेद का चारित्रिक विश्लेषण दृष्टव्य है - "मिर्जा खुर्शेद के लिये भूत और भविष्य सादे कागज की भॉति था। वह वर्तमान में रहते थे, न भूत का पछतावा था, न भविष्य की चिन्ता। जो कुछ सामने आ जाता था, उसी में जी जान से लग जाते थे।" 'गोदाम' उपन्यास के ग्रामीण एवं शहरी पात्रों की भाषा में भी एक स्पष्ट एवं स्वाभाविक अन्तर विद्यमान है। जहॉ गॉव के पात्रों की भाषा में स्थानीय शब्दों का प्रयोग है वहीं शहरी पात्रों की भाषा में अंग्रेजी के शब्दों का व्यवहार हुआ है। स्थानीय शब्दों के कुछ उदाहरण - बरखा, सूभीते, गगरा आदि। अंग्रेजी के शब्दों के कुछ प्रयोग - गवर्नर, होममिनिस्टर हिज मैजिस्टी आदि। यही नहीं स्वाभविक भावाभिव्यक्ति के लिये प्रचलित उर्दू अरबी और फारसी का भी प्रयोग हुआ है जैसे - गुलजार, सुर्खरू, बेइंसाफी, बेअदबी आदि। इसी तरह दुहरे या समानार्थक शब्दों का प्रयोग भाषा को जीवन्त बनाता है जैसे - दीव-घात, दान-दहेज, ठीक-ठाक, नेमी-धर्मी, बरतन-भॉडे आदि। मुहावरे 'गोदान की भाषा को सजीव बनाते है। उपन्यास में रोजमर्रा के मुहावरों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है जैसे - चोटी का पसीना, दाने-दाने को मुहताज होना, मुँह में दही जमना, आग लगाना, पाँव सहलाना आदि। मुहावरों से युक्त भाषा का एक नमूना देखिये - " तू जो बात नहीं समझती, उसमें टॉग क्यों अडाती है भाई! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है, नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गये। गॉव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आयी, किस पर कुड़की नहीं आयी। जब दूसरे के पॉवों तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पॉवों को सहलाने में ही कुशल है।" 'गोदान' की भाषा में व्यंग्य का भी पुट है। दातादीन और उसके बेटे मातादीन की स्थितियों का अंकन व्यंग्यात्मक भाषा शैली में अत्यन्त सटीक रूप में हुआ है - "दातादीन अपनी जवानी में स्वयं बड़े रसिया रह चुके थे, लेकिन अपने नेक धर्म से कभी नहीं चूके। मातादीन भी सुयोग्य पुत्र की भॉति उन्हीं के पद चिन्हों पर चल रहा था। धर्म का मूल तत्व है पूजा-पाठ, कथा-व्रत और चौका-चूल्हा। जब पिता-पुत्र दोनों ही मूल तत्व को पकड़े हुए हैं, तो किसकी मजाल है कि उन्हें पथ-भ्रष्ट कह सके।" 'गोदान' की भाषा में गम्भीरता का दिग्दर्शन भी होता है- "वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपनी माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है।" इसके साथ ही रोचकता से भरपूर भी है - "तुम इन बदमाशों से हमारा माल दिलवाएँ, नई अम तुमको उठा ले जायेगा और अपनी कोठी में जश्न मनायेगा। तुम्हारा हुस्न पर आशिक हो गया। या तो अम को एक हजार अबी-अबी दे या तुमको हमारे साथ चलना पड़ेगा। तुमको अम नहीं छोड़ेगा। अम तुम्हारा आशिक हो गया है। अमारा दिल और जिगर कटा जाता है। अमारा इस जगह पचीस जवान है। हम अपने कबीले के खान हैं।"

'गोदान' के संवाद सरल एवं स्वाभाविक हैं। होरी और धनिया के बीच हुए वार्तालाप का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

"धनिया ने आकर द्वार पर आकर हॉक लगायी - तुम वही खड़े-खड़े क्या तमाशा देख रहे हो? कोई तुम्हारी सुनता भी है कि यों ही शिक्षा दे रहे हो। उस दिन इसी बहू ने तुम्हें घूँघट की आड़ में डाढ़ीजार कहा था, भूल गये। बहुरिया होकर पराये मरदों से लड़ेगी, तो डॉटी न जायेगी।

होरी द्वार पर आकर नटखटपन के साथ बोला - और जो मैं इसी तरह तुझे मारूँ?

'क्या कभी मारा नहीं जो मारने की साध बनी हुई है?'

'इतना बेदर्दी से मारता, तो तू घर छोड़कर भाग जाती! पुनिया बड़ी गमगोर है।'

'ओहो! ऐसे ही तो बड़े दरद वाले हो। अभी तक मार का दाग बना हुआ है। हीरा मारता है तो दुलारता भी है। तुमने खाली मारना सीखा, दुलार करना सीखा ही नहीं। मैं ही ऐसी हूँ कि तुम्हारे साथ निबाह हुआ।

'अच्छा रहने दे, बहुत अपना बखान न कर! तू ही रूठ-रूठकर नैहर भागती थी। तब महीनों खुशामद करता था, तब जाकर आती थी!'

'जब अपनी गरज सताती थी, तब मनाने जाते थे लाला! मेरे दुलार से नहीं जाते थे।'

'इसी से तो मैं सबसे तेरा बखान करता हूँ।"

'गोदान' के शिल्प में कृत्रिमता नहीं है बल्कि जीवन से जुड़ा हुआ है। इसका शिल्प भारतीय समाज और उसकी संस्कृति को अभिव्यक्त करने में पूरी तरह से सफल रहा है।

4.5 शब्दावली

सम्बद्ध	–	जुड़ा हुआ।
प्रलोभन	–	लालच
आश्रय	–	सहारा
लालसा	–	इच्छा
डांड	–	जुर्माना
संचय	–	एकत्रित करना
अन्ततोगत्वा	–	अन्ततः, आखिरकार
आक्रोश	–	गुस्सा
उच्छृंखल	–	स्वेच्छाचारी, बंधन न मानने वाला
मरीचिका	–	मृगतृष्णा
उद्दीप्त	–	उत्तेजित किया हुआ।
विकृत	–	बिगड़ा हुआ।
गमगोर	–	सहनशील
कृत्रिमता	–	बनावटीपन
बखान	–	गुणगान

4.6 सारांश

'गोदान' उपन्यास साहित्य की श्रेष्ठ कृतियों में से एक है। इसकी कथावस्तु विस्तृत होते हुए भी अत्यन्त सुगठित है। इसके पात्र एवं उनके चरित्र स्वाभाविक ढंग से विकसित हुए है। इसके परिणामस्वरूप वे कथा के अभिन्न अंग हो गये हैं। इसके अतिरिक्त 'गोदान' के पात्रों की एक विशेषता यह भी है कि वे अपने -अपने वर्गो का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपन्यास सशक्त कथावस्तु एवं सफल चरित्र योजना के फलस्वरूप जहाँ एक ओर किसान जीवन की त्रासदी और शोषण का सूक्ष्म अंकन करता है वहीं भारतीय जनजीवन की वास्तविक तस्वीर से साक्षात्कार कराता है। शिल्प की दृष्टि से भी यह उपन्यास बेजोड़ है। इस उपन्यास में ऐसी भाषा प्रयुकत हुई है जो हमें अपने जीवन की भाषा लगती है। वास्तव में 'गोदान' भाषा हिन्दी गद्य का उत्कृष्ट नमूना है।

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 गोदान' उपन्यास की कथावस्तु का विवेचन कीजिए।

2 " 'गोदान' उपन्यास में किसान जीवन की त्रासदी का मार्मिक अंकन है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

3 " 'गोदान' उपन्यास के प्रमुख चरित्र अपने वर्ग के प्रतीक हैं।" इस कथन का विवेचन कीजिए।

4 'गोदान' उपन्यास की चरित्र योजना की समीक्षा कीजिए।

5 होरी एवं धनिया के चरित्रों का विश्लेषण कीजिए।

6 मेहता और मालती के चरित्रों का विवेचन कीजिए।

7 'गोदान' उपन्यास की शिल्पगत विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए।

8 कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से गोदान उपन्यास का मूल्यांकन कीजिए।

4.8 संदर्भ गन्थ

1. डॉ. राम विलास शर्मा; प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
2. अमृतराय; प्रेमचन्द : कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
3. इन्द्रनाथ मदान; प्रेमचन्द प्रतिभा, सरस्वती प्रेस, नई दिल्ली
4. ए. अरविंदाक्षन (संपा.); प्रेमचन्द के आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
5. शंभुनाथ; प्रेमचन्द का पुनर्मूल्याकन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली.
6. डॉ. रामलखन शुक्लु; हिन्दी उपन्यास कला, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली
7. नरेन्द्र मोहन (संपा.); आधुनिक हिन्दी उपन्यास, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि.,दिल्ली

इकाई- 5: गोदान का प्रतिपाद्य

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 गोदान का प्रतिपाद्य
5.3 'गोदान' की समस्याएँ
5.4 सारांश
5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न
5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- किसानों के जीवन, उनकी परम्पराओं, अभावों के माध्यम से भारतीय गाँवों का सजीव चित्र खींच सकेंगे।
- ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों के साथ-साथ नगरों में पनपती पूँजीवादी संस्कृति को अभिव्यक्त कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

गोदान की कथा उत्तर प्रदेश के एक गाँव के किसान होरी पर केन्द्रित है। वैसे यह किसान किसी एक प्रदेश का न होकर भारतीय किसान का ही प्रतिनिधि है। होरी अपने विपन्न जीवन में भी गाय पालने की लालसा रखता है। वे जैसे तैसे भोला से गाय उधार पर ले आता है किन्तु उसका ईर्ष्यालु भाई रात के अन्धेरे में गाय को जहर देकर मार देता है। होरी पर संकटों का पहाड़ टूट पड़ता है। भाई घर छोड़कर भाग जाता है और होरी अपनी खेती के साथ भाई की खेती भी सम्भालता है। वह भाई को बचाने का दण्ड भुगतता है। उसका बेटा गोबर भोला की विधवा बेटी झुनिया को गर्भवती कर भाग जाता है, उसे भी होरी और धनिया सम्भालते हैं और पंचायत का दण्ड घर का अनाज देकर भरते हैं। भोला अपनी गाय के बदले होरी के दोनों बैल खोल कर ले जाता है। वह खेतिहर मजदूर बन जाता है। अपनी बेटी का अनमेल विवाह वर पक्ष से धन ग्रहण कर करता है। मर्यादा का पालन न कर पाने की ग्लानि और कठोर संघर्ष के कारण उसका प्राणान्त हो जाता है। उसकी मृत्यु के समय धर्म के ठेकेदारों द्वारा 'गोदान' की दुहाई देने पर उसकी पत्नी धनिया मजदूरी के मात्र बीस आने पति के हाथों में रखकर 'गोदान' करा देती है।

प्रेमचन्द ने होरी और उसके परिवार की कथा के माध्यम से भारतीय कृषक की कष्ट-गाथाओं और अतृप्त अभिलाषाओं का प्रतिनिधि चित्र प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द ने वास्तविक जीवन से ही साहित्य की प्रेरणा प्राप्त की थी। समाज के जटिल अन्तर्विरोध और सामन्तवाद से पूँजीवाद तक के शोषण क्रम की वास्तविकता, जाति व्यवस्था, वर्गतन्त्र, महाजनी सभ्यता से उभरे हुए मूल्यों का संघर्ष उनके युग का ही यथार्थ है।

जमींदार और पूँजीपति, किसान और मजदूर की चारित्रिक पहचान में प्रेमचन्द निष्णात हैं। जमींदार और महाजन की क्रूरता और निर्ममता को वे भलीभाँति जानते थे। किसान और मजदूर के भी अपने-अपने संस्कारगत और वर्गगत अन्तर्विरोध थे। परिवर्तन आसान भी न था। गोदान तक आते-आते उनकी आदर्शवादी विचारधारा क्षीण होने लगी थी।

स्थूल तौर पर 'गोदान' क्रान्ति की कोई तस्वीर प्रस्तुत नहीं करता किन्तु शोषण की महीन मार भरपूर है इसलिए वहाँ किसी चमत्कार की सम्भावना भी नहीं है। नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की दुहाई देने वाले ही अनाचार और अमानवीय आचरण के ठेकेदार हैं। निश्चय ही ये मूल्य होरी की रक्षा नहीं कर सकते। 'गोदान' का समाज मूल्यबोध रहित समाज है। अक्सर लगता है, जैसे समाज का हर वर्ग होरी के खिलाफ साजिश रच रहा है, उसे दबोचना चाहता है और वह अकेला ही सबसे जूझ रहा है। उसकी मृत्यु ही उसकी मुक्ति थी। वस्तुतः होरी की मृत्यु पाठक में एक तीव्र प्रतिक्रिया जगाती है और समाज के शोषक वर्ग के प्रति उसे झकझोरती भी है। आम पाठक उस व्यवस्था के असली चेहरे से साक्षात् करता है और यही लेखक का अभिप्रेत भी है।

प्रेमचन्द को यह दृष्टि अचानक प्राप्त नहीं हुई थी। समाज की विसंगत विद्रूपताओं से जूझकर उन्होंने कुछ निष्कर्ष निकाले थे। उनका अभिप्राय स्पष्ट था - जब तक भारतीय किसान अशिक्षा, अंधविश्वास और झूठी मर्यादाओं से जकड़ा रहेगा, उसे मुक्ति का मार्ग नहीं मिल पायेगा। दूसरे शब्दों में, जब तक वह महाजन की जालसाजी के चलते ऋण के ब्याज में फँसा रहेगा, दारोगा की रिश्वतखौरी का शिकार होगा, पण्डितों की लोलुप अंध रूढ़ियों से डरता रहेगा, उसे मरना ही होगा। जड़ता को तोड़ने के लिए इस त्रासदी से होकर गुजरना आवश्यक था।

5.2 गोदान का प्रतिपाद्य

गोदान का कथा नायक नितान्त साधारण इच्छाओं वाला किसान है जिसे विश्वास के मूल्य पर इतनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। लेकिन होरी टूट भले ही गया हो, हारा कभी नहीं। जीवन भर क्रूर विडम्बनाओं से जर्जर होकर भी वह प्रसन्न रहना चाहता है -

'होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएं मानों उसके चरणों पर लोट रही थीं। कौन कहता है, जीवन संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं। इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएँ हैं।'

होरी का पहला ही चित्र उसके व्यक्तित्व और जीवन का परिचय पाठक को दे देता है - झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़ कर वह धनिया से कहता है - "तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिन्ता है कि अबेर हो गयी तो मालिक से भेंट न होगी।" वह जानता है कि हसी मिलते जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है।" प्रेमचन्द का यह वाक्य तो जैसे नौकरशाही के लिए सदाबहार ही हो, गया है - "जब दूसरे के पाँवों तले अपनी गर्दन दबी हुई हो तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।"

होरी के जीवन में पसरे अथाह रेगिस्तान में भी थोड़ी सी हरियाली कभी-कभी नजर आ जाती है। धनिया जब उसकी पाँचों पोशाक उठा लाती है तो परिहास की मृदुता कुछ पलों

के लिए झलक ही जाती है- क्या ससुराल जाना है जो पाँचों पोशाक लायी है। ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे जाकर दिखाऊँ।' पर यथार्थ की आँच में झुलसा हुआ उसका परिहास में कहा हुआ कथन भी करूणा-प्लावित ही नजर आता है - तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया, अभी तो चालीस भी नहीं हुए मर्द साठे पर पाठे होते हैं।' धनिया का उत्तर भी जीवन के यथार्थ का ही दर्पण है "जाकर सीसे में मुँह देखो। तुम - जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी-अंजन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे। तुम्हारी दशा देख-देख कर तो मैं और भी सूखी जाती हूँ कि भगवान यह बुढ़ापा कैसे कटेगा किसके द्वार पर भीख मांगेंगे।" बड़ी-बड़ी लालसायें उसके हृदय में नहीं समातीं पर एक 'गाय' की लालसा - यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी।

निहायत अभावों में भी किसान की साध एक 'गाय' है जो उसके परिवेश, वर्ग और संस्कृति की भी पहचान है। द्वार पर गाय बँधी हो तो अनाज की कमी भी ढक जाये। होरी बहुत आदर्शवादी नहीं है। जिन्दगी के थपेड़ों ने उसे थोड़ी-बहुत चालाकी सिखा दी है। भोला से वह झूठे आश्वासनों पर गाय झटक लाता है। वह जानता है कि घर में रूपये नहीं है, अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका। बिसेसर साह का देना भी बाकी है। जिस पर आने रूपये का सूद चढ़ रहा है।' इसके बाद प्रेमचन्द एक सामाजिक सामान्य मनोविज्ञान की बात कहते हैं - 'दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है' या वह निर्लज्जता, जो तकाजे, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती - उसे गाय की लालसा के प्रति प्रोत्साहित करती है। चालाकी की हद तक सजग व्यवहार बुद्धि से वह भोला से बातचीत तय कर लेता है। उसकी कल्पना हुलास से भरपूर है - द्वार पर बँधेगी तो द्वार की शोभा बढ़ जायेगी।" भोला से किया गया छल उसे स्वार्थ सिद्धि में बाधक नहीं लगता।

किसानों का शोषण करने वाला रायसाहब भी होरी को ही अपना विश्वास पात्र बनाये हुए है - "किससे अपने मन की कहूँ न जाने क्यों तुम्हारे ऊपर विश्वास होता है।"

जमींदार होरी को कोई रियायत नहीं देता। एक ओर लेखक पूँजीपति जमींदार के जीवन के खोखलेपन को दर्शाते हैं, दूसरी ओर जमींदार की मीठी बोली के पीछे शिकारी प्रकृति का भी संकेत दे देते हैं।

'गोदान' की कथा का विस्तार गाँव से शहर तक है। हर वर्ग की सच्चाई सामने आती है - विघटनकारी समस्याएँ तीव्र रूप भी ग्रहण करती हैं परन्तु वे किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की बजाय केवल हलचल बनकर रह जाती हैं। होरी जहाँ असहाय होता जाता है, गोबर के मन में विद्रोह भाव उभरता रहता है। किसान से मजदूर बनने की प्रक्रिया होरी से गोबर तक की पीढ़ी की यात्रा का संकेत है। गोबर उसके चरित्र की मीमांसा इन शब्दों में करता है - "तुम्हारा यही धर्मात्मापन तो तुम्हारी दुर्गत कर रहा है।" लेकिन वह निरन्तर धर्म और स्वार्थ के बीच झूलता रहता है।

प्रेमचन्द ने किसान के जीवन की भयावह त्रासदी को इन शब्दों में साकार कर दिया है -

"इस फसल के सब कुछ खलिहान में तौल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ कर्ज था, जिस पर कोई सौ रुपये सूद के बढ़ते जाते थे। मंगरू साह से आज पाँच साल हुए

बैल के लिये साठ रूपये लिये थे, उसमें साठ दे चुका था, पर साठ रूपये ज्यों के त्यों बने हुए थे। दातादीन पण्डित से तीस रूपये लेकर आलू बोये थे। आलू तो चोर खोद ले गये और उस तीस के इन तीन बरसों में सौ हो गए थे। दुलारी विधवा सहुआइन थी, जो गाँव में नोन-तेल-तमाखू की दुकान रखे हुए थी। बँटवारे के समय उससे चालीस रूपये लेकर भाइयों को देना पड़ा था। उसके भी लगभग सौ रूपये हो गए थे, क्योंकि आने रूपये का ब्याज था। लगान के भी अभी पच्चीस रूपये बाकी पड़े हुए थे और दशहरे के दिन शगुन के रूपयों का भी प्रबन्ध करना था। यह चिन्ता होरी की ही नहीं, सभी किसानों की है। फिर भी 'गाय' द्वार पर बँधी देखकर उसका उल्लास छलकने लगता है। गाय उसके लिए केवल भक्ति और श्रद्धा की वस्तु नहीं, सजीव सम्पत्ति भी थी। वह उससे अपने द्वार की शोभा और अपने घर का गौरव बढ़ाना चाहता था।"

होरी अपने भाई हीरा को बचाने के लिए झूठ बोल जाता है। दारोगा द्वारा तलाशी की बात पर होरी की साँस तले-ऊपर होने लगी। वह दारोगा को रूपये देने के लिये भी राजी हो जाता मगर उसके पास रूपये होते तो इसी वक्त पचास रूपये लाकर दारोगा जी के चरणों पर रख देता और कहता - सरकार मेरी इज्जत अब आपके हाथ है। मगर उसके पास तो जहर खाने को भी एक पैसा नहीं है। इस षड्यन्त्र में पटेश्वरी, झिंगुरी सिंह सभी शामिल हैं - होरी सबका ही शिकार है। झिंगुरी ने अहसान से दबाते हुए कहा - "आज ही कागज लिख देना। तुम्हारा मुँह देखकर रूपये दे रहा हूँ तुम्हारी भलमंसी पर।" इस प्रसंग का एक दूसरा रूप मानो होरी का पूरक बनकर उभरा है। धनिया का निर्भीक स्वर प्रेमचन्द की आकांक्षाओं का ही प्रतिफल है। धनिया होरी का विरोध करते हुए कहती है - दारोगा तलासी ही तो लेगा। ले-ले जहाँ चाहे तलासी। एक तो सौ रूपये की गाय गयी, उस पर यह पलेथन। वाह री तेरी इज्जत। होरी खून का घूंट पीकर रह गया और दारोगा का मुँह जरा सा निकल आया। होरी लगातार समझौतों में टूटता है - मगर धनिया टूटकर भी विद्रोह करती है। शायद प्रेमचन्द ने ऐसी ही निर्भीक किसान स्त्री कीं छवि गढ़नी चाही थी। वह पूरी व्यवस्था पर प्रहार करती है - 'ये हत्यारे गाँव के मुखिया है, गरीबों का खून चूसने वाले। सूद-ब्याज, डेढ़ी सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से, यह वह समय था, जब ब्रिटिश साम्राज्यशाही में पूँजीवाद अपने पैर फैला रहा था, जमींदारी प्रथा और महाजनी प्रथा किसानों का शोषण कर रही थी और किसान अपने ही खेत में, अपनी जमीन खोकर मजदूर बनने के लिए विवश था। शहरों में कारखाने चल रहे थे और उद्योगपति मजदूरों का शोषण कर रहे थे। इन सबके बीच ही सामाजिक कुरीतियाँ जड़ जमाये बैठी थीं। राजनैतिक आन्दोलन हलचल मचाये थे - भविष्य की कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं थी - ऐसी विकट और जटिल परिस्थितियों में भी प्रेमचन्द ने सत्ता और पूँजी के वर्चस्व को समझ लिया था।

होरी झुनिया को अपनाने के कारण बिरादरी बाहर कर दिया जाता है। बिरादरी का डर व्यवस्था का ही अधिक अमानुषिक तन्त्र है। जिसका आतंक इतना था कि दण्ड स्वरूप होरी 'अपने सिर पर लाद कर अनाज ढो रहा था, मानों अपने हाथों अपनी कब्र खोद रहा हो' क्योंकि बिरादरी से पृथक जीवन की वह कल्पना ही न कर सकता था।... बिरादरी

उसके जीवन में वृक्ष की भाँति जड़ जमाये हुए थी और उसकी नसें उसके रोम रोम में बिंधी हुई थीं। होरी ने अपने घर को अस्सी रूपये पर झिंगुरी के हाथों गिरवी रख दिया था। गोबर मजूरी करने शहर भाग गया - "मजूरी करना कोई पाप तो नहीं।"

प्रेमचन्द का वैचारिक पक्ष - गोदान का दूसरा खण्ड

प्राय: आलोचकों ने कहा है - उपन्यास का प्रोफेसर मेहता प्रेमचन्द के विचारों का प्रतिनिधि पात्र है। मेहता के चिन्तन और वक्तव्यों में लेखक की छाप झलकती अवश्य है किन्तु उनकी संघर्षशीलता होरी में साकार हुई है। प्रेमचन्द का व्यक्तित्व संघर्ष क्षमता, जिजीविषा, निराशा, मोह भंग की सभी स्थितियों में होरी के चरित्र के विविध शेड्स हैं जो समस्त कुटिलताओं में भी जीवन की मन्थर गति बनाये हुए हैं। मेहता की चिन्तनधारा जमींदार रायसाहब से टकराती रहती है - 'हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं।' मेहता कहते हैं - 'मैं भूत की चिन्ता नहीं करता, भविष्य की परवाह नहीं करता। मेरे लिए वर्तमान ही सब कुछ है। भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है।'

प्रेमचन्द अन्याय की पराकाष्ठा पर विद्रोही स्वर भी अपनाते हैं। जब सारे भय भाग जाते हैं तब उत्पीड़ित व्यक्ति भी 'सच' उगलने लगता है। होरी के समस्त दब्बूपने के बावजूद नयी पीढ़ी के गोबर द्वारा विद्रोह को स्वर दे ही देते हैं। गोबर दातादीन से कहता है - 'तुम्हारे घर में किस बात की कमी महाराज, जिस जजमान के द्वार पर जाकर खड़े हो जाओ, कुछ न कुछ मार ही लाओगे। जनम में लो, मरन में लो, सादी में लो, गमी में लो, खेती करते हो, लेन-देन करते हो, दलाली करते हो, किसी से भूल-चूक हो जाये तो डाँड लगाकर उसका घर लूट लेते हो, इतनी कमाई से पेट नहीं भरता। क्या करोगे बहुत सा धन बटोर कर कि साथ ले जाने की कोई जुगुत निकाल ली है। इन शब्दों में सिर्फ धर्म पर ही प्रहार नहीं है बल्कि मूल्यहीनता और अनैतिकता पर भी व्यंग है। किसान के द्वारा भोगे हुए उत्पीड़न का प्रतिकार भी है।

प्रेमचन्द ने कई आयामों में इस विद्रोह को प्रकट किया है। झिंगुरी सिंह का यह कथन उस व्यवस्था का ही निचोड़ है - 'कानून और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है।' अर्थतन्त्र की बढ़ती विकरालता और उसके दुष्परिणामों की चेतावनी प्रेमचन्द की सभी रचनाओं में भरपूर मिलती है। वे जाति भेद पर भी प्रहार करते हैं - सिलिया का बाप हरखू दातादीन से, कहता है - 'हमें ब्राह्मण बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है। जब यह समरथ नहीं तो फिर तुम भी चमार बनो।' प्रेमचन्द की यह निडरता तो आज भी सम्भव नहीं दीखती। होरी यदि व्यवस्था की वकालत करता है तो धनिया बेलाग दो टूक बात करती है क्योंकि उसे उस व्यवस्था से कोई उम्मीद नहीं है।

शहर में खन्ना की मिल और मजदूरों के माध्यम से प्रेमचन्द ने पूँजीवाद का पर्दाफाश किया है। खन्ना की शक्कर की मिल में जब मालिकों को मजूरी घटाने का बहाना मिलता है तब मजदूर हड़ताल कर देते हैं। दंगा होता है। उसमें गोबर भी घायल हो जाता है। मजदूर कठिन परिश्रम करके भी पूरी मजूरी नहीं पाते, वे शराब के आदी हो जाते हैं

और नेतागण हड़ताल करवा के अपनी नेतागिरी बरकरार रखते हैं। नगरों में न रहने को जगह है, न कोई भाईचारा। मजदूर की दशा का सीधा साक्षात् होता है।

प्रेमचन्द खन्ना के जीवन परिवर्तन के लिए मेहता का सहारा लेते हैं। खन्ना की शक्कर मिल जल जाती है। अपनी पत्नी को प्रताड़ित करने वाला खन्ना अब उसी की शरण में है। प्रोफेसर मेहता खन्ना को समझाते हुए कहते हैं - 'दौलत से आदमी को जो सम्मान मिलता है, वह उसका सम्मान नहीं, उसकी दौलत का सम्मान है।' गोविन्दी कहती है - 'जीवन का सुख दूसरों को सुखी करने में है, उनको लूटने में नहीं।' प्रो. मेहता मजदूरों कीं स्थिति को दर्शाते हुए कहते हैं - 'आपके मजूर बिलों में रहते है - गन्दे बदबूदार बिलों में - जहाँ आप एक मिनट भी रह जाएँ तो आपको कै हो जाए। कपड़े जो पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोछेंगे। खाना जो वे खाते हैं वह आपका कुत्ता भी न खाएगा। ऐसे मजूरों का वेतन घटना क्या न्यायोचित है? मजदूरों की ओर यदि पूँजीपतियों ने और सरकार ने ध्यान नहीं दिया तो मिलों के लोहे के गर्डर इसी प्रकार जलेंगे।' प्रेमचन्द कोई सारी सहानुभूति मजदूरों के प्रति है।

'गोदान' के प्रतिपाद्य पर नजर डालें तो लगता है कि आधुनिकता की शुरूआत 'गोदान' से मानी जा सकती है। इस उपन्यास में लेखक ने पुरानी परम्पराओं को तोड़कर 'नायक' का नया रूप गढ़ा है। होरी व्यक्ति भी है और वर्ग प्रतिनिधि भी। परन्तु नायक होते हुए भी सहज साधारण इन्सान है। संघर्षशील होते हुए भी लगातार हारता रहता है। जीने की अदम्य लालसा होते हुए भी अन्त में मर जाता है। होरी की मृत्यु ही उसे 'नया हीरो बनाती है। भारतीय साहित्य परम्परा का सुखान्त 'त्रासद अन्त' में बदल जाता है परन्तु होरी मरकर भी पाठक की चेतना में सदा जीवित रहता है, उसे झकझोरता रहता है। इस उपन्यास में समस्या का समाधान नहीं दिया गया है। लेखक की पुरानी आस्था टूट चुकी है, ऐतिहासिक परम्पराओं से मोहभंग हो चुका है। यही आधुनिकता की चुनौती है।

इस चुनौती. का परिणाम यह निकलता है कि जीवन की जटिलताओं का गहरा साक्षात् होता है। उपन्यास समाज का कठोर यथार्थ दिखाता है, बिना भावुक हुए लेखक ने सहज जीवन का निरूपण किया है। आधुनिकता एक प्रक्रिया है, जिसे उसके परिवेश और रचना विशेष में खोजना ही संगत है।

प्रेमचन्द ने शहरी जीवन की विसंगतियों, विद्रूपताओं को ही अधिक महत्व दिया है। शिक्षित और अभिजात कहा जाने वाला वर्ग कितना खोखला और प्रदर्शन प्रिय है, प्रेमचन्द ने रायसाहब, तखा और खन्ना के छद्म व्यवहार के माध्यम से दिखाया है। रायसाहब यदि धन को प्रतिष्ठा का मूल समझते हैं तो खन्ना भोग विलास को जीवन की सार्थकता। इस वर्ग की कमजोरियाँ, उसके व्यवहार, आशा-अपेक्षाएं, तौर-तरीके आदि पर प्रकाश डाला गया है।

5.3 'गोदान' की समस्याएं

'गोदान में प्रेमचन्द ने समाज की अनेक समस्याओं को उठाया है। कर्ज की समस्या और महाजनी सभ्यता तो केन्द्रीय समस्या है ही। दातादीन और नोखेराम के व्यवहार से महाजनी सभ्यता का क्रूर रूप प्रकट हुआ है। धर्मभीरूता होरी को सदा कर्ज में डुबोये

रखती है। अंधविश्वास किसानों का शोषण करते हैं। अज्ञान और अशिक्षा के कारण वे कभी भी महाजनों के चंगुल से नहीं निकल पाते। प्रेमचन्द ने धर्म के नाम पर मिथ्याडम्बर और कर्मकांडों का विरोध किया है। वे मानते हैं, जब तक धर्म के नाम पर पुरोहितों को भीख (दान-दक्षिणा) मिलती रहेगी, तब तक परिश्रम को न्याय नहीं मिलेगा, जाति का दर्प समाप्त नहीं होगा। इसी का प्रखर रूप मातादीन और सिलिया के सम्बन्धों में दिखता है, यह केवल धर्म की नहीं, बल्कि जाति, समाज और संस्कृति की भी समस्या है।

होरी की पुत्री सोना के विवाह प्रसंग में लेखक ने एक प्रकार से युवक-युवतियों का आह्वान किया है जो दहेज प्रथा का विरोध करते हैं। भोला की दूसरी शादी अनमेल विवाह का उदाहरण है। भले ही भोला और नोहरी विधुर और विधवा हैं किन्तु आयु का अन्तर उनमें तालमेल नहीं रख पाता।

प्रेमचन्द ने प्रो. मेहता और मालती के माध्यम से प्रेम विवाह, दाम्पत्य जीवन, समाज सेवा आदि अनेक प्रश्नों को उठाया है। प्रेमचन्द का आदर्शवाद एक ओर प्रो. मेहता के माध्यम से स्त्री के पारम्परिक रूप का गुणगान करवाया गया है, दूसरी ओर मालती के साथ विवाह के स्थान पर मित्रवत् रहने को तरजीह दी गई है। मालती का हृदय परिवर्तन भी लेखक की संभावित इच्छा का ही प्रतिफलन होता है।

गोदान समस्या प्रधान उपन्यास है। उसमें हर वर्ग की अलग अलग समस्याएं हैं। नागरिक जीवन ग्राम्य जीवन से भी अधिक जटिल है। ये समस्याएं युग चेतना की प्रतीक हैं। भौतिकता और धार्मिकता के कलेवर में राजनैतिक, आर्थिक पहलू संलग्न है।

प्रेमचन्द ने अपने समय के भारतीय जीवन के समग्र को 'गोदान' में समाहित कर दिया है। प्रेमचन्द ने अपने अनुभव से यह समझ लिया था कि सभी आदर्श खोखले हैं, सभी ढोंगी और स्वार्थी हैं। उनकी कथनी और करनी में अन्तर है। रायसाहब राष्ट्रवादी बनकर किसान-मजदूरों का शोषण करते हैं। खन्ना अपनी पत्नी पर अत्याचार करते हैं, मालती पर मोहित हैं। मजदूरों को पूरा वेतन नहीं देना चाहते। मिर्जा खुर्शेद जीवन भर अय्याशी करने के बाद वेश्याओं को सुधारना चाहते हैं। ओंकारनाथ, मितरवा सभी धूर्त है। गाँवों में तो कोई ब्राह्मण है, कोई कायस्थ है, कोई चौधरी कोई ठाकुर, कोई महाजन, कोई पटवारी, कोई किसान, कोई मजदूर कोई निम्न जात। सभी एक दूसरे 'को लूटने खसोटने, लड़ने-झगड़ने में लगे हुए हैं। प्रेमचन्द ने हर वर्ग के खोखले पन को बेबाकी से चित्रित किया है। 'गोदान' का कोई पात्र 'नेता या सर्वगुण सम्पन्न नायक नहीं है जो इन खोखले आदर्शो और समस्याओं का समाधान खोज सके। कोई पात्र ऐसा नहीं जो विद्रोह या क्रान्ति की बात करे। यही 'गोदान' का वह यथार्थ है और प्रेमचन्द के अनुभवों का निष्कर्ष है जो इस उपन्यास को 'करूणामय त्रासदी से युक्त बनाता है। गोबर और धनिया का विद्रोह भी अपनी सीमाओं और परिस्थितियों का यथार्थ है। आरम्भ में धनिया को होरी का बार बार रायसाहब के पास जाना अच्छा नहीं लगता। जिस गहस्थी में पेट की रोटियां भी न मिलें उस खुशामद से क्या। गोबर भी कुछ देर विद्रोह को दबाने के बाद बोला -

यह तुम रोज रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो, बाकी न चुके तो आकर गाली सुनाता है, बेगार ढोनी पड़ती है, नजर नजराना हमसे तो भराया ही जाता है, फिर किसी की क्यों सलामी करो।

गोबर रायसाहब के दुख की बात सुनकर हठ के साथ कहता है - अपना इलाका हमें क्यों नहीं देते, यह सब धूर्तता है, निरी मोट-मरदी। जिसे दुख होता है, दर्जनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलुवा-पूरी नहीं खाता और न नाच रंगों में ही लिप्त रहता। मजे में राज्य का सुख भोग रहे हैं, उस पर दुखी।

विद्रोह का स्वर धनिया और गोबर का कुछ मुखर तो है किन्तु यह चिंगारी आग नहीं बनती, क्योंकि यथार्थ के दबाव का यही परिणाम है। प्रेमचन्द पर किसी भी वाद का आग्रह दिखाई नहीं देता न ही 'गोदान' का स्वर राजनीतिक है। प्रेमचन्द शुद्ध रूप से लोकतांत्रिक अथवा मानवतावादी दृष्टिकोण के समर्थक हैं। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय कहते हैं - 'प्रेमचन्द उस समाजवाद के समर्थक थे, जिसमें बुद्धि स्वार्थ से मुत्क। है। वे उस प्रतिनिधिमूलक प्रजातंत्र के मानने वाले थे, जिसमें कम से कम समय में और कम से कम साधनों से जनता की अधिक भलाई हो जाए और जिसमें सच्ची सेवा, त्याग, तप और संयम का आग्रह हो।'

'गोदान' में एक ओर जीवन की भयंकर कुरूपता दिखाई देती है, दूसरी ओर प्रेमचन्द सुख, शान्ति और प्रेम की आवश्यकता का अनुभव करते हैं। उनकी यह आशावादिता जनजीवन के अजस स्त्रोत के रूप में थी। धनिया कहती है - "उस पर सुराज चाहिए। जेहल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से।" लेकिन वे इस सत्य को भी भली भांति भाँप गए थे -

'इस नई सभ्यता का आधार धन है। विद्या और सेवा, कुल और जाति सब धन के सामने हेय हैं।' प्रेमचन्द एक नया मनुष्य गढ़ना चाहते थे जो निर्भय हो और इतिहास के मलबे के नीचे दबी पड़ी रूढ़ियों और विश्वासों के प्रति जिसमें कोई आस्था न हो।

डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव गोदान की कलात्मकता का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि उसके द्वारा हम एक व्यापक परिदृश्य में घटित होने वाले जीवन की समग्रता को व्यक्त कर सकते हैं, वहाँ जीवन का दबाव ही कला के स्वभाव को नियन्त्रित कर सकता है। उसका दूसरा पहलू यह है कि हम उसके द्वारा गहरे स्तर पर आत्मान्वेषण कर सकते हैं प्रत्यक्ष है कि यहाँ कला का अनुशासन महत्वपूर्ण होगा, वही जीवन वस्तु की सीमा को नियन्त्रित करेगा।

श्री नन्द दुलारे वाजपेयी आदि आलोचको ने गोदान में कथानक की अन्विति के अभाव एवं शिथिल कथाबन्ध का जो आरोप लगाया है, उसकी समीक्षा गोदान के प्रतिपाद्य की कसौटी पर ही की जा सकती है। यह स्पष्ट है कि कृषि-केन्द्रित सामन्ती व्यवस्था का वृत्त समाज रूप से गाँवों और शहरों को अपने आप में समाविष्ट किए हुए था। किसान, जमींदार, तालुकेदार सब एक दूसरे के पूरक हैं। अगर 'गोदान' में केवल ग्रामीण कथा ही होती तो सामन्तीय व्यवस्था की असंगतियों और अन्तर्विरोधों के कारण उसकी छन को पूर्ण व्याप्ति के साथ चित्रित नहीं किया जा सकता। 'गोदान' में ग्रामीण भारत का चित्रण अधिक जीवंत और भास्वर है और उसके चित्रण में प्रेमचन्द की वृत्ति अधिक तन्मयता

से प्रवृत हुई है। उनकी दृष्टि व्यक्ति और वर्ग से आगे जाकर 'व्यवस्था' पर केन्द्रित हो गई है।

'गोदान' मुख्य रूप से वातावरण प्रधान उपन्यास है। प्रेमचन्द व्यक्ति के अन्तरंग यथार्थ की अपेक्षा समाज की व्यवस्थागत वास्तविकता को अधिक महत्व प्रदान करते थे। उनके पात्र समाज में चलते फिरते नजर आते हैं, चिन्तनरत कम। ये सभी पात्र सामान्य मनोविज्ञान के धरातल पर गढ़े गए हैं। इसमें किसी भी पात्र को आदर्श पात्र नहीं कहा जा सकता। आश्रमों, सेवा सदनों में आस्था के साथ ही आदर्श वादी पात्रों में प्रेमचन्द का विश्वास खंडित हो गया था। समस्या का अति सरलीकरण करने की अपेक्षा उन्होंने समाधानहीन यथार्थ में अधिक विश्वास किया। यही कारण है कि 'होरी' अपने संघर्ष में अकेला है।

'गोदान के पात्र हमारे आसपास के परिचित जीवित पात्र हैं। वे जीवन की समस्याओं से जूझते हुए हार-जीत से गुजरते हुए आशावादी निराशावादी पात्र हैं, जहाँ लेखक अदृश्य रूप में अपनी चरित्र-सृष्टि के पीछे खड़ा महसूस होता है।

'गोदान' के अधिकांश पात्र समतल और एक आयामी है। आरम्म से अंत तक उनके चरित्र में स्वरूपगत एकता बनी हुई हैं। पाठक के साथ उनकी निश्छल आत्मीयता सतत बनी रहती है।

प्रेमचन्द की भाषा भी अपने पात्रों की सहजता के अनुरूप सरल एवं लोक व्यवहार के निकट है। जहाँ वे सायास भाव से पात्रों की मनःस्थिति या भावात्मुक प्रसंगों की सर्जना करते हैं, वहाँ उनकी भाषा कवित्वमय हो जाती है। और वर्णन के सहज प्रवाह में अनेक रूपक, बिम्ब और प्रतीक अपने आप खिंचे चले आते हैं।

'वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदित होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है क्षण-क्षण पर बगूले उठते हैं और पृथ्वी काँपने लगती है। प्रेमचन्द का कौशल है कि उन्होंने प्रत्येक पात्र को अपनी आयु- स्थिति और मनःस्थिति के अनुरूप भाषा प्रदान की है।

प्रेमचन्द के लिये वातावरण, प्रकृति मानव सापेक्ष थी। उनके लिये समस्त कलात्मकता मानव के हर्ष-विषाद के साथ जुड़ी थी, स्थितियों के दबाव और अभाव वहाँ सर्वोपरि थे। "प्रेमचन्द की पहली और आखिरी प्रतिबद्धता मानव और उसके जीवन के प्रति थी। इसलिए वे स्वयं अपने उपन्यास शिल्प पर हावी रहे, उन्होंने कभी शिल्प को अपने पर हावी नहीं होने दिया। वे शिल्प-सजग और शिल्प सचेष्ट तो हैं, पर शिल्प-आक्रान्त नहीं है।"

5.4 सारांश

प्रेमचन्द का 'गोदान' उपन्यास' कृषक संस्कृति का महाकाव्य कहा गया है। इसमें किसानों के जीवन, उनकी परम्पराओं, अभावों और समस्याओं के माध्यम से लेखक ने भारतीय गाँवों का न केवल सजीव चित्र खींचा है, बल्कि किसानों की दयनीय दशा के लिए जिम्मेदार समाज को भी चित्रित किया है। यह उपन्यास केवल गाँवों की दशा का ही

अंकन नहीं करता, बल्कि नगरों में पनपती पूँजीवादी संस्कृति का भी बेबाक खुलासा करता है।

गोदान उपन्यास का मुख्य उद्देश्य भारतीय ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों को उपस्थित कर ग्रामीण जीवन का उद्घाटन करना है। किसानों के जीवन में भूमि और गाय का बड़ा महत्त्व होता है। गोदान में भी भूमि और गाय का केन्द्रीय महत्त्व है। प्रेमचन्द ने उपन्यास में नायक होरी के माध्यम से किसान के सपने और उसके परिश्रम के आधार खेती की जमीन की सुरक्षा से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को विस्तार से विश्लेषित किया है। एक किसान के गाय के सपने और झूमइ छिन जाने के पीछे गॉव से शहर तक कौन-कौन से वर्ग हैं जो पूँजी और सत्ता के वर्चस्व के कारण किसान के पश्रिम, विश्वास और विवशताओं के साथ छल करते हैं। गाँवों में चाहे जमींदार हो, पण्डित हो, महाजन हो या दारोगा हो और शहरों में पूँजीपति हो, उद्योगपति हो, नेता हो, डॉक्टर या वकील हो अथवा सम्पादक हो। प्रेमचन्द ने भारतीय समाज के प्रत्येक प्रतिनिधि वर्ग के यथार्थ और प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है।

प्रेमचन्द ने किसान और मजदूर के आर्थिक संकट के ही विभिन्न पहलुओं का चित्रण नहीं किया, बल्कि जमींदार, उद्योगपति, डॉक्टर और प्रोफेसर आदि की सच्चाइयों को भी सामने रखा है। 'गोदान' में बीसवीं शती के चौथे दशक के समाज के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि का यथार्थ परक विश्लेषण है। प्रेमचन्द ने 1936 के युग में बहुत सी ज्वलन्त सामाजिक समस्याओं को भी उठाया। विधवा विवाह, अनमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम, दहेज आदि को भी बहुत साहस के साथ रखा है। पूरे उपन्यास के ट्रीटमेन्ट में केन्द्रीय भाव है 'मानवतावाद' औr इसकी रक्षा का कड़वा सच है - भारतीय किसान की त्रासदी। प्रेमचन्द ने एक शोषित, दलित गरीब किसान को नायक' बनाकर पूरी परम्परा को तो बदला ही है इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि प्रेमचन्द ने परिस्थितियों के आघात सहकर नायक की मृत्यु दिखा दी है। समस्त संघर्ष के बावजूद नायक की मृत्यु सत्ता-प्रभुत्व सम्पन्न लोगों की मानसिकता को जन-जन के सामने उजागर कर देती है। गोपालकृष्ण कौल ने ठीक ही कहा है - "गोदान उपन्यास की शैली में भारतीय जीवन का महाकाव्य है।"

एक सम्पूर्ण युग की औपन्यासिक परम्परा और तत्कालीन जीवन की समग्रता, उसके जीवन चिन्तन, विचार दोहन और विचार का 'गोदान' एक विराट फलक है। 'गोदान' में समाज के पुनर्गठन की कल्पना की चाह है और एक नए वर्ग के उदय के संकेत है। यह उपन्यास पिछली समूची सामन्तवादी-साम्राज्यवादी- नौकरशाही जीवन-पद्धति पर जबरदस्त प्रहार करता है। 'गोदान' भारतीय समाज की धार्मिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों पर भी करारा व्यंग्य है।

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'गोदान' की समस्याएं युग चेतना का प्रतीक हैं - स्पष्ट कीजिए।
2. 'गोदान' प्रेमचन्द की आश्रमवादी आस्थाओं का गोदान हैं - स्पष्ट कीजिए।
3. 'गोदान' के प्रतिपाद्य के आधार पर उसका वैशिष्ट्य बताइए।

4. 'गोदान' का औपन्यासिक शिल्प शिथिल है' क्या आप सहमत हैं'
5. 'गोदान' कृषक जीवन का महाकाव्य है' - विश्लेषण कीजिए।

5.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. सत्येन्द्र (सम्पादक); प्रेमचन्द
2. डॉ. गोपाल राय; गोदान : अध्ययन की समस्याएं
3. डॉ. मक्खन लाल शर्मा; गोदान : एक पुनर्मूल्यांकन
4. डॉ. गंगा प्रसाद विमल; प्रेमचन्द
5. डॉ. नन्द दुलारे वाजपेयी; प्रेमचन्द
6. डॉ. इन्द्रनाथ मदान; प्रेमचन्द - चिन्तन और कला
7. डॉ. रामविलास शर्मा; प्रेमचन्द और उनका युग
8. डॉ. शंभुनाथ; प्रेमचन्द का पुनर्मूल्यांकन

इकाई-6 अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि एव उनके उपन्यास

इकाई की रूपरेखा :

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि

6.2.1 फ्रायड का मनोविज्ञान और अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि

6.2.2 अस्तित्ववाद और अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि।

6.2.3 प्रतीकात्मक प्रयोग और अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि

6.3 अज्ञेय के उपन्यास : एक सर्वेक्षण

6.3.1 शेखर : एक जीवनी

6.3.2 नदी के द्वीप

6.3.3 अपने-अपने अजनबी

6.4 सारांश

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.6 सन्दर्भ गन्थ

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत आप सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन 'अज्ञेय' की औपन्यासिक दृष्टि के विषय में जानेंगे। इस अध्ययन से छात्र के पता चलेगा कि - अज्ञेय सिर्फ कवि ही नहीं थे बल्कि वे जितने बड़े कवि थे उतने ही बड़े उपन्यासकार भी। इसके अतिरिक्त छात्र -

- अज्ञेय की रचनात्मकता से भी अवगत हो सकेंगे।
- अज्ञेय के वैचारिक धरातल को समझ सकेंगे।
- अज्ञेय की उपन्यास-कला को जान सकेंगे।
- अज्ञेय के उपन्यास-लेखन पर विचार व्यक्त कर सकेंगे तथा उनके उपन्यासों का संक्षिप्त विवेचन-विश्लेषण भी प्रस्तुत कर सकेंगे।
- छात्र यह भी समझ सकेंगे कि वह कौन-सा धरातल है जहाँ अज्ञेय के उपन्यास अपने समकालीन उपन्यासों के बीच अलग स्थान बनाते हैं।
- छात्र समझ सकेंगे कि अज्ञेय अपने उपन्यासों में यद्यपि पात्रों का मनोवैज्ञानिक आधार पर विश्लेषण करते हैं लेकिन उनके पात्र, उनके विचार, उनके क्रियाकलाप, नितान्त व्यक्तिवादी रूप में ही सामने आते हैं।
- अज्ञेय के उपन्यासों में व्यक्ति-स्वातन्त्रय की भावना को किस प्रकार प्रतिष्ठित करते हैं, के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

अज्ञेय को मूलत: कवि माना जाता है। उन्हें 'प्रयोगवाद' का पुरस्कर्त्ता भी माना जाता है। लेकिन अज्ञेय ने अपनी साहित्यिक-कला से सिर्फ कविता को ही नया मोड़ नहीं दिया बल्कि कथा-साहित्य को भी परम्परागत ढाँचे से अलग खड़ा करने का कार्य किया। यह बात दूसरी है कि अज्ञेय का यह नया प्रयोग समृद्ध परम्परा वाला नहीं बन पाया। वस्तुत: अज्ञेय कविता के ही समान कथा-साहित्य में भी नई जमीन तोड़ना चाहते थे। सच तो यह है कि छायावादी युग के बाद के अज्ञेय एक चर्चित एवं सशक्त कथाकार हैं। अज्ञेय का रचनात्मक व्यक्तित्व बहुमुखी, अन्वेषी तथा प्रयोगधर्मी के रूप में दिखलाई देता है। कविता, कहानी, उपन्यास एवं विचार के स्तर पर अज्ञेय ने अपनी साहित्यिक क्षमताओं को उजागर किया है। साहित्य के प्राय: सभी क्षेत्रों में उनका व्यक्तित्व नवीनता एवं विशिष्टता को लेकर सामने आता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि कविता में अज्ञेय व्यक्ति के महत्व को, उसके व्यक्तित्व के महत्व को स्थापित करते हुए दिखाई देते हैं। उनके काव्य-संसार की मूल संवेदना व्यक्ति एवं व्यक्तित्व की अस्मिता से जुड़ी हुई है। कहना न होगा कि अज्ञेय अपने उपन्यासों की रचना में भी संगठित मानव-व्यक्तित्व की सर्जना के सवाल को सबसे आगे रखते हैं और उसी की स्थापना हेतु उपन्यासों में पात्रों, चरित्रों एवं घटनाओं का ताना-बाना बुनते हैं। संगठित मानव-व्यक्तित्व के सर्जनात्मक स्रोतों के प्रति अज्ञेय निरन्तर सचेष्ट दिखाई देते हैं। वे जमीन से बाहर की बात नहीं करते हैं बल्कि जीवन को केन्द्र में रखकर ही मानव और उसके व्यक्तित्व से जुड़े, उसके क्रिया-कलापों से जुड़े प्रश्नों को उठाते हैं और उसी के बीच समाधान तलाशने की कोशिश करते हैं।

अज्ञेय के तीनों उपन्यास - 'शेखर : एक जीवनी (1941-44 ई.) 'नदी के द्वीप' (1951 ई.) और 'अपने-अपने अजनबी' (1961 ई.) - इसलिए ध्यान आकर्षित करते हैं क्योंकि जहाँ इन उपन्यासों में अज्ञेय आज की स्थितियों-परिस्थितियों के बीच जन्म लेने वाली प्रखर बौद्धिक चेतना की दृष्टि के साथ पारम्परिक भारतीय जीवन एवं संस्कृति को देखने की कोशिश करते हैं, वहीं आस्था एवं संस्कार की परम्परागत जड़ता को झकझोरते हुए भी दिखाई देते हैं। वे जहाँ एक ओर 'शेखर एक जीवनी' में शेखर के माध्यम से सामाजिक बन्धनों के प्रति विद्रोह की भावना को चित्रित करते हैं वहीं 'नदी के द्वीप' में भुवन के माध्यम से एक आत्मकेन्द्रित व्यक्तित्व के आन्तरिक संघर्ष को स्पष्ट करते हुए व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन की व्याख्या करते दिखाई देते हैं। 'अपने-अपने अजनबी' उपन्यास का तो विषय ही 'मृत्यु के साक्षात्कार' से जुड़ा हुआ है तथा इसकी समूची संवेदना अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन से अनुप्राणित है।

6.2 अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि

अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि अपने पूर्ववर्ती मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों से भिन्न रही है। अज्ञेय की विशेषता यह है कि उन्होंने रूढ़ियों को परे रखा, बन्धनों से विद्रोह किया तथा नियमों एवं सिद्धान्तों की जकड़न से अपने को अलग रखा और इन्हीं दृष्टियों के साथ उन्होंने प्रयोगों की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने कोरा सिद्धान्त-निरूपण नहीं किया

बल्कि जिन सिद्धान्तों को, जिन नयी दृष्टियों को लेकर वे आये उसे उन्होंने रचनात्मक स्वरूप भी दिया। उन्होंने न सिर्फ स्वयं ही प्रयोग किये बल्कि नये प्रयोगों हेतु प्रोत्साहित भी किया। अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि को निर्मित करने में जहाँ एक ओर हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता, हमारी परम्परा, हमारी स्थितियाँ-परिस्थितियाँ रही हैं वहीं दूसरी ओर फ्रायड एवं सार्त्र की विचारधाराएँ भी रही हैं। इसलिए जरूरी है कि उस पक्ष पर भी विचार कर लिया जाय।

6.2.1 फ्रायड का मनोवैज्ञानिक और अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि

अज्ञेय परम्परावादी नहीं है। इसीलिए उन्होंने सिर्फ परम्परागत जीवन-दर्शनों के आधार पर अपने उपन्यासों का सृजन नहीं किया है। उन्हें जहाँ से भी जीवन के सूत्र मिलते हैं वहाँ से वे उसे लेते हैं और उनका रचनात्मक प्रयोग करते हैं। अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में फ्रायडीय मनोविज्ञान का भरपूर आधार लिया है और उन्हीं के आधार पर व्यक्ति की आन्तरिक विकृतियों को, उनकी कुंठाओं को, उनके चरित्रगत कमजोरियों एवं उनमें निहित सम्भावनाओं की विवेचना की है। फ्रायडीय मनोविज्ञान पर दृष्टि डालें तो हम पाते हैं कि इसके अनुसार मानव-जीवन को संचालित करने वाली तीन मूलभूत प्रेरक शक्तियाँ हैं - अहं, भय एवं सेक्स। इन तीनों मूलभूत प्रेरक शक्तियों की स्थितियाँ अज्ञेय के उपन्यासों में स्पष्ट देखी जा सकती हैं। अहमन्यता, आत्मरति एक् मुक्त भोग की प्रवृत्ति प्राय: सभी मनुष्यों में मिलती है। अज्ञेय के औपन्यासिक पात्रों के चरित्रों में भी इसकी स्थिति स्पष्ट देखी जा सकती है लेकिन विशेषता यह है कि अज्ञेय ने इन प्रवृत्तियों को हेय या निन्ह दृष्टि से नहीं देखा है बल्कि वे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का अवलम्बन लेते हैं और व्यक्ति के मनोभावों एवं उनकी अनुभूतियों को गहराई तक जाकर चित्रित करते है। कहने का तात्पर्य यह है कि वे उसके आसपास और उसके अन्दर-बाहर सभी जगह झाँकते हैं, उनके मनोविज्ञान को समझने-समझाने के लिए वे उनके अन्तर्मन में भी झाँकने का प्रयास करते हैं। अज्ञेय की विशेषता यह है कि वे अपने उपन्यासों में मानव-मन की इन तीनों मूलभूत प्रवृत्तियों के दमन पर बल नहीं देते हैं बल्कि इन तीनों की महत्ता स्वीकार करते हैं। उनका पक्ष काफी हद तक स्पष्ट है। यहाँ हम उन्हें 'अन्तश्चेतनावादी' सिद्धान्त से प्रभावित देखते हैं। इसीलिए वे प्रतिकूल या बाधक सामाजिक स्थितियों एवं वर्जनाओं के प्रति विद्रोह का भाव प्रकट करते हैं। वे मानव-मन की मूल प्रवृत्तियों को सहज स्फुरित देखना चाहते हैं, उन्हें उनका निषेध स्वीकार नहीं है। यही कारण है कि अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में अपनी इस विचारधारा को, अपनी इस सोच को, अपनी इस दृष्टि को खुल कर प्रतिपादित किया है। हम कह सकते हैं कि अज्ञेय का औपन्यासिक चिन्तन फ्रायडीय मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रभावित है और अज्ञेय ने अपने पात्रों एवं चरित्रों को अपनी उसी औपन्यासिक चिन्तन-दृष्टि के आलोक में गढ़ा है।

यह भी एक तथ्य है कि अज्ञेय ने मानसिक कुंठाओं, विकृतियों एवं मानव-मन के उद्वेलनों, उसके अहंकार, उसके भय और उसकी सेक्स की प्रवृत्ति को ही अपनी रचनाओं में सर्वाधिक स्थान दिया है जिसके चलते वे व्यक्ति के अन्तर्मन की गहराइयों में तो

झाँकने में सफल हुए, उनकी ऊँचाइयों को भी देखने, दिखाने में सफल हुए, उनके अभावों एवं आकांक्षाओं के कार्य-कारण को भी भली प्रकार देखा-दिखाया और उसी के बीच अपने व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि की स्थापना में भी वे पूर्णतया सफल हुए। वस्तुतः अज्ञेय ने 'व्यक्ति-वैचित्र्यवाद' को अपने उपन्यासों का सिर्फ मूल आधार ही नहीं बनाया है बल्कि उसे सम्पूर्णता में स्थापित करने में भी सफलता पायी है। यही कारण है कि वे अपने बहुरंगी, वैचित्रपूर्ण पात्रों के आन्तरिक जीवन की गुत्थियों, उलझनों, संघर्षों, अभावों एवं सपनों को उपन्यासों में बड़े मनोयोग से चित्रित करते है। 'शेखर : एक जीवनी' तथा 'नदी के द्वीप' उनके 'व्यक्त-वैचिव्यवाद' को स्थापित करते दिखाई देते हैं। शेखर : एक जीवनी में शेखर एक ऐसे व्यक्ति के रूप में सामने आता है जिसके हृदय में अहं एवं काम की प्रवृत्तियाँ घर किये बैठी हैं और उन्हीं से परिचालित होता हुआ वह परिवार, समाज एवं व्यवस्था के बन्धनों से विद्रोह करता है। ध्यान देने की बात है कि अडोय की दृष्टि में शेखर का 'अहं हेय नहीं है, निन्दा के योग्य नहीं है, अवांछित नहीं है। इसीलिए वे शेखर के 'अहं के विकास की हर एक सीढ़ी का कथात्मक चित्रण करते हैं। जिसमें वे उसके बचपन से लेकर कौमार्य एवं यौवन काल से जुड़े अनेकानेक स्थिति-परिस्थितियों का सूक्ष्म चित्रण करते हैं। 'शेखर का विद्रोह सिर्फ शेखर का विद्रोह नहीं है बल्कि यह अज्ञेय का अपना विद्रोह है जो उनकी विचारधारा, उनकी सोच, उनकी दृष्टि से जन्मी है। अज्ञेय अपने पूर्ववर्ती या समकालीन मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की भाँति न तो 'अहं को उखाड़ फेंकने की बात करते हैं, न उसके शमन की बात करते हैं बल्कि उसके विकास के बीच ही मानव-व्यक्तित्व को बनते-बिगड़ते दिखाते हैं और इसे वे उसका स्वाभाविक विकास मानते हैं। अज्ञेय का दृष्टिकोण स्पष्ट है। वे शेखर के विद्रोह को स्वाभाविक मानते हैं। वे शेखर से कहलवाते भी हैं कि- "मुझे विश्वास है कि विद्रोही बनते नहीं, उत्पन्न होते हैं। विद्रोह-बुद्धि परिस्थितियों से संघर्ष की सामर्थ्य, जीवन की क्रियाओं से, परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से, नहीं निर्मित होती। वह आत्मा का कृत्रिम परिवेष्टन नहीं है, उसका अभिन्नतम अंग है।"

'नदी के द्वीप' पर भी हम जब दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि इसमें भी अज्ञेय ने प्रणय-व्यापार, मुक्त भोग और स्वेच्छाचारिता को जन्म देने वाली मानव-मन की काम-प्रवृत्ति को ही केन्द्र में रखा गया है। रेखा और भुवन उपन्यास के केन्द्र में है। उनके पारस्परिक आकर्षण-विकर्षण से उत्पन्न होने वाली मानव-मन की द्वन्हात्मक स्थिति का अज्ञेय सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं। इसमें भाग्यवाद एवं दुखवाद की स्थिति को डालकर वे मानव-जीवन की विवशता को भी रेखांकित करते हैं। वस्तुतः यही पर अज्ञेय ने मानव-मन की आकांक्षाओं के द्वीपों को बनते-बिगड़ते दिखाया है और उसके माध्यम से उन्होंने नियति की शक्ति तथा मानव की असहायता को भी चित्रित किया है। लेकिन इन सारे चित्रणों के बीच फ्रायडीय मनोविज्ञान का प्रभाव स्पष्ट झलकता दिखाई देता है।

6.2.2 अस्तित्ववाद और अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि

अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन से भी प्रभावित है। अस्तित्ववाद आधुनिक युग का नवीन जीवन-दर्शन है जो ईश्वर के अस्तित्व में नहीं बल्कि मानव के

अस्तित्व पर विश्वास करता है। इसके अन्तर्गत 'क्षण' का वैशिष्ट्य है इसीलिए 'क्षणवाद' उसका विशिष्ट सिद्धान्त बन गया। अस्तित्ववाद मुख्य रूप से एक दार्शनिक चिन्तन प्रणाली है और साहित्यकार इस चिन्तन प्रणाली से काफी प्रभावित भी हुए हैं। अस्तित्ववाद का प्रवर्तक कीर्केगार्ड प्रसिद्ध दार्शनिक हीगल का कट्टर विरोधी था। हीगेल के दर्शन में व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा उसके स्वतन्त्र प्रयन्तों के लिए कोई स्थान नहीं था। इस प्रकार कीर्केगार्ड का अस्तित्ववाद हीगल के समष्टिवाद के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में सामने आता है। दर्शन के क्षेत्र में अस्तित्ववाद के दो प्रवक्ता - कीर्केगार्ड एवं हेडगर रहे हैं। इन दोनों ने आस्तिक एवं नास्तिक अस्तित्ववादियों की दो शाखाओं का सूत्रपात किया। आगे इसी परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने में यास्पर्श, कापका, ज्यॉपाल सार्त्र आदि ने अपनी विशेष कुमइका निभायी है। सार्त्र एवं अलेयर कामू आदि ने साहित्य के क्षेत्र में इसे स्थापित एवं विकसित करने का उल्लेखनीय कार्य किया है। अनेक विद्वानों के अनुसार अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन एक आत्मोन्मुखी, आतभोगी, अराजकतावादी एवं असामाजिक जीवन-दर्शन है। घोर व्यक्तिवादिता ही इस दर्शन का मूल है। तात्पर्य यह है कि इसका मुख्य लक्ष्य एवं प्रधान तत्व मनुष्य का 'अस्तित्व' है। प्रसिद्ध अस्तित्ववादी ज्यापॉल सार्त्र की विचारधारा मनुष्य के 'अस्तित्व को ही अपना मूल आधार बनाकर चली है। सार्त्र के अनुसार मनुष्य अपनी इच्छाओं तथा निर्णयों के निर्धारण में पूर्णतया स्वतन्त्र है। वह अपनी इच्छाओं तथा निर्णयों के लिए किसी अन्य संस्था अथवा व्यक्ति के प्रति उत्तरदायी नहीं होता बल्कि वह स्वंय अपने प्रति उत्तरदायी होता है। तात्पर्य यह कि मनुष्य पूर्णरूपेण स्वतन्त्र है इसलिए वह अपने को जैसा बनायेगा, वैसा ही बनेगा और वह अपने को जैसा बनायेगा, वही उसका चरम रूप भी होगा। इसके अतिरिक्त वह और कुछ हो ही नहीं सकता। इस प्रकार अस्तित्ववाद व्यक्तिगत जीवन या अस्तित्व का दर्शन है। अस्तित्ववाद की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए कहा जाता है कि- अस्तित्ववाद की दृष्टि में मनुष्य का अस्तित्व ही प्रमुख है; मनुष्य का मापदण्ड स्वयं मनुष्य है इसलिए उसके समान कोई दूसरा नहीं है; मनुष्य अपना निर्माण स्वयं करता है और यह निर्माण की प्रक्रिया हर क्षण चलती रहती है इसलिए उसमें संभावना हमेशा बनी रहती है; अकेलापन, दुश्चिन्ता और मृत्यु-बोध निरन्तर मनुष्य के साथ रहते हैं। सच तो यह है कि अस्तित्ववादी मनुष्य को खण्ड रूप में नहीं बल्कि सम्पूर्ण रूप में देखता है तथा सामाजिक, नैतिक या अन्य किसी तरह के बन्धनों का उसके लिए कोई मूल्य नहीं है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि अस्तित्ववाद मूलत: व्यक्तिवादी चेतना है, व्यक्तिवादी दर्शन है।

पूरे के पूरे प्रयोगवाद पर अस्तित्ववादी दर्शन की छाया दिखाई देती है। क्षण की महत्ता, दुश्चिन्ता, मृत्युबोध, व्यक्तिवादिता, व्यथा-बोध, अवसाद, कुंठा, अकेलापन जैसी प्रवृत्तियाँ अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव से ही परिलक्षित होती हैं।

अज्ञेय के तीसरे उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' पर अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। यह 'मृत्यु से साक्षात्कार' का आख्यान है। यहाँ वो सभी प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं जो अस्तित्ववादी जीवन-दृष्टि से जन्म लेती हैं। यहाँ अकेलापन है, अजनबीपन है, मृत्यु-बोध है, व्यथा-बोध है, दुश्चिन्ता है। निस्सन्देह अज्ञेय

यही पर अस्तित्ववाद से प्रभावित दिखाई देते हैं। भारतभूषण अग्रवाल का कहना ठीक ही है कि- "मृत्यु को केन्द्र में रखकर अस्तित्ववादी पद्धति पर उपन्यास लिखने का प्रयास हिन्दी में सर्वप्रथम अज्ञेय ने ही किया।"

6.2.3 प्रतीकात्मक प्रयोग और अहोय की औपन्यासिक दृष्टि

कविता पर बात करते समय अज्ञेय ने अनेक बार प्रतीक-प्रयोग की महत्ता को प्रतिपादित किया है। अपने गद्य-लेखन में भी वे प्रतीकात्मक प्रयोगों पर बल देते हैं क्योंकि उनका मानना है कि प्रतीकात्मक प्रयोग अर्थ को विश्लेषित करते हैं, संप्रेषण में सहायक बनते हैं तथा कृति को कलात्मक रूप देते हैं। अज्ञेय का दूसरा उपन्यास 'नदी के द्वीप' का नामकरण प्रतीकात्मक है। इसके नामकरण ने उपन्यास के कथानक को, उसके विषय को खोलकर रख दिया है। उपन्यास की प्रतीकात्मकता को अज्ञेय ने रेखा के कथन में स्पष्ट भी किया है। रेखा भुवन से कहती हैं- "मैं तो समझती हूँ हम अधिक-से-अधिक इस प्रवाह में छोटे-छोटे द्वीप हैं, उस प्रवाह से घिरे हुए भी, उससे कटे हुए भी, भूमि से बँधे और स्थिर भी, पर प्रवाह में सदा असहाय भी - न जाने कब प्रवाह को एक स्वैरिणी लहर आकर मिटा दे, बहा ले जाय, फिर चाहे द्वीप का फूल-पत्ते का आच्छादन कितना ही सुन्दर क्यों न रहा हो।" इस प्रकार अज्ञेय ने माना है कि मानव-जीवन दुःखपूर्ण है लेकिन उसमें सुख के क्षण भी द्वीप के समान है। दुःख की धारा का कोई अन्त नहीं पर सुख के द्वीप का सहारा तो रहता ही है। मानव जीवन के सुख-दुःख से युक्त असहायता, विवशता, सफलता आदि को अज्ञेय ने यहाश प्रतीकात्मक रूप में उभारने में सफलता पायी है।

अज्ञेय के उपन्यासों पर विचार करने से पूर्व एक बात स्पष्ट हो चुकी है कि अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से भिन्न धरातल पर खड़ी है। वे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सृजन करते हैं लेकिन उनके उपन्यास अपने पूर्ववर्ती मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से भिन्न एवं अलग धरातल पर खड़े दिखाई देते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि फ्रायडीय मनोविज्ञान की सहायता लेने, उसे आधार रूप में स्वीकार करने के बावजूद उन्होंने उसे नयी दृष्टि से, नयी सोच के साथ प्रस्तुत किया है। यह भी स्पष्ट हो चुज्ञेय की रचनादृष्टि के निर्माण में, उसे दिशा देने में सार्त्र के अस्तित्ववादी दर्शन की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। हम कह सकते हैं कि अज्ञेय के उपन्यासों का उधेय-पक्ष फ्रायडीय मनोविज्ञान और सार्त्र के अस्तित्ववाद के सिद्धान्तों के आधार पर निर्मित हुआ है लेकिन अज्ञेय का चिन्तन-पक्ष कहीं भी गौण नहीं हुआ है इसीलिए उनके उपन्यासों में उनके चिन्तन को, उनके विचारों को, उनकी सोच को और उनकी पक्षधरता को भी देखा जा सकता है जहाश वे व्यक्तिवादी के रूप में भी सामने आते हैं, नियतिवादी के रूप में भी सामने आते हैं लेकिन उनके उपन्यास व्यक्ति तक सीमित नहीं है। उनकी वैयक्तिकता की परिधि भी व्यापक है। उसमें विवेक-सम्मत व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की चाहत है।

6.3 अज्ञेय के उपन्यास : एक सर्वेक्षण

अज्ञेय के तीनों उपन्यास - 'शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' अपने-अपने स्तर पर अपनी विशिष्टताओं के साथ सामने आते हैं। 'शेखर एक जीवनी' अज्ञेय का पहला उपन्यास है जिसे हम एक सशका एवं प्रौढ़-रचना कह सकते हैं। पूरी-की-पूरी कृति 'फ्लैश बैक' में लिखी गई है। अज्ञेय को हिन्दी उपन्यासकारों में इसीलिए महत्त्वपूर्ण स्थान हासिल है क्योंकि वे सामाजिक स्थिति को चित्रित करने वाले एक कुशल कलाकार तो हैं ही साथ ही मनोविज्ञान की बारीकियों को तलाशने वाले खोजी भी हैं। 'शेखर एक जीवनी' में जहाश एक ओर नयी दृष्टि का उन्मेष मिलता है, फ्रायडीय मनोविज्ञान के न मालूम कितने पक्ष मिलते हैं, अनेकानेक प्रेरणाओं से विकसित चरित्र का विकास मिलता है वहीं उनके दूसरे उपन्यास 'नदी के द्वीप' में प्रेम, यौन, तृप्ति एवं विवाह की समस्या को केन्द्र में रखा गया है। इस उपन्यास के पात्र भुवन हो या रेखा या गौरा, वे सबके सब सामाजिक मान्यताओं में तटस्थ रहते हैं लेकिन पारम्परिक जीवन-व्यवस्था से अलग, सामाजिक रूढ़ियों एवं वर्जनाओं से मुक्ति के भाव के साथ ये अपनी प्रवृत्ति के अनुसार आचरण करते हैं। ये अपनी वर्जनाओं, सामाजिक नियमों एवं बन्धनों से प्रेरणा लेते हैं और जीवन की नवीन दिशा की ओर संकेत करते हैं। 'अपने-अपने अजनबी' अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है जो पूर्ववर्ती दोनों उपन्यासों से भिन्न धरातल पर खड़ा दिखाई देता है। इसके पात्र और परिस्थिति दोनों विदेशी है। चिन्तन के धरातल पर भी यह भारतीयता से कोसों दूर है। इस पर अस्तित्ववादी दर्शन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। 'मृत्यु से साक्षात्कार इस उपन्यास का मुख्य विषय है। यह उपन्यास यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि मृत्यु से साक्षात्कार करने के साथ ही प्रियजन भी अजनबी हो जाते हैं और अजनबी अपने से लगने लगते हैं। वस्तुतः इस उपन्यास में अज्ञेय ने 'मृत्यु से साक्षात्कार को उपन्यास का विषय बनाकर मानव के जीवन और उसकी नियति का विवेचन-विश्लेषण किया है। निस्सन्देह इस उपन्यास में दार्शनिक व्याख्या की अधिकता है जबकि तमाम मौलिकताओं के बावजूद औपन्यासिकता का अभाव है। आइए इन तीनों उपन्यासों पर अलग-अलग रूपों में भी विचार कर लें।

6.3.1 शेखर : एक जीवनी

'शेखर : एक जीवनी अज्ञेय की प्रथम एवं श्रेष्ठ रचना है। हिन्दी उपन्यास-जगत् में यह अपने विशाल कलेवर एवं बहु आयामी रूप के कारण भी श्रेष्ठ है। 'शेखर एक जीवनी के दो भाग हैं। पहला भाग 'उत्थान' के रूप में है और दूसरा भाग-संघर्ष के रूप में है। पहले भाग के अन्तर्गत 'प्रवेश' के अतिरिक्त क्रमशः चार खण्ड- उषा और ईश्वर; बीज और अंकुर; प्रकृति और परिस्थिति; बन्धन और जिज्ञासा; शशि और शेखर; धागे, रस्सियाँ, गुंझर। वस्तुतः शेखर एक जीवनी को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखें तो नये उत्थान की ओर संकेत करता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ठीक ही कहा है कि - " 'शेखर ने हिन्दी उपन्यास की सर्वथा नवीन सम्भावनाओं को छुआ। उपन्यास के भावबोध तथा शिल्प दोनों ही दृष्टियों से इस कृति ने पाठकों तथा समीक्षकों में एक नयी चेतना का संचार

किया है। समाज की विभिन्न भावभूमियों से सम्पर्कित होकर शेखर का व्यक्तित्व तथा उसकी एकान्त वेदना मानों चेतना तथा अर्द्ध चेतन मन के विकास का आख्यान है।

कहा जाता है कि शेखर एक जीवनी पर रोमा रोलॉ के ज्याँ क्रिस्तोफ का प्रभाव है। दोनों के कथानायकों में काफी कुछ समानता मिलती है लेकिन वे प्रेरणा को तो स्वीकार करते हैं लेकिन प्रभाव को 'आत्मनेपद' में सिरे से नकारते हैं। वे लिखते हैं कि - "ज्यॉ क्रिस्तोफ के अनवरत आत्मशोध और आत्मसाक्षात्कार का जो चित्र रोली ने प्रस्तुत किया है, उससे मुझे अवश्व प्रेरणा मिली। लेकिन न तो 'शेखर' उपन्यास 'ज्यॉ क्रिस्तोफ जैसा उपन्यास है, न शेखर पात्र वैसा पात्र है। समानता इतनी ही है कि जैसे क्रिस्तोफ में लेखक एक आत्मान्वेषी के पीछे उसका चित्र खींचता चला है, वैसे ही मैं एक दूसरे आत्मान्वेषी के पीछे चला हूँ।

वस्तुत: 'शेखर : एक जीवनी' एक आत्मकथात्मक उपन्यास है। कभी-कभी यह अज्ञेय की आत्मकथा-सी लगने लगती है। रचनाकार को भी इस बात का एहसास था इसीलिए उसने 'भूमिका' में लिखा है - "क्या यह 'जीवन आत्म-जीवनी है? यह प्रश्न अवश्य पूछा जाएगा। बल्कि शायद पूछा भी नहीं जाएगा, क्योंकि पाठक पूर्ण-धारणा बनाकर चलेगा। हिन्दी में जहाँ प्रत्येक कवि अपनी स्त्री को लक्ष्य करके लिखता है। जहाँ वियोग की कविता इतने भर से प्रमाणित मान ली जाती है कि उसे अमुकजी ने अपनी पत्नी के देहान्त के बाद लिखा है, वहाँ यह आशा करना व्यर्थ है कि 'शेखर' जो केवल एक जीवनी ही नहीं, एक व्यक्ति की अपने मुँह कही हुई जीवनी है, उसके लेखक की जीवनी नहीं मान ली जायेगी।"

'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास का केन्द्रीय पात्र शेखर है। सारी-की-सारी कथा उसी के इर्द-गिर्द घूमती है। इसके प्रथम भाग में शेखर की बाल-सुलभ जिज्ञासाएँ एवं क्रियाकलाप देखने को मिलते हैं। शेखर एक क्रान्तिकारी विद्रोही है। उसे फाँसी की सजा हुई है। वह जीवन की अन्तिम रात में अपने समूचे अतीत का एक बार पुन: पुनरावलोकन कर लेना चाहता है। समूचे उपन्यास की कथा शेखर के अतीत से जुड़ी है जिसका वह पुनरावलोकन करता है। उसी के शब्दों में प्रत्यावलोकन करता है। यह स्पष्ट हो चुका है कि फ्रायडीय मनोविज्ञान की दृष्टि में अहंता, भय और सेक्स वे तीन महत्त्वपूर्ण तत्व है जो मानव-जीवन को अनुशासित करते हैं, नियंत्रित करते हैं और रचनाकार की दृष्टि में 'मानव इन्हें अपनी मानवता के साथ ही पाता है, बाद की परिस्थिति या व्यवहार से नहीं।" और यह भी एक तथ्य है कि ये ही तीन मूलभूत प्रवृत्तियाँ है जो धीरे-धीरे व्यक्ति के व्यक्तित्व में अन्तर्विरोध उत्पन्न कर उसे खण्डित करती हैं तथा मनुष्य को मानवता के विरूद्ध आचरण करने की प्रेरणा देती है। 'अहं' उसी का एक रूप होता है। शेखर भी एक अहंवादी व्यक्ति है। वह हर एक सामाजिक बन्धन के प्रति विद्रोह करता है। बाल्यावस्था से ही वह छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर विद्रोही बनता जाता है और उसके अहं भाव का तीव्र रूप में विकास होता जाता है। जहाँ एक ओर माँ-बाप के अनेकानेक व्यवहार अपने-अपने ढंग से उसके 'अहं को तीव्र कर उसमें विद्रोह एवं घृणा की भावना को प्रबल बनाते हैं वहीं दूसरी ओर उसका तीव्र अहं भाव ही समाज, परिवार तथा शासन के प्रति विद्रोह का कारण बनता है। वह हर एक पुरूष से या हर एक उस व्यक्ति से जो उसके सम्पर्क में

आता है उससे मन-मर्यादा की आकांक्षा करता है और सम्पर्क में आने वाली हर एक स्त्री से प्रेम-भाव या समर्पण की चाहत रखता है। उसके जीवन-सम्पर्क में अनेक स्त्रियाँ आती हैं। उसकी बहन सरस्वती, शशि, शारदा, शान्ति आदि। लेकिन शशि में ही उसको अपनी सार्थकता दिखाई देती है। शशि मृत्यु के बाद भी उसके लिए प्रेरणा देने वाली है। इसीलिए वह सबसे पहले शशि को ही याद करता है। इसलिए भी क्योंकि वह शशि ही है जो उसमें जीवन के प्रति, रचना के प्रति एक नई आस्था जन्म देती है। इसमें कोई दो राय नहीं कि 'शेखर : एक जीवनी की सफलता एवं विशिष्टता का एक आधार शशि और शेखर का पावन-प्रणय भी है।

शेखर की एक उल्लेखनीय विशेषता है- उसके भीतर का जिज्ञासा-भाव। यह जिज्ञासा का भाव ही उसे विद्रोह, अहं, बौद्धिकता तथा यौन-भावना की कुंठा से अलग यथार्थ के धरातल पर खड़ा करता है। इसमें ईश्वर, मानव-जन्म, निजी अस्तित्व तथा दूसरों की अन्तरात्मा को समझने तथा उनके विवेचन-विश्लेषण के भाव को मनोवैज्ञानिक धरातल पर देखा, परखा और चित्रित किया गया है। शेखर का अपना अनुभव है, उन्हीं अनुभवों के बीच वह अपने को नियतिवादी पाता है। उसकी दृष्टि में- 'मैं नहीं मानता कि दैव कुछ है, क्योंकि हममें कोई बाध्यता है, तो वह बाहरी नहीं, भीतरी है। यदि बाहरी होती, परकीय होती, तो हम उसे दैव कह सकते, पर वह तो भीतरी है, हमारी अपनी है। उसे हम व्यक्तिगत नियति कह सकते हैं। " 'शेखर : एक जीवनी की भूमिका में भी अज्ञेय ने स्वीकार किया है कि- " 'शेखर : एक जीवनी' के क्रान्तिकारी नायक ने अपने जीवन में इसी नियति के सूत्र को पहचानने का प्रयत्न किया है। क्योंकि उसे पहचान लेना ही जीवन को समझ लेना है, उसकी पूर्ति पा लेना है। ' वस्तुत: शेखर एक जीवनी में नियति के सूत्रों की खोज की गई है तथा उन्हीं का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। यों शेखर हमें घोर व्यक्तिवादी लगता है। एक स्तर पर वह है भी। लेकिन हम देखते हैं कि अनेकानेक सामाजिक संदर्भों में वह व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की रक्षा करता हुआ निरन्तर सामजस्य स्थापित करने की कोशिश करता है। यह बात दूसरी है कि उसके भीतर निहित 'अहं एवं 'विद्रोह' के भाव के चलते इस प्रक्रिया में बाधा भी पड़ती है। लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं कि उसका 'अहं भाव उसे तोड़ता नहीं बल्कि आत्म-विकास की ओर ले जाता है और इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि यह सच्चे अर्थों में स्वातन्त्र्य की खोज है। 'आत्मनेपद' में अज्ञेय ने स्वयं भी लिखा है कि - 'शेखर की खोज अनन्तोगत्वा स्वातन्त्र्य की खोज है - या हो, ऐसा उसके लेखक का प्रयत्न रहा है। "

6.3.2 नदी के द्वीप

'नदी के द्वीप' अज्ञेय का दूसरा उपन्यास है जिसने अज्ञेय के उपन्यासकार व्यक्तित्व को और अधिक सशक्त बनाया है। प्राय: सभी आलोचकों ने इसकी कला की, इसके शिल्प की तारीख की है। जहाँ तक उपन्यासों के सिद्धान्त की बात है उसमें प्राय: मतभेद देखने को मिलता है। 'नदी के द्वीप की कथा चार प्रमुख पात्रों - भुवन, रेखा, चन्द्र माधव और गौरा के इर्द-गिर्द घूमती है। चारों पात्र परिवेश एवं परिस्थिति का प्रत्यावलोकन अपनी-अपनी दृष्टि से करते हैं। यह मूलत: एक प्रणय-कथा है। डॉ. भुवन एक वैज्ञानिक है। वे

रेखा से प्रेम करते हैं। रेखा- पति-परित्यक्ता है। गौरा भुवन की शिष्या है। चन्द्र माधव एक पत्रकार है जो अपनी पत्नी को नहीं चाहते, लेकिन वह रेखा और गौरा दोनों के प्रति आकृष्ट है। ठीक इसके विपरीत रेखा और गौरा दोनों भुवन की ओर आकृष्ट हैं। जीवन के घातों-प्रतिघातों के बीच भुवन और रेखा की प्रगाढ़ता बढ़ती है। दोनों के प्रेम की प्रगाढ़ता चरम पर पहुँच जाती है फलस्वरूप रेखा गर्भवती हो जाती है। लेकिन गर्भस्थ शिशु को संसार में नहीं आने दिया जाता। यही वह मोड़ है जहाँ से रेखा और भुवन के बीच दूरियाँ बनती हैं। रेखा टूटने-सी लगती है। और अन्त में वह भुवन का विवाह गौरा से करा देती है।

वस्तुत: उपन्यास में मध्यवर्गीय कुंठित जीवन को जीने वाले पात्र हैं। भुवन का व्यक्तित्व एक आत्मकेन्द्रित व्यक्ति के व्यक्तित्व के रूप में सामने आता है। अज्ञेय यहाँ पर मानव-मन की बारीक पर्तों को खोलने में जरूर सफल हुए हैं लेकिन इसमें अज्ञेय का व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन ही प्रतिफलित हुआ है। इसे 'शेखर एक जीवनी का विस्तार कहा जा सकता है। 'शशि और शेखर' से अज्ञेय जो नहीं करा पाये थे उसे वे भुवन, रेखा, गौरा के द्वारा करवाने में सफल होते हैं। माना जाता है कि " 'शशि का व्यक्तित्व दो खण्डों में विभाजित होकर 'गौरा' और 'रेखा' के रूप में ढल जाता है। शशि का एक खण्ड और अधिक परिपक्व और अधिक तेजस्वी, और अधिक प्रकाशयुक्त बनकर 'रेखा' बन जाता है और दूसरा खण्ड और अधिक शालीन, और अधिक समर्पणशील और अधिक निष्ठावान बनकर 'गौरा' बन जाता है। सच यही है कि इसमें कोई दर्शन नहीं है। सिर्फ कुछ द्वीप हैं जो धारा से कटे हुए हैं।" 'नदी के द्वीप' की व्याख्या करते हुए डॉ. देवराज ने ठीक दृष्टिगत होता है।"

भुवन का चरित्र रेखा की पीड़ा और गौरा की सहन शक्ति के सहारे पूर्णता प्राप्त करता है। भुवन के विवाह-प्रस्ताव के उत्तर में रेखा का यह कथन रेखा को अतिमानवीय बना देता है - "मैंने तुमसे प्यार माँगा था, तुम्हारा भविष्य नहीं माँगा था, न मैं वह लूँगी।" भगवत शरण उपाध्याय इसीलिए कहते हैं कि - "रेखा 'नदी के द्वीप' की अक्षय कीर्ति है। समाज की वह नहीं है, साधारण समाज की। परन्तु जो है शक्तिम है।"

सच तो यह है कि चरित्रों के मानसिक घातों-प्रतिघातों के बीच ही कथा का कैनवास बनता और बढ़ता है लेकिन रेखा की 'भ्रूण हत्या' जैसे कार्यो के चलते इसके समाज-विरोधी स्वरूप की आलोचना भी खूब हुई है। लोगों ने इसे आत्मकेन्द्रित, असाधारण व्यक्तियों की अनुभूतियों को घात-प्रतिघात की कथा के रूप में मानते हुए इसे सीमित एवं समाज-निरपेक्ष भी माना है। लेकिन व्यापक अर्थो में देखें तो यहाँ भी अज्ञेय व्यक्तित्व की रचना का ही प्रयास करते दिखाई देते हैं। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी की दृष्टि में - "पीड़ा और प्रेम के माध्यम से - जो मानवीय चरित्र के विशिष्ट अंग हैं - और उनसे व्युत्पन्न सर्जनात्मक ऊर्जा के बीच से व्यक्तित्व की परिपूर्णता स्वायत्त करने की चेष्टा अज्ञेय के उपन्यासों की मूल वस्तु है।" कहना न होगा कि यही दृष्टि 'नदी के द्वीप' में भी देखने को मिलती है।

6.3.3 अपने-अपने अजनबी

'मृत्यु से साक्षात्कार- को केन्द्र में रखकर लिखा गया अज्ञेय का तीसरा उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' को हिन्दी में सर्वथा नये प्रकार का उपन्यास होने का गौरव प्राप्त है। इसमें अज्ञेय की रचना-प्रक्रिया का एक भिन्न रूप दृष्टिगत होता है। उपन्यास में स्वतंत्रता, वरण, विसंगति, मृत्युबोध आदि शब्द हैं जो अस्तित्ववादी चिन्तन से जुड़े हुए हैं। इस उपन्यास के अंतर्गत अज्ञेय ने जीवन पर मृत्यु के शासन को ही प्रदर्शित किया है। सच तो यही है कि 'मृत्यु से साक्षात्कार' का यह आख्यान किसी भी धरातल पर जीवन की अर्थवत्ता को परिभाषित नहीं करता। उपन्यास के तीन खण्ड हैं-पहला सेल्मा और योके, दूसरा सेल्मा और तीसरा योके। यों घटनाओं के घटने के क्रम में उपन्यास का दूसरा खण्ड पहले आता है क्योंकि वह सेल्मा के जीवनवृत्त से जुड़ा होने के कारण अतीत का घटनावृत्त है। पहले खण्ड की घटनाएँ योके और सेल्मा की क्रिया-प्रतिक्रिया से जुड़ी हैं तो अंतिम खण्ड योके के दुःखद अंश से जुड़ा हुआ है। उपन्यास के कथानक में कोई क्रमबद्धता नहीं है। एक की कथा का प्रारंभ बर्फपात से होता है, दूसरे का बाढ़ की भयंकरता से और तीसरे का युद्ध की विभीषिका एवं उससे उत्पन्न त्रासद वातावरण की भयावहता से। इस प्रकार कथानक में काफी बिखराव है।

'योके' और 'सेल्मा' दो प्रमुख नारी पात्र हैं। इन्हीं के इर्द-गिर्द समूची कथा घूती है। उपन्यास के आरम्भ में ही हम देखते हैं कि बर्फ के नीचे दबकर मरने का भय 'योके के प्राणों में गहरे तक समाया है। 'न होने का बोध' ने एक आतंक के समान उसे घेर रखा है। उसके लिए मृत्यु एक झूठ है क्योंकि वह जीवन का खण्डन है। 'योके' कहती है- "मुझे तो सिखाया गया है कि ईश्वर है, इसीलिए मृत्यु नहीं है। मृत्यु केवल भ्रम है।" यह बात दूसरी है कि उसे स्वयं भी अपने कथन की विश्वसनीयता पर पूर्ण भरोसा नहीं है। सेल्मा इसका प्रतिवाद करती है। वह कहती है- "ईश्वर का नाम ले लेना तो बड़ा आसान है, लेकिन बड़ा मुश्किल भी है। और, मौत और ईश्वर को हम अलग-अलग पहचान भी तो कभी-कभी ही सकते है। बल्कि शायद मन के ईश्वर को तब-तक पहचान ही नहीं सकते जब तक मृत्यु में ही उसे न पहचान लें।.. भ्रम की क्या कम ईश्वर है? और ईश्वर की कौनसी पहचान हमारे पास है जो भ्रम नहीं है? जब ईश्वर पहचान से परे है तो कोई भी पहचान भ्रम है।"

सेल्मा की मौत योके के मृत्युबोध को और गहरा करती है। रचनाकार ने लिखा है कि- "एकाएक योके को लगा कि वह गंध और कहीं से नहीं आ रही है, उसी में है-उसकी देह में से आ रही है!... केवल मृत्यु की प्रतीक्षा-मरने की प्रतीक्षा, सड़ने और गंधाने की प्रतीक्षा।.. वह गंध पहले ही सब जगह और सबकुछ में है और हम सर्वदा मृत्युगंध से गंधाते रहते हैं।" अंततः वह मरने में ही अपनी स्वतंत्रता चुन पाती है। उपन्यास में बार-बार इस बात पर जोर दिया गया है कि अपने को स्वतंत्र मानना ही सब कठिनाइयों की जड़ है। क्योंकि "वरण की स्वतंत्रता कहीं नहीं है, हम कुछ भी स्वेच्छा से नहीं चुनते।"

निस्संदेह 'मृत्यु से साक्षात्कार' का यह उपन्यास मनुष्य की दीनता और असहायता का आख्यान बनकर रह गया है। हम कह सकते हैं कि 'अपने-अपने अजनबी' का कथावृत

असामान्य, विशिष्ट और यूरोपीय है। इसे हम चरित्र केन्द्रित उपन्यास भी कह सकते हैं। उपन्यास में असामान्य घटनाएँ हैं लेकिन वे घटनाएँ भी चरित्रों की मानसिकता के निर्माण में सिर्फ योग देती हैं। उन्हें गतिशील नहीं बनाती। उपन्यास में चरित्रों के अंतर्द्वन्द्व और विरोधी विचारों की टकराहट की प्रधानता है। उपन्यास के विचारसूत्र स्वयं ही उसको अस्तित्ववादी उपन्यास का रूप देते हैं।

हम कह सकते हैं कि 'अपने-अपने अजनबी' का विषय, उसकी परिस्थिति तथा उसके चरित्र तीनों असाधारण हैं। और इसी असाधारण विषय, परिस्थिति और चरित्रों की रचना के माध्यम से अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन पर आधारित हिन्दी का यह पहला प्रयोगधर्मी लघु उपन्यास है। अकेलेपन एवं अजनबीपन की पहचान की दृष्टि से उपन्यास सशक्त एवं समर्थ है तथा बौद्धिक दायित्व का निर्वहन करता दिखाई देता है।

6.4 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि अज्ञेय कविता के ही समान उपन्यास-लेखन में भी एक प्रयोगधर्मी उपन्यासकार के रूप में दृष्टिगत होते हैं। अज्ञेय का बहुमुखी व्यक्तित्व हमेशा अन्वेषी रहा है। 'शेखर' भी उनके अन्वेषी व्यक्तित्व का ही प्रतिफलन है। उन्होंने अपने उपन्यासों में संगठित मानव-व्यक्तित्व की सर्जना के सवाल को गहराई से उठाया है। उनके उपन्यासों पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद एवं सार्त्र के अस्तित्ववाद की गहरी छाप दिखाई देती है। लेकिन यह भी स्पष्ट होता है कि फ्रायडीय मनोविज्ञान तथा अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित होते हुए भी अज्ञेय अपने उपन्यासों में उसको नई व्याख्या के साथ नये संदर्भो के साथ प्रस्तुत करते हैं। और यहीं पर आकर हम उनकी बौद्धिक दृष्टि का अवलोकन करते हैं, उनके विचार एवं चिन्तन की दिशा से साक्षात्कार करते हैं। 'शेखर : एक जीवनी' से लेकर 'अपने-अपने अजनबी' तक की यात्रा में उनके अनुभवों, अनुभुतियों तथा संवेदनाओं में निरंतर परिवर्तन लक्षित होता रहा है। उनका संवेदनशील व्यक्तित्व निरंतर नये मूल्यों, नई दृष्टियों तथा नये आयामों को तलाशता रहा है-एक अन्वेषी के रूप में। यही कारण है कि जहाँ 'शेखर : एक जीवनी' का 'नदी के द्वीप' में विस्तार दिखाई देता है वही 'अपने-अपने अजनबी' की भावभूमि दोनों से भिन्न दिखाई देती है। अपनी संवेदना तथा भाषिक सर्जनात्मकता की गहराई के कारण अज्ञेय के ये तीनों उपन्यास उपन्यास-जगत में मील के पत्थर के समान हैं।

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अज्ञेय की औपन्यासिक दृष्टि पर प्रकाश डालिए।
2. 'अज्ञेय के उपन्यासों पर फ्रायडीय मनोविज्ञान का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
3. 'नदी के द्वीप' उपन्यास की प्रतीकात्मकता पर प्रकाश डालिए।
4. 'अपने-अपने अजनबी' उपन्यास के मूल प्रतिपाद्य प्रस्तुत कीजिए।

6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी; अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या

2. डॉ. रामकमल राय; अज्ञेय : सृजन और संघर्ष
3. डॉ. इन्द्रनाथ मदान; आज का हिन्दी उपन्यास
4. डॉ. देवीशंकर अवस्थी (संपा.); विवेक के रंग
5. अज्ञेय; आत्मनेपद

इकाई-7 शेखर : एक जीवनी : संवेदना एवं शिल्प

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 शेखर : एक जीवनी : संवेदना के विविध रूप
7.3 शेखर : एक जीवनी : शिल्पगत धरातल
7.4 सारांश
7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न
7.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत छात्र अज्ञेय की औपन्यासिक कृति 'शेखर : एक जीवनी' के कथ्य एवं शिल्प के विषय में जानेंगे। इस अध्ययन से आप -

- 'शेखर : एक जीवनी' की कथावस्तु का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- इस उपन्यास को एक सशक्त मनोवैज्ञानिक उपन्यास मानने के कारण जान सकेंगे।
- 'शेखर एक जीवनी' में चित्रित सामाजिक परिवेश, धार्मिक परिवेश एवं राजनीतिक परिवेश को भी समझने की कोशिश कर सकेंगे।
- इसके उद्देश्य पक्ष की भी जानकारी ग्रहण कर सकेंगे।
- संवेदना से जुड़े अनेक पक्षों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- शिल्प-पक्ष को 'शेखर : एक जीवनी' के कथा-शिल्प, चरित्र-चित्रण, एवं उपन्यास की भाषा के संदर्भ में समझ सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना :

अज्ञेय की औपन्यासिक रचना दृष्टि की पड़ताल की जा चुकी है। उनके वैचारिक चिन्तन का बोध आपको हो चुका है। आप जब तक यह जान चुके हैं कि अज्ञेय अपने समकालीन उपन्यासकारों के बीच सबसे अलग खड़े दिखाई देते हैं। वस्तुतः अज्ञेय के पूर्ववर्ती मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने अपने पात्रों की द्वन्द्वात्मक वृत्ति को तो महत्त्व दिया लेकिन उनका द्वन्द्व, उनका संघर्ष सार्थक वैचारिक स्तर पर ही दिखाई देता है संवेदना और अनुभूति के स्तर पर उनका द्वन्द्व, उनका संघर्ष सार्थक रूप में, सशक्त रूप में प्रतिफलित होता दिखाई नहीं देता है। वे प्रेम एवं विवाह की समस्या को लेकर आते हैं, सामाजिक परिवेश एवं उसमें स्त्री-पुरूष के संबंध को लेकर आते हैं, उनकी दुविधाओं को भी लेकर आते हैं लेकिन उन्हें संस्कारों से विलग नहीं कर पाते हैं। अज्ञेय एक ऐसे उपन्यासकार के रूप में हमारे सामने आते हैं जिन्होंने रचनात्मक स्तर पर इस चुनौती को स्वीकारा है तथा अपने उपन्यासों में संवेदना के स्तर पर उसे रचा भी है। 'नदी के द्वीप' की रेखा, शेखर एक जीवना का 'शेखर' उनकी चुनौती के आधार हैं, उनकी संवेदना के करीब के हैं। वे दुविधाओं में जीते भी हैं और दुविधाओं से विलग होने का सहारा भी

दिखाते हैं। 'शेखर : एक जीवनी' अज्ञेय की वह प्रौढ़ एवं सशक्त औपन्यासिक कृति है जो अपनी संवेदना और शिल्प दोनों दृष्टियों से उल्लेखनीय है।

7.2 शेखर : एक जीवनी : संवेदना के विविध रूप :

उपन्यास अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होता है। संवेदना के संस्कार से वह जीवंत बन जाता है, सशक्त बन जाता है। संवेदना शून्य में आकार नहीं ग्रहण करती है। अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थितियों-परिस्थितियों से उसका करीबी नाता होता है। अज्ञेय की संवेदना का आयाम अपने पूर्ववर्ती मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की अपेक्षा ज्यादा व्यापक है। अनेक बाहरी-भीतरी संघर्षो के पश्चात् रचनाकार की संवेदना विस्तृत आयाम को ग्रहण करती है। अज्ञेय की संवेदना द्वन्द्वों एवं संघर्षो के बीच से गुजर कर ही बहुआयामी एवं बहुस्तरीय बनती है। " 'शेखर' घनीभूत वेदना की केवल एक रात में देखे हुए तब्दीली को शब्द-बद्ध करने का प्रयत्न है। वे यह भी कहते हैं कि- "घोर यातना व्यक्ति को दृष्टा बना देती है, यहाँ यह भी कहूँ कि घोर निराशा उसे अनासक्त बनाकर दृष्टा होने के लिए तैयार करती है। मेरी स्थिति मानो भावानुभावों के घेरे से बाहर निकलकर एक समस्या-रूप में मेरे सामने आयी-अगर यही मेरे जीवन का अंत है, तो उसक जीवन का मोल क्या है, अर्थ क्या है, सिद्धि क्या है- व्यक्ति के लिए, समाज के लिए, मानव के लिए?... इस जिज्ञासा की अनासक्त निर्ममता के, और यातना की सर्वभेदी दृष्टि के आगे मेरा जीवन धीरे-धीरे खुलने लगा, एक निजी और अप्रासंगिक विसंगति के रूप में नहीं एक घटना के रूप में, एक सामाजिक तथ्य के रूप में, और धीरे-धीरे कार्य-कारण परम्परा के सूत्र सुलझ-सुलझ कर हाथ में आने लगे...।" वस्तुतः जिस मनःस्थिति में, जिस परिस्थिति में 'शेखर' का जन्म होता है-वह त्रासद है लेकिन उन्हीं त्रासद स्थितियों के बीच संवेदना के और भी न मालूम कितने तंतु उससे जुड़ते चले गये हैं। इसीलिए इसमें प्रेम की स्थितियाँ हैं, निजी तनाव हैं, दर्द, द्वन्द्व, अवसाद एवं संघर्ष के रूप हैं, राजनीतिक, सामाजिक विकृतियाँ हैं, जीवन के अनेकानेक द्वन्द्वों के बीच छटपटाती मन:स्थितियॉ हैं और इन्हीं सबके बीच जन्म लेने वाला विद्रोह का भाव है। कुल मिलाकर 'शेखर एक जीवनी' की संवेदना का ससार बहुआयामी, बहुस्तरीय एवं व्यापक फलक वाला है।

'शेखर एक जीवनी' **व्यक्ति-स्वातंत्रय बनाम व्यक्तित्व-स्वातंत्र्य** का जीता-जागता दस्तावेज है। इस उपन्यास की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा है कि- "शिशु-मानस चित्रण की सच्चाई के लिए मैंने 'शेखर' के आरम्भ के खण्डों में घटनास्थल अपने ही जीवन से चुने हैं, फिर क्रमशः बढ़ते हुए शेखर का जीवन और अनुभूति-क्षेत्र मेरे जीवन और अनुभूति-क्षेत्र से अलग चला गया है, यहाँ तक कि मैंने स्वयं अनुभव किया है कि मैं एक स्वतंत्र व्यक्ति की प्रगति का दर्शक और इतिहासकार हूँ, उसके जीवन पर मेरा किसी तरह का भी वश नहीं रहा है।" वस्तुतः 'शेखर' अज्ञेय की विचारधारा के करीब का है। अज्ञेय भी व्यक्ति-स्वातन्त्र्य पर जोर देता है। 'शेखर एक जीवनी' में अज्ञेय यद्यपि पात्रों का मनोवैज्ञानिक आधार पर विश्लेषण करने का प्रयत्न करते हैं पर उन पात्रों का स्वरूप, उनके विचार, उनके यिाकलाप व्यक्तिवादी हैं। इसीलिए वे परम्परागत पारिवारिक सीमाओं एवं मूल्यों

की सायास अवहेलना करते हैं और इसीलिए सामाजिक संस्थाओं में भी उनका कोई विश्वास नहीं है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की यह भावना ही है जिसके चलते वे मूल्यों एवं मर्यादाओं को छिन्न-भिन्न करने की प्रेरणा ग्रहण करते हैं। यह व्यक्तिवाद, वह व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का भाव, यह स्वं को ही सबसे प्रमुख मानने का भाव उन्हें आत्मकेन्द्रित बनाता है, 'अहंवादी' बनाता है और अन्ततः विद्रोही बना देता है। 'शेखर' इस प्रवृत्ति का सबसे उल्लेखनीय पात्र है। बाल्यावस्था से ही उसमें अहं की प्रधानता है और जिसका तीव्रतर विकास होता हुआ ही दिखाई देता है। यहाँ तक कि माँ-बाप के व्यवहार भी उसके अहं को तीव्रतर ही करते हैं, उसके भीतर विद्रोह एवं घृणा की भावना को ही जन्म देते हैं। यों लगता जरूर है कि शेखर घोर व्यक्तिवादी है इसीलिए वह व्यक्ति-स्वातन्त्र्य पर बल देता है, व्यक्तित्व पर बल देता है। वह स्वयं कहता है - "मुझे मूर्ति उतनी नहीं चाहिए, जितनी मूर्ति पूजक चाहिए। मुझे कोई वैसा उतना नहीं चाहिए जिसकी ओर मैं देखूँ, मुझे वह चाहिए, जो मेरी ओर देखे।" लेकिन व्यापक धरातल पर देखते हैं तो स्पष्ट दिखाई देता है कि विभिन्न सामाजिक संदर्भों में जैसे-जैसे उसका विकास होता है वैसे-वैसे वह अपने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की रक्षा करता हुआ भी निरन्तर सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश करता है। हम कह सकते हैं कि 'शेखर : एक जीवनी' में निहित, चित्रित व्यक्ति-स्वातच्छ की भावना 'व्यक्तित्व' की महत्ता पर बल देती है लेकिन उसका संचरण सामंजस्य की ओर जाता दिखाई देता है।

'शेखर : एक जीवनी में **युगबोध की स्थितियाँ** भी देखने को मिलती हैं। वस्तुतः 'शेखर : एक जीवनी' का सम्बन्ध सिर्फ व्यक्ति से नहीं है, बल्कि उसमें स्वतन्त्रता आन्दोलन के युग के भारत का लेखाजोखा, उसका मानचित्र भी है। कई एक चुनौतियाँ हैं जो सबके सामने थीं, कई बाहरी-भीतरी संघर्ष थे जो यहाँ देखने को मिलते हैं। इसलिए इसके सामाजिक सरोकारों को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता।

भूमिका में अज्ञेय ने लिखा है कि- "शेखर निस्सन्देह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज है यद्यपि वह साथ ही उस व्यक्ति के युग-संघर्ष का प्रतिबिम्ब भी है। इतना और ऐसा निजी वह नहीं है कि उसके दावे को आप 'एक आदमी की निजी बात कह कर उड़ा सकें, मेरा आगेह है कि उसमें मेरा समाज और मेरा युग बोलता है कि वह मेरे और शेखर के युग का प्रतीक है।" इसमें अछूत भावना के प्रति तीव्र विरोध देखने को मिलता है, वेश्या समाज की स्थिति का संक्षिप्त चित्र मिलता है, इसमें नारी की परवशता का मर्मस्पर्शी चित्र मिलता है, शासन एवं पुलिस के अत्याचारों के चित्र मिलते हैं, कांग्रेस स्वयं सेवकों की अनुशासनहीनता देखने को मिलती है, रूढ़ियों एवं जड़ परम्पराओं के प्रति विद्रोह का भाव मिलता है। शिक्षा-प्रणाली की खामियों की ओर संकेत मिलता है। 'शेखर : एक जीवनी' उस काल की रचना है जब स्वतन्त्रता-आन्दोलन अपने चरम पर था, क्रान्तिकारियों की देशभक्ति अपने चरम पर थी और वे देश के लिए, उसकी मुक्ति के लिए कुछ भी कर गुजरने के लिए उद्यत थे। आजादी की चाहत रखने वालों के दो वर्ग थे। एक वर्ग वह था जो गांधी के रास्ते पर चलने वाला था, अहिंसा उसका मूल मंत्र था तो दूसरा वर्ग क्रान्तिकारियों का था जिनका विश्वास था कि आजादी बन्दूक के बल पर ही मिलेगी, हिंसा से उन्हें परहेज नहीं था। 'शेखर' की मुलाकात जेल में अनेकानेक

क्रान्तिकारियों से होती है वह उन्हें समझने की कोशिश करता है, उनसे प्रभावित भी होता है। उनकी कष्ट सहिष्णुता, त्याग, बलिदान उसे आकर्षित करते हैं, उनके विचारों से उसे प्रेरणा मिलती है। बाबा मदन सिंह एक ऐसे ही पात्र हैं जिनसे शेखर का व्यक्तित्व बहुत प्रभावित होता है। कहने का तात्पर्य यह कि 'शेखर : एक जीवनी' की कथा, इसका आख्यान सिर्फ 'एक आदमी की निजी बात' नहीं है। उसमें तो शेखर का युग बोलता है, उपन्यासकार का युग बोलता है। सिर्फ व्यक्तिगत सरोकारों का उपन्यास नहीं है, बल्कि व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक सरोकारों का भी उपन्यास है। वैचारिक चिन्तन का भी उपन्यास है।

रागात्मक संवेदना की दृष्टि से भी 'शेखर : एक जीवनी का विशिष्ट महत्व है। मनुष्य आखिरकार सोचने, समझने और प्रतिक्रिया करने वाला मनुष्य है। वह किसी भी परिस्थिति में हो, रागात्मक अनुभव तो उसके जीवन के अंग होते ही हैं। आत्मीयता, भावुकता, प्रेम, स्मृति, आकर्षण की स्थितियाँ रागात्मक संवेदना की भूमिका रचती हैं। 'शेखर. एक जीवनी' में रागात्मक संवेदना के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। शेखर का सम्पूर्ण संचालन रागात्मक वृत्तियों से ही सहारे होता है। वह एकान्त में अपना एक भाबुकता युक्त संसार निर्मित करता है। उसकी रागात्मक वृत्तियाँ ही उसे बहने की ओर आकर्षित करती है, फिर वह प्राय: सभी नारी पात्रों के प्रति आकर्षित होता है। शशि उसकी रागात्मक संवेदना की चरम उपलब्दि है। शेखर की रागात्मक संवेदना का निरन्तर उन्नयन होता है। समसामयिक परिवेश और उनसे उत्पन्न स्थितियों के बीच उसका विकास एवं विस्तार होता है।

'शेखर : एक जीवनी' की **वैचारिक संवेदना** का ही अपना अलग महत्त्व है। चारित्रिक विकास के मध्य अज्ञेय अपनी इस वैचारिक संवेदना को आकार देते हैं। उनका मानना है कि शून्य में कुछ भी जन्म नहीं लेता बल्कि स्थितियों-परिस्थितियों के घातों-प्रतिघातों के बीच ही मनुष्य की अपनी मूल प्रवृतियों का विकास होता है और उसी विकास के पथ पर चलकर वह मानवता के विकास में सहायक बनता है। 'शेखर' के जीवन की तमाम असफलताएँ, शेखर की काम-भावना, उसके जीवन के अनेकानेक कटु-तिक्त यथार्थ उसे ऐसी स्थिति में ला खड़ा करते हैं जहाँ वैचारिक संघर्ष की स्थितियाँ जन्म लेती हैं। स्वाधीनता संग्राम से जुड़ने के पश्चात् शेखर के मन-मस्तिष्क में कई तरह के सवाल खड़े होते हैं।

इस सवाल के कई रूप हैं। कभी वह हिंसा और युद्ध के विषय में सोचता है, कभी राष्ट्रीयता के सवाल पर विचार करता है, कभी मानवता को लेकर चर्चा करता है। उपन्यास का प्रारम्भ ही उसकी वैचारिक संवेदना की गहराई को उद्घाटित करता है जहाँ वह कहता है- "फाँसी! जिस जीवन को उत्पन्न करने में हमारे संसार की सारी शक्तियाँ, हमारे विकास, हमारे विज्ञान, हमारी सभ्यता द्वारा निर्मित सारी क्षमताएँ या औजार असमर्थ हैं, उसी जीवन को छीन लेने में, उसी का विनाश करने में, ऐसी भोली हृदयहीनता- फाँसी।"

उसकी विचार-सरणि यहीं रूकती नहीं है। वह इस सवाल पर भी विचार करता है कि क्या फाँसी दे देने से वह सुधर जाएगा या कि फाँसी दे देने से लोगों को सीख मिलेगी? क्या

आज तक फाँसी से किसी ने सीख ली है। उसी के शब्दों में- फाँसी क्यों? अपराधी को दण्ड के लिए। पर इससे क्या वह सुधर जाएगा? इससे क्या उसके अपराधों का मार्जन हो जाएगा? जो अमिट रेखा उसके हाथों खिंची है वह क्या उसके साथ मिट जाएगी? फाँसी, दूसरों को शिक्षा देने के लिए? पर यह कैसी शिक्षा है कि जीवन के प्रति आदर-भाव सिखाने के लिए उसी की घोर हृदयहीन उपेक्षा का प्रदर्शन किया जाय! और, इससे भी कभी कोई सीखा है।"

जेल-जीवन के अपने मित्र विद्याभूषण से भी जब वह उपर्युक्त विषयों पर चर्चा करता है तब शेखर का झुकाव विशेषकर राष्ट्रीयता की ओर ही होता है। शेखर के ऊपर गाँधी के विचार-दर्शन का प्रभाव लक्षित होता है। लेकिन अन्ततः वह वैचारिक मंथन के दौर से गुजरते हुए क्रान्ति की राह पर चल पड़ता है।

अज्ञेय की वैचारिक संवेदना शेखर : एक जीवनी' में अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई है। बाबा मदनसिंह जब दासता को परिभाषित करते हैं तो वह उनकी गहरी संवेदना का हिस्सा बनकर ही सामने आता है। वे कहते हैं- "दासता.. एकदम घृणित परवशता- और किसे कहते हैं? अप्रिय के ज्ञान को नहीं, असत्य में विश्वास को भी नहीं, दासता कहते हैं उस अवस्था को, जिसमें हम सत्य और असत्य को जानने में असमर्थ हो जाते हैं; दासता है वह बंधन, वह मनाही, जो हमारा ज्ञान माँगने का अधिकार छीन लेती है।"

'शेखर : एक जीवनी' में **पीड़ा-बोध** की स्थितियाँ भी देखने को मिलती है। सच तो यह है कि अज्ञेय की संवेदना में पीड़ा की, वेदना की गहरी भूमिका रही है। उनकी पीड़ा व्यक्ति-जनित भी है और समाज जनित भी। 'शेखर : एक जीवनी में भी पीड़ा का, वेदना के महत्व को चित्रित किया गया है। बाबा मदन के वेदना-प्रसूत सूत्र, रामजी का आत्म बलिदान, मोहसिन की आत्मपीड़ा के आख्यान गहरे अर्थों से जुड़े हैं। बाबा मदन सिंह की पीड़ा यह है कि सैनिकों द्वारा चटगाँव तथा अन्य स्थलों पर बर्बर अत्याचार किया जा रहा है, लोगों पर आरोप लगाकर उन्हें प्रताड़ित किया जा रहा है और हम उसका प्रतिकार भी नहीं कर पा रहे हैं क्यों ? क्योंकि - 'अभियोग लगाए जा रहे हैं और हमारे पास साधन नहीं है कि हम जाँच करें। इन साधनों को पाना अधिकार है, और वह अधिकार हमें नहीं मिल रहा। वस्तुतः बाबा का पीड़ा-बोध है, यह अज्ञेय का भी पीड़ा-बोध है, या बाबा की विवशता है और अन्य मुक्तिकामी लोगों की भी विवशता है।

शेखर का व्यथा-बोध ही उसे नया चिन्तन देता है, वह उसे नयी राह की ओर ले जाता है वह क्रान्तिकारी आवेग में नहीं बनता है न ही उसकी क्रान्तिकारिता कृत्रिम है। वह चिन्तन परक निष्कर्षों को जोड़ने की कोशिश करता है। शेखर, शशि और मदन सिंह तीनों का पीड़ा-बोध केवल व्यावहारिक ही नहीं है अपितु जीवन एवं समाज सापेक्ष भी है। सबकी नजर व्यक्ति से होते हुए समाज तक जाती हुई दिखाई देती है।

क्षण-बोध की दृष्टि से भी 'शेखर : एक जीवनी' का विशिष्ट महत्व है। हम जानते हैं कि शेखर : एक जीवनी' प्रयोगवादी युग की रचना है। प्रयोगवादी युग में क्षण की महत्ता प्रायः रचनाकारों के द्वारा प्रतिपादित की गयी है। इस उपन्यास में भी क्षण के महत्त्व को रेखांकित करने का प्रयास देखने को मिलता है। शशि के आत्मोत्सर्ग में इसे विस्तार से देखा जा सकता है। वह कहती है- "तुम्हारे स्नेह को मैं क्षण भर भी नहीं भूली, शेखर,

पर जब क्षण का उद्वेग चला गया तब मैंने तुम्हारे स्नेह से भी बड़ा कुछ देखा, शेखर, तुम्हारा भवितव्य। स्नेह से बड़ा इसलिए कहती हूँ कि वह स्नेह उसका एक अंग है... उस क्षण की मैं कृतज्ञ हूँ।" और उस क्षण के सहारे, उस क्षण के लिए वह अपना सबकुछ न्यौछावर कर देती है। शशि बाँधती नहीं उन्मुक्त करती है, वह शेखर को स्वाधीनता देती है। वह उसका विकास देखना चाहती है, वह उसके भविष्य को उन्नत देखना चाहती है। वह कहती है कि- "अपने भविष्य की खोज में यदि तुम्हें मेरी याद आए तो अपने को इसलिए अपराधी मत ठहराना कि मेरे बिना तुम अकेले आगे चल सके; तुम चल सके, यह मेरी पराजय नहीं, मेरी अन्तिम विजय होगी।"

शशि की यह विशेषता उसके निष्काम भाव को, आत्मत्याग को एवं उसके अन्तःकरण की शुद्धता को व्यंजित करते हैं। कहना न होगा कि शेखर के अहं विसर्जन में जहाँ वह योग देती है वही उसके विद्रोह को सही दिशा देने में सहायक होती है। शशि ही है जिसके चलते, जिससे प्रेरित होकर, जिससे बल लेकर वह मानवीय मूल्यों को व्यापक सामाजिक संदर्भों में देखने की दृष्टि अर्जित कर पाता है और राष्ट्र निर्माण, राष्ट्र-मुक्ति की राह पर बढ़ने में सफल हो पाता है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि शेखर : एक जीवनी एक व्यक्ति की कथा है, एक अहंकारी, कामी, अंतर्मुखी, स्वार्थी, विद्रोही, भयातुर व्यक्ति की कथा है लेकिन तमाम व्यक्तिवादी स्थितियों के बावजूद इसे सिर्फ व्यक्तिवादी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि हम पाते हैं कि 'शेखर' का निरन्तर उन्नयन भी होता है। वह मानवतावादी आधारों से जुड़ने की कोशिश करता है। इसमें सिर्फ व्यक्ति नहीं है- व्यक्ति के साथ ही समाज भी है, परिवार भी है, राष्ट्र भी है और इसीलिए इसकी संवेदना का आयाम भी व्यापक है। इसमें व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावना है; व्यक्तित्व की स्थापना का आग्रह है; युगबोध की स्थितियाँ हैं; रागात्मक संवेदना के विविध रूप हैं; वैचारिक संवेदना की सशक्त उपस्थिति है; सामाजिक, राजनीतिक पीड़ा का बोध है नियतिवादी दृष्टिकोण के बावजूद इसकी संवेदना का पक्ष सशक्त एवं बहुआयामी है।

7.3 'शेखर : एक जीवनी' : शिल्पगत धरातल

हिन्दी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में जिन उपन्यासकारों ने नयी रचना-सामग्री को खोजा है और उसे नयी रचनाशीलता के साथ प्रस्तुत किया है उसमें अज्ञेय का नाम सर्वोपरि है। यों भी अज्ञेय अन्वेषी रहे हैं- कविता में भी और गद्य में भी। 'शेखर : एक जीवनी' में अज्ञेय का शिल्पकार व्यक्तित्व दिखाई देता है। उपन्यास-शिल्प का प्रौढ़ एवं परिष्कृत रूप यही देखने को मिलता है।

यह तो हम पहले ही देख चुके हैं कि अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' में व्यक्ति के अन्तर्मन तथा उसके अन्तर्मन पर पड़ने वाले प्रभावो को बहुत ही सशक्त रूप में चित्रित किया है। उन्होंने यहाँ पर जिस कथानक को गढ़ा है उसका उद्देश्य भी मानव-मन की वृत्तियों को उजागर करता ही है। 'शेखर : एक जीवनी' का कथानक ढीला-ढाला एवं विश्रृंखला के बीच, उसे ढीले-ढाले रूप के बीच वे जीवन के विविध पक्षों का सूक्ष्म चित्रण

करते हैं। कथा के आधारों के चयन, उपन्यास के पात्रों के वृजन, उपन्यास की भाषा-शैली आदि सभी दृष्टियों से 'शेखर : एक जीवनी' नवीनता एवं कालकता से युक्त है।

सबसे पहले **'कथा-चयन-शिल्प'** पर ही विचार कर लें। 'शेखर : एक जीवनी' में कथानक का आधार 'व्यक्ति और व्यक्ति वैचित्र्यवाद है। इसीलिए इसके अन्तर्गत असाधारण एवं निराले व्यक्तियों की मानसिकताओं, उनके द्वन्द्वों, उनकी मानसिक उलझनों, उनकी प्रेरणाओं तथा उनकी प्रवृत्तियों की कथा कही गई है। बतौर उदाहरण देखें तो शेखर सामान्य पात्र नहीं है, उसे साधारण भी नहीं कहा जा सकता। वह असाधारण है और उसी असाधारण शेखर के विद्रोही जीवन की कथा को आधार बनाकर उसकी अनेकानेक भावनाओं तथा अनुभूतियों को यहाँ वाणी दी गई है। शेखर का जीवन एक रेखीय नहीं है बल्कि वह बहुरेखीय है। इसीलिए जहाँ एक ओर उसके विद्रोही जीवन के कारणों की पड़ताल करते हुए उसकी मूल प्रवृत्तियों तथा उसकी आकांक्षाओं को प्रकट किया गया है वहीं दूसरी ओर शेखर की पारिवारिक, सामाजिक स्थितियों-परिस्थितियों एवं उसके विद्रोह की कहानी को भी प्रस्तुत किया गया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि अज्ञेय ने शेखर के भीतरी एवं बाहरी जीवन का, उसके चेतन एवं अवचेतन का विश्लेषण करते हुए उसके विद्रोही जीवन को कथा का आधार बनाया है। उपन्यासकार शेखर की बेतरतीब स्मृतियों में से जीवन का सूत्र तलाशता है। वह स्वयं कहता है- 'जैसे मोतियों की माला टूट गई हो और बिखरे मोतियों को फिर एक बेतरतीब लड़ी में पिरो दिया जाय उसी तरह मेरी स्मृतियों की तरतीब उलझ-सी गयी है।"

कथा का प्रारम्भ करते हुए अज्ञेय ने **'फ्लैश बैक' या पूर्बदीप्ति या पूर्वावलोकन** की पद्धति का सहारा लिया है। इसलिए शेखर का कथानक स्मृति-प्रधान हैं। वह कहता भी है- 'मैं अपने जीवन का प्रत्यावलोकन कर रहा हूँ, अपने अतीत जीवन को दोबारा जी रहा हूँ। मैं जो सदा आगे ही देखता रहा, अपनी जीवन-यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर पहुँचकर पीछे देख रहा हूँ।"

जहाँ तक कथा के विकास की बात है तो अज्ञेय ने यहाँ पर सुव्यवस्थित क्रम पर विशेष ध्यान नहीं दिया है बल्कि स्मृति-चित्रों की सहायता से ही कथा को विकास एवं विस्तार प्रदान किया है। जेल की कोठरी में बन्द 'शेखर के स्मृति-पटल पर मन की गहराई में पड़ी स्मृतियाँ विश्रृंखल रूप में सामने आती हैं। इन्हीं स्मृतियों के सहारे वह अपने बाल्यकाल और यौवनकाल की कथा कहता है। अपने विद्रोही स्वभाव अपने माता-पिता के स्वभाव, अनेकानेक स्त्रियों के प्रति आकर्षण के चित्र उसके स्मृति-पटल पर आते-जाते हैं। उन्हीं में वह बनता-बिगड़ता है, उन्हीं में वह परिष्कृत होता है, उन्हीं के बीच उसके अहं का विसर्जन होता है और उन्हीं स्मृतियों के बीच वह शासन के प्रति विद्रोह और शशि के प्रति स्नेहयुक्त आकर्षण की स्मृतियों का वर्णन कर वह नयी राह की ओर चल पड़ता है। अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' में प्रमुख पात्रों के स्वभावों तथा उनकी मूल प्रवृत्तियों के चित्रण के द्वारा भी कथा को विकास दिया है। 'शेखर : एक जीवनी में अज्ञेय ने कथा को विस्तार देने के लिए दोनों खण्डों को चार-चार खण्डों में विभाजित किया है। उदाहरणार्थ- शेखर : एक जीवनी' के प्रथम भाग में प्रवेश के अतिरिक्त क्रमशः चार खण्ड हैं - उषा और ईश्वर; बीज और अंकुर; प्रकृति और पुरुष; पुरुष और परिस्थिति। वही

दूसरा खण्ड भी क्रमश: चार खण्डों में विभाजित है- पुरूष और परिस्थिति; बन्धन और जिज्ञासा; शशि और शेखर; धागे, रस्सियाँ, गुंझर। 'उषा और ईश्वर' में शैशवकालीन अनेकानेक स्मृतियों, अनुभूतियों के चित्र हैं; 'बीज और अंकुर' की सार्थकता इस बात में है कि इसी में वह विद्रोही बनता है, विद्रोह के बीज यहीं अंकुरित होते हैं। 'प्रकृति एवं पुरूष' में वय:सन्धि की अनुभूतियों का चित्रण है; 'पुरूष और परिस्थिति में वह अपने आसपास की परिस्थितियों से संघर्ष करता है। दूसरे खण्ड में पुरुष और परिस्थिति' में आसपास की स्थितियों से वह विद्रोह करता है; 'बन्धन और जिज्ञासा' में जेल में बन्द होकर भी जीवन के प्रति जानना चाहता है; 'शशि और शेखर में दोनों के पारस्परिक आकर्षण के चित्र खींचे गये हैं और अन्तिम खण्ड- 'धागे, रस्सियाँ, गुंझर' में शेखर और शशि के आकर्षण से उत्पन्न होने वाली जटिलताओं की कथा कही गयी है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि 'शेखर' की कथा तारतम्य विहीन है वस्तुत: खण्डों में बाँटकर उस तारतम्य हीन कथा को एक सूत्र में पिरोने की कोशिश है, और अज्ञेय को इसमें सफलता भी मिली है।

कथा-शिल्प के साथ ही उपन्यास में **चरित्र-चित्रण** का भी अपना विशिष्ट महत्व होता है। 'शेखर : एक जीवनी चरित्र-चित्रण-प्रधान उपन्यास है। यही कारण है कि उन्होंने पात्रों के चयन एवं उनके निर्मिति के प्रति हमेशा सजगता प्रदर्शित की है। अज्ञेय पात्रों के, चरित्रों के अन्तर्मन की गहराइयों में पैठ कर उनके मनोभावों, कुंठाओं, अवसादों, प्रवृत्तियों, विकृतियों को उजागर करते हैं। इसलिए वे असाधारण व्यवहार वाले पात्र का चयन करते हैं। एक ऐसा असाधारण पात्र जिसका समूचा व्यक्तित्व वैचित्यपूर्ण हो, आत्मदर्शी हो और संवेदनशील हो। 'शेखर : एक जीवनी' का 'शेखर' स्वभावत: सबसे विलक्षण है। उसके विचार, उसकी भंगिमाएँ, उसके आदर्श, उसके लक्ष्य, उसकी सोच सब विलक्षण हैं। विद्रोह में ही वह सिद्धि देखता है इसीलिए वह प्रतिक्रिया करता दिखाई देता है, विद्रोही आचरण के साथ सामने आता है। 'शेखर' इसलिए भी असामान्य है क्योंकि उसमें प्रेम और घृणा, निष्ठा और अनास्था, अनुशासन और विद्रोह जैसी विरोधी मनोवृत्तियाँ साथ-साथ दिखलाई देती हैं। अज्ञेय ने इस उपन्यास में दार्शनिक पात्रो को स्थान दिया है जो आत्मचिन्तन में लीन दिखाई देते हैं। 'शेखर' भी दार्शनिक रूप में सामने आता है और 'शशि' भी। दोनों की अपनी-अपनी रेखाएँ हैं। शशि के आत्मोत्सर्ग में, उसके धैर्य में, उसकी सहनशीलता में, उसके निष्काम प्रेम में उसका दार्शनिक रूप ही देखने को मिलता है।

'शेखर : एक जीवनी' के पात्र चिन्तनशील हैं, संवेदनशील हैं, भावुक हैं। शेखर तो बाल्यकाल से ही चिन्तनशील है, संवेदनशील है, भावुक है। वह छोटी-से-छोटी बातों से भी अभिभूत हो उठता है; थोड़ी-सी चोट लगने भर से संवेदनशील हो उठता है, बेचैन हो उठता है; लेकिन अज्ञेय दो विरोधी प्रवृत्तियों को सामने करके उनके चरित्र का उन्नयन करते हैं। 'शेखर' अहंकारी है, विद्रोही है, जबकि 'शशि' धैर्यवान है, सहनशीलता है। दोनों के मूल से अज्ञेय 'शेखर' के व्यक्तित्व को नया रंग-रूप देते हैं। अज्ञेय पात्रों एवं चरित्रों के वैचित्र्यपूर्ण चित्रण तथा उनकी मनःस्थितियों के चित्रण के माध्यम से भी उस चरित्र या उस पात्र के व्यक्तित्व को उद्घाटित करते हैं।

भाषा-शैली की कलात्मकता की दृष्टि से भी अज्ञेय बेजोड़ है। कविता हो या उपन्यास दोनों में उनका कोई मुकाबला नहीं है। पात्रों एवं चरित्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के उद्घाटन तथा उनके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म मनोभावों के चित्रण के अवसर पर उनकी भाषा में अद्भुत गुणों का समावेश देखने को मिलता है। जहाँ वे मानव-मन की गुत्थियों को प्रस्तुत करते हैं अथवा वैचारिक संवेदना को अभिव्यक्ति देते हैं वहाँ अज्ञेय की भाषा अत्यधिक प्रौढ़ एवं सशक्त रूप में दिखाई देती है लेकिन जहाँ पर कोमल भावनाओं को चित्रित करते हैं, स्वप्नों एवं आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करते हैं वहाँ भाषा काव्यात्मक हो उठती है। 'शेखर : एक जीवनी' के भाषा-प्रयोग में ये दोनों रूप देखने को मिलते हैं। हम जानते हैं कि भाषा अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा माध्यम, सबसे बड़ा हथियार है। 'शेखर : एक जीवनी' के पात्रों के मनोभावों के चित्रण के समय अज्ञेय की भाषा भी काव्यमयी हो उठती है। 'शेखर : एक जीवनी' में शेखर फाँसी की सजा सुनकर भावुक हो उठता है, चिन्तरशील हो उठता है और स्वत: ही जहाँ एक बार वह फाँसी के सवाल पर विश्लेषणात्मक रूप में विचार करता है वही दूसरी बार प्रवाह-युका काव्यात्मक भाषा में कहता है- फाँसी! यौवन के जार में समुद्र-शोषण। सूर्योदय पर रजनी के उलझे हुए और घनी छायाओं से भरे कुंतल। शारदीय नभ की छटा पर एक भीमकाय वाला बरसाती बादल! इस विरोध में, इस अचानक खण्डन में निहित अपूर्व भैरव कविता में ही इसकी सिद्धि है...। सिद्धि कैसी- काहे की? मेरी मृत्यु की क्या सिद्धि होगी- मेरे जीवन की क्या थी ?"

पात्रों के मनोभावों के साथ ही उनकी अनुभूतियों को चित्रित करते समय भी अज्ञेय की भाषा **काव्यात्मक गुणों** से युक्त हो गयी है- "जहाँ प्रेम जितना उग्र होता है, वहाँ वैसी ही तीखी घृणा भी होती है; क्रूरता में केवल यातना दी ही नहीं जाती, स्वयं पायी भी जाती है और स्नेह में स्नेही अपने को ही नहीं भूलता, स्नेह के पात्र को भी भूल जाता है।"

अज्ञेय जब 'प्रकृति' का चित्रण करते हैं तब भी उनकी भाषा काव्यात्मकता के गुणों से युक्त दिखाई देती है। 'शेखर : एक जीवनी' में बजरे पर बैठा शेखर सायंकाल के सौन्दर्य का जो चित्र प्रस्तुत करता है उसकी भाषा काव्यगत लावण्य से युका है। वह कहता है- 'वही झील वही बजरा, वही दिन! संध्या हो चुकी है, सब लोग अन्दर चले गये हैं। मैं ही अकेला बजरे की छत पर बैठा हूँ। झील पर आकाश के गाढ़े और सम्मिश्रित रंग का प्रकाश पड़ कर उसे ऐसा बनाये हैं, जैसे प्रकृति की निश्छल आँख नींद से अलसाई हो, और उसे घेरे हुए बरौनियों की तरह सब ओर लम्बी-लम्बी घास क्षितिज-रेखा को जहाँ-तहाँ चीर रही है। मैं मुग्ध होकर भी इसी घास के श्याम छायाचित्र को देख रहा हूँ। वह काली है, स्वत: सौन्दर्यविहिन है, किन्तु कितने सौन्दर्य को घेरे हुए"

'शेखर : एक जीवनी' के अन्तर्गत जब अज्ञेय के पात्र दार्शनिक चिन्तन करते हैं, किसी-विषय पर तर्क-वितर्क करते हैं अथवा अपने आपका विश्लेषण करते हैं तब उनकी भाषा **विवेचनात्मक गुणों** से युक्त हो उठती है। 'शेखर' दार्शनिक के रूप में भी सामने आता है। उपन्यास के प्रारम्भ में फाँसी की सार्थकता पर विचार करते समय भी वह दार्शनिक हो उठता है। वस्तुत: जब भी अज्ञेय के पात्र जीवन-जगत् के तथ्यों का विश्लेषण करते हैं अथवा वे गूढ़ रहस्यों की खोज में प्रवृत्त होते हैं तब भाषा-प्रयोग का एक नया रूप ही सामने आता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है- "लोहे के कड़े बनते हैं तो लोहा भट्टी में पिघला

कर एकदम साँचे में ढाल दिया जाता है, किन्तु सोने के कड़े बनाने के लिए पहले उसे नर्म किया जाता है, फिर उसे गोल करके टाँका जाता है, फिर उस पर काम किया जाता है, फिर अन्त में पॉलिश दिया जाता है, तब कहीं वह तैयार होता है.. ऐसा ही है निर्धन और धनिक बालकों की शिक्षा।...।"

'शेखर : एक जीवनी' में मनोविश्लेषण की प्रधानता है इसलिए जब अज्ञेय पात्रों की मनःस्थिति तथा उनके अन्तर्मन की वृत्तियों या उलझनों को चित्रित करने लगते हैं तब भी उनकी भाषा विवेचनात्मक हो उठती है। शशि के प्रति शेखर के सोच का विश्लेषण अज्ञेय ने इस रूप में किया है। वे लिखते हैं -

"शशि, तुमने मुझे प्यार दिया है- तुमने मुझे वर दिया है.. वर देने से पहले परीक्षा क्यों नहीं ली? लो परीक्षा मेरी- देखो कि मैं अधिकारी भी हूँ कि नहीं...। शशि, शक्ति मेरे पास रही है, पर मैंने उसे जाना नहीं, आजीवन मैं विद्रोही रहा हूँ पर बराबर मैं अपनी विद्रोही शक्ति को व्यर्थ बिखेरता रहा हूँ. एक दिन तुम्हारे ही मुख ने मुझे यह दिखाया-बताया कि लड़ना स्वयं साध्य नहीं है, लड़ने के लिए लड़ना निष्परिणाम है, कि विद्रोही किसी के विरूद्ध होना चाहिए- ईश्वर, समाज, रोग, मृत्यु, माता-पिता, अपना-आप, प्यार, कुछ भी हो, जिसके विरूद्ध विद्रोह किया जा सके... तब मेरे विद्रोह को धार मिली- वह विरूद्ध हुआ...मैं प्रतिद्वन्द्वी हुआ।"

सच तो यह है कि 'शेखर : एक जीवनी' में मानव जीवन की गूढ-ऐ-गूढ़ गुत्थियों को सुलझाने तथा जीवन के तथ्यों की अभिव्यक्ति हेतु सारगर्भित एवं औचित्यपूर्ण भाषा का भी प्रयोग किया गया है। मोटे तौर पर कह सकते हैं कि 'शेखर : एक जीवनी' की भाषा बहुरूपीय है। उसमें अभिजात्य के गुण तो हैं ही साथ ही उसमें नूतनता एवं काव्यात्मकता का भी पुट मिलता है। सरलीकृत रूप में कहें तो वह भावों के अनुरूप, कथ्य के अनुरूप, पात्र की परिस्थिति एवं मनःस्थिति के अनुरूप ढलकर सामने आती है इसीलिए उसमें कोमलता है, बोलचाल की स्वाभाविकता है, काव्यात्मक सरसता है, चिन्तन की प्रधानता है और कुल मिलाकर वह प्रौढ़, परिमार्जित और औपन्यासिक भाषा के गुणों से युक्त है।

7.4 सारांश

स्पष्ट है कि 'शेखर : एक जीवनी' आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया एक ऐसा उपन्यास है जिसकी संवेदना का फलक काफी विस्तृत है। इसमें व्यक्ति और व्यक्तित्व के अनेकानेक पक्षों को विविध संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। रागात्मक संवेदना से युक्त इस उपन्यास में युगबोध की स्थितियाँ भी देखने को मिलती हैं। वैचारिक संवेदना के धरातल पर भी 'शेखर : एक जीवनी' का विशिष्ट महत्व है। इसके कथ्य का संसार जितना व्यापक है शिल्प उतना ही सुगठित। कथा-चयन, पात्र-चयन, भाषा-प्रयोग आदि सभी दृष्टियों से यह उपन्यास श्रेष्ठ कला का एक नमूना है। भाषा की सहजता एवं सर्जनात्मकता की दृष्टि से भी यह उल्लेखनीय है। अपने समर्थ चित्रात्मक भाषा के माध्यम से व्यक्ति एवं व्यक्तित्व की बारीकियों को अभिव्यक्त करने में अज्ञेय पूर्णतया सफल हुए हैं।

7.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'शेखर : एक जीवनी' के मूल प्रतिपाद्य पर प्रकाश डालिए।
2. 'शेखर : एक जीवनी' की बहुस्तरीय संवेदना को स्पष्ट कीजिए।
3. 'शेखर : एक जीवनी' की उपन्यास-कला पर प्रकाश डालिए।
4. " 'शेखर एक जीवनी में अज्ञेय ने व्यक्ति के साथ ही समाज की बहुआयामी समस्याओं को प्रस्तुत किया है" - इस कथन की समीक्षा कीजिए।

7.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. नरेन्द्र मोहन (संपा.); आधुनिक हिन्दी उपन्यास
2. डॉ. इन्द्रनाथ मदान; हिन्दी उपन्यास : एक नयी दृष्टि
3. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी; अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या
4. डॉ. रामकमल राय; अज्ञेय : सृजन और संघर्ष
5. डॉ. इन्द्रनाथ मदान; आज का हिन्दी उपन्यास
6. डॉ. देवीशंकर अवस्थी (संपा.); विवेक के रंग
7. अज्ञेय; आत्मनेपद

इकाई-8 शेखर एक जीवनी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

इकाई की रूपरेखा :

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 अज्ञेय का व्यक्तित्व व कृतित्व

8.2.1 जीवन-परिचय

8.2.3 कृति-परिचय

8.3 मनोविज्ञान और उपन्यास

8.4 शेखर एक जीवनी का कथानक : मनोवैज्ञानिक धरातल पर

8.5 शेखर एक जीवनी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

8.5.1 शेखर का व्यक्तित्व : मनोवैज्ञानिक धरातल पर

8.5.2 शेखर से इतर पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

8.6 शेखर एक जीवनी का शिल्पगत अध्ययन व मनोविज्ञान

8.7 व्याख्या योग्य पद

8.8 सारांश

8.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.10 संदर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- अज्ञेय के व्यक्तित्व व कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- साहित्य व मनोविज्ञान के परस्पर अन्तःसम्बन्ध को समझते हुए उपन्यास से मनोविज्ञान के प्रभाव की जानकारी ग्रहण कर सकेंगे।
- शेखर एक जीवनी के प्रमुख पात्र शेखर का मनोवैज्ञानिक धरातल पर अध्ययन व विवेचन कर सकेंगे।
- शेखर एक जीवनी के कथानक, पात्रों एवं उनके चरित्र भाषा व शैलीगत नवीनता की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- शेखर एक जीवनी एक व्यक्तिप्रधान, मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, इस तथ्य को समझ कर, उसकी विवेचना कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

यह सत्य है कि "भावों और मनोवेगों का अध्ययन मनोविज्ञान का केन्द्र बिन्दु है। साहित्य के भिन्न-भिन्न विषयों में मनोविज्ञान का प्रयोग हुआ है। उपन्यास मनोभावों की उपज है। किसी भी साहित्य रचना में देश-काल की परिस्थिति, सभ्यता, आचार-विचार तथा साहित्यिक अभिरूचि दृष्टिगोचर होती है।"

युग के अनुसार मनुष्य की मान्यताएँ बदलती हैं, भावनाएं बदलती हैं तो विचार बिना बदले नहीं रहते। प्रगति के नवीन मार्ग परिवर्तन के कारण प्रशस्त होते हैं, इनसे अज्ञेय जी भी अछूते नहीं रहे। अज्ञेय जी की मनोवैज्ञानिक चेतना के कारण उन्होंने प्रेमचंद - परंपरा से सर्वथा भिन्न मान्यताओं, विचारों एवं भावनाओं को प्रतिष्ठित किया है। प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास को नयी दिशा तथा सम्पन्नता प्रदान करने वालों में प्रमुखत: अज्ञेय का नाम लिया जाता है।

शेखर एक जीवनी' का कथानक सम्पूर्ण दृष्टिकोणों से मनोविश्लेषण सिद्धान्तों पर आधारित है क्योंकि इसका प्रत्येक पात्र मनोवैज्ञानिक आधार पर अन्तर्विरोधी और द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण से ग्रसित दिखायी देता है। अपने प्रथम उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' में 'शेखर' और 'शशि' जैसे महान पुरूष एवं नारी चरित्रों को प्रतिष्ठित करके उन्होंने हिन्दी साहित्य जगत् को जो कुछ दिया है वह नवीन तो है ही, साथ ही हिन्दी उपन्यास के लिए गर्व की बात है।

आधुनिक युग में मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन को ही अत्यधिक महत्व दिया है। यही कारण है कि शेखर एक जीवनी उपन्यास में अन्तर्जगत की गहन अनुभूतियों को बाह्य वर्जनाओं से मुक्त करके व्यक्त करने के प्रयत्न में चेतना प्रवाह, पूर्वदीप्ति एवं मुक्त आसंग, स्वप्न विश्लेषण तथा सम्मोहन, दिवास्वप्न आदि अनेक शैलियों का प्रयोग चरित्र-चित्रण के लिए किया गया है।

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास प्राय: व्यक्तिपरक उपन्यास की श्रेणी में आते हैं। वस्तुत: यह उपन्यास व्यक्ति प्रधान मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। शेखर को केन्द्र में रखकर लिखा गया है यह उपन्यास मानव-मन की मनोवृत्तियों, कुण्ठा, विद्रोह, असंतोष, जिज्ञासा, स्वच्छन्दता व अस्तित्वबोध को प्रकट करता है। **रूसो** ने अपनी पुस्तक "सामाजिक समझौता" में एक स्थान पर लिखा है- **"मनुष्य स्वतन्त्र होकर पैदा हुआ है पर संसार में वह सर्वत्र बन्धनबद्ध दिखायी पड़ता है।"** 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास इसी निरन्तर सत्य को प्रकाशित करता है। प्रस्तुत उपन्यास में अज्ञेय ने समाज की वास्तविकता का चित्रण एक व्यापक सामाजिक पटल पर करने की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक धरातल पर व्यक्ति के अन्तर्जीवन का चित्रण करना उपयुक्ता समझा। एक व्यक्ति को ही जीवन की अनेक परिस्थितियों में रखकर मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्तरों की खोज को ही महत्व दिया। सम्पूर्ण कथावस्तु स्मृतिपरक व मनोविश्लेषणात्मक प्रतीत होती है।

8.2 अज्ञेय का व्यक्तित्व और कृतित्व

8.2.1 जीवन परिचय

अज्ञेय जी का पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' है। इनका जन्म 7 मार्च 1911 को उत्तरप्रदेश के गोरखपुर जिले के पास देवरिया जिले के कुशीनगर गॉव में हुआ था। जिसे कसिया भी कहते हैं। बचपन में इनको सब स्नेह से 'सच्चा' कहकर पुकारते थे। इनके पिता का नाम हीरानन्द वात्स्यायन था।

अज्ञेय जी ने घर पर ही संस्कृत, इतिहास, विज्ञान व फारसी का ज्ञान प्राप्त किया। सन् 1925 में हाई स्कूल की परीक्षा पंजाब से, 1927 में इन्टरमीडिएट की परीक्षा मद्रास से, 1929 में बी.एस.सी. की परीक्षा का एक वर्ष पूरा किया।

सन् 1936 मे कुछ दिनों आगरे के प्रसिद्ध पत्र 'सैनिक' कां सम्पादन कार्य संभाला फिर मेरठ में हुए किसान आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। सन् 1937 में 'विशाल-भारत' (कलकत्ता) के सम्पादकीय विभाग में रहे, डेढ़ वर्ष बाद ही 'आल इंडिया रेडियो' में नौकरी की। 1940 में कुमारी संतोष के साथ विवाह किया परन्तु कुछ समय पश्चात् सम्बन्ध विच्छेद हो गया। फिर उन्होंने 7 जुलाई 1956 में कपिला मलिक से दूसरा विवाह किया और उसके बाद कुल्लू और अल्मोड़ा की यात्रा की।

1977 में अज्ञेय जी 'नवभारत टाइम्स' दैनिक समाचार पत्र के सम्पादक नियुक्त किये गये। 1979 में उससे अवकाश प्राप्त हुआ। 1971 में उन्हें विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन से डी. लिट् की उपाधि प्राप्त हुई। सन् 1965 में अज्ञेय जी को 'आगन के पार द्वार' नामक काव्य संग्रह पर पांच हजार रूपये की राशि के साहित्य अकादमी पुरस्कार से भूषित किया गया और 1978 में 'कितनी नावों में कितनी बार' नामक काव्य संग्रह पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया अज्ञेय जी उत्तम काव्य लेखन के साथ-साथ बागवानी, फोटोग्राफी, रंग सज्जा इत्यादि का शौक रखते थे।

प्रेमचन्दोत्तर युग के कथाकारों की जिस श्रेणी में अज्ञेय जी का नामोल्लेख किया जाता है वह श्रेणी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की है जो जैनेन्द्र द्वारा संकेतिक नई दिशा को तो विकसित करती ही है पर प्रेमचन्द की भविष्यवाणी कि भविष्य में उपन्यास चरित्र प्रधान होगा, को चरितार्थ भी करती है। इस युग के कथाकारों की दृष्टि पूरे समाज से हटकर व्यक्ति विशेष पर केन्द्रित हुई।

डॉ. प्रभाकर माचवे के अनुसार **"वे अत्यन्त श्रमशील लेखक थे। अपनी पांडुलिपि हो या औरों की उसे बहुत बारीकी से पढ़ते, संपादित करते। भाषा या वर्तनी की एक भी छोटी सी मूल उन्हें प्रिय नहीं थी।"**

8.2.2 कृति-परिचय

कहा गया है - **"अज्ञेय हिन्दी के ऊँचे कथा-शिल्पी हैं वो इसलिए कि उन्होंने हिन्दी साहित्यिक विधा को सर्वाधिक सम्पन्नता दी। वर्णनात्मक परम्परा से बढ़कर चित्रण-परम्परा को प्रश्रय दिया। इसलिए अज्ञेय ने कथा-लेखक की पद्धति के हिन्दी में नये प्रतिमान स्थापित किये हैं।"**

कहानियाँ :-

विपथगा (1937), परम्परा (1944), कोठरी की बात (1945), शरणार्थी (1948), जयदोल (1951), अमर वल्लरी तथा अन्य कहानियाँ (1954), कड़ियाँ तथा अन्य कहानियाँ (1957), अछूते फूल तथा अन्य कहानियाँ (1960), ये तेरे प्रतिरूप (1981), जिज्ञासा तथा अन्य कहानियाँ (1965), छोड़ा हुआ रास्ता (1975), लौटती पगडण्डियाँ (1975), मेरी प्रिय कहानियाँ (1975)

निबन्ध :-

त्रिशंकु (1945), सबरंग (1946), आत्मनेपद (1960), हिन्दी साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य (1967), आलवाल (1971), लिखि कागद कोरे (1972), अद्यतन (1977), जोग लिखि (1977), संवत्सर (1978), स्त्रोत और सेतु (1978)

उपन्यास :-

शेखर : एक जीवनी-1 (1941), शेखर : एक जीवनी - 2 (1944) नदी के द्वीप (1952), अपने-अपने अजनबी (1961),

यात्रावृत्त :-

अरे यायावर रहेगा याद (1950), एक बूंद सहसा उछली (1961)

अन्त: प्रक्रियाएं :-

भवन्ती (1972), अन्तरा (1975), शाश्वती (1979)

8.3 मनोविज्ञान और उपन्यास

मनोविज्ञान और उपन्यास दोनों ही शब्द अपने आप में विस्तृत इतिहास रखते हैं। उपन्यास में व्यक्ति की कहानी और कहानी के द्वारा उस व्यक्ति के आन्तरिक व्यक्तित्व पर, उसके मानस व्यापार की रहस्यात्मकता पर प्रकाश पड़ता है।

साहित्य में मनोविज्ञान का समावेश आज नहीं हुआ। जब आधुनिक मनोविज्ञान का विकास भी नहीं हुआ था तब भी शेक्सपीयर, कालिदास, सूर, जायसी, तुलसी जैसे साहित्यकारों ने मानवी अन्तर्वृत्तियों की अभिव्यक्ति अपने साहित्य में की है। इसी सन्दर्भ में कहा गया है हिन्दी साहित्य में मनोवैज्ञानिक विषय का आधार पात्रों के आन्तरिक धरातल द्वारा तैयार किया जाता है।

पात्रों का मानसिक-बौद्धिक विकास, व्यक्तिगत विभिन्नता, व्यक्तित्व, मानसिक स्वास्थ्य स्वभाव व व्यवहार, चरित्र, दमन व कुण्ठा, चिंतन, कल्पना शक्ति, काम भावना, क्रोध, भय, हर्ष, निराशा, जिज्ञासाओं की प्रबलता, ईर्ष्या, स्नेह, अपराध प्रवृत्ति आदि सभी विषयों का विश्लेषण हम मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में देखते हैं।

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों में सर्वश्री जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय और डॉ. देवराज अग्रणी हैं। जैनेन्द्र के 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त व्यतीत', 'जयवर्धन' आदि उपन्यास हैं। इलाचन्द्र जोशी के 'लज्जा', 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'जहाज का पंछी, 'कवि की प्रेयसी' और 'जिप्सी' आदि प्रकाशित हुए। अज्ञेय के तीन उपन्यास 'शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' प्रकाशित है।

अज्ञेय पर फ्रायड का पूर्ण प्रभाव दिखायी देता है। फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोविश्लेषण ने बाल या शिशु मानस के महत्व की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। बाल-मनोविज्ञान का विश्लेषण करते हुए फ्रायड ने माना है - मनुष्य के प्रौढ़ जीवन की अनेक विकृतियाँ, असाधारणताओं तथा असंगतियों का मूल उसके जीवन के प्रथम दो-चार वर्षा के संघर्ष तथा मानसिक दमित भावनाओं में है। इस अवस्था से मनुष्य के भविष्य जीवन की आधारशिला रखी जाती है। हम कह सकते हैं - अज्ञेय ने 'शेखर एक जीवनी' में शेखर पात्र के माध्यम से फ्रायड के बाल-मनोविज्ञान के ज्ञान की प्रवृत्ति को दर्शाया है।

प्रत्येक साहित्य प्रथम दृष्टतया मनोवैज्ञानिक होता है। कम से कम इस हद तक कि पाठक को मानसिक धरातल पर विषयवस्तु का साधारणीकरण संभव हो सके। इसी बात पर साहित्यकार की दक्षता निर्भर करती है कि वह अपनी रचना के माध्यम से पाठकों के मन में कितनी गहराई तक पहुँच सकता है। मनोविज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार बाह्य जगत में घटनाएँ घटती हैं, उसी प्रकार मानसिक जगत में घटनायें घटती हैं और यदि व्यक्तिगत सन्दर्भो में इन घटनाओं का मूल खोजा जाए तो पहले अंतरंग जगत में 'घटना' घटती है फिर उस व्यक्ति द्वारा बाह्य जगत में उसकी अभिव्यक्ति होती है।

इन सम्पूर्ण अभिव्यक्तियों के दिव्य दर्शन हमें 'शेखर एक जीवनी' के पात्र शेखर में स्पष्ट दृष्टिगत होती है। मनुष्य के छोटे से मस्तिष्क ने भव के विराट सत्य को जाना है, जाना ही नहीं आत्मसात् किया है इसलिए मानव मस्तिष्क के अध्ययन का दायित्व 'मनोविज्ञान' ने लिया।

शेखर के मनोविश्लेषणात्मक विवेचन के सन्दर्भ में **डॉ. देवराज उपाध्याय** का कहना है - **"अज्ञेय का शेखर हिन्दी का प्रथम उपन्यास है. जिसे शिशु मानस की. आनन्द प्रधान जीवनी की झाँकियों को. उसके कौतूहल और जिज्ञासाओं को तथा उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर समाज तथा माता-पिता के व्यवहार को अथवा यों कहिए की रियलिटी प्रिन्सीपल के सम्पर्क से उत्पन्न दमन को, मानसिक ग्रन्थियों को तथा उसके जीवन व्यापी प्रभाव को कथा क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया है।"**

8.4 'शेखर एक जीवनी' का कथानक : मनोवैज्ञानिक धरातल पर

लेखक ने इस उपन्यास की भूमिका के प्रारम्भ में ही लिख दिया है - **"वेदना में एक शक्ति है जो दृष्टि देती है। जो यातना में है, वह दृष्टा हो सकता है।"**

शेखर एक जीवनी' शिशु तथा बाल मानस की सूक्ष्म तरंगों, कौतूहल और जिज्ञासाओं, सहजात प्रवृत्तियों, उस पर पड़ने वाले प्राणी प्रकृतिगत परिवेश के सूक्ष्म प्रभावों और माँ-बाप, शिक्षकों आदि के अमनोवैज्ञानिक दुर्व्यवहारों से उत्पन्न विकारों की कथा है।

अज्ञेय के शब्दों में **"शेखर निस्सन्देह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज है, साथ ही उस व्यक्ति के युग-संघर्ष का प्रतिबिम्ब भी है। मेरा आग्रह है कि उसमें मेरा समाज और मेरा युग बोलता है कि वह मेरे और शेखर के युग का प्रतीक है।"**

शेखर एक जीवनी' के दो भाग हैं जो क्रमश: चार-चार भागों में विभाजित हैं। दोनों भाग एक ही कथा-सूत्र में गूँथे होकर भी अलग-अलग भी प्राय: सम्पूर्ण हैं। कहा जा सकता है कि जीवनी दो स्वतंत्र उपन्यासों का अनुपम संयोग है ..... जिसका एक भाग पढ़ने के पश्चात् दूसरे भाग की लालसा स्वत: जागृत होती है।

'शेखर एक जीवनी' का कथानक 'फांसी' शब्द से प्रारम्भ होता है, जो पाठकों के मन में उत्सुकता जगाता है। पाठक विचार सागर में निमग्न हो जाता है। फांसी, किसको फांसी? कैसी फांसी? इसलिए वह उपन्यास को तब तक नहीं छोड़ता जब तक उसे पता नहीं लगता की फांसी का रहस्य क्या है? इस कृति का प्रमुख पात्र शेखर है। जीवन की सम्पूर्ण दीर्घ एवं लघु घटनाओं की वह एकमात्र धुरी है इसीलिए समस्त घटनाएँ उसी के

चारों ओर चक्कर काटती हैं। जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त की घटनाओं का विवरण ही इस उपन्यास का महत्वपूर्ण विषय है।

कथानक की दृष्टि से इस उपन्यास की महत्ता इस बात में भी निहित है कि लेखक ने नायक के रूप में एक ऐसे व्यक्ति को चुना है जिसके जीवन में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक महत्वपूर्ण घटनाओं का अभाव नहीं रहा है।

शेखर की असाधारणता, क्रान्तिकारिता, उद्धता, आत्मनिर्भरता और दृढ़ता का कारण बचपन में उसे विरासत में मिले माता-पिता के संस्कार है। यदि माता-पिता का व्यवहार उसके साथ अच्छा रहा होता, पारिवारिक वातावरण सुखद होता, उसकी भावनाओं का सम्मान किया गया होता, तो सम्भवत: शेखर असाधारण नहीं बनता।

ओम प्रभाकर लिखते हैं "अज्ञेय की कथा कृतियों - क्या उपन्यास और क्या कहानियाँ- में न तो कहीं दार्शनिकता की अभिव्यक्ति है और न मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रति दुराग्रह ही। वह अपने सम्पूर्ण कथा सृजन के सन्दर्भ में सर्वथा एवं सर्वदा मौलिक है। अत्यन्त निश्चयात्मक स्वर में यह कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी-कथा साहित्य में अज्ञेय का स्थान एक मौलिक, प्रवर्तक तथा सर्वश्रेष्ठ कथाकार के रूप में शीर्ष स्थान पर अक्षुण्ण है और रहेगा।"

'शेखर एक जीवनी' एक बाल मनोविज्ञान की प्रयोगशाला है, जिसमें लेखक ने 'शेखर' की बाल्यकाल की विविध गतिविधियों से लेकर मृत्युपर्यन्त की गतिविधियों को अपने अध्ययन का विषय बनाया है। शेखर एक जीवनी' का कथानक उखडे-पुखडे, बिखरे-बिखरे, असम्बद्ध और विश्रृंखलित है। कथानक की दृष्टि से इस उपन्यास की महत्ता इस बात में निहित है कि लेखक ने नायक के रूप में ऐसे व्यक्ति को चुना है जिसके जीवन में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक महत्वपूर्ण घटनाओं का अभाव नहीं रहा है।

शेखर एक जीवनी उपन्यास मे 'शेखर के मनोवैज्ञानिक विकास को हम उसकी कथावस्तु के सन्दर्भ में अधिक स्पष्ट समझेंगे। इसकी सम्पूर्ण कथा वस्तु दो भागों मै विभाजित है तत्पश्चात प्रत्येक भाग में भी चार-चार भागों में सम्पूर्ण कथावस्तु समाहित दृष्टिगत होती है। इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :-

प्रथम भाग :-

प्रथम खण्ड : ऊषा और ईश्वर :- इस खण्ड में शेखर के शिशु मानस की विविध जिज्ञासाएं उभरकर सामने आती हैं। शेखर जन्म-मरण से सम्बन्धित प्रश्नों की झड़ी सी लगा देता है। किसी ने भी उसके प्रश्नों का ठीक से उत्तर नहीं दिया। जिस प्रश्न को भी उसने पूछा, उदाहरण के लिए बच्चे कहीं से आते हैं? कैसे मरते हैं? मरकर क्या होता है? आदि सबका एक ही ढंग से उत्तर दिया कि ऐसा ईश्वर करता है, शेखर के मन में आशंका उत्पन्न कर देता है। वह सोचने लग जाता है कि **"आखिर ईश्वर है या नहीं। यदि ईश्वर है तो उसे मुझ पर प्रकट होना चाहिए।"** इस प्रकार उसके मस्तिष्क में अनेक जिज्ञासाएं उत्पन्न होती है।

द्वितीय खण्ड : बीज और अंकुर :- इस खण्ड के प्रारम्भ में शेखर का जीवन सूना दिखाई देता है। इस सूनेपन के कारण उसके जीवन में एक झूठी तेजी आ गयी थी। गति का एक भ्रम, जबकि वास्तव में निश्चल खड़ा था। खण्ड के मध्य में मालूम होता है कि

शेखर के मन में विदेशी के प्रति घृणा हो गयी है। वह गाँधीवाद की ओर झुक जाता है और उसे मानने लग जाता है। पिता के पूछने पर कि तुम हर वक्त गाँधी का नाम क्यों चिल्लाया करते हो?

शेखर ने कहा, **"मैं गाँधी को मानता हूँ उसके बताये पथ पर चलूँगा।' पिता ने हंसकर कहा, उस पथ पर चलोगे। गाँधी की शिक्षा तुमने समझी भी है? कोई तुम्हारे गाल पर एक थप्पड़ लगाये तो क्या करोगे? शेखर ने बिना हिचकिचाहट के कहा 'दूसरा गाल आगे कर दूंगा।"**

शेखर की माँ को लड़की पैदा होती है, उस समय शेखर के मन में जन्म सम्बन्धी प्रश्न पुन: उठ खड़े होते हैं। वह बहन सरस्वती से ठीक-ठीक बताने के लिए आग्रह करता है। इस बार वह उन उत्तरों को ग्रहण नहीं करना चाहता कि बच्चों को दाई लाती है, डॉक्टर लाता है, ईश्वर देता है। इससे स्पष्ट है कि वह प्रत्येक प्रश्न के उत्तर को ठीक-ठीक जानने के लिए इच्छुक है। खण्डांत में शेखर के भीतर काम-भावना का भी बीजारोपण स्पष्ट दिखायी देता है। इसका संकेत खण्ड के अन्तिम स्वप्न से मिल जाता है। स्वप्न का अल्पांश यहां उद्धृत है-

"रात को शेखर ने स्वप्न देखा। एक विस्तीर्ण मरूस्थल। दुपहर की कड़कड़ाती हुई धूप। शेखर ऊँट पर सवार उस मरूस्थल को चीरता हुआ भागा जा रहा है. भागा जा रहा है... और देखते-देखते एक दिव्य शान्ति उसके ऊपर छा जाती है और जानता है यही है जिसे खोजने वह आया है. जिसके लिए वह भाग रहा है..... और यह शान्ति इतनी मधुर है कि शेखर को रोमांच हो आता है, वह दबाकर बहन सरस्वती का हाथ पकड़ लेता है... वह जाग पड़ा। स्वप्न इतना सजीव, इतना यथार्थ था कि शेखर ने हाथ बढ़ाया कि सरस्वती का हाथ पकडे।"

तृतीय खण्ड - प्रकृति और पुरूष :- खण्डारम्भ में ही यह दिखाया है कि शेखर को सरस्वती में अपना छिपा हितैषी व शुभचिंतक दिखायी देने लगा। इस खण्ड में शेखर को नारी एवं पुरूष के परस्पर सम्बन्धों के रहस्य का भी पता लगता है और वह शारदा एवं शान्ति से प्यार भी करने लगता है। एक स्थान पर शेखर बड़ी सी सिसकी लेकर अपने अथाह आंसुओ को पीकर कहता है -

"शारदा, मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ।' शेखर एकांत में जाकर रवि ठाकुर की गीतांजलि पढ़ने लगा था। उसे अनुभव होता है कि वह किसी देवता की अर्चना के लिए मनसा, वाचा, कर्मणा, पवित्र होकर खड़ा है।"

अब शेखर शान्ति से भी प्यार करने लग जाता है। एक स्थान पर शांति से अपने कोमल स्वर में कहा 'क्या देख रहे हो?' उसने रूकते हुए स्वर में कहा, 'शांति, मैं तुम्हे छू सकता हूँ?' शांन्ति ने आँखों से अनुमति देते हुये कहा, 'आओ'।

"शेखर ने पास जाकर बड़े आदर से, डरते-डरते अपना एक हाथ शांति की ठोडी के नीचे, कंठ पर रख दिया। शांति ने सिर आगे झुकाकर उसकी उंगलियाँ ठोड़ी से दबा ली- बहुत ही हल्के, कोमल, कृतज्ञ से दबाव से.....।"

खण्ड के अन्त में आते-आते शेखर अपने आपको एक सम्पूर्ण, मुक्त और पुरूष समझने लगता है। लेखक कहता है, उस दिन उसने सिर उठाकर देखा कि वह समुद्र पार कर आया है, कि वह सम्पूर्ण है, मुक्त है, और पुरूष है। '

चतुर्थ खण्ड - पुरूष और परिस्थिति :- इस खण्ड से स्पष्ट है कि शेखर अब घर से निकल कर खुले सम्पर्क में आ गया है। उसके अन्तःस्थल में अनेक सवाल उठते हैं। शेखर के ही शब्दों में **"कैसा होगा कॉलेज? कैसा होगा बोर्डिंग? कैसे बड़े लड़के, नौकर-रसोइया, खाने का ढंग, रहने का कमरा....।"**

कॉलेज में ही शेखर की कुमार से मित्रता होती है। यदा-कदा शेखर, कुमार की आर्थिक सहायता करने लगता है। कुमार ने ही शेखर का परिचय कॉलेज के और विद्यार्थियों से कराया। धीरे-धीरे शेखर और कुमार की मित्रता इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि शेखर कुमार को लेकर अनेक संवेदनशील बाते करने लगता है।

शेखर के शब्दों में, **"देखो कुमार, ऐसे लगता है जैसे इस दुनिया में तीसरा कोई नहीं है।' कुमार, 'यदि मेरे अतिरिक्त तुम और किसी के हुए, तो मैं तुम्हारा गला घोंट दूँगा।"**

कुमार ने भय के स्वर में कहा **"तुम क्या कह रहे हो शेखर।' वैसे शेखर को रूढियों को प्रश्रय देने वालों के घोर विरोधों में से ही अपना मार्ग निर्मित करना पडता है। अन्त में वह मद्रास से विदा लेने के लिए समुद्र तट पर चल पडता है।**

'शेखर एक जीवनी' - दूसरा भाग :-

इसमें भी चार खण्ड हैं। यहाँ प्रत्येक खण्ड के विषय में अध्ययन करने पर शेखर की मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का स्पष्ट विकास दृष्टिगत होता है।

प्रथम खण्ड : पुरूष और परिस्थिति :- नीलगिरी प्रदेश में शेखर अपने माता-पिता और भाइयों को पाँच सौ मील पीछे छोड़ आया था। कहने का तात्पर्य कि शेखर अब दक्षिण भारत से उत्तर भारत में आकर संघर्ष करता है। होस्टल के लड़कों के विचार जानने के लिए वह उन लड़कों जैसी वेशभूषा धारण करता है। यहाँ उसका परिचय नशे में धूत मणिका से होता है। यहां उसे शशि का पत्र मिलता है। जिसमें शशि के पिता की मृत्यु के विषय में लिखा है। शेखर मौसी विद्यावती के पास आता है। यहीं पर शेखर के भीतर गहरी संवेदना का स्त्रोत भी उमड़ पड़ता है वह पुन: मानने लगता है कि मैं निवैयक्तिक नहीं हूँ। अनुशासन के लिए दिन-रात पिसते शेखर ने उसके विरूद्ध घोर अपराध किया। सी.आई.डी. को पीटने के अपराध में उसे सिपाही ले जाते हैं। उसे शशि का यह वाक्य, 'दुख उसकी आत्मा को शुद्ध करता है, जो उसे दूर करने की कोशिश करता है।

द्वितीय खण्ड : बन्धन और जिज्ञासा :- इस खण्ड में लेखक ने शेखर के 'जेल जीवन' का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। जेल में ही उसके मन के अनुकूल व्यक्ति विद्याभूषण मिला था जो असहयोग के जमाने में यहाँ आया था। शशि जेल में उससे मिलने आयी थी। शशि की याद उसे बराबर कुरेदती रहती है उसकी यह भावना उसे याद दिलाती है -

"उसने कहीं पड़ा था, जो रो नहीं सकता, वह अवश्य विश्वासघात करता है, रो सकना अपने प्रति - अपने हृदय के प्रति - सच्चे रहने का लक्षण है।"

इधर शेखर जेल में और उधर शशि का विवाह। यद्यपि शशि अभी विवाह नहीं चाहती थी, फिर भी तिथि नियत हो गयी थी। यह सम्पूर्ण जानकारी शशि के पत्र द्वारा शेखर

को प्राप्त होती है और वह सोचने लगता है - "वह क्या करे? कैसे शशि की सहायता करे? वह सचमुच नहीं चाहती विवाह : उसने स्वयं पत्र लिखा है वह क्या करे? वह अनिच्छुक भी है, अप्रस्तुत भी है और वह अपने को अन्याय का शिकार भी अनुभव करती है..... मैं बाहर होता तो कुछ करता ही। लडता - झगड़ता, बहस करता।'

"जिज्ञासा-जिज्ञासा - यह मर्मान्तक पीडा..... पर मैं जानना चाहता हूँ - शशि की अवस्था जानना चाहता हूँ - क्या वह सुखी है?"

शेखर जेल से बाहर आ गया था, वह मुक्त था।

तृतीय खण्ड : शशि और शेखर :- शेखर को रिहाई पर मिस्टर बर्नेस द्वारा बधाइयाँ मिलती हैं। शशि के घर अब शेखर का आना-जाना प्रारम्भ होने लगता है और उसे ऐसा लगता है कि वह अब अपरिचित हो गये है। शेखर सोचता है - **"नहीं। शशि मेरे जीवन से बाहर चली गई है। सुख के कारण नहीं, वैसे ही। हम लोग अपरिचित हो गए हैं। रामेश्वर और मुझमें साम्य क्या है? मेरे व्यसन अलग हैं। और शील तो मुझमें है ही नहीं, पर मैं यह जानने वाला कोई नहीं हूँ कि उसे क्या दुख है। मैं गैर जो ठहरा।"**

शेखर अब किराए के मकान में रहने लगा था। उसने साहित्य का क्षेत्र चुन लिया और अपना भविष्य हिन्दी में देखता है। एक दिन शेखर को तार मिलता है कि उसकी माँ अब नहीं रही।

"उसके मन में एक विचित्र प्रकार की वेदना उठी, जो दुख से भिन्न थी। दुख का अनुभय उसे नहीं था, थोड़ी सी ग्लानि भी इस कारण हुई.. वह चाहता था कि वह एक बार रो दे - सीधे-सादे मातृहीन मानव की तरह सरल भाव से रो दे! पर उसकी आँखें मानो और भी सूख रही थी, एक जलन सी उनमें हो रही थी।"

एक बार शेखर जीवन से इतना उदासीन हो जाता है कि आत्महत्या करने के लिए तैयार हो जाता है, शेखर के ही शब्दों में - 'नहीं, जीवन में कोई उद्देश्य नहीं है, तो चुप रहने में, छिपाने में भी कोई उद्देश्य नहीं है, बात अगर नहीं छूती तो उसकी रागात्मक प्रतिक्रिया भी नहीं छू सकती..... गया था तब नहीं जानता था, पर चलते-चलते जान पड़ा कि आत्महत्या का उपाय खोज रहा हूँ।

इसे सुनकर शशि कांप उठती है और वह शेखर को दृष्कृत्य से बचाती है। शशि के शब्दों में **"अभी तुम्हारा मन नहीं धुला? शेखर मैं कहती हूँ, तुम नहीं जाओगे? और आगे कहती है, 'मेरी तरफ देखो, शेखर - मेरी आखों की तरफ। क्या तुम मनमानी कर सकते हो- अकेले हो?"**

चतुर्थ खण्ड : धागे, रस्सियां, गुंझर :- ये तीनों शब्द क्रमश: शिक्षा, सभ्यता और संस्कार की बड़ी गांठों के प्रतीक हैं। परित्यक्ता शशि भी शेखर के पास आ गयी है। शशि के शब्दों में "आ गयी, बस-अब वहाँ लौटना नहीं होगा - नहीं, मुझे मत छुओ, मैं अभी चली जाऊँगी -'।

'उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया है।' शेखर के आग्रह के कारण वह उसके पास ही रह जाती है। पति द्वारा बेरहमी से पीटे जाने के कारण शशि की किडनी में काफी आघात पहुँचा था। वह रूग्णावस्था में थी। उपचार होने लगा था। शेखर शशि व अपने सम्बन्धों के बारे में सोचता है -

"प्यार एक आकर्षण है, एक शक्ति, जिसमें जीवन की स्थितिशीलता विचलित हो जाती है यह विचलन की समस्या है, क्योंकि यह व्यापक है, मौलिक है, जीवन में तलवार की धार तो डगमगा जाती है.... तब तक समस्या है जब तक कि उतना ही व्यापक सामंजस्य निकाला जाए.... समस्या है, साधना है, तपस्या है।....।"

निष्कर्षत: हम देखते हैं कि 'शेखर एक जीवनी' के दूसरे भाग में शेखर गतिशील पात्र के रूप में हमारे सम्मुख आता है। शशि शेखर के प्यार को सीमाबद्ध नहीं करना चाहती। वह उसे एक साथ बहिन, स्त्री माँ का प्यार देना चाहती है। यही कारण की वह अपने प्यार को पाप नहीं समझती।

बाबा मदनसिंह, मोहसिन, शशि आदि द्वारा उसके अहं एवं विद्रोह शक्ति का परिष्कार होता है। शशि के आने से तो उसके जीवन में एक अभूतपूर्व परिवर्तन होता है। उसका अधूरा विद्रोह शशि के लिए तथा विदेशी शासन के विरूद्ध लड़ने से अधूरा नहीं रह जाता। पात्रों के सम्पर्क में आते ही उसके अंन्दर स्थित मानवता का उद्रेक होता है, अहंमन्यता नम्र हो उठती है और स्वस्थ विद्रोह शक्ति में परिवर्तित हो जाती है। शेखर की गतिशीलता के कारण कथानक में भी एक गति आयी है। उसका प्रवाह और बढ़ गया है।

8.5 शेखर एक जीवनी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

8.5.1 शेखर का व्यक्तित्व : मनोवैज्ञानिक धरातल पर

शेखर एक जीवनी' का प्रमुख पात्र 'शेखर' है जो एक प्राणवान क्रान्तिकारी नायक है। जीवन की सम्पूर्ण दीर्घ एवं लघु घटनाओं की वही एकमात्र धुरी. है, इसीलिए समस्त घटनाएँ उसके चारों ओर चक्कर काटती दिखायी पड़ती हैं। उन्हीं घटनाओं के माध्यम से 'शेखर' अपने जीवन पथ को निर्मित करने का अथक प्रयास कर रहा है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त की घटनाओं का विवरण ही इस उपन्यास का महत्वपूर्ण विषय है।

शेखर के मनोविश्लेषणात्मक विवेचन के सन्दर्भ में **डॉ. देवराज उपाध्याय** का कहना है - **"अज्ञेय का शेखर हिन्दी का प्रथम उपन्यास है, जिसे शिशु मानस की, आनन्द प्रधान जीवनी की झाँकियों को, उसके कौतूहल और जिज्ञासाओं को तथा उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर समाज तथा माता-पिता के व्यवहार को अथवा यों कहिए की रियलिटी प्रिन्सीपल के सम्पर्क से उत्पन्न दमन को, मानसिक ग्रन्धियों को तथा उसके जीवन व्यापी प्रभाव को कथा क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया है।"**

'शेखर : एक जीवनी' का 'शेखर' निरन्तर छटपटाने वाला जीवन्त तथा असाधारण मन का अन्तर्मुखी पात्र है। स्वयं अज्ञेय जी के शब्दों में - **"वह लीजिये - वह रहा शेखर: कुछ बिखरे बाल, व्यस्त अन्तर्मुखी मुद्रा, झुकी आँखें पर बैचेन ललकारते कदम।"**

दरअसल शेखर एक ऐसा विद्रोही स्वभाव का भीरू पात्र है, जिसका जीवन ही भय, सेक्स, तथा अहं की धुरी पर घूम रहा है। इसलिए उसके चरित्र को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ही देखना अधिक उचित होगा। शेखर के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर देख सकते हैं -

जिज्ञासा भाव (जिज्ञासु प्रवृत्ति) :-

बालक की सहज प्रवृत्तियों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति सर्वाधिक प्रबल एवं व्यापक होती है। 'शेखर' शैशवावस्था से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति का है इसलिए उसकी जिज्ञासा-प्रवृत्ति अपेक्षाकृत प्रबल और व्यापक थी। वह जन्म एव मृत्यु सम्बन्धी प्रश्नों की झड़ी सी लगा देता है। 'शेखर के घर नये भाई ने जन्म लिया। उसे देखकर शेखर के मन में अनेक प्रश्न उठते हैं जैसे यह कैसे आया? कहाँ से आया? कब आया? कौन लाया? क्या सब ऐसे ही आते हैं? अत: जब वह कुछ बड़ा हुआ तो जिज्ञासा ने उसे सबसे ज्यादा झकझोरा। माँ से पूछता है, चिड़िया के बच्चे कहीं से आते हैं? अण्डे कहीं से आते हैं? शेखर पेड़ों पर चढ़कर घंटों किसी घोंसले के पास बैठा रहता, ताकि अण्डा फूटे तो वह जान सके कि नया बच्चा किस तरह आता है? प्रकृति के नाना जीवधारियों के विषय में भी वह जिज्ञासु बन गया।

चतुर्मुखी विद्रोही :-

'शेखर : एक जीवनी' चतुर्मुखी विद्रोह का आख्यान बन गई है। इसीलिए इसमें कथाकार की चिन्तनशीलता बन यत्र-तत्र सहज ही दृष्टिगोचर हो जाती है। शेखर के शब्दों में, **"मैं ईश्वर को नहीं मानता। मैं प्रार्थना भी नहीं मानता। भवानी झूठी है। ईश्वर झूठा है। ईश्वर नहीं है।"**

विद्रोह की विद्रोह-भावना का प्रसार व्यापक होता है। वह सभी कुछ बदलने के लिए प्रयत्नरत होता है, इसीलिए वह समाज, राजसत्ता, अर्थसत्ता आदि के प्रति ही नहीं, वरन् स्वयं अपने व्यक्तित्व के प्रति भी विद्रोही होता है।

एक स्थान पर शेखर स्वयं स्वीकारता है, **"शशि, शक्ति मेरे पास रही है, पर मैंने उसे जाना नहीं, आजीवन में विद्रोही रहा हूँ पर बराबर मैं अपनी विद्रोही शक्ति को व्यर्थ बिखेरता रहा हूँ.... एक दिन तुम्हारे ही मुख ने मुझे यह दिखाया - कि लडना स्वयं साध्य नहीं है, लड़ने के लिए लड़ना निष्परिणाम है : कि विद्रोही किसी के विरूद्ध होना चाहिए - ईश्वर, समाज, रोग, मृत्यु माता-पिता, अपना-आप, प्यार कुछ भी हो जिसके विरूद्ध विरोध किया जा सके।"**

सेक्स :-

सेक्स जीवन की एक सहजात वृत्ति है। इसकी तृप्ति अनिवार्य है। सेक्स की अतृप्ति के कारण जीवन दुखी हो सकता है। अज्ञेय जी के पात्रों के चरित्र निर्माण में सेक्स की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

शेखर का सेक्स ही है जो शशि को चुम्बन करता है। कुमार के प्रति शेखर का आकर्षण सेक्स के अलावा ओर कुछ नहीं है। शीला शारदा के प्रति आकर्षण का कारण यही सेक्स ही है। एक बार शेखर शशि को चूम लेता है, तो शशि चीख पड़ती है - **"नहीं शेखर नहीं, वह नहीं.... वे झूठे हैं। शेखर लज्जित हो जाता है। शशि का अपने होतो को जुंठा मानेना और शेखर की लज्जा दोनो के पीछे सेक्स सम्बन्धी पुराणपंथी मान्यताएं काम कर रही हैं।"**

'शेखर' में अहं का एक बहुत बड़ा अंश मिलता है। शेखर को क्रान्तिकारी बनाने में अहं की महत्वपूर्ण भूमिका है इसी अहं के कारण शेखर के सामने शशि अपने आपको

पूर्णरूपेण समर्पित कर देती है। लेकिन उनका सम्बन्ध चुम्बनों तक ही सीमित रहता है। दोनों के मध्य शारीरिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता।

बाल्यकाल में शेखर को जब कभी काम दिया जाता है तो वह स्वाभिमान करता है। शेखर को जब सोचने से रोका जाता है, तब वह बड़ा होना चाहता है। कान्वेन्ट में अपने अहं के कारण ही शरारत करता है। जेल-जीवन के साथी बाबा मदनसिंह को शेखर प्रणाम तक नहीं कर पाता। इससे भी उसकी अहंमन्यता व्यक्त होती है।

व्यक्ति स्वातंव्य की खोज :-

अस्तित्ववादी परिप्रेक्ष्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है - व्यक्ति स्वातंत्र्य।

"व्यक्ति स्वातंत्र्य" शेखर की जीवनी की मूल भावना है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है। शेखर स्वातंत्र्यकामी है, बचपन से ही उसमें 'व्यक्तित्व' की भावना इतनी प्रधान है कि वह पारिवारिक-अनुशासन से निजात पाना चाहता है, पिता की निर्दयता और माँ की उपेक्षा से पूर्व धर उसे नर्क प्रतीत होता है। 'व्यक्तित्व' की भावना (अहं) और स्वातंत्र्य की कामना परस्पर सम्बद्ध होती है। व्यक्तित्व भावना के अभाव में स्वातंत्र्य कामना नहीं हो सकती है।

'शेखर एक जीवनी' एक वैचारिक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास में प्रमुखत: व्यक्तिवादी चिन्तन को महत्व दिया गया है, विद्रोह की भावना को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। प्रेम, घृणा, वासना, सौन्दर्य, आनन्द, विद्रोह, शिक्षा, ईश्वर आदि विषयों पर नये प्रकार का चिन्तन इस उपन्यास की निधि है।

ईश्वर के प्रति अनास्था -

शेखर जब अपने व्यक्तित्व को कुचला व बिखरा हुआ देखता है तो उसके अहं भाव को ठेस और धक्का लगता है तब उसके चरित्र में ईश्वर के प्रति अनावस्थावादी स्वर मुखरित हो जाता है। निम्न उद्धरण से यह बात स्पष्ट होती है-

"मन्दिर से कुछ दूर खड़ा शेखर कुतूहल से मंदिर की और देख रहा है बाकी सब लोग इकट्ठे होकर मंदिर की प्रदक्षिणा कर रहे है। पिता कठोर शब्दों में शेखर से पूछते हैं - शेखर तुमने मेरा कहा क्यों नहीं माना? वह एक क्षण चुप रहता है - लम्बी साँस खींचता है - मैं ईश्वर को नहीं मानता। मैं प्रार्थना भी नहीं करता। भवानी झूठा है। ईश्वर झूठा है।"

स्वच्छन्दतापूर्ण चरित्र -

शेखर सामाजिक रूढ़िगत बन्धनों से अपने आपको मुक्त करना चाहता है और वह ऐसी नवीन व्यवस्था को प्राप्त करने के लिए व्याकुल है, जहां वह स्वच्छदतापूर्वक रहकर अपना विकास कर सके। यह इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि - "बालक ने सोचा कितना उन्मुक्त होगा वह स्थान जहाँ सब कुछ तो स्वतंत्र होगी ही, ये पौधे भी स्वच्छन्दता से उग-फूल सकेंगे। माँ के यह कहने पर कि "सच पूछो तो मैं इसका भी विश्वास नहीं करती। "शेखर के मन में तुफान सा मचा देती है। वह सोचता है कि अच्छा होता कि मैं कुत्ता होता, चूहा होता, दुर्गन्धमय क्रीड़ाकृमि होता.. में ऐसा आदमी होता, जिसका विश्वास नहीं है।

कुण्ठा कई कारणों से होती है। शेखर के जीवन में अनेक नारियाँ प्रेमिकाओं के रूप में आती हैं, यथा - शीला, शारदा, शान्ति और शशि। किन्तु शशि ही शेखर को सर्वाधिक आकृष्ट करती है। शशि की समस्या प्रेम और समाज दोनों की है। शशि किसी की पत्नी भी है अत: उसे किसी की प्रेमिका होने का नैतिक और सामाजिक अधिकार नहीं है। साथ ही शशि को देखकर शेखर ने बहिन भी कहा है। यही वह समस्या है जो शेखर की कुण्ठा को परवान चढ़ाती है किन्तु उसे अन्दर ही अन्दर तोड़ती भी है।

भय :-

शेखर के सामने जब फूस से भरा नकली बाघ लाया जाता है तो वह बहुत भयभीत होता है, इसी प्रकार वह अनेक स्थानों पर भय से ग्रसित रहता है। शेखर गंभीर स्वर में कहता है - क्या सचमुच मृत्यु डरने की चीज है?

प्रेम और संवेदनशीलता :-

बालक शेखर गरीब बच्चों की स्थिति देखकर दया भाव से भर उठता है, जिनके माता-पिता गरीब लोग हैं और उनके लिए खिलौने नहीं खरीद सकते और न फल।

किसी युवक का किसी युवती की ओर आकर्षित होना तथा प्रेम करने लगना प्राकृतिक प्रवृत्ति है। वह उसे अपनी प्रेमिका के रूप में देखना चाहता है। सदैव अपने निकट चाहता है उससे इच्छानुसार प्रणय-व्यापार चलाना चाहता है लेकिन समाज के अपने नियम हैं जो दोनों के बीच में बाधक बनते हैं।

इस उपन्यास में शशि के संदर्भ में शेखर का प्रेम और समाज की नियामक नीतियाँ एक दूसरे के विरोध में खड़े हो जाते हैं तथा प्रेम एवं नीति की सनातन समस्या को उत्पन्न करता है। यह समस्या इसीलिए है कि शशि रामेश्वर की पत्नी है तो शेखर की प्रेमिका भी इसी के साथ शेखर की मौसेरी बहन है शशि। शेखर उसे बहन कहता है तथा उससे भावना इस प्रकार दिखाई देती है -

"प्यार एक आकर्षण है, एक शक्ति, जिससे जीवन की स्थितिशीलता विचलित हो जाती है।" वासना नश्वर है, प्रेम अमर! प्रेम का एक ही जीवन है, वह एक बार होता है और जब मरता है तो मर जाता है, उसे दूसरा जीवन नहीं मिलता।"

8.5.2 शेखर से इतर पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

अज्ञेय ने अपने पात्रों का चयन प्रमुख रूप से मनोविज्ञान के आधार पर ही किया है। उनके उपन्यासों में आये हुए सभी पात्र लगभग अन्तर्मुखी ही जान पड़ते हैं। यों तो हम उनके पात्रों को बुद्धिजीवी पात्र, मनोवैज्ञानिक पात्र, प्रतीकात्मक पात्र और मानसिक असंतुलन वाले पात्र की संज्ञा से सुशोभित कर सकते है।

'शेखर एक जीवनी' चूँकि एक पात्र प्रधान उपन्यास है लेकिन उसके व्यक्तित्व को विकसित करने में कुछ अन्य पात्रों का भी लाभप्रद योगदान रहा है, जो विशिष्ट है। ये पात्र कदम-कदम पर शेखर की हर चाल को, हर कार्य व्यापार को नियन्त्रित और प्रभावित करते हैं फिर भी अपनी अस्मिता को बनाये रखते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ गौण पात्र भी पात्रत्व के निर्माण में कुछ न कुछ योगदान देते ही हैं।

इस उपन्यास में मुख्य पात्र :

शेखर, शशि और सहायक पात्र शारदा, पं. हरिदत्त, शेखर की माँ, सरस्वती, बाबा मदनसिंह है।

शशि :-

'शेखर : एक जीवनी उपन्यास की शेखर के पश्चात् सर्वाधिक सशक्त पात्र शशि है जो न केवल शेखर की जीवन-दिशा निर्धारित करती है बल्कि इस प्रयास में अपनी आहुति भी दे देती है। इसीलिए शेखर की स्मृतियों में सबसे पहला नाम जो उभरता है वह नाम शशि का है। शेखर शशि को प्राथमिकता देते हुए कहता है **"सबसे पहले तुम शशि। इसीलिए नहीं कि तुम जीवन में सबसे पहले आयी या तुम सबसे ताजी स्मृति हो। इसीलिए कि मेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे होने को लेकर है - ठीक वैसे ही जैसे तलवार में धार का होना पात्र की पूर्वकल्पना करता है।"**

असफल वैवाहिक जीवन :-

शशि यद्यपि अपने वैवाहिक जीवन से असन्तुष्ट है तथापि अपने असन्तोष को व्यक्त नहीं करती बल्कि उसकी भीषण ज्वाला में स्वयं को निरन्तर चुपचाप जलाती रहती है। निरन्तर वेदना को झेलना व्यक्ति को प्रौढ़ बना देती है, शशि को भी प्रौढ चिन्तक बना देती है। प्रस्तुत कथन वह शेखर से कहती है - "और तुम्हारा लिखना एक उद्देश्य के लिए होगा - विनाश के लिए और पुनर्निर्माण के लिए...।"

आत्मोसर्ग, धैर्य व सहनशीलता की मूर्ति

शशि के चरित्र का अध्ययन करने पर यह कहा जा सकता है कि उसके चरित्र में आत्मोत्सर्ग की इतनी उत्कृष्ट भावना है कि यह भावना उसके समस्त चरित्र की सर्वप्रधान विशेषता बन गयी है।

शशि के चरित्र में जहाँ आत्मोत्सर्ग गहनतम स्तरों पर उद्घाटित हुआ है, वहीं उसमें अप्रतिम धैर्य एवं सहनशीलता के दर्शन होते हैं। वह विवाह नहीं करना चाहती, परन्तु उसकी माँ की प्रतिष्ठा का प्रश्न था, इसलिए वह बिना विरोध के चुपचाप शादी कर लेती है। शशि शेखर को यह बता देती है कि रामेश्वर ने उसे घर से निकाल दिया है, किन्तु वह शेखर को दुखी नहीं करना चाहती, इसीलिए वह शेखर को यह नहीं बताती कि उसे कितनी चोट आई है। उसे खून की उल्टियाँ होती हैं, पीड़ा से वह छटपटाती है किन्तु फिर भी अपने समस्त कष्टों को सहकर वह शेखर के लिए रोटियाँ बनाती है।

प्रेरणात्मक निस्पृह प्रेमिका :-

शशि दूर के रिश्ते से शेखर की मौसेरी बहन है किन्तु बचपन से ही दोनों में एक ऐसा रागात्मक सम्बन्ध हो जाता है कि वे परस्पर भाई-बहन रहते हुए भी अन्दर ही अन्दर एक दूसरे को असीम प्यार करने लगते हैं। शशि स्वयं को उसकी बहन मानती तो है किन्तु अपने रागात्मक सम्बन्ध के कारण शेखर और अपने संबंधों को सांसारिक सम्बन्धों से हटाकर केवल पुरूष और स्त्री के सम्बन्धों तक पहुँचा देती है। वह शेखर को प्यार करती है किन्तु वह उन्नति-दर्शी है, वह शेखर को आगे बढ़ाने की प्रेरक शक्ति है।

विद्रोही भाव :-

शशि के चरित्र में यद्यपि हम धैर्य, सहनशीलता त्याग एवं स्नेहभाव के ही दर्शन सर्वत्र करते हैं किन्तु एक स्थिति ऐसी भी आती है जब शशि के धैर्य और सहनशीलता ने

जवाब दे दिया। शेखर के संपर्क में आने और उसके विद्रोही विचारों से प्रभावित होने के कारण शशि में भी विद्रोह-भाव जाग्रत हो उठता है। एक स्थिति ऐसी आती है जब उसे ये सामाजिक आदर्श, नैतिकता, मूल्य और तमाम मानदण्ड कोरे लफ्फाजी प्रतीत होते हैं। वह कहती है - हम लोगों की नैतिकता भौगोलिक नैतिकता है - विध्यांचल के इस पार उत्तर भारत है, उस पार दक्षिण प्रायद्वीप है - इसके इस पार सत्य (सत्) उस पार असत् इसलिए हमारी नैतिकता निष्प्राण है।

शारदा :-

शारदा एक मद्रासी परिवार की पुत्री है, जो आधुनिक कहे जाने वाले विदेशी वातावरण में पलती है। यही पहली किशोरी है जिसके प्रति शेखर काम-भावना से उत्तेजित होकर अपना समर्पण करता है, और अन्त में अपने समर्पण में विफल होता है।

शेखर का बार-बार यह कहना कि बताओ, शारदा तुम मुझे प्यार करती हो?' शारदा के मन में खटकने लगता है और वह शेखर से दूर बहुत दूर हट जाती है। शेखर के प्रतीक्षा करने पर भी वह नहीं आती। निश्चित है कि वह भावावेश में दूर चली जाती है तो फिर कभी नहीं लौट पाती। वह शेखर के जीवन में पानी के बुलबुले की तरह आती है और अपनी स्मृति छोड़कर चली जाती है।

शेखर के पिता - (हरिदत्त) :-

शेखर के पिता हरिदत्त पंडित पुरातत्व-विभाग के एक अधिकारी हैं। इनके पद के अनुसार ही इनका व्यक्तित्व गरिमामय एवं आकर्षक हैं - शेखर के पिता लम्बे कद के, गौर वर्ण, गढे हुए और उद्यमी शरीर के थे। उनकी तीखी आँखें, बंकिम नाक, मोटा किन्तु दबा हुआ अधरोष्ठ उनके उस अभिमानी और गुस्सैल आर्यत्व का परिचय देते थे। स्वभावत: वे उदार थे, लेकिन एक दो बार चोट खाकर वे शक्की स्वभाव के हो गये थे और जब कोई आहत होकर शक्की होता है तब संसार में शक से मुक्त कुछ नहीं रह जाता। इसलिए स्वयं ईमानदार होकर वे सारे संसार को बेईमान और उठाइगीर समझते थे - **"मानो निरन्तर अपने मन से कहते रहते हों, देखो, तुम ईमानदार थे, तुमने धोखा खाया। यह बेईमानो का संसार है। यहां किसी का बिश्बास नहीं करना।"** इनका यही स्वभाव और जीवन का कटु अनुभव इन्हें अपनी सन्तान के प्रति कठोर बना देता है।

शेखर की माँ :-

शेखर की माँ साधारण गृहिणी है जिसके जीवन की सम्पूर्ण परिधि अपना परिवार है, और जिसके जीवन के सम्पूर्ण कर्त्तव्य-कर्म अपनी सन्तान का पालन-पोषण करना है। इसके जीवन की सबसे भयंकर त्रासदी यह है कि ये न तो अपने पति के विचारों से ही सामंजस्य कर पाती है और न अपने संतान के कर्म-व्यवहार से ही सन्तुष्ट हो पाती है। अपने चारों ओर विषम परिवेश में ही ये जीवित रहने को और अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करने को बाध्य है।

यदि शेखर के पिता उदार हैं तो वे अनुदार, यदि वे क्रोधी हैं तो ये अक्रोधी, यदि उनमें अपराध को क्षमा करने की सामर्थ्य है तो ये किसी के भी अपराध को कभी भी भूलने वाली नहीं है.। इस प्रकार पति-पत्नी के स्वभाव में पूर्णतया प्रतिकूलता दिखायी देती थी।

मणिका :-

मणिका आधुनिकता की प्रतिमूर्ति है। वह एक अत्यन्त धनाढ्य परिवार की पुत्री और इसीलिए अपार धन की स्वामिनी है। वह ऑक्सफोर्ड और पेरिस से शिक्षा प्राप्त करके लौटी है, अत: उसके विचारों पर पाश्चात्य जीवन की गहरी छाप है। उसे नौकरी की आवश्यकता नहीं, पर अपना समय बिताने के लिए वह शेखर के कॉलेज में अवैतनिक लेक्चरार है, जहाँ उसे लड़कों से सम्पर्क स्थापित करने में सुविधा रहती हे। वह जीवन को जीने के नहीं, वरन् भोग लेने की हिमायती है। इसीलिए वह किसी भी सामाजिक बन्धन को और मर्यादा को स्वीकार नहीं करती। वह न तो विवाह करती है और न तथाकथित नैतिकताओ के बन्धन में बँधती है। वह प्रतिभा सम्पन्न है, किन्तु चारित्रिक दृष्टि से भ्रष्ट भी है। सामाजिक बन्धनों की विवशता को ध्यान में रखकर वह शेखर से कहती है **"मेरे पास यहाँ आने वाले लोगों में बुद्धि तो है, पर चरित्र नहीं, इसके लिए मुझे दुख है। हमारे दाँत तो बड़े -बड़े पर आंते नहीं है - कौर बहुत बडा लेते हैं, पर पचा नहीं सकते।"**

8.6 शेखर एक जीवनी का शिल्पगत अध्ययन व मनोविज्ञान

अज्ञेय जी एक ऐसे शिल्पी हैं, जिनमें मानव-मन की अतुल गहराइयों में पैठने की अपार क्षमता है। मानव-मन की गहराइयों में बैठकर वे जिन निष्कर्षो पर पहुँचते हैं वे हमारे समक्ष साहित्य के रूप में परिलक्षित होता है।

मनोवैज्ञानिक शिल्पी होने के नाते अज्ञेय जी ने भाषा के प्रसंग में भी अस्तित्ववादी सिद्धान्तों को अपनाया है। उनका व्यक्तित्व विद्रोही के रूप में सामने आया है। यही कारण है कि उनकी भाषागत व शिल्पगत विशेषतायें अन्य उपन्यासकारों की तुलना में कहीं अधिक चमक-दमक लिए हुए उभरकर आयी है। उनके अधिकांश पात्र बुद्धिजीवी वर्ग के हैं, इसलिए उनकी भाषा साहित्यिकता लिए हुए है।

अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी' में प्रयुक्त शैलियाँ :-

विवरण शैली :-

उपन्यासों के प्रारम्भकाल में कथा-विकास के लिए विवरण शैली का ही प्रयोग हुआ करता था। आज भी अधिकांश कथाकारों ने इस शैली को प्रश्रय दिया है। जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय जैसे मनोवैज्ञानिक तत्वों के विश्लेषकों ने भी इस शैली को अपनाया है।

'शेखर एक जीवनी' पहले भाग की अपेक्षा दूसरे भाग में विवरण शैली का प्रयोग अधिक हुआ है, इस दूसरे भाग में कथानक को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य विवरण शैली द्वारा ही हुआ है। विवरण शैली का उदाहरण दृष्टव्य है - **"उसके खेल के साथियों में एक लडकी भी थी जिसका नाम कोई नहीं जानता था- सब उसे फूला कहकर संबोधन करते थे।..... 'नहीं अच्छी जात का कोई नहीं जाता।"**

चेतना प्रवाह शैली :-

मन में उत्पन्न होने वाले भाव कभी व्यवस्थित नहीं होते। असंबद्ध भावनाओं का एक निरन्तर प्रवाह सदा मन में बहता रहता है और वह पात्र के व्यक्तित्व तथा बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित रहता है। इन असंबद्ध भावनाओं को बिना किसी परिवर्तन के ज्यों का त्यों उतारना ही चेतना-प्रवाह उपन्यास का ध्येय है।

लेखक पात्र के मन में अविराम से उठने वाले विचारों, विकारों और भावनाओं का आविष्कार करता जाता है उनका लेखा प्रस्तुत करता जाता है।

'शेखर एक जीवनी' में इस शैली का समावेश नजर आता है। शेखर के अन्तर्द्वन्द्व, उसके मानसिक उद्वेलनों एवं मन:संघर्ष को मूर्त रूप देने के लिए लेखक ने चेतना प्रवाह शैली को अपनाया है।

डॉ. सत्यपाल के अनुसार "शेखर के इन मानसिक उद्वेलनों तथा उसके अचेतन संघर्षो को मूर्त करने के लिए अनेक मनोविश्लेषणात्मक विधियों का उपयोग किया है।" शेखर की मनस्थिति का चित्रण हमें इस उदाहरण द्वारा स्पष्ट होता है। शेखर आत्म चेतना में सोचता है - **"यहाँ कुछ है तो रहस्यमय है, जिसके रामेश्वर और शशि साथी हैं, मैं उसमें गैर हूँ। क्या है वह? क्या यही बात है कि पति-पत्नी सम्बन्ध के कारण उनमें एक गहरी आत्मीयता है, जिसको गहरी ही रहनी चाहिए, क्योंकि वह आत्मीयता है जिसे उघाड़कर देखना पाप है? पर वह आत्मीयता तो प्यार ही होता है और प्यार में आनन्द मिलता है। क्या शशि सुखी है? नहीं, - शशि और रामेश्वर के और मेरे बीच में जो अनविच्छेद पर्दा खड़ा हो गया है वह वही पर्दा है जिसके पीछे आनन्द भोगने वाला व्यक्ति छिपा है। आनन्द एक झिल्ली की तरह है जिनमें व्यक्ति सिमटकर बन्द हो जाता है और दूसरों से पृथक हो जाता है अपना जीवन दूसरों के लिए देकर भी वह दूसरों से मिलता नहीं, उनसे अलग रहता है...क्या यही दूरी शशि ने पाई है?"**

चूँकि शेखर की आत्मकथा स्मृतियों के माध्यम से ही व्यंजित हुई हैं और इसी स्मृत्यावलोकन प्रणाली के द्वारा उपन्यास का सारा कथानक निर्मित हुआ है : इसलिए इस शैली का भी महत्वपूर्ण योगदान उपन्यास के ढाँचे के निर्माण में है।

पूर्व दीप्ति या प्रत्यावलोकन पद्धति (शैली) :-

वैसे तो अपनी-अपनी जगह पर सभी शैलियों की महत्ता है, लेकिन इस कृति में प्रत्यावलोकन पद्धति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन में इस पद्धति का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इसके द्वारा चरित्र का क्रमिक विकास होता है। **"शेखर -एक जीवनी"** में इसी प्रत्यावलोकन पद्धति का उपयोग हुआ है। सारा उपन्यास ही इसी पर आधारित है।

शेखर एक घोषित क्रांतिकारी विद्रोहा है और इसी अपराध में उसे फांसी की सजा होने वाली है। उपन्यास के आरम्भ में ही वह अपनी जीवन-यात्रा के अन्तिम स्थान पर पहुँच कर अपने जीवन का प्रत्यावलोकन करता है। वह अपने जीवन की अंतिम रात में अपने समूचे अतीत को पुन: एक बार जी लेना चाहता है। उसकी ऑखों के सामने उसका सारा अतीत वर्तमान होकर नाचने लगता है। शेखर अतीत जीवन में घटित घटनाओं का स्मृत्यावलोकन कर रहा है।

शेखर के शब्दों में **"मैं अपने जीवन का प्रत्यावलोकन कर रहा हूँ, अपने अतीत जीवन को दुबारा जी रहा हूँ। मैं जो सदा आगे ही देखता रहा, अपनी जीवन यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर पहुँचकर पीछे देख रहा हूँ कि मैं कहाँ से चलकर किधर-किधर भूल-भटककर, कैसे-कैसे विचित्र अनुभव प्राप्त करके यहाँ तक आया हूँ। अब मैं अधूरा हूँ पर मुझमें कुछ भी न्यूनता नहीं है, अपूर्ण है, पर मेरी सम्पूर्णता के लिए कुछ भी जोड़ने को स्थान नहीं है।"**

इस मनोवैज्ञानिक स्मृत्यालोकन पद्धति में स्मृतियों को ही विशेष स्थान प्राप्त होता है। इस पद्धति में कथा का प्रारम्भ भी स्मृतियों से होता है।

नाटकीयता की झलक :-

प्रत्यावलोकन शैली के कारण इसमें नाटकीयता की झलक मिलती है। इसलिए अतीत भी वर्तमान का आभास कराता रहता है। इस सन्दर्भ में शेखर स्वयं कहता... "एक सम्बद्ध दृश्य मुझे दीखता है। वह अत्यन्त सजीव है, मैं उसे प्राय: बिल्कुल प्रत्यक्ष देख सकता हूँ किन्तु उसका ठीक अनुक्रम मुझे नहीं मिलता।"

शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार **"सम्पूर्ण ग्रन्थ पूर्व दीप्ति (फ्लेश बैक) की पद्धति पर निर्मित है। चूँकि स्मृतियाँ सुसम्बद्ध रूप में उदित नहीं होती। शेखर का मानस इतना तरल रहा है कि जीवन की छोटी से छोटी घटनाओं की भी उसके भीतर एक विशेष प्रतिक्रिया हुई है, उसी प्रकार जैसे एक क्षुद्र कंकड़ी भी जल को तरंगायित कर देती है।"**

दृश्य विधान शैली :-

'शेखर एक जीवनी' में पहला भाग दृश्यों से भरा पड़ा है। इसमें दृश्य विधान शैली के प्रयोग के कारण पात्रों का चरित्र अत्यधिक स्पष्ट दिखाई पड़ता है जबकि दूसरे भाग में कम। दूसरे भाग में दृश्य-विधान की जगह कथानक को आगे ढकेलने का कार्य विवरण शैली द्वारा हुआ है।

8.7 व्याख्या योग्य पद

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों के अभ्यास हेतु एक दो व्याख्या प्रस्तुत की जा रही हैं।

"मुझे विश्वास है कि विद्रोही बनते नहीं उत्पन्न होते है, विद्रोह बुद्धि परिस्थितियों से संघर्ष की सामर्थ्य जीवन की क्रियाओं से परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से नहीं निर्मित होती, वह आत्मा का कृत्रिम परिवेष्टन नहीं है। उसका अभिन्नतम अंग है। मैं नहीं मानता कि देव कुछ है क्योंकि हममें कोई विवशता कोई बाध्यता है तो वह बाहरी नहीं भीतरी है, यदि बाहरी होती, परकीय होती तो हम उसे देव कह सकते पर वह तो भीतरी है हमारी अपनी है उसके पक्के होने के लिए भले ही बाहरी निमित्त है उसे हम व्यक्तिगत निमति कह सकते है।

प्रसंग एवं व्याख्या -

शेखर एक जीवनी उपन्यास के प्रथम भाग से अवतरित इस गद्यावतरण में शेखर ने अपने विद्रोही भाव से प्रेरित और पुष्ट विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। सम्पूर्ण उपन्यास में शेखर का व्यक्तित्व प्रारंभ से लेकर अन्त तक एक विद्रोही का व्यक्तित्व दिखाई देता है। यहां पर शेखर के माध्यम से अज्ञेय जी ने इस विचार को स्पष्ट किया कि जो विद्रोही होते है वे बनाये नहीं जाते। वे तो स्वत: उत्पन्न होते है इसका अर्थ है कि विद्रोह की भावना जन्मजात होती है उसे न तो परिस्थितियों न संघर्ष की क्षमता से और न जीवन की पीड़ाओं से प्राप्त किया जा सकता है। शेखर तो यह भी सोच रहा है कि मनुष्य जीवन में क्रियाशील होता है वह परिस्थितियों के घात-प्रतिघात सहता हुआ अपने जीवन को आगे बढाता है वह सारी प्रक्रिया को वह विद्रोही नही बनता है। अज्ञेय

की इस बात को शेखर के सन्दर्भ से स्पष्ट की गई है, उसे कबीर के माध्यम से समझा जा सकता है।

सामाजिक परिस्थितियों ने कबीर को विद्रोही नही बनाया था वे अपने समय के हिसाब से क्रान्तिकारी पुरूष नहीं बने थे। वे तो जन्मजात विद्रोही स्वरूप लेकर इस धरती पर आये थे। जो लोग जन्मजात विद्रोही होते है उन्हें ही सच्चा विद्रोही कहा जा सकता है। अज्ञेय भी शेखर के माध्यम से यही बात कहना चाह रहें है।

अज्ञेय ने शेखर के माध्यम से यह भी कह दिया कि विद्रोह की भावना कृत्रिम नहीं हो सकती, यदि कोई विद्रोह की वेशभूषा धारण कर ले तो उससे वह विद्रोह नहीं हो जायेगा क्योंकि विद्रोह की भावना तो किसी न किसी व्यक्ति में नैसर्गिक तो होती भी है उसके व्यक्तित्व का ही अभिन्न अंग होती है।

केवल शक्ति लेकर कोई व्यक्ति और वह भी बाहरी शक्ति लेकर विद्रोह नहीं बन सकता है जब तक विद्रोह की भावना आन्तरिक नहीं होगी वह आपके व्यक्तित्व का अंग नहीं होगी तब तक आप कितना भी प्रयत्न करें आप सच्चे विद्रोही नहीं बन सकते है यह व्यक्तित्व नियति है सार्वजनिक तो हो ही सकती।

विशेष -

1 गद्यांश के अन्तर्गत यह विचार बड़ी गहराई से व्यक्त किया गया कि विद्रोह बनते नही उत्पन्न होते है, लेखक के इस विचार में जो शेखर के माध्यम से व्यक्त हुआ है विशेष वजन है "कि विद्रोह बुद्धि परिस्थितियों से संघर्ष की सामर्थ्य जीवन की क्रियाओं से, परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से नहीं निर्मित होती।"

2 गद्यांश में लेखक ने यह स्पष्ट कर दिया कि विवशता या कोई बध्यता यदि बाहरी होती तो उसे देव कहा जा सकता या किन्तु वह भीतरी होती है इसलिए उसे व्यक्तिगत निमति का नाम ही दिया जा सकता है।

3 गद्यांश में कतिपय ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो तत्सम है। जैसे परिवेष्टन बाकी शब्द भी परिष्कृत है किन्तु सहज ग्राह्य हैं। शैली में तार्किकता और विवेचनात्मकता दिखाई देती है।

4 "इसलिए नहीं की तुम जीवन में सबसे पहले आयी या कि तुम सबसे ताजी स्मृति हो इसलिए कि मेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारें होने को लेकर है। ठीक वैसे ही जैसे तलवार में धार का होना शान की पूर्व कल्पना करता है। तुम वह स्थान रही हो जिस पर मेरा जीवन बराबर चढाया जाकर तेज होता रहा है। जिस पर मंज मंजकर मैं कुछ बना हूँ। जो संसार के आगे खड़ा होने में लज्जित नहीं है लज्जित होने का कोई कारण नहीं जानना। तुम जीवित नहीं हो मेरे शेखर के पन्ने में ही तुम टुट गई हो। शायद स्वयं ही शेखर के हाथों में टूट गई हो। "शशि नहीं है शशि मर गई है शशि नहीं है।" यह समझ नही पाता कि क्या हुआ? अपनी शक्ति का कोई अनुमान नहीं लगा सकता, कोई अनुभव नहीं कर पाता।

प्रसंग व व्याख्या -

इस गद्यांश से शेखर एक जीवनी उपन्यास की कथा प्रारम्भ हो रही है तथा नायक जब अपने अतीत के जीवन पर दृष्टिपात करना है तब सबसे पहले उसे अपने जीवन में आयी

शशी नामक एक लड़की की याद आती है। उन्हीं के सम्बन्ध में यहां पर अपने विचार व्यक्त करता हुआ कथानायक कर रहा है कि शशि सबसे पहले तुम याद आ रही हो इसलिए नही कि तुमने मेरे जीवन में सबसे पहले प्रवेश किया या फिर तुम्हारी स्मृति बहुत सादी है और मेरे मानस पर छायी हुई है।

इसलिए तुम्हारी याद आ रही है कि मेरा व्यक्तित्व और अस्तित्व जिस रूप में भी रहा है और वह अनिवार्यत: तुम्हारे होने को लेकर यह स्थिति ठीक वैसी ही है जैसी तलवार में धार का होना शान की पूर्वकल्पना करता है उसी तरह तुम्हारी याद का आना मेरे व्यक्तित्व व अस्तित्व को सार्थकता प्रदान करता है। मेरे व्यक्तित्व के निर्माण में शशि तुम्हारी शान ऐसी रही है कि मेरा जीवन बार-बार उसी शान पर चढ़ाया जाता रहा है और उसे गति और शक्ति प्राप्त होती रही है उसी के आधार पर वह अपने व्यक्तित्व को खड़ा कर पाया है। कथानायक यह कह रहा है कि शशि आज तुम जीवित नहीं हो, इस संसार में नहीं हो, मैं जानता हूं कि में जिस रूप में शेखर बना हूं उसी के बनने मैं तुम टूट गई हो। अर्थात् शेखर के हाथों ही तुम्हारे व्यक्तित्व का विखण्डन हुआ है। कारण यह है कि आज भी में मानता हूं कि मेरा जीवन में बहुत बड़ी क्षति हो गई है, यह क्षति तुम्हारे होने से है इस क्षति का न तो कोई अनुमान लगा सकता है ना कोई अनुभव ही किया जा सकता है। कथानायक संकेत दे रहा है कि शशि का न होना शेखर के व्यक्तित्व का टूट जाना है और वह टूटन ऐसी है कि उसे किसी की अनुभूति के द्वारा या शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है।

विशेष -

1 कथानायक शेखर इस गद्यांश में सर्वप्रथम शशि को याद करता है इसके मूल में सबसे बड़ा कारण यही है कि उसी के सहारे शेखर का व्यक्तित्व निर्मित हुआ है। शेखर के व्यक्तित्व निर्माण में शशि की बहुत बड़ी भूमिका थी।

2 उपन्यासकार ने यह भी संकेत दिया है कि शेखर के व्यक्तित्व का निर्माण करते-करते शशि स्वयं समाप्त हो गई किन्तु उसे इस बात की चिन्ता नहीं थी।

3 अवतरण की भाषा परिष्कृत होते हुए भी सहज संप्रेषणीय बनी हुई है। उनमें कथानक शेखर की भावनाओं को व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता विद्यमान है।

8.8 सारांश

'शेखर एक जीवनी' एक व्यक्ति प्रधान मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसके पहले भाग में बाल मनोविज्ञान का उद्घाटन किया गया है। अज्ञेय जी ने शिशु शेखर के अन्तर्मत में गहरे बैठ कर वहाँ छिडे अन्तर्द्वन्द्व को अंकित करने में सफलता प्राप्त की है। इस उपन्यास के प्रथम भाग में पाठक की दृष्टि इस ओर आकर्षित की गई है कि 'शेखर' जैसे जिज्ञासु शिशु के साथ माता-पिता, बहन आदि का व्यवहार कैसा होना चाहिए। यदि व्यवहार उचित व मनोनुकूल नहीं किया गया तो प्रत्येक व्यक्ति के मन में 'शेखर' की भाँति माँ के प्रति घृणा का भाव जन्म ले सकता है। 'शेखर एक जीवनी' में शेखर व शशि के बीच प्रेम प्रसंग हिन्दी उपन्यास जगत के लिए एक नई उपलब्धि है। शशि का सम्पूर्ण जीवन शेखर के लिए समर्पित है। वह एक साथ बहिन, माँ और पत्नी का सा प्यार प्रदान

करती है जो कम ही संभव होता है। शेखर व सरस्वती तथा शेखर व शारदा का प्रेम प्रसंग भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। लेखक ने बड़ी कुशलता से इन पर मनोवैज्ञानिकता का रंग चढ़ाया है।

शेखर जैसे असाधारण व क्रांतिकारी व्यक्ति की सृष्टि करना तथा उसके माध्यम से समाज में व्याप्त रूढ़िगत मान्यताओं व परम्पराओं का मूलोच्छेदन कराकार एक नवीन समाज रचने की कल्पना जिसमें सब कुछ नया हो अज्ञेय जी के अटूट साहस का प्रमाण है।

डॉ. देवराज के अनुसार - "अज्ञेय के उपन्यासों मे उनकी भाषा में एक अनोखी सादगी, स्वाभाविकता एवं स्वच्छता, क्रांति और परिपूर्णता लिए हुए दिखाई देती है। उनका प्रत्येक शब्द मानों हाल ही में टकसाल से ढलकर नई चमक तथा व्यंजकता लेकर आगत हुआ है।"

अज्ञेय कृत इस उपन्यास की भाषा की सबसे बडी विशेषता 'अनुकूल संदर्भों के शब्दों के बदले पर्यायवाची शब्दों का विन्यास करना अर्थसंगत नहीं हो सकता। भाषा में बिम्ब व प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने प्रयोगवादी शैली का निर्वाह किया है। इस उपन्यास में भाषा के कसावट है। भाषा की लक्षणा व व्यजंना शक्ति से अधिक काम लिया है और शब्द चयन में प्रंसगों की साफगोई है। अर्थ की गरिमा व गम्भीरता भाषा में विद्यमान है। अज्ञेय भाषा के धरातल पर प्रतीक, बिम्ब, चित्रात्मक और सहजता से काम लेते है इसलिए उनके कथ्य और अर्थ छन-छन कर व्यक्त होते हैं।

साहित्यिक वातावरण को इनके उपन्यासों ने झकझोर दिया। 'शेखर एक जीवनी' के प्रकाशन में नेमिचन्द जैन ने कहा था -

"एक सर्वथा नवीन साहित्यिक स्तर की उपलब्धि का भाव समान भाव से हिन्दी के पाठक और समालोचकों में हुआ था और समूचा साहित्यिक वातावरण नये आन्दोलन से स्पंदित हो उठा था।"

"'शेखर एक जीवनी' शिशु तथा बाल मानस की सूक्ष्म तरंगों, कौतुहल और जिज्ञासाओं, सहजात-प्रवृत्तियों, उस पर पड़ने वाले प्राणी-प्रकृतिगत परिवेश के सूक्ष्म प्रभावों और माँ-बाप, शिक्षकों आदि के अमनोवैज्ञानिक दुर्व्यवहारों से उत्पन्न विकारों की कथा है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि अज्ञेय जी की भाषा विशेषतया उपन्यासों की भाषा सर्जनात्मकता लिए हुए है। इसमें उपन्यास सजीव एवं यथार्थ प्रतीत होते हैं। वैसे इनकी भाषा में एक अनूठा लालित्य, कलात्मकता, परिष्कार एवं प्रौढ़ता का प्रयोग दिखायी देता है। इससे भाषा के प्रवाह में तीव्रता आती है।

जहाँ तक शैली का प्रश्न है अज्ञेय जी ने अपने औपन्यासिक कृतियों में नवीन से नवीन शैलियों का प्रयोग किया है और वे इनमें सफल भी हुए हैं। 'शेखर एक जीवनी' में विवरण शैली, प्रत्यावलोकन, चेतना प्रवाह, मनोविश्लेषणात्मक शैली, दृश्य विधान शैली, स्वप्न शैली आदि का प्रयोग उपन्यासकार ने बड़ी सफलतापूर्वक किया है। इन सबमें प्रत्यावलोकन पद्धति विशेष उल्लेखनीय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अज्ञेय जी कथा-भाषा के ही पंडित नहीं, बल्कि कथा शैली के भी एक सफल कलाकार हैं।

8.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 अज्ञेय कृत उपन्यास “शेखर एक जीवनी एक व्यक्ति प्रधान मनोवैज्ञानिक उपन्यास है।” इस कथन की विवेचना कीजिए।

2 मनोविज्ञान और उपन्यास का अन्तःसम्बन्ध बताते हुए मनोवैज्ञानिक धरातल पर 'शेखर एक जीवनी' के कथानक की विवेचना कीजिए।

3 उपन्यास के प्रमुख पात्र शेखर व शशि का चरित्र चित्रण कीजिए।

4 उपन्यास के प्रमुख पात्र ‘शेखर’ के चारित्रिक विकास में अन्य पात्रों की क्या भूमिका रही, स्पष्ट कीजिए।

5 निम्न पात्रों पर टिप्पणी लिखिए -
(क) शशि (ख) मणिका (ग) हरिदत्त

6 शेखर एक जीवनी में किन-किन शैलियों का प्रयोग हुआ है? विस्तार से बताइए।

8.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. देवकृष्ण मौर्य; 'अज्ञेय का कथा साहित्य', अतुल प्रकाशन, कानपुर 1994
2. नरेन्द्र प्रताप सिन्हा; 'शेखर एक जीवनी' (एक परिचय), बोहरा पब्लिशर्स, इलाहबाद, 1989
3. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव; ‘शेखर एक जीवनी पर व्याख्यान', अभिव्यक्ति प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
4. प्रभाकर माचवे; हिन्दी के साहित्य निर्माता 'अज्ञेय', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1991
5. डॉ. रामकमल राय; ‘शोर एक जीवनी- ‘विविध आयाम’, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहबाद
6. देवराज उपाध्याय; 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, 1956
7. डॉ. नन्दकुमार राय; 'अज्ञेय की औपन्यासिक संचेतना’, शारदा प्रकाशन
8. डॉ. रामपाल सिंह; 'अधिगम का मनोविज्ञान', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
9. डॉ. देवराज उपाध्याय; साहित्य का मनोविज्ञानिक अध्ययन', एस. चन्द्र एण्ड कंपनी, दिल्ली, 1964

इकाई-9 कृष्णा सोबती की औपन्यासिक दृष्टि व अनेक उपन्यास

इकाई की रूपरेखा :

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 कृष्णा सोबती का व्यक्तित्व
9.3 कृष्णा सोबती के उपन्यासों का परिचय
9.4 औपन्यासिक दृष्टि
9.5 सारांश
9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
9.7 संदर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है कि आप -

- कथा साहित्य के क्षेत्र में कृष्णा सोबती के योगदान को जान सकें।
- उनके व्यक्तित्व और उपन्यासों से परिचित हो सकें।
- उनकी औपन्यासिक दृष्टि की जानकारी प्राप्त कर सकें।

9.1 प्रस्तावना

हिन्दी उपन्यासों में परिवर्तन की लहर मुंशी प्रेमचन्द ने शुरू की थी और उसी परिवर्तन को मील का पत्थर बनाया फणीश्वर नाथ रेणु ने 'मैला आंचल' लिखकर। इन्हीं जैसे परिवर्तनशील और लीक से हटकर लिखने वाली बोल्ड और जीवन की तल्ख सच्चाइयों को अपनी सभ्यता में व्यक्त करने वाली कलाकार हैं कृष्णा सोबती। उन्होंने बहुत बेबाकी से मध्यवर्ग को चित्रित किया है।

9.2 कृष्णा सोबती का व्यक्तित्व

कृष्णा सोबती स्वांतत्र्योत्तर युग के उपन्यासकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनका जन्म 18 फरवरी 1925 में गुजरात, पंजाब (पाकिस्तान) में हुआ।

कृष्णा सोबती का बचपन पराधीन भारत में गुजरा था यह वही काल था जिसमें स्वाधीनता आन्दोलन ने जोर पकड़ा था। बच्चे अपने घरों में देश प्रेम की कहानियां सुनते और जोश से भर जाते। उनके घर का वातावरण खुला और अनुशासन प्रिय था जिसने उन्हें खुलने, पनपने का मौका दिया। कृष्णा जी का व्यक्तित्व अन्तर्मुखी है उनका व्यक्तित्व इस तरह से खुला हुआ नहीं कि आप स्वयं कुछ पढ़ ले। वे एक बन्द किताब के पन्नों की तरह है जिसे वे स्वयं ही खोलेगी। कन्हैयालाल नन्दन के शब्दों में - "सोबती जी बोलती हैं तो आंखों से, हाथों से और यहां तक कि अपनी चुप्पी से भी लिखती हैं जो लिख रही होती हैं उससे हटने की इजाजत अपने आपको नहीं देतीं।"

भरपूर आत्मविश्वास और गहरे अनुभव से अपनी आंखों पर चढ़े गहरे काले चश्में के भीतर से झाँकती कृष्णा जी की आंखों से कुछ भी अनछिपा नहीं रह सकता। न केवल जीवन बल्कि साहित्य में भी वे कितनी परफैक्शनिस्ट हैं। एक-एक शब्द उनकी कलम से दुरस्त होकर निकलता है। यही दुरूस्तता उनके व्यक्तिगत जीवन की एक खासियत भी है। शायद यही कारण है कि उनकी हर रचना सलीकेदार और तरतीब से उपजी हुई नजर आती है। समकालीन लेखकों में वे ऐसी अकेली कलाकार हैं जिन्होंने कम रचनाओं के लेखन के वावजूद हिन्दी जगत में अपनी पहचान बनाई है।

कृष्णा जी विश्वसनीय और खरे व्यक्तित्व की स्वामिनी हैं। सोबती एण्ड सोहबत' में उन्होंने लिखा है "दोस्तों मैं वहीं हूँ जो आप हैं। मुझ में ऐसा कुछ नहीं है जो आपमें न हो। ऐसा भी कुछ नहीं जो एक रत्ती भर ज्यादा होने से किसी को विशिष्ट बना देता हैं। जो कुछ भी इस वजूद की मिट्टी में है, वह मिट्टी की तरह ही साधारण है सहज है।" कृष्णा जी के इस सहजपन में कितनी इंसानियत और अपनापन है। वे तो सभी इंसानों को एक ही मिट्टी का बना मानती है।

कृष्णा जी ने क्योंकि अपने जीवन और व्यक्तित्व में पंजाबी संस्कृति और पंजाबी पानी को आत्मसात् कर लिया है इसलिए उनके साहित्य में भी वही रंग है। कृष्णा जी खुद के लिए और अपने साहित्य के विषय में ईमानदार है और यह ऐसा गुण है जो न सिर्फ मनुष्य में एक अदभुत साहस, आत्मबल और दृढ़ता का संचार करता है बल्कि मानवीय मूल्यों के प्रति गहन आस्था भी पैदा करता है और जीवन संघर्ष को ऊर्ध्वन, सही, स्वस्थ दिशा अवश्य देता है और यह अवश्य कृष्णा जी और उनके रचना संसार की नायिकाओं में भरपूर और पुरजोर है जिसने उन्हें दिया है - अल्हडता, बेखौफ वाचालता, साथ ही साथ सहृदयता और सबसे ज्यादा मनुष्यमात्र के प्रति सम्मान और स्नेह की भावना। जो उन्हें अन्य कथाकारों से भिन्न करता ऊँचाई पर अवस्थित करता है और यह सब उन्हें जिन्दगी की खुली किताब से मिला जिसको उन्होंने नजदीकी और गहराई से पढ़ा है। ऐसे बहुत कम लोग होते हैं जो जिन्दगी की किताब को जिन्दगी की तहों से नीचे तक जाकर पढ़ते हों। कृष्णा सोबती उनमें से एक हैं। वे नारी मुक्ति की पक्षघर रही हैं और उन परिस्थितियों को बदलने पर जोर देती है जो स्त्री मुक्ति की राह में बाधक हैं। वे विवाह संस्था की पक्षघर हैं लेकिन वह उन सड़ी-गली परम्पराओं को तोड़ने पर अमादा हैं जिनसे स्त्री को स्त्री नहीं, छोटी नजर से देखा जाता है वह उस अन्याय और दोगलेपन के खिलाफ हैं जो इन्सान को इन्सान की बिरादरी से काटता है। वे महिलाओं की सामाजिक हिस्सेदारी को महत्व देती हैं और चाहती हैं कि भारतीय नारी शिक्षित हो।

उनके अनुसार यह महत्वपूर्ण नहीं कि आपने जीवन में कितना जीया है बल्कि यह है कि कैसे जीया है?

कृष्णा जी को बचपन से ही पढ़ने का शौक था इस शौक को बढ़ावा दिया उनके पिता के पुस्तकों के प्रति प्रेम ने। कृष्णा जी बचपन में कविताएं लिखा करती थीं उनकी प्रेरणा स्त्रोत थी उनकी प्राचार्या डॉ. कंचनलता सब्बरवान। उन्होंने भारतीय संस्कृति के ग्रामीण और शहरी दोनों तरीकों को देखा और अपनाया क्योंकि उनके पिता सचिवालय में थे और छः महीने बाद राजधानी मूव करती तो परिवार भी स्थान परिवर्तन करता इसलिए बचपन

में ही वह सबसे तटस्थ और वाकिफ थी और उनके जीवन का व्यवहार में खरी निगाह सी पहचान, उनके परिवेश ने दिलवाई इसीलिए उनका व्यक्तित्व पूर्ण विकसित हो सका और उनके साहित्य को गहराई दे सका।

कृष्णा सोबती के जीवन का विवरण बहुत कम उपलख है जो कुछ थोड़ा सा उपलब्ध है उसके अनुसार उनका बचपन और युवावस्था शिमला, दिल्ली और लाहौर जैसी जगहों में बीती। अपने अस्तित्व का परिचय देना उन्हें जरूरी नहीं लगता। अत: उनका वही व्यक्तित्व का परिचय वास्तविक है तो उनकी रचनाओं में है और यही उनके परिचय की विशिष्टता भी है "लेखन के प्रति सम्पूर्ण निष्ठा, आत्मीयता और भाव प्रवणता के साथ-साथ कभी न मरने वाले सत्य की निरन्तर तलाश इनकी रचना धार्मिकता और व्यक्तित्व के अन्तनिर्हित तत्व हैं।..... साहित्य को जीने और समझने वाले आस्थावान व्यक्ति की तरह यह एक सत्य उनके भीतर हमेशा उजागर रहता है" (डार से विछुड़ी के फ्लेप से)

9.3 कृष्णा सोबती के उपन्यासों का परिचय

कृष्णा सोबती स्वांतत्र्योत्तर युग के उपन्यासकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। उन्होंने बहुत ही बेबाकी से मध्य वर्ग को चित्रित किया। उन्होंने अनेक उपन्यास लिखे जैसे 'जिन्दगीनामा', 'सूरजमुखी अन्धेरे के, 'यारों के यार', 'तिनपहाड़', 'मित्रों मरजानी', 'डार से बिछुड़ी' 'दिलो दानिदा' ओर 'ए लड़की' और संस्मरण 'हम हशमत', 'सोबती एक सोहबन' आदि। उन्होंने स्त्री को यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित किया है।

डार से विछुड़ी -

यह कृष्णा सोबती का पहला उपन्यास था, यह सन् 1958 में लिखा गया था। इससे उन्होंने नारी मन की परत उतार कर हमारे सामने रख दी है। पुराने संस्कारों से भी स्त्री स्वयं को जकड़ी होने के कारण एवं अपने परिवेश से अलग होने के कारण डार से विछुड़ी हुई सोचती है। इस उपन्यास की जो पाशो है, अपनी माँ के कारण दुःखी होती है। बचपन से लेकर उपन्यास के आखिर तक शारीरिक और मानसिक पीड़ा झेलती है। अनेक पुरूषों से संबंध रखती है। किन्तु उनमें प्यार नजर नहीं आता है। सर्वप्रथम वह दीवान जी, फिर बरकृन और मंझले का शिकार बनती है और भटकती हुई कभी लालाजी के घर, कभी मालिक राजाओं के घर उसकी दुर्गति रही, अपने बच्चों के लिए तड़पती अपनी आबरू की चादर को परत दर परत उतारती आखिर अपनी डार पर पहुँची तो सही परन्तु तब तक सब कुछ लुट चुका था। इसका जीवन विवशता का, परिस्थितियों का शिकार बनकर हार चुका था। पाशो की माँ मेहर ने उसे परिस्थितियों का दास बना दिया है। एक बार वह अपनी माँ से बिछुड़कर अर्थात् डार से बिछुडकर फिर अन्त में डार पर अपनी माँ के पास पहुंची उस समय तक उसका मान सम्मान सब कुछ लुट चुका होता है। उपन्यास की नायिका पाशो अनेक छदम नामों में अपने नाम और उसके अस्तित्व को भी भूल जाती है। नारी मन की दुर्बलताओं से ग्रस्त दुःख को भोगती है। इसमें एक ऐसी लड़की का चित्रण है जिसका पांव एक बार घर की दहलीज से क्या निकला कि समूचा जीवन ही उसके लिए अभिशाप बन गया। तमाम उम्र के मदों के हाथों का खिलौना बन कर। इस उपन्यास ने ताजेपन के कारण सब को चौंका दिया था।

सूरजमूखी अंधेरे के -

कृष्णा सोबती का यह उपन्यास बचपन में हुए बलात्कार की शिकार लड़की के जीवन पर आधारित है। अपने उपन्यासों द्वारा बोल्ड कही जाने वाली लेखिका कृष्णा सोबती ने अपने इस उपन्यास द्वारा नारी जीवन के अछूते पक्ष को रचना का विषय बनाया है। वह अछूता पक्ष है नारी का बेहद ठण्डा होना- 'वुमनस् फ्रिजिडिही' स्टेन हेमन महोदय ने इस संदर्भ में लिखा है कि फिजिडिटी लिटलरी कोल्डनेस, परन्तु उपन्यास की नायिका स्त्री इस अर्थ में फ्रिजिड नहीं है उसमें सेक्स के प्रति आकर्षण है मोह है उसके कई पुरूष मित्र भी हैं परन्तु जैसे ही वह किसी पुरूष से जातीय सम्बन्ध बनाती है वहीं पर वह एक व्यक्ति की हवश का शिकार होकर रह जाती है। उसके इस व्यवहार से सिर्फ उक्त पुरूष ही नहीं बल्कि वह स्वयं भी आत्मपीडित होती है बचपन के यौनाचार ने उसके जीवन की सहजता को अन्त तक नष्ट करके रख दिया और उसके तन व मन के बीच कहीं भी सरस भावनाओं के फूल नहीं खिल सके। स्त्री और पुरूष के बीच सहज और सरस दाम्पत्य आवेग और अनुभूतियों के मध्य भी यह लड़की हमेशा कंटीली झाडियों का अहसास करती रही।

अन्दर व बाहर की दोहरी दुश्मनी में जकड़ी स्त्री नाम की इस लड़की की लड़ाई मानवीय मन की अत्यन्त उलझी हुई चाहत और जीने की उत्कृष्ट लालसा के संघर्ष का दस्तावेज है। स्वयं लेखिका के शब्दों में "यह अनुभव, मित्रों मर जानी, यारों के यार, डार से विछुड़ी से नितांत अलग और गहरा था। इस बार शब्दों की मांसलता से नहीं शब्दों की आत्मा से मेरा सामना था। इस साक्षात्कार के लिए मैं सूरजमुखी की कृतज्ञ हूँ स्त्री की तलाश में निरंतर महकती है उसके व्यक्तित्व की शक्ति स्त्रोत है उसकी उत्कृष्ट जिजीविषा जो उसे हर बार टूटी हुई को जोड़ती रही और रति अपनी अंधेरा बनी जिन्दगी को बदलने को कटिबद्ध है।"

इस उपन्यास के तीन खण्ड किए गए है - पुल, सुरंगें और आकाश। पुल में स्त्री के मित्र केथी उसकी पत्नी और उसका बेटा वह भी ऐसी ही गृहस्थी चाहती है। सुरंगें खण्ड ने स्त्री के साथ हुए बलात्कार का वर्णन है एक मासूम बच्ची के साथ हुए घिनौने कृत्य का वर्णन जिसने असमय ही बचपन चट कर दिया। हीनता की ग्रंथि से भर दिया। और अन्तिम खण्ड में दिवाकर द्वारा उसे श्राप मुक्त करना। गहन संवेदना को उकेरता शीर्षक को सार्थकता प्रदान करता मर्मस्पर्शी उपन्यास।

मित्रोमरजानी -

'मित्रोमरजानी' 1987 उपन्यास मित्रों नायक नायिका के इर्द गिर्द घूमता है। मित्रो एक ऐसी स्त्री है जो साहसी, निर्भीक, वाचाल, दृढ़ निश्चयी, काम वासना से अभिभूत है। मित्रों के माध्यम से लेखिका ने स्त्री के अन्तर्द्वन्द्व, उसकी भोगी हुई कुंठाओं, वर्जनाओं और पीड़ाओं को स्वाभाविक अभिव्यक्ति दी है। इसमें दरियाई नाई मित्रों को उसका पति उसकी पसन्द का उसके जैसा नहीं मिला।

मित्रोमरजानी एक पंजाबी परिवार की बहू है किन्तु वह एक स्वतन्त्र स्त्री है और उसमें परम्परा के आधार पर बहू होने के एक गुण नहीं हैं जो हिन्दू परिवार में बहू के होने चाहिए। पति सरदारी लाल की आंखें नीचे करने के कहने पर वह उसे घूर-घूर कर देखती

रहती है। वह किसी से डरती नहीं है, काम वासना से इतनी पीड़ित है कि वह सबका सामना करती है, उसे किसी से भी कोई बात कहने में शर्म नहीं आती है, उसे छोटे-बड़े किसी का लिहाज नहीं है। उसकी बातों से - जेठ भी बच नहीं पाते हैं - जेठ जी अपनी जेठानी के तुलना में मैं कहाँ पर एक इधर भी...। इस प्रकार वह अपने जेठ का मजाक उड़ाती है अपने पति से भी ऐसा मजाक करती है कि वे शरमा जाते हैं। एक स्थान पर वह कहती है - "महाराज जी, न थाली बांटते हो, न दींद बांटते हो, दिल के टुकड़े ही बांट लो।" इस उपन्यास में सेक्स को अधिक उजागर किया है वह अपनी जेठानी से कहती है कि तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता, ले दे के महीने-महीने नहीं तो हफ्ते पखवारे। और मेरी इस देह में इतनी प्यास है कि मछली सी तड़फती है। मित्रों के ये व्यवहार उसे विरासत में उसकी मां से प्राप्त हैं जो कि नित नए व्यक्ति के साथ रास रचाती है। मित्रों के अन्दर अच्छाई बुराई दोनों बातों की अति दिखाई देती है। इस उपन्यास में जहां मित्रों के माध्यम से नारी की शारीरिक जरूरतों को बयान किया है वहीं मर्दानगी के नकली खोल में शिलाजीत और कुश्तों के बल पर मूछें ऐठतें पुरूषों की असलियत से पर्दा उठाया गया है।

मित्रोमरजानी' उपन्यास मात्र मित्रों के देह धर्म की कथा नहीं है, न ही बालों के विलास की, न फूलों के करने की बल्कि इसमें धनवनी और सुहाग की निष्कंप निष्ठा की कहानी भी हैं। इस उपन्यास में मांस मज्जा से बनी एक स्त्री मात्र है, जिसमें स्नेह भी है, ममता भी, मां बनने की हौंस भी और एक अविरल बहती वासना सरिता भी।

मां के साथ छोड़ कर मित्रों को समर्पित की मुद्रा में सन्तुष्ट मात्र से अपने पति के पास लौट जाना लेखिका के हृदय में बसे भारतीय संस्कारों और आदर्शों की ही विजय नहीं है बल्कि किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था का दिग्दर्शन और भरे पूरे हंसते महकते घर की याद ही वह झरण है जो मित्रों को वालों नहीं बनने देता। जिन्दगियों को सींचने की बात पर अपनी जान जोखिम में डालना यही उस परिवार का मूलाधार है। मृत्यु पर जीवन की विजय है। मित्रों अब घड़ी दो घड़ी के लिए अपना भविष्य दांव पर नहीं लगा सकती क्योंकि अब उसे अपनी सीमाओं की पहचान हो गई है, उसे अपने स्वयं का ज्ञान हो गया है। यही है उसका दिशा बोध जो कि उसके चरित्र को विश्वसनीयता और गम्भीरता के सद्गुणों से भर देता है और अब वह सही अर्थों में अच्छे सभ्य परिवार की बहू और सबकी धर्म पत्नी बन गई है।

मित्रों जैसी नारी अपने ऊपर सामन्तवादी पुरूष की कमान नहीं चलने देती जैसा कि प्राय: पुरूष वर्ग करता रहा है कि पत्नी पर किसी भी तरह अपना वर्चस्व और एकाधिकार रखकर खुद स्वच्छंद होना चाहता है लेकिन मित्रों जैसी सजग, संवेदनशील और अपनी नारी देह की मूक पुकार को जो शब्दों का जामा पहनाकर कह सकती है कि - मेरे इस देह में इतनी प्यास है कि मछली सी तड़फती हूँ। वस्तुत: कहा जाए तो मित्रों हिन्दी कहानी की हाड़ मांस की ऐसी पहली नारी है जो युग-युग से ओढ़ाए गए इस नैतिक मानों की चूनर को तार-तार कर अपनी जिन्दगी जीती है। स्त्री जीवन में आई विसंगतियों को समाज सहृदयता से स्वीकारने को तैयार नहीं और मित्रों जैसी अड़ियल नारी, हारने को तैयार नहीं।

कृष्णा जी की शिल्पकला बेजोड़ है अपने पात्रों को उनकी समूची आकृति-प्रकृति के साथ चित्रित्र करती हुई व्यक्तित्व की एक अविस्मरणीय विशेषता अवश्य उद्घाटित कर देती है। 'मित्रों मरजानी' उपन्यास की बनावट नाटकीय शिल्प विधान के निकट जान पड़ती है। जीते जागते चरित्र, तीखे पैने संवाद और एक्शन नाट्य शिल्प के प्राण तत्व हैं और इन तीनों कसौटियों पर उपन्यास खरा उतरता है। उपन्यास के प्रथम भाग में भूमिका रूप में घटनाओं का चित्रण एवं पात्र परिचय, मध्य में पात्रों का मनोविज्ञान जानकर परिस्थितियों का विश्लेषण और अन्तिम भाग में मित्रों का पति सहित मायके जाना वहां मनचाहा होने पर भी बालों के रूप में परिणति और यहीं पर कथा का समापन। इस प्रकार कहा जा सकता है कि लेखिका मित्रों के माध्यम से नारी मन के अन्दर की बात को अभिव्यक्ति देकर एक बोल्ड कथन उठाया है क्योंकि इससे पहले किसी पुरूष या महिला लेखिका ने नारी मन की आदिम देह की पुकार और उसे अभिव्यक्त कर सकने की पहल नहीं की थी। भावी नारी के अंतरमन में लुका छिपी इच्छा और फिर उसकी ईमानदार अभिव्यक्ति ये उनके जीवन की विशिष्टता है और विश्वसनीयता के आधार। दरअसल यह उपन्यास चरित्र प्रधान है और इसमें लेखिका दो प्रश्न लेकर चली है कि तन बड़ा कि मन और दूसरा कि होगी तो आदिम मांग की कितनी विसात होगी अर्थात् नैतिक और अनैतिक क्या है?

तिन पहाड़ (यारों के यार / तिन पहाड)

यह कथा प्रेम के रूमानी ख्वाबों में डूबी एक कमजोर लड़की की है जो प्रेम पाती भी है और असफल भी रहती है। उस उपन्यास में लेखिका द्वारा एक सवाल उठाया गया है कि जीवन क्या है? और हमारे लिए जीवन की प्राथमिकता क्या है? अगर जया जो उपन्यास की नायिका है, के बारे में सोचें तो उसके लिए प्रेम ही जीवन था और उसकी असफलता उसकी मौत का कारण बना। उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है भावुकता। वह समय के साथ कदम मिलाकर चलने में असमर्थ है। वह पीछे गुजरी जिन्दगी की यादों को देखने में इतनी तन्मय है कि उसे अनन्त सम्भावनाओं, सौंदर्य और जटिलताओं से घिरी जिन्दगी को देखना रूचिकर नहीं लगता। तपन के साथ रहकर भी श्री का स्मरण नहीं भूलती। वह समस्याओं का समाधान नहीं करती बल्कि उससे दूर भागती है, पलायनकारी दृष्टि को अपनाती है और क्षणांश का यही अवसाद उसकी जीवन लीला समाप्त कर देता है।

यारों के यार -

इस उपन्यास में लेखिका ने भ्रष्टाचार चापलूसी और रिश्वतखोरी का जीवन चित्रण किया है इसमें नौकरशाही और मानवीय मूल्यों का नकारात्मक पक्ष प्रस्तुत किया गया है। यारों के यार ऑफिस की यांत्रिक जिन्दगी की उठा-पटक और अंतरंगता को सशक्त रूप में उजागर करने वाला उपन्यास है। इस कृति में दफ्तर के जीवन की सच्चाईया अपनी पूरी तल्खी के साथ प्रतिबिंबित हुई हैं। दफ्तरी जीवन में जितनी धांधली बाजियाँ होती हैं वे सब इस छोटे कलेवर वाले उपन्यास में समाहित कर दी हैं। इसमें कोई शक नही है कि 'यारों के यार' एक निर्भीक रचना है - इसमें सोबती जी ने समूचे देश के भ्रष्टाचार पर खुली दृष्टि से देखा है रिश्वतखोरी, जातिवाद, धांधलीबाजी और सुविधा परस्ती का एक जलील और यथार्थ चित्र हमारे समक्ष खड़ा किया है। वस्तुत: यारों का यार हमारा चित्र है

जिसमें कृष्णा जी ने नग्न रूप में हमें ही दिखाया है आज के दफ्तरों पर सूरी का व्यंग्य सब कुछ कह देता है अड्डा नहीं लुच्चाई का मदरसा है और कृष्णा सोबती ने इस मरदसे की भीतरी सारी जगह हमारी आंखों के सामने उघाड़ दी है "नंगई और धोखाधड़ी इस जमाने में गुनाह नहीं। समूचा वातावरण ही गन्दा हो गया है चौतरफा जातिवाद, भाई भतीजावाद, बस अपना काम निकालने की सूझ बूझ में अटके लोग कुछ भी गन्दा, घिनौना करने पर उतर आते दुनिया भर की जालसाजियो, दन्दफंदों, बेइमानियों और आगे बढ़ना या अपने अकेला और मिसफिट पाने वाला सूरी गालियाँ देने के सिवा कुछ और कर ही नहीं पाता।" इस प्रकार इस उपन्यास की शुरूआत भी भ्रष्टाचार से होती है और अन्त भी भ्रष्टाचार से।

भ्रष्टाचार किस सीमा तक अपनी जड़े जमा चुका है इसका जीवंत उदाहरण है यह उपन्यास और इसका साक्षी भी खुद ही है और इसका अनुभव भी खुद से होता है। एक मुलाकात खुद से, अपने जर्जर सामाजिक ढांचे भ्रष्ट भाषा में भ्रष्ट और तल्ख सच्चाईयों का चित्रण है इस उपन्यास में। उपन्यास की दोनों स्त्री चरित्र नारी की व्यावसायिक वृत्ति पर सोचने को मजबूर करते हैं कि अपना सर्वस्व पैसे के पीछे दांव पर लगाना उन्हें खाई में धकेल सकता है, ऊँचाई पर नहीं पहुंच सकता।

ऐ लडकी -

'वर्तमान साहित्य' के कहानी महाविशेषाक अप्रैल 1991 के अंक में एक लंबी कहानी के रूप में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में मृत्यु के निकट मां और विवाहित पुत्री को परस्पर वार्तालाप में स्त्री संबंधी चरित्र एवं सामाजिक नैतिकता के अनेक सवालों को उठाया गया है। इन चरित्रों के माध्यम से कृष्णा जी ने जीवन को पूरी ईमानदारी से जीने की सहज दृष्टि भी प्रदान की है। इस उपन्यास में वे मां और पुत्री के आपसी संवादों के माध्यम से स्त्री मन की समाज वर्जनाओं को निकालती है। स्त्री की अस्मिता का प्रश्न वह केन्द्र बिन्दु है, जहां उसे स्वयं को भी परंपरागत रूढ़ियों से मुक्त होना होगा। यहां स्त्री की आजादी का अर्थ उसकी उच्दृंखलता में नहीं, उस खुलेपन में है जिसमें स्त्री अपने को बाहर निकालकर अपना विश्लेषण कर अपनी अस्मिता की पहचान कर सके। अम्मा द्वारा यह कहना कि तुम किसी के अधीन नहीं स्वाधीन हो 'स्त्री की उस स्थिति का परिचय देता है जिसमें वह अपने पति व पिता के घर के अलावा भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाने की हिम्मत रखती है।

वृद्धावस्था भी नारी जीवन की बहुत बड़ी विसंगति है। कृष्णा जी की वृद्ध नायिकाएं इससे दो चार होती हैं। परिवार के माध्यम से स्त्री-पुरूष संबंध तथा जीवन के रहस्यों विचार के जो संकेत मित्रों मरजानी में मिलते है, उनकी दार्शनिक व्याख्या "ऐ लड़की' की अम्मु द्वारा की गई हैं। अम्मु के द्वारा जीवन और जगत के रहस्यों का खुलासा निसंगत भाव से लिया गया है। अम्मु स्त्री पुरूष की प्रधानता की पक्षधर है। किन्तु स्त्री पुरूष की शारीरिक बनावट में रहने वाला फर्क इस समानता को व्यवहार में नहीं ला सकता। अम्मु के अनुसार पुरूष विशिष्ट है क्योंकि जीवन की कस्तुरी उसी को लगी है लड़की थोड़े पलों के लिए और इस भागते मृग को थाम लेती है और आप मृगया बन जाती है यही सृष्टि का खेल है। अम्मु के मन में अपनी पुत्री के आर्थिक स्वावलंबन के साथ मनचाहा जीवन

जीने की प्रबलता है। न भी हो दुनियादारी वाली चौखट तो भी तुम अपने आप में तो आप हो। अपने आप में होना परम श्रेष्ठ है।

जिन्दगीनामा-

1980 में प्रकाशित कृष्णा सोबती का जिन्दगीनामा एक दीर्घाकार उपन्यास है। इस उपन्यास पर 1980 का 'साहित्य अकादमी पुरूस्कार' व 1981 का पंजाब सरकार का 'साहित्य शिरोमणि पुरूस्कार' उन्हें मिला है।

जिन्दगीनामा उपन्यास कम सांस्कृतिक परिवेश जिन्दगी का जीवन चित्रण अधिक दिखाई देता है। इसलिए इसका शीर्षक पूर्ण सार्थक है। इसका उपशीर्षक जिन्दारूख भी अपने अन्दर गहरी व्यंजना छिपाए हुए है। इसमें एक वृक्ष से संस्कृति की तुलना करके उसके अन्दर स्पंदित जीवन की तरफ इशारा किया है। विभाजन के समय उस जिंदारूप को काट दिए जाने का दर्द भी लेखिका के हृदय को झकझोर देता है।

इस उपन्यास में किसी एक जन की कहानी नहीं बल्कि जन-जन की कहानी है और यह कहानी भी ऐसी है जिसमें न कोई नायक / न कोई खलनायक सिर्फ लोग और लोग और लोग / जिंदादिल / जांबाज / लोग जो हिन्दुस्तान की ड्योढी पंचनद पर जमे सदियों गाजी मरदा के लश्कारों से भिड़ते रहे। फिर भी फसले उगाते रहे। जीने के लिए संघर्ष, ललक पर जिदंगियां लुटाते रहे।

जिन्दगीनामा पंजाब की धरती की सौंधी महक से सुवासित है। इस उपन्यास में महत्व कथा का नहीं बल्कि महत्व है पंजाब के लोक जीवन पर रचित इस महाकाव्य की लालिमा का।

जिन्दगीनामा उपन्यास में जिन्दगी को आंकने की भरपूर कोशिश की गई है। इसमें बादशाह और फकीर शंहशाह दरवेश और किसान एक साथ खेतों की मुडेरों पर खड़े मिलेंगे। सर्वसाधारण की वह भीड़ जो हर काल में हर गांव में, हर पीढ़ी को सजाए रखती है। जिन्दगीनामा कुछ पात्रों तक सीमित नहीं है इसका विषय संपूर्ण पंजाबी जीवन है उसमें भी देहात वाला और देहाती जीवन का सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ चित्रांकन किया गया है। इसमें चरित्र, परिवार, सामाजिक संबंध, आर्थिक सामर्थ्य और राजनीति का प्रभाव आदि सभी कुछ दिखाई देता है। इस उपन्यास में लेखिका अपने मुंह से कहानी नहीं बताती बल्कि जिस घटना या वस्तु का वर्णन करती है उसे नाटक के दृश्यों की तरह आंखों के सामने खड़ा कर देती है। जिन्दगीनामा का कालखंड इस शताब्दी के पहले मोड़ पर खुलता है। पीछे इतिहास की बेहिसाब तहें। बेशुमार ताकतें। जिन्दगीनामा कृष्णा सोबती का मनुष्य के साथ सुख, दुःख भोगने का तथा जिन्दगी की मस्ती का प्रामाणिक दस्तावेज प्रतीत होता है। सहजता और स्वाभाविकता यही की व्यक्तित्व के गुण है। उपन्यास में लेखिका के जीवन के प्रति गहरी आसक्ति पृष्ठ दर पृष्ठ विभिन्न पात्रों, प्रसंगों और घटनाओं के जरिए खुलती जाती है। जिन्दगीनामा किसी एक व्यक्ति या परिवार की नहीं, पंजाब के अंचल की कथा है। वहां के रीति-रिवाजों लोकाचारों को बड़े चाव से लिखा गया है। जिन्दगीनामा की आंचलिक संस्कृति में काश्तकारों की मेहनत और फौजी जवानों की जवांमर्दी दोनों आपस में घुली मिली है। स्वयं लेखिका की जीवन

के प्रति गहरी आसक्ति उनके उपन्यास जिन्दगीनामा में पृष्ठ पर पृष्ठ विभिन्न पात्रों, प्रसंगों एवं घटनाओं के जरिए खुलती जाती है।

कृष्णा सोबती का जिन्दगीनामा किसी एक चरित्र को रेखांकित नहीं करता बल्कि पूरे गांव, कस्बे और संकेतात्मक रूप में शहरों के पूरे जीवन को सामने लाता है। इसका समूचा जीवन शाह-शाहजी की कथा के बारीक धागों से जुड़ा हुआ है। कहीं किसान को मेहनत से उगाई गई फसलों का गान है तो कहीं फसलों के मालिक और कर्ज के देनदार शाहों की अमीरी के प्रति आक्रोश भी है। नई पीढ़ी अमीर होने के लिए चोरी भी करती है तथा विरोध स्वरूप कुलीगिरी भी करता है। अत: इस उपन्यास में मध्यवर्ग के तीनों भेद मिलते है। जिन्दगीनामा उपन्यास क्योंकि नामा ही इसमें जिन्दगी शब्द आता है तात्पर्य यह है कि जिन्दगियां ही जिन्दगियां भरी पड़ी है इसमें खट्टी मिट्ठी चटपटी सब तरह की जिन्दगियों का स्वाद इस उपन्यास में है। इस उपन्यास में किसी एक व्यक्ति की कहानी नहीं है केन्द्रीय भूमिका में शाह और शाहजी का परिवार जरूर है लेकिन कहानी का कलेवर विस्तृत है और यह सारे गांव की कहानी है। ग्रमीणों के आपसी संबंध का ब्यौरा है। इसमें स्त्री-पुरूष संबंध लगभग अपनी सारी भूमिका में विद्यमान है। कई प्रेमी युगल है। इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र शाहजी एक पारिवारिक सुसंस्कृत बिरादरी में नाम रखने वाला शाहजी विवाहित है और एक बेटे लालीशाह का पिता। हालांकि पितृसुख वृद्धावस्था में मिला। उनकी धर्म पत्नी है शाहनी बेहद सुलझी ममतामयी दोनों का आपसी सम्बन्ध मधुर है। जिन्दगीनामा किसी एक व्यक्ति या परिवार की कथा नहीं है, पंजाब के अंचल की कथा है इसका नायक भी जो कभी शाहजी के रूप में कभी गंजासिह कर्म इलाही, शेरा बुरखुरदार नजीके और कभी मौलादाद के रूप में हमारे सामने आता है।

इस प्रकार जिन्दगीनामा के प्रथम भाग में पंजाब प्रान्त के लोकमानस का परिचय कराया, उनके सुख दुःख, रहन-सहन, उनके जीवन व्यवहार, ग्रामीण परिवेश से परिचय मिलता है तो उसी उपन्यास को आगे बढ़ाते हुए शाह परिवार की कहानी को केन्द्र में रखकर उपन्यास की रचना की है। इसमें कृष्णा जी ने पुरूष की सामन्ती प्रवृत्ति का भी चित्रण किया है कि किस प्रकार एक प्रौढ़ जिम्मेदार, अनुभवी इज्जतदार व्यक्ति भी अपनी यौन पिपासा के तहत सारे परिवार को शर्मिन्दा कर सकता है और बेटी समान युवती का बिन ब्याहे, बिन निकाह पढ़े और गैर जाति की रावयां को खुद से बांधते हैं।

दिलोदानिश -

कृष्णा सोबती का 'दिलो दानिश' उपन्यास दिल्ली की गली कुंचो में से गुजरते हुए वकील कृष्णा नारायण, उनके परिवार और उनकी रावेल महक बानों के इन्सानी रिश्तों की जवाबदेही की कहानी है। जैसा कि पुस्तक के पलेप में बया करते हैं पहला उन्नीसवीं-बीसवीं सदी के दरम्यान दिल्ली के गली कूंचों से उभरती है दिलो दानिश की कहानी और दूसरा है - दिलो दानिश कोई फलासफा नहीं न किसी के खिलाफ या हक में कोई फैसला है बल्कि एक सीधी सादी जवाबदेही इन्सानी रिश्तों से उभरती है। इस उपन्यास में कई सवाल उठते हैं - जवाबदेही किससे और क्यों? क्या वकील कृपानारायण से, कुटुम्ब से या फिर महक बानों से - मर्द से, सामाजिक विधान से या फिर परम्परावादी चिन्तन से, इस उपन्यास को पढ़कर लगता है कि जवाबदेही का तो मतलब ही नहीं रह गया क्योंकि जब

वकील कृपा नारायण अवैध सम्बन्ध वैय्या नसीम बानों की पुत्री महक बानों से था उस समय कुटुम्ब बौखलाया रहता और अपने साथ सदा ही अन्याय हुआ का नारा अलापती परन्तु जब स्वयं कुटुम्ब बाबा के चक्कर में पड़ गई और अपने इस सम्बन्ध को सोचकर डरती रही उस समय उसे अपना बड़ा बेटा रज्जों और वकील कृपा नारायण दोनों से डर लगता था, इसी प्रकार महक सारी उम्र वकील साहब पर कुर्बान सी कोई गिला शिकवा नहीं किया परन्तु वकील साहब की तरफ से जब जज्बाती और इन्सानी रिश्ते में उसे गर्मी महसूस नहीं हुई तो वह दूसरे वकील अनवर अली खां की तरफ बढ़ गई।

इस उपन्यास में जवाबदेही न तो कोई मांगने का अधिकारी दिखाई देता है और न ही देने का क्योंकि जवाबदेही का अर्थ है - अभियुक्त की ओर से अपने किसी अपराध या कुकृत्य के स्पष्टीकरण की मांग और रिश्तों के लाश में तब्दील होने की सच्चाई का बयान करने के साथ-साथ सम्बन्ध से मुक्ति की आशा भरी पुकार की। तात्पर्य यह है कि लेखकीय दृष्टि किसी के खिलाफ या हक में फतवे के रूप में हमारे सामने आती अवश्य है और यही इस उपन्यास का सन्देश है। दिलोदानिश से मध्यमवर्गीय स्त्री-पुरूष के काम सम्बन्धों का खुला चित्रण हुआ है किन्तु लेखिका मध्यवर्गीय संस्कारग्रस्त नैतिकता से स्वयं को पूर्ण रूप सें मुक्त नहीं रख सकी है। उनके उपन्यास में मध्यवर्ग की नैतिकतानुसार सही-गलत, पाप-पुण्य तथा वैध-अवैध का प्रश्न बराबर साथ चलता रहता है।

कृष्णा जी के स्त्री पात्र चरित्र अस्मिता के लिए परिवार समाज आदि संस्थाओं से संघर्ष करते हैं। दिलोंदानिश की धुन्नाबीबी हो या कुटुम्ब या महक अपनी अस्मिता की रक्षा में तीनों संघर्षरत है। धुन्ना बीबी विधवा होते हुए भी भुवन से आर्य समाजी विधि से विवाह कर लेती है कुटुम्ब जब तब अपने उल्टे सीधे सवालों से वकील सहाब की नाक में दम किए रहती है और अंततः कथित बाबा से यौन शोषण होने को अपनी मनमर्जी का निर्णय मान संतोष पाती है। अपने अपने बच्चों को भी पराया होते देख अपने अस्तित्व पर संकट के क्षण महसूस करती है रेत में पांव धंस जाते है। तपती धूप और रेगिस्तान देख रही है यहीं दो झोपड़ियां और वह भी वकील सहाब की हुई। बेटी को विवाह रूकने का बड़ा खतरा उठाकर जिस तरह वह वकील साहब से जिरह करने पर उतारू होती है, वह उसका अपनी सत्ता के प्रति सचेतन होना ही हैं। यह सचेतना महक को वह गौरव देती है जो उसे हिन्दी कथा चरित्रों मे अविस्मरणीय बनाती है। उसने अब अपनी पहचान कर ली है - आज से पहले तो हम औरत की ओढ़नी थे अगिया थे तलवार थे। जूती अपनी थी और पांव किसी को सौंप रखे थे। वे जेवर जिनके लिए नसीब बानों ने खून कर दिया ओर जिस वकील साहब ने रख छोड़ा था, मां के उन गहनों की मांग महक के पहचान की मांग में बदल जाती है। पूरी गरिमा मान और गर्व के साथ वह वकील साहब को इनकार करने का साहस दिखाती, असमय साहब के साथ जाने का निर्णय लेती है। इस प्रकर वह अपने होने को स्थापित करती हैं। जैसाकि उपन्यास का नाम है 'दिलो दानिश' इसका अर्थ हुआ भावना और बुद्धि। औपन्यासिक पात्रों द्वारा जीवन के फलक पर दिखना की लेखिका का उद्देश्य रहा है। 'दिलो दानिश कहानी है दिल्ली के बाशिन्दों की उसमें मुख्य रूप में आते हैं कृपानारायण वकील जो कि दिल के मामले भी दिल से

कहीं अधिक बुद्धि से सुलझाते है और उन्हीं के चारों तरफ इस कहानी का फैलाव हैं। कृपानारायण एक बहुत ही तेज दिमाग व्यक्ति हैं वह विवाहित हैं और तीन बच्चों रज्जों, दम्मों और पम्मों के पिता हैं हवेली के कर्ताधर्ता हैं, परिवार के मुखिया हैं बहुत बड़ी हवेली है जिसमें उनके भाई, उनकी बीबिया मां और एक विधवा बहन घुन्ना के अतिरिक्त ताऊ जी का परिवार भी है। सारा बन्दोबस्त वकील साहब ही करते हैं। उनके पिता भी वकील ही थे। उन्होंने अपने पिता से सीखा कि जो कायदा उनका था वही हमें अपनाना था। किस्सा कोताही इतना ही कि बड़े मुकदमों की कमाई बीबी के हाथ और छोटे मोटे की खुशनुमाई घर के बाहर। बिरादरी में दबदबा है। मर्यादा है। उनके लागू किए कायदे कानून से भी कैसे बाहर जायेंगे। बाकी साहब इश्क-मुहबत से पानदान की तरह साथ लगे ही हैं।

कृपा नारायण पाप पुण्य सही और गलत को कोई तवज्जों नहीं देते। घर-गृहस्थी के नियमों के साथ वह यह भी सोचती है कि इन्सान की जिन्दगी का सारा खेल खाने पीने और घर चलाने का तो नहीं है वह मुहब्बत को जिन्दगी का खेल और सीधा-सादा इन्सानी जज्बा मानते हैं। खुद की कमाई से परिवार को पालने पोसने की ऐवज से थोड़ी बहुत दिलजोई दिल्लगी पर अपना हक समझते हैं। उनके निकट महक भी उनकी दिलजोई का ही सामान है, वकील साहब पर सदा ही देवी की कृपा बरसती है चाहे वे स्याह और सफेद कुछ भी करे। उनकी बहन है घुन्ना। वह विधवा है और वह भी वकील साहब की तरह ही तेज बुद्धि की है। इसलिए वह वैधव्य सह नहीं पाती तो अपनी पढ़ाई दुबारा शुरू करके स्कूल में नौकरी कर लेती है। भुवन से पुनर्विवाह करके समाज के मुंह पर तमाचा मारती है। उसका मानना है कि मनुष्य अपने उद्यम से प्रतिकूलताओं से जूझता संघर्षरत कर्मठ मनुष्य है। हौंसले और कदमों में आत्मविश्वास भर कर ऊंचाई छूने का प्रयास - उसका विश्वास है और इसी के सहारे वह जीवन का रूख भी बदलती है विधवा की भांति तिलमिला कर नहीं मरती।

महक बानो नजरों से इंसान को तौलने में माहिर है। वह पहले वकील सहाब में गुनगुनी सी भलमन साहत देखती है लेकिन अधेड़वस्था में जाकर अपने संबंधों को इश्क की बेगारी ही मानती है। वह सोचती है लेकिन उसमें धीरता है अतीत से सबक लेकर भविष्य संवारने की बुद्धिमता है वकील साहब उसे गहनों की सन्दूकची नहीं देने पर भी उनसे खफा नहीं होती और अपने बच्चों के बाप से निभाए चली जाती है। उपन्यास में एक और पात्र है वकील साहब की मां बुआजी वह बहुत ही धार्मिक महिला है। वह नियति को ही सर्वोपरि संज्ञा मानती है और इसी कारण बड़े से बड़ा दुर्भाग्य को भी उफ किए बिना सह जाने में समर्थ है। इस प्रकार बुआजी समझौते वाली पात्र है स्त्री पात्रों में धुना का व्यक्तित्व ही परिपूर्ण और सार्थक रह सका क्योंकि उसका विद्रोह महक या कुटुम्ब की तरह किसी चरित्र विशेष न होकर समाज की गलत परम्पराओं और वर्जनाओं से था।

समय सरगम -

'समय सरगम' कृष्णा सोबती का महत्वपूर्ण उपन्यास है इसके द्वारा उन्होंने अब तक के अपने लेखक के ढांचे को बदला है। इसके समर्पण में उन्होंने लिखा है - 1999 की अन्तिम और 2000 की प्रथम कृति। अकारण नहीं है बल्कि उन्होंने बहुत सोच समझकर

लिखा है अर्थात् स्त्री सशक्तिकरण का वह दौर जिसमें स्वयं अपनी आवाज को बुलन्द करती हैं। 'समय सरगम' उपन्यास का संबंध भी इन्हीं स्त्रियों से है। 'समय-सरगम' में दो बूढ़ों की कथा, अरण्या और ईशान। ये दोनों एक ही फ्लेट के दो ब्लाकों में अकेलों की जिन्दगी गुजार रहे हैं। अरण्या अविवाहित है और ईशान विधुर। ईशान एक सेवानिवृत अफसर है। ईशान अपने भरे पूरे परिवार के बाद अकेले हुए हैं पत्नी के मृत्यु हो चुकी है। उपन्यास में मेहरा साहब, अन्नाजी निरंजन बाबू एवं दीवा एकदम अकेले हैं। अकेलापन ही इनकी जिन्दगी का सच है। ये पात्र अलग-अलग तरीके से अपने अनुभवों के साथ पके और पुराने हुए है।

ईशान और अरण्या समय की कगार पर बेखोफ आपस की निजता से दावल अंदाजी न करते हुए सहचर्य सरगम गाते हैं सुनते हैं। उनके प्रेम में आवेग नहीं गम्भीरता है। एक तरह से कहें कि उपन्यास यह भी बताता है कि प्रेम करने की कोई उम्र नहीं होती। अरण्या एक जागरूक और सचेत महिला है। वह व्यक्ति स्वतंत्रता की पक्षधर है। उसका विचार ही औरत मर्द की बराबरी का सवाल उठाता है एक तरह से कहें तो अरण्या लेखिका प्रतिदर्श ही दिखाई देती है। फ्लेट बिकने पर जब अरण्या अपने मित्र के घर जाने की बात कहती है तो ईशान उसे अपने फ्लेट में रहने का प्रस्ताव करता है। वे दोनों साथ रहने लगते हैं केसेट बजता रहा मर्म के रहस्यों को ध्वनित करती। देर तक ठिठके कमरे में झमझमाते लहराती लय। सयानी आत्माओं को अपने मार्मिक गूंज से दुलारती रही समय के ऐसे अन्तराल को एक दूजे को स्पंदित करने इस लय और ताल को पकड लेना कितना दूभर, कितना मुश्किल। अपने-अपने एकांतों की निस्तब्धता की वायलिन पर तंरगित होती लग रही। अनचाहे को आतंकित करती, असमय ही यह अनबूझी समय सरगम। इस प्रकार ईशान का अरण्या के सिर पर रखा हाथ अपने अचूक सी झनझाहट पैदा करता रहा। ईशान और अरण्या के द्वारां लेखिका बूढ़ी जिन्दगियों में प्रवेश करती हैं। वहां स्वार्थी तथा सुविधा भोगों से विघटित पारिवारिक मूल्य हैं, जिन्होंने परिवप्त की भावनात्मक संरचना को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है।

'समय सरगम' के माध्यम से लेखिका ने मनुष्य की जिन्दगी, आकांक्षा और अंत को किसी दार्शनिक स्थान के बिना देखना चाहा है। उपन्यास में बार बार यह अहसास कराया गया है कि सयाने अपने मौन से तो वाकिफ है फिर भी अन्तिम सांस तक जीना चाहते हैं जिन्दगी के एक एक रंग को। अरण्या तो दुबारा भी जन्म चाहती है। उनमें जीने की कितनी उत्कंठा है। मृत्यु के दरवाजे पर दस्तक सुनने के बावजूद भी उसे पोर पोर से बाहर धकेलना और जिन्दगी को आखिरी सांस तक जीना, उन्हें देखना लगता है कि जैसे उन्होंने मरने से पहले जीना ने छोड़ने का प्रण लिया हुआ है और यह किसी मजबूरी से नहीं बल्कि अपनी खुशी से। उनका यह सोचना है कि "हम है तो समय है। हमारी चेतना में संचित है हमारा काल आयाम। हम हैं क्योंकि धरती है, हवा है धूप है, जल है और यह आकाश। इसीलिए हम जीवित है।" इन सयानों के लिए हर दिन एक आर्शीवाद है फिर इन्हें जिजीविषा या सुखानुभूति की कामना क्यों न हो यह उनकी जिन्दादिली का प्रमाण है।

इस उपन्यास को लेखिका का नया प्रयोग भी कह सकते हैं क्योंकि इसका रचना संसार बुजुर्गो के इर्द-गिर्द ही घूमता है, उनके व्यवहार, उनकी पसंद ना पसंद उनकी समस्याएं और समाधान उनकी रूचियां और खान-पान उनके अकेले रहने की त्रासदी और परिवारों के रहने भी उनकी सुरक्षा और सम्मान का अनादर यानी यह उपन्यास एक सवाल छोड़ जाता है कि क्या बुढ़ापे की तरफ बढ़ते हुए जिन्दादिल इन्सानों को जिन्दगी जीना छोड़ देना चाहिए? क्या सिर्फ परिवार के लिए बुजुर्गो के ही दायित्व होते है। परिवार वालों के कुछ नहीं? क्या परिवार उन्हें भावात्मक सुरक्षा नहीं दे सकता आत्मीयता और प्यार नहीं दे सकता केवल उनसे पैसा और जायदाद चाहता है। यदि युवाओं का यही रवैया रहा तो परिवार संस्था का ढांचा बिगड़ जायेगा। हमारा यह नैतिक दायित्व बनता है कि बुजुर्गो को सम्मान दें। उनकी देखभाल करें अन्यता भारतीय संस्कृति अपनी जड़ों से खोखली हो जायेगी। आज बाजारवाद एवं भूमण्डलीकरण के कारण भारतीय परिवार और उनकी पारस्परिकता की अवधारणा टूटी है। अकेलापन आज के व्यक्ति की नियति है। उत्तर आधुनिक समाज में संयुक्त परिवार की अवधारणा के यानी उसकी गुणवत्ता को पुन: खोजा जा रहा है।

इस प्रकार 'समय सरगम' उपन्यास में कृष्णा सोबती ने मध्यवर्गीय समाज का सशक्त प्रतिबिंब प्रस्तुत किया है पुरानी और कमजोर पड़ती जा रही आस्थाओं पर नये और आधुनिक विचार व स्वभाव के प्रहार की अनुगूंज को इस उपन्यास में सुना जा सकता है। लेखिका ने अरण्या के माध्यम से यह बताने की कोशिश की है कि -उम्र में आदमी बूढ़ा अवश्य लग सकता है पर यदि वह चाहे तो अपनी उम्र को अपने अनुभव और जीवन पर हावी होने से रोक सकता है। अरण्या और ईशान को छोड़कर शेष सभी पात्रों की आंखों में मृत्यु की छातर चिंता दिखाई देती है वे मृत्यु से इसलिए भी डरते हैं क्योंकि वे अकेले हैं। यह उपन्यास उन शहरी वृद्धों की जिन्दगी की गाथा है जो नौकरी से रिटायर होकर रोग शोक से घिरे मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कृष्णा सोबती ने इस उपन्यास के माध्यम से संभवत पहली बार हिन्दी उपन्यास में बुजुर्गो की प्रेम की दुनिया के बन्द कपाट खोलने की कोशिश की है। उस की सरहद से बाहर जाकर मनुष्य की खोई हुई आत्मा का सरगम है जिसे देह में ही नहीं, परिवेश में भी बजना चाहिए। यही उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता है।

9.4 औपन्यासिक दृष्टि

कृष्णा सोबती एक संवेदनशील कथाकार है। उनके सभी उपन्यासों में अपने समय का यथार्थ उभरकर आया है। उन्होंने मध्यवर्गीय जीवन के हर एक पहलू को अपनी रचनाओं में रेखांकित किया हैं इसका कारण है साहित्यकार एक संवेदनशील विचारशील, स्वप्नदृष्टा एवं कलाकार होता है। उसका अपना एक मूल्यबोध है जिसकी निर्मिति में उसके अपने संस्कार, शिक्षा परिवेश प्रभाव तथा उसकी दृष्टि सहायक होते हैं। यही उसके लोककीय उद्वेलन एवं सृजन का सार तत्व है। "उनकी हर हफ्ते फिर चाहे व उनके पात्रों की संघर्ष गाथा हो, भ्रष्टाचार, शारीरिक आपूर्ति या फिर मानसिक दबाव, चाहे उनकी यादों में कैद उनकी स्मृतियों में बन्द उनका बचपन, उसका परिवेश - पंजाब अंचल, फिर चाहे दिल्ली

जैसे महानगर के प्रसिद्ध घरानों की दिलजोई का सामान, उनकी मुस्लिम सोहबत हो या शहरी वृद्धों का अपनों से प्रताड़ित, उपेक्षित, मौन की प्रतिकारण वृद्ध समाज उनकी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ भरपूर शिक्षण मिलता है। उनकी लेखकीय दृष्टि से समाज का कोई हिस्सा या समस्या बंधी नहीं है। डार से बिछुड़ी उपन्यास कृष्णाजी का व्यक्ति समस्या पर केन्द्रित उपन्यास है। यहां का व्यक्ति झूठी परम्पराओं, सस्करों और विचारों के स्तरों पर जीता है व्यक्ति मानस की अनेक झांकिया इस उपन्यास में मिलती है। कहीं करूणा का गला घोटकर कठोर और क्रूर व्यक्ति मामू नामक पात्र में मिलता है तो कहीं सामाजिक मर्यादा के भय के बोझ तले दबा, सहमा व्यक्ति नानी के रूप में उभरकर आया है। पाशो इस उपन्यास की नायिका है वह शुरू से अन्त तक अत्याचार का शिकार होती है। लेखिका ने नारी जीवन की विडंबना को उसके सामाजिक यथार्थ के साथ उजागर किया है कि वे कौन से कारण हैं जिनमे नारी भयांकन आजीवन ढोती रहती है एक आतुर पुकार के साथ किन्तु कोई उसकी पुकार नहीं सुनता। और वह दबती कुढती प्रताड़ित होती रहती है समाज के हाथों। उसके अपने मामा मामी भी कोई कसर बाकी नहीं रखते। जिन्दगी की बीहड़ राहों से गुजर कर पाशों का यह सोचना कि "जो मैं थी वह क्या फिर से लौट आयी हूं।"

पाशो का यह सवाल समाज पर उंगली उठाता है कि पुरूष प्रधान समाज में नारी की अस्मिता उसकी पीड़ा और विवशता के लिए जो लोग जिम्मेदार है, जो समाज जिम्मेदार है वह इस प्रश्न पर गहराई से विचार करें, समाज को अपना दकियानुसी रवैया सुधारना होगा। यदि मामाओं ने पाशो पर अत्याचारों की हद पार न की होती जो क्या पाशो घर से भागती? और पूरा जीवन अंधकार मय होता। यह है सामाजिक यथार्थ और इसी यथार्थ का पर्दाफाश किया है कृष्णा सोबती डार से विछुड़ी के माध्यम से फिर चाहे वह पाशो हो, रति हो, जाया हो, महक हो या वृद्ध अम्मू इसी सामाजिक व्यवस्था से पीड़ित प्रताड़ित है सभी मित्रों की इस समाज में अपनी आदिम प्यास बुझाने के लिए तड़पती रहती है, पर मुंह से कुछ बोल नहीं पाती। पर जब बोलती है तो बोलती चली जाती है। परिवार, समाज की मर्यादाओं को ताक पर रखकर वह साफ कहती है मैं प्यासी हूं, एक अनन्त प्यास में जो बुझती नहीं।

कृष्णा सोबती ने अपने कृतियों में जितनी स्पष्टता के साथ समाज में परिवार में, स्त्री के कैद होने के भीतर भी उसका एक मन होता है उसकी एक देह होती है जिस पर खुद उसका वश नहीं होता। स्त्री के उपर पड़े नैतिक रूढ़ियों के आवरण को हटाकर समाज में फैली वितृष्णा को स्वीकार करते हुए रचनाओं द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास रहा है। स्वयं लेखिका के शब्दों में "लेखक सिर्फ अपनी लड़ाई नहीं लड़ता, न अपने दुःख दर्द, हर्ष विषाद का ही लेखा जोखा पेश करता है। वह तो उन सबको खोजता है जो संघर्ष करते हैं, झेलते हैं और अनाम ही बीत जाते हैं। कृष्णा सोबती इस कथन पर खरी उतरती हैं। उनके कथा साहित्य में संघर्षरत और अनाम बीत जाने वाले व्यक्ति है।

कृष्णा सोबती की रचनाओं को मोटे तौर पर तीन वर्गो में बांटा जा सकता है पहले वर्ग में जो रचनाएं हैं जिनमें प्रेम तथा स्त्री-पुरूष संबंधों को आधार बनाया गया है इस संदर्भ में 'मित्रोमरजानी' और 'तिन पहाड़' उल्लेखनीय है। दूसरे वर्ग की रचनाओं में स्त्री की

यातना और पीड़ा को उसके सामाजिक संदर्भो में ढूंढने का प्रयास मिलता है डार से विछुड़ी सूरजमुखी उसके परिवेशगत द्वंद्वात्मक संबंधों के बीच खोजने की कोशिश की है और तीसरा वर्ग अविभाजन और देश विभाजन की रचनाओं से जुड़ी त्रासदी यातनाओं और विडम्बनों से संबंधित है उनका 'जिन्दगीनामा' उपन्यास इसी वर्ग की रचना है। अपने नये उपन्यास 'समय सरगम' में लेखिका नया विषय लेकर उपस्थित हुई है। पुरानी और कमजोर पड़ती जा रही आस्थाओं पर नये और आधुनिक विचार व स्वभाव के प्रहार की अनुगूंज कों इसमें सुना जा सकता है। इसके अतिरिक्त 'यारों के यार' एक ऐसी रचना है जिसमें वह बाहर की खुली और अपने चारों और फैली दुनिया को बेहद भेदक दृष्टि से देखती है तथा नया यह काम एक दफ्तर के माध्यम से करती है।

कृष्णा सोबती के नारी पात्र विद्रोही है। वे परम्परागत रूढ़ियों का विरोध करते हैं लेकिन सनातन मूल्यों के प्रति उनमें आस्था है यही कारण है कि वे समाज के द्वारा बार बार पीड़ित होती है किन्तु समाज या पुरूष के प्रति कटु कहीं होती। एक संस्था के रूप में विवाह के प्रति उनके मन में कोई कटुता नहीं है। विवाह को मात्र स्त्री का समर्पण या समझौता नहीं मानती। 'ऐ लड़की' में बीमार अम्मू सूसन को किसी पुरूष के हाथ का झुलझुना न बनने की सलाह देती है। 'मित्रोमरजानी' की मित्रों की अन्त में अपनी मां की काली छाया से स्वयं को तथा अपने पति को बचाती हुई लौट आती हैं। सूरजमुखी अंधेरे की रत्ती अपने नैतिक बोध के साथ विवाह संस्था के प्रति पूर्ण आस्थावान है। इसी कारण स्त्री दिवाकर के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा देती है। लेखिका विवाह संस्था के विकल्पहीन अस्वीकार को अव्यावहारिक मानती है।

कृष्णा सोबती ने स्त्री पुरूष को परस्पर पूरक के रूप मे आवश्यक माना है फिर चाहे चहा विवाह के रूप में हो या समय सरगम के अरण्या और ईशान की तरह मैत्री के रूप में बीच समान और सुरक्षा की दृष्टि आवश्यक है।

कृष्णा सोबती स्त्री पुरूष समानता की पक्षघर है लेकिन स्त्री पुरूष की बुनियादी गढ़ंत में फर्क स्वीकार करती हैं। 'ऐ लड़की' उपन्यास में वह स्पष्ट करती है कि पुरूष विशिष्ट है क्योंकि जीवन की कस्तुरी सिर्फ उसी की है। इस क्षणभंगुर जगत में अपनी महक फैलाये जा और थोड़े से पलों के लिए औरत इस भागते मृग को थाम लेती है और आप मृगया बन जाती है। यही सृष्टि का खेल है। 'समय सरगम' की अरण्या व्यक्ति स्वतंत्रता क पक्षधर है वह ईशान से प्रेम करती है किन्तु पुरूष की तरह से प्रेम करना चाहती है उसका यह विचार औरत मर्द की तरह से लेखिका का ही प्रतिदर्श दिखाई देता है।

लेखिका ने समाज में, परिवार में स्त्री के कैद होने की पीड़ा को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। वह स्वीकार करती है कि स्त्री के भीतर भी उसका मन होता है, उसकी देह होती है जिस पर खुद उसका वश नहीं होता। आजाद भारत में भी स्त्री के तन और मन परं कब्जा कर रखा है। उनका डार से बिछुडी उपन्यास परम्पराओं और रूढ़ियों में जकड़ी हुई स्त्री के फिसल कर भटकने की कहानी है। अपनी इस जीवन रचना में लेखिका ने स्त्री के मन की करूण कोमल भावनाओं आशा आकांक्षाओं और उनके नष्ट हो जाने पर हृदय में उठने वाले हाहाकार का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। पाशो को एक सामान्य लड़की, पत्नी विधवा, रखैल था अन्य रूपों में रेखांकित करते हुए कृष्णा सोबती ने स्त्री जीवन की

विडंबना को उभारा है। पाशो सौन्दर्य और यौवन की मादकता से परिपूर्ण भले हो किन्तु उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। न समाज की दृष्टि में न स्वयं की दृष्टि में। सभी ने अपनी सुविधानुसार उसका प्रयोग किया तथा पाशो हर स्थिति को स्वीकार करती रही। पाशो सभी परिस्थितियों से समझौता करती है। वह उनका विरोध नहीं कर सकती क्योंकि उसने किसी अन्य का सहारा लिए बिना जीवन जीने की कला सीखी ही नहीं थी।

उनके अन्य उपन्यासों में नारी विषयक समस्याओं को खुलकर उठाया गया है। वे एक और यदि मध्ययुगीन संस्कारग्रस्तता के कारण कष्टकर जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियों की कथा कहती है तो दूसरी ओर शिक्षित जागरूक व अधिकार सम्पन्न होने के कारण स्त्री के दृष्टिकोण और व्यवहार में आ रहे परिवर्तनों को रेखांकित करती है। डार से बिछुड़ी की पाशो पुरूष की सामन्ती मानसिकता के कारण जीवनभर कष्ट उठाती है किन्तु फिर भी पुरूष के प्रति विद्रोह का हल्का सा भी तेवर उसके माथे पर नहीं है। इसका कारण यह था कि पुरानी पीढ़ी की स्त्री अपने प्राणों की शील आदि की रक्षा कुछ भी नहीं कर सकती थी अत: पुरूष का आश्रय लेने को विवश थी। दिलोदानिश की बउआ जी के अनुसार - मरदों के हिस्से आये है महफिल, गुजरे, खेल, तमाशे और औरत में लगे है बाल बच्चे, तीज त्यौहार, पूजा-व्रत। रोने धोने से क्या बदलने वाला है? बउआ जी इस विवशता के विरोध में है। नयी पीढ़ी की कुदुम्ब प्यारी का उबलता आक्रोश - क्या सारी ज्यादतियां हमीं को झेलनी पड़ेगी यह स्त्री का वह तेवर और उसकी पहचान है जो पुरूष आतंक तले कभी मुंह नहीं उघाड पाया। लेकिन अब उभर रहा हैं। उपयुक्त कथन कुटुम्ब प्यारी का प्रश्न ही नहीं है। अपितु विद्रोह का भी ऐलान है जिसमें पत्नी के रूप में आत्म-सम्मान और अधिकार पाने की जंग है। समय की इस आहट को कृष्णा सोबती के किसी भी पात्र में चाहे वह महक हो, मित्रो या कुदुम्ब प्यारी हो चेतना के माध्यम से देखा चुना जा सकता है।

स्त्री की अस्मिता ओर मुक्ति का सवाल कृष्णा सोबती की मुख्य रचनात्मक चिंता रही हैं। वे स्त्री की अस्मिताओं स्वत्व की लड़ाई को अपेक्षाकृत गंभीर रूप से लड़ती दिखाई देती है। इनकी रचनाओं में नारी छायामयी रमणी न होकर वास्तविक जगत की हाड़ मांस की नारी है, जिसकी अपनी भौतिक और शारीरिक आवश्यकताएं है। अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह किसी पाप बोध की अनुभूति से नहीं भरती वरन सहज प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करती है। इनकी रचनाओं में प्रेम का स्वरूप शारीरिक से आत्मिक की और उन्मुख होता है। धर्म या नैतिक उपदेश की अपेक्षा जीवन की सच्चाई उनकी रचनाओं से मुखरित होती है।

कृष्णा सोबती की मित्रों मरजानी स्त्री के एक ऐसे रूप को प्रस्तुत करती है जो स्त्री मुक्ति के बौद्धिक ओर किताबी आन्दोलनों की पोल खोलती हुई अपनी मिट्टी से अपने रिश्ते के कारण इतनी जीवंत और हाडमांस की सचमुच की स्त्री जैसी लगती है। मित्रो का चरित्र एक विवादास्पद नारी का चरित्र है किन्तु नारी के सभी पुराने बिम्बों दुखों को चुनौती देता हुआ हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपनी एक अलग ही पहचान कराना है। उनके स्त्री पात्र चरित्र अस्मिता के लिए परिवार, समाज आदि संस्थाओं से संघर्ष करते हैं। कृष्णा सोबती का लेखन बोल्ड लेखन का उदाहरण है बहुत कम लिखकर भी वे चर्चा

में रही। 'दिलोदानिश' की धुन्ना बीबी से या महक या कुटुम्ब अपनी अस्मिता के रक्षा में तीनों संघर्षरत है। 'ऐ लड़की की अम्मा द्वारा यह कहना कि तुम किसी के अधीन नहीं हो स्त्री की उस स्थिति का परिचय देता है जिसमें वह अपने पति व पिता के घर के अलावा भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाने की हिम्मत रखती है। उन्होंने स्त्री को यथार्थ के धरातल पर अवस्थित किया है।

कृष्णा सोबती स्त्री की आर्थिक स्वावलम्बन को महसूस करती है जीवन के अन्तिम क्षणों में भी 'ऐ लड़की' की अम्मू कहती है कि स्त्री की स्थिति तभी सुधरेगी जब वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र होगी। पुत्री को कहती है "अपने आप होना परम है श्रेष्ठ है। चलाई होती न परिवार की गाड़ी तुमने भी तो अब तक समझ गई होती कि है गृहस्थी में सारी शोभा नामों की हैं..... लड़की, वह नाम की महारानी है। सब कुछ पोंछ पांछ के बिठा दिया जाता है अपनी जगह पर। 'दिलोदानिश' की महक जीवन की क्रूर विसंगतियों का मुकाबला करते हुए इस नतीजे पर पहुंचती है तो जेवरों की सन्दूकची उठाने को बेताब हो उठती है। वकील साहब द्वारा हथियाये गए जेवर पाकर महक का समूचा व्यक्तित्व आत्मविश्वास से भर उठता है। 'सूरजमुखी अंधेरे के' की रत्तिका भी आत्मनिर्भर होने के कारण ही पुरूष का संरक्षण लेने को विवश नहीं है।

जिजीविषा जीवन को जीने की भरपूर ललक कृष्णा सोबती के साहित्य की अन्यतम विशेषता है। स्वयं लेखिका की जीवन के प्रति गहरी आशक्ति उनके उपन्यास जिन्दगीनामा में पृष्ठ विभिन्न पात्रों, प्रसंगों एवं घटनाओं के जरिए खुलती जाती है। 'ऐ लड़की' की बीमार वृद्ध अम्मू अस्वस्थ होने पर टूटती नहीं है अपितु उसे अपने मनमाने ढंग से जीना चाहती है। वह मृत्यु से पूर्व मरना नहीं चाहती। मृत्युशैय्या पर लेटी अम्मू अपनी पुत्री को जीवन का अनुभव बताती है। निःसंदेह जीवन की डोर उसके हाथ से छूट गयी है किन्तु आत्मविश्वास और जीवन जीने की ललक उसमें इस समय भी बनी हुई है। इसी प्रकार 'समय सरगम' की मुख्य पात्र अरण्या के माध्यम से लेखिका ने वृद्धों की जिजीविषा को रेखांकित किया है। अरण्या जीवन के हर मोड़ पर उसी प्रकार लड़ना और जूझना चाहती है जैसे कोई युवा लड़ता है।

पंजाब की संस्कृति का सजीव सशक्त चित्रण इनके उपन्यासों की विशेषता है। कृष्णा सोबती स्वयं विभाजन से पूर्व पंजाब की पुत्री हैं वहां की स्मृतियां ही उनकी धरोहर है जिन्हें उन्होंने अपने उपन्यासों विशेषकर 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी' और 'जिन्दगीनामा' से अत्यन्त कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। पंजाबी संस्कृति का कोई भी पक्ष इनके लघु उपन्यासों के छोटे कैनवास में लेखिका की कलम से नहीं छूटा है। एक और चूड़ियों की छनकार में तंदूर तपाती, पीढ़ी पर बैठकर कशीदा काढ़ती, फुलकारी छोड़ती, तीज त्यौहार मनाती स्त्रियां, मोटे जड़े जोड़ो में ढेर से गहरे, पहने पंजाबी स्त्रियां लेखिका को बार बार प्रभावित करती हैं। शकुन अपशकुन अंधविश्वास भी पंजाब की संस्कृति का अविभाज्य अंग है। 'जिन्दगीनामा' की शाहनी भी स्वप्न के द्वारा अनेक घटनाओं का पूर्वाभास होता है। 'डार से बिछुड़ी' की पाशो और मोसी एक ही रात में लगभग एक सा स्वप्न देखती है और किसी अनहोनी की अशंका से भयभीत हो उठती है। यही कारण है कि कृष्णा सोबती को सारी कथा यात्रा गुजरते हुए कभी-कभी ऐसा

अहसास होता है जैसे अलग-अलग समय मे उन्होंने अलग-अलग रचनाएं नहीं की हैं अपितु एक ही रचना के विभिन्न अध्याय लिखे हैं। बहुत सारे शिल्प और जानदार अभिव्यक्ति के साथ।

कृष्णा सोबती की औपन्यासिक यात्रा का चरम विकास इसी उपन्यास 'जिन्दगीनामा' में दिखाई देता है। इसमें पंजाब का समग्र जीवन अपनी समूची सांस्कृतिकता और ऐतिहासिकता के साथ उतर आया है। प्रेमचंद और रेणु के बाद अपनी जातीय जिन्दगी को इतनी तन्ययता से रखने की कला और किसी भी उपन्यास लेखक के पास दिखाई नहीं देती यह कहने में संकोच नही है। इसमें लेखिका ने सामती जीवन के बीच रिसती पिसती आत्माओं को दिखाया है। इसमें विभाजन से पहले की पंजाबी व्यवस्था का रेशा रेशा खुलता चला जाता है। 'जिन्दगीनामा' अपने समय को अतिक्रमण करता हुआ हर युग में अपनी नवीनता का उद्घोष है। क्योंकि उसमें मानव जीवन की हलचल है, वक्त की करवटों का एहसास है। उपन्यास का आरंभ धीरे उन गुरू गोविन्द सिंह द्वारा कहे गए फारसी कथन से होता हैं जो शौर्य और साहस से उद्दीप्त संदेश देता है। इस प्रकार जिन्दगीनामा किसी चरित्र को रेखांकित नहीं करता बल्कि पूरे गांव कस्बे और संकेतात्मक रूप से शहरों के पूरे जीवन को सामने लाता है।

समकालीन कथा लेखिकाओं की आधुनिका नारी के समान कृष्णा सोबती की नारी मातृत्व को बोझा अथवा बंधन नहीं मानती। 'ऐ लड़की' की अम्मु के अनुसार बच्चा हो गोद में तो समझो तीनों लोक एक मिट्टी के कूजे में। इसी प्रकार 'सूरजमुखी अंधेरे के' की स्त्री और 'मित्रों मरजानी' की मित्रों मां बनने की चाहत रखती है। 'दिलोदानिश' की महक के लिए कुरानशरीफ सी पाक साफ है। मातृत्व के प्रति यही अनुराग कृष्णा सोबती की नारी को पारिवारिक संबंधों के प्रति आस्थावान बनाना है।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री-पुरूष के वैवाहिक संबंधों का सशक्त चित्रण मिलता है। पति पत्नी के संबंधों के तनाव के कारण या तो काम अतृप्ति रही है या फिर पत्नी व पति के मध्य तीसरे का प्रवेश है लेखिका की रचनाओं में स्त्री पुरूष के पति पत्नी रूप के अतिरिक्त पिता-पुत्री तथा माता-पुत्र के सम्बन्ध भी देखने को मिलते हैं।

सामाजिक परिवर्तन के साथ मध्यवर्ग के स्त्री पुरूष पति-पत्नी के संबंधों में बदलाव आया है जिसकी अभिव्यक्ति उनके उपन्यासों में मिलती है। स्त्री की चेतना, जाग्रती से पूर्व पति पत्नी के संबंध ही काम सम्बन्धों तक है किन्तु आज की पत्नी पति के साथ जैविक संबंध स्थापित करते हुए मन की संतुष्टि भी चाहती है। 'मित्रो मरजानी' की मित्रों हो 'सूरजमुखी अंधेरे के' की रती। दाम्पत्य में तीसरे के आगमन से तनाव है लेकिन उपन्यास की नारी पात्र पुरूषों से घृणा नहीं करती और न ही घर छोड़कर जाती हैं। उन्हें शिकायत है, संघर्ष करती है। मातृत्व के ठण्डे झोके उन्हें संतुलित रखते हैं। वे मातृत्व को बोझ नहीं मानती सौगात मानती हैं। इस प्रकार स्त्री पुरूष संबंधों के अनेक रूपों का यथार्थ के धरातल पर वर्णन मिलता है। 'सूरजमुखी अंधेरे के' की रती 'मित्रों मरजानी' की नायिका मित्रों का ही विस्तार है। स्त्रियों जहां उन्मुक्त यौन संबंध चाहती हैं वहीं स्त्री सब कुछ पाकर भी संतुष्ट नहीं है। सामाजिक ढांचे की सताई मित्रों भी है, महक भी और स्त्री भी लेकिन भिन्न धरातलों पर जया, जहां प्रेमी के मुंह मोड लेने पर अपनी भावुकता की

शिकार है, वहीं पाशो को समाज कहीं भी एक ठिकाने पर बैठने नहीं देता। महक को एक पुरूष मिला है लेकिन समाज उसके जन्म को कलंक दास्तान से अलग नहीं समझता और अपमानित करके बच्चे भी उससे छीन लेता है। वहीं मित्रों अपने बराबर का पति न पाकर सामाजिक लांछन की शिकार बनाकर उसकी जिन्दगी को बदरंग कर देता है। कुटुम्ब और बउआजी जहां पति के हाथों छली जाती हैं वहीं विधवा धुन्ना से समाज उसकी पूंजी छीन लेना चाहता है वहीं जल्दी पैसा कमाने की होड मे तमन्ना और तमाशा अपनी अस्मता का सौदा करती जाती हैं, भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी अपना जाल फैलाती है कृष्णा सोबती के यथार्थ के धरातल पर जिन सामाजिक समस्याओ, सामाजिक संबंधों, स्त्री पुरूष संबंधों का चित्रण अपने उपन्यास में किया है एक तरह से समाज के सच को उजागर करने का प्रयास है।

समाज में बढ़ रहे भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी की समस्या को लेखिका ने अनदेखा नहीं किया है। 'यारों के यार' में कृष्णा सोबती दीवार पर लगे छोटे आकार के गोलाई वाले एक पारदर्शी शीशे में से बाहर की पूरी दुनिया का नजारा लेती हैं। ऊपर से देखने पर यह दुनिया सिर्फ दफ्तर के ओघेपन और क्षुद्रताओं की दुनिया है किन्तु यह सच है कि दफ्तर के नियम और कायदे ही बाहर की दुनिया पर लागू होते हैं। दफ्तर के सूरी माध्यम से सोबती इस दुनिया के यथार्थ को प्रस्तुत करती है। जब माथुर सूरी को नंगई और दुनिया को जलालत की बात करने को कहता है साले जैसे मालूम न हो कि नगंई और धोखाधड़ी इस जमाने में गुनाह नहीं, हर आदमी का निकाह है निकाह सूरी के माध्यम से ही सोबती देश में चारों और फैले हुए काले धन के समान्तर व्यवस्था पर टिप्पणी करती हैं। सूरी की तीखी लेकिन खरी टिप्पणियों से बड़े बाबू में बदलाव आता है और वे पहले जैसे नहीं रह जाते। संबंधों की ऊष्मा का क्षरण और उपभोक्ता संस्कृति के बढ़ते हुए दबाव में एक ऐसी क्रूर ओर अंधी दौड़ जो अपने पराए की पहचान मिटा देती है अपने संगों के आपसी हित लाभ से बंधी यह दुनिया दफ्तर के अन्दर भी है और बाहर भी। सूरी की तरह लोग जो न तो इस दुनिया का हिस्सा बन पाते हैं और न ही उसे बदल पाने की सामर्थ्य रखते है इस आवेश आक्रोश को ही अपनी लड़ाई का हथियार बनाने पर मजबूर रहे होते हैं।

कृष्णा सोबती के लेखकीय दृष्टि से समाज का कोई भी हिस्सा या समस्या बची नहीं है। मध्यवर्ग की प्रत्येक समस्या पर उन्होंने विचार प्रकट किए है। उन्होंने पुरूष प्रधान समाज में स्त्री की पीड़ा को तथा स्त्री एवं पुरूष के परस्पर संबंधों को नयी दृष्टि के साथ रेखांकित किया है। जीवन के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण और मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण संवेदन के धरातल पर उनके औपन्यासिक फलक को नए आयाम देता है।

9.5 सारांश

कृष्णा सोबती हिन्दी की शीर्षस्थ कथाकार है। उनके साहित्य में समाज का बेबाक चित्रण है। समाज सापेक्ष यथार्थ है। उनके सभी उपन्यासों में स्त्री जीवन के अनेक स्तर खुले हैं। उन्होंने विभिन्न प्रकार के चरित्रों का रेखांकन करते हुए जीवन अन्वेषणात्मक दृष्टि

सामने रखी है यानि उनकी रचनाओं में पुराने मापदण्ड हर ओर टूटे है और नए चरित्र में उभरे हैं। ये चरित्र झूठी मर्यादाओं को छिटकाने वाले छटपटाहट कुण्ठा से भरपूर तथा परिवर्तन के आशंकी है। उनके पात्र उस परिस्थिति विशेष का सही और साहसिक प्रतिनिधित्व करते जिंदा जीवन झांकी जान पड़ते है। उनके उपन्यास का मूल स्वर है सत्य की, अधिकार की लडाई। उनके उपन्यास का केन्द्र बिन्दु स्त्री ही रही है और उन्होंने स्त्री के मन को पूरी ईमानदारी से टटोला है। उनके पात्र अपने आप में अनूठे विलक्षण है फिर चाहे स्त्री पात्र हो या पुरूष। वे सहज सामान्य है। यदि वे कही परिस्थिति का शिकार होते हैं तो उसमें से अपने लिए रास्ता बनाते जाते हैं। निर्भीक पात्रों में 'ए लड़की' की अम्मु का चरित्र पुन:उत्पादन कहा जा सकता है। समय सरगम में वृद्ध सयाने ईशान और अरण्या तटस्थ पात्र के रूप में सामने आते हैं जो स्वाभिमानी है जीवन का आशीर्वाद दूसरों को बांटते रहते हैं। 'जिन्दगीनामा' का केन्द्रीय पात्र शाहजी शाहनी आदर्शता के उदाहरण हैं तो 'दिलोदानिश' की बुआजी समझौतेवारी हैं। केन्द्रीय पात्रों के अलावा भी जो पात्र औपन्यासिक संरचना में आए हैं वे संघर्ष करते हैं टूटते हैं फिर उन्हीं में से राह बनाकर उठ खडे होते है जीवन की जिजीविषा अदमय लालसा उनमें देखने को मिलती है। पात्रों के मानवीकरण पर जोर दिखाई देता है। ये पात्र जिंदा जुबान बोलते हैं। अपनी बात रखने के माहिर है। उनके उपन्यासों में विभिन्न जाति, धर्म, नौकरी-पेशा, व्यापार आदि से जुड़े स्त्री पुरूष हैं। उनका हर पात्र अपनी अलग विशेषता रखता है जो उसके व्यवसाय और परिवेश से जुड़ी हुई है। उन्होंने अपनी रचनाओं में समाज और व्यक्ति को अलग-अलग रखने की अपेक्षा उन्हें पारस्परिक सापेक्षता में चित्रित कर व्यापक पृष्ठभूमि पर खड़ा किया है। यही कारण है कि मध्यवर्गीय जीवन की जितनी व्यापक झांकियां कृष्णा सोबती के उपन्यासों में मिलती है, वे सब अन्यत्र दुर्लभ है। स्वयं लेखिका के शब्दों में - 'एक ओर खेतीहर वर्ग से जुड़ी हूं जो अपने मिजाज के खुलेपन से आपको कुछ भी करने की जुर्रत देता है, दूसरी और उस सफेद पोश वर्ग की उपज भी हूं जिसकी सफेद पोशी भंगिमा की पर्याय बन चुकी हैं। खुले दिल से स्वीकार करना चाहूंगी कि इस वर्ग का तथा कथित व्यवहार, साज संवार और इनके नीचे पलती कुण्ठाओं को कही गहरी और पुख्ता मान्यताओं को मैने इसी ढांचे में जिया है और आत्मसात् किया है।

कृष्णा सोबती जिस प्रकार के समाज की स्थापना करना चाहती है उनके उपन्यास जिन्दगीनामा में विस्तृत रूप से फैला हुआ है। यह उपन्यास अपने समय का अतिक्रमण करता हुआ हर युग में अपनी नवीनता का उद्घोष करता है क्योंकि मानव जीवन की हलचल और वक्त की करवटों का एहसास है।

कृष्णा सोबती की रचनाएं कम होते हुए भी अपना विशेष महत्व रखती हैं। पारिवारिक जीवन के यथार्थ परिवेश की अछूती गुत्थियों को लेखिका ने सुन्दर ढंग से सुलझाया है। यथार्थ का बेबाक चित्रण गहरी संवेदनशील और तटस्थता उनके औपन्यासिक कृतियों की विशेषताएं हैं। भाषा पात्रानुकूल है कथ्य परिवेश को अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं पंजाब के परिवेश को अभिव्यक्त में पात्रों के द्वारा प्रयुक्त टप्पे, संवादों में चुटीलापन संप्रेषणीयता में कहीं भी बाधक नहीं है। संवाद यथार्थ को उजागर करने में सक्षम है भाव

मनोवेग आदि की अभिव्यक्ति में भाषा की कसावट शब्दों के प्रयोग आदि सभी दृष्टि से संप्रेषणीयता मे बोध गम्स कही जा सकती है। परिवेश और समस्या के अनुरूप गालियों का प्रयोग भी बेजा प्रतीत नहीं होता। स्थानीय रंग उभरकर आया है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'ए लड़की' का एक उद्घोष वाक्य "मैं हूं" कृष्णा सोबती पर तथा उनकी नायिकाओं दोनों पर ही लागू किया जा सकता है। उनकी नायिकाओं में कुछ सामान्य से सूत्र भले ही खोजे जा सकें लेकिन कोई भी दो नायिकाएं एक सी नहीं हैं। उनके सभी स्त्री पात्र अलग अलग सांचे में ढले हैं। देह, सोच और संस्कार किसी भी स्तर पर वे परम्परागत नजरिए से अपने को नहीं तोलती। मानवीय मूल्यों के प्रति गहरी आस्था आप ही उन्हें दृष्टि देती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती की लेखकीय दृष्टि से समाज का कोई भी हिस्सा या समस्या ऐसी नहीं रही जिसका बेबाक चित्रण उनकी रचनाओं में न हुआ हो। उन्होंने अपनी औपचारिक रचनाओं के माध्यम से इस समूचे मध्यवर्गीय समाज के जीवन को उजागर किया है और उसकी वास्तविक तस्वीर खींची है।

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 कृष्णा सोबती के व्यक्तित्व का परिचय दीजिए।
2 मित्रों मरजानी की मूल संवेदना स्पष्ट कीजिए।
3 कृष्णा सोबती को व्यास पुरस्कार किस पर मिला।
4 कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री विषयक दृष्टि पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
5 'समय सरगम' उपन्यास की कथावस्तु का विवेचन कीजिए।
6 "जिन्दगी नामा मानव जीवन की हलचल ओर वक्त करवटों का एहसास हैं" - इस कथन के परिप्रेक्ष्य में अपने विचार व्यक्त कीजिए।
7 कृष्णा सोबती की औपन्यासिक पात्र संरचना में कौनसा स्त्री पात्र सबसे अच्छी लगी और क्यों?
8 दिलोदानिश-उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता को अपने शब्दों में बताइये।
9 'ऐ लड़की' उपन्यास के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
10 'मित्रो मरजानी' उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता बताते हुए उसके उद्देश्य को बताइये।
11 'सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यास में वर्णित समस्या पर प्रकाश डालिए।
12 'जिन्दगीनामा' उपन्यास की कथ्यगत विशेषताओं को अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए।
13 कृष्णा सोबती के उपन्यासों की कव्यगत विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
14 कृष्णा सोबती की औपन्यासिक दृष्टि पर प्रकाश डालिए।
15 स्त्री की अस्मिता और मुक्ति का सवाल कृष्णा सोबती की मुख्य रचनात्मक चिंता रहीं है - इस कथन के परिप्रेक्ष्य लेखिका के औपन्यासिक साहित्य के आधार पर तर्क सम्मत उत्तर दीजिए।
16 कृष्णा सोबती के उपन्यासों का वस्तुगत विवेचन करते हुए उसकी मूल संवेदना को अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।
17 डार से बिछुड़ी का औपन्यासिक तत्वों के आधार पर मूल्यांकन कीजिए।

18 कृष्णा सोबती के उपन्यासों में व्यक्त समस्याओं को उद्घाटित करते हुए उसके उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।

19 कृष्णा सोबती के उपन्यासों की पात्र संरचना पर प्रकाश डालिए।

20 कृष्णा सोबती के उपन्यासों के पात्र अपने आप में हैं फिर चाहे स्त्री पात्र हो या पुरूष - इस कथन के संदर्भ में तर्क सम्मत मत प्रस्तुत कीजिए।

9.7 संदर्भ ग्रंथ

1 रोहणी अग्रवाल; एक नजर कृष्णा सोबती पर

2 डॉ. उषा यादव; हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना

3 डॉ. शशिकला त्रिपाठी; उत्तरशत्ती के उपन्यासों में स्त्री

4 कृष्णा सोबती; हम हशफत

5 कृष्णा सोबती; शब्दों के आलोक में

6 जनसत्ता लेख; 20 दिसम्बर 1998 कृष्णा सोबती से विनोद भारद्वाज की बातचीत

7 डॉ. विमला शर्मा; साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप

8 राष्ट्रीय सहारा, 30 जून 2002

9 कृष्णा सोबती; सोबती एक सोहबत

10 डॉ. शशि त्रिपाठी; कथाक्रम अक्ट्रबर, दिसम्बर 2001 / समीक्षक

ईकाई-10 'समय-सरगम' : संवेदना और शिल्प

इकाई की रूपरेखा :

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 उपन्यास का सारांश
10.3 उपन्यास की मूल संवेदना
10.4 शिल्प-विवेचन
10.5 व्याख्या
10.5.1 व्याख्या
10.5.2 व्याख्या
10.5.3 व्याख्या
10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
10.7संदर्भ ग्रंथ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप कृष्णा सोबती के उपन्यास समय-सरगम की कथावस्तु और उसकी मूल संवेदना पढ़ेंगे। इसके अध्ययन के बाद आप

- उपन्यास के कथानक के विषय में जान सकेंगे।
- उपन्यास के पात्रों का परिचय मिलेगा।
- उपन्यास की मूल संवेदना को आप समझ सकेंगे।
- आधुनिक उपन्यासों के शिल्प-विधान के विषय में जान सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

कृष्णा सोबती आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य की महत्वपूर्ण कथाकार हैं। वे अपनी संयमित अभिव्यक्ति और गांभीर्य के साथ साहित्य-लेखन में सकिय है। आज के बदलते हुए आधुनिक भारत के परिदृश्य में यह उपन्यास नये संस्कार-संदर्भो को प्रतिध्वनित करता है। वरिष्ठ नागरिकों के जीवन को अंतिम समय तक जीवन्त बनाये रखने के कथ्य को लेकर यहाँ उत्तर आधुनिक काल की संभावनाओं की पहचान का प्रयास है। परंपरागत औपन्यासिक शिल्प से भिन्न यह उपन्यास कथा के प्रवाह में लेखकीय सोच को सुंदर तरीके से निबद्ध करता है। प्रस्तुत इकाई में आप समय-सरगम की कथावस्तु के साथ उसकी मूल संवेदना को भली-भांति जान सकेंगे और उपन्यास की शिल्प विधि पर प्रकाश डाल सकेंगे। इसके अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण व्याख्याओं द्वारा आप संबंधित गघांश की व्याख्या कर सकेंगे।

10.2 उपन्यास का सारांश

'समय सरगम' कृष्णा सोबती का एक लघु उपन्यास है। इसमें इक्कीस छोटे अध्याय है और अंतिम अध्याय 'यही धरती' में कथा का समाहार हुआ है। इस उपन्यास की कथा में

मुख्यत: दो पात्र हैं - ईशान और आरण्या जो अपने जीवन के संध्याकाल में हैं। दिल्ली शहर के एक अपार्टमेण्ट के अलग-अलग ब्लॉक में वे अपने-अपने फ्लैट में रह रहे हैं। उपन्यास के प्रारंभ में दोनों शाम की सैर पर मिलते हैं, ऐसा लगता है कि वे प्राय: इस समय मिलते है। बीती हुई उम्र के अनुभवों के साथ वे अपनी जीवन यात्रा को समय की सरगम पर सहज बनाते चलते हैं। ईशान अपने भरे-पूरे परिवार के बाद अकेले हुए हैं, उनकी पत्नी की मृत्यु हो चुकी है। उपन्यास में एक स्थान पर ईशान अपने पुराने संदूक को खोल कर अपने पुत्र (लवी) की स्मृतियों को सहलाते हैं जो तेरह वर्ष की आयु में चला गया था इस समय उनके बच्चे विदेश में हैं और उनका एकाकी जीवन अध्यात्म से जुड़ते हुए अपनी भावनात्मक निर्भरता की खोज में है।

आरण्या की पारिवारिक पृष्ठभूमि के विषय में उपन्यास में कोई संकेत नहीं है, ईशान के साथ बातचीत करते हुए उसके व्यक्तित्व के कुछ पहलू अवश्य प्रकट होते हैं। आरण्या की अनुभव पकी जिंदगी में सच्चाइयॉ हैं, वह अपनी शर्तों और विश्वासों पर जीवन जीती है इसलिए कहती हैं 'मैं मनमानियों की विशेषज्ञ हूं' तथा 'मेरे होने के अर्थ मुझी में बने रहे है।' उसे सुबह देर तक सोना अच्छा लगता है, खाना खाने में लापरवाही उसका स्वभाव है। ईशान जब कभी पकी उम्र का हवाला देते हुए अंकुरित दालें और दलिया, फल आदि खाने पर जोर देते हैं तब आरण्या बेतकल्लुफी से कहती है कि उसके पास ये सारी चीजें जुटाने का धीरज नहीं है। धीरे-धीरे वह ईशान के प्रभाव में आकर शहद, नींबू की चाय, फल, सूखे मेवे, नीम की पत्तियां आदि के प्रति रूचि लेने लगती है। आरण्या की अपेक्षा ईशान की जीवन शैली सुव्यवस्थित एवं अनुशासनबद्ध है।

एक बार कुछ दिनों के लिए दिल्ली से बाहर जाते हुए ईशान घर की चाबी और एक लिफाफे में कुछ रूपये आरण्या के पास रख कर जाते है। उन्हें लगता है कि यदि अकस्मात किसी हादसे में जीवन का अंत हो जाये तो किसी को इंतजाम में कोई असुविधा न हो। ऐसे ही आरण्या पालम हवाई अड्डे से जब घर लौट रही थी तो ऑटो रूकवा कर कुछ पुलिस वेशधारी बदमाशों ने उसका पर्स और सामान छीन लिया। नई और पुरानी दिल्ली के बदले संस्कारों को रेखांकित करते हुए लेखिका यहाँ अकेले होने की चुनौतियों का उल्लेख करती हैं। ईशान और आरण्या के माध्यम से लेखिका कुछ और वृद्ध जिंदगियों में प्रवेश करती हैं। वहाँ स्वार्थों तथा सुविधा भोगों से विघटित पारिवारिक मूल्य हैं जिन्होंने परिवार की भावनात्मक संरचना को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है। दमयन्ती और कामिनी की जिंदगियाँ इस सच्चाई का जीवन्त दृष्टान्त हैं। दमयन्ती ईशान की पुरानी पड़ोसी रही है और ईशान के साथ आरण्या को भी अपने घर पर आमंत्रित करती है। बातों-बातों में दमयन्ती के जीवन का परिचय मिलता है पति की मृत्यु के पश्चात् अब वे ऋषिकेश की एक साध्वी की शरण में हैं, यहाँ कभी-कभी ही आती है। यद्यपि घर-परिवार की दृष्टि से दमयन्ती संपन्न है पर पुत्रों के लिए उसका घर में होना न होना बराबर है। उसकी देखभाल नौकर के भरोसे है। पुत्र जब तब माधो को धमका कर लॉकर की चाबियाँ हथियाना चाहते हैं। बेटों की ऐसी संवेदनहीनता झेलते हुए दमयन्ती अन्तत: एक रहस्यमय मौत मर जाती है। दूसरी ओर ईशान की पत्नी लक्ष्मी की दोस्त कामिनी अविवाहिता है कामिनी के भाई उसकी संपति हड़पने के लिए घिनौने षड्यंत्र करते हैं।

बूढ़ी और बीमार कामिनी की देखभाल उसकी नौकरानी खूकू करती है पर कामिनी सभी को अविश्वास से देखती है उसे मालूम है कि सभी की नजर उसकी संपत्ति पर है। लेखिका ने एक सफल उद्यमी प्रभुदयाल के अपने ही घर में पराये होने की दशा को प्रस्तुत किया है। बेटों को सफल बना देने पर भी उन्हें अपने जीवन जीने की स्वतंत्रता नहीं। बेटों ने आंखे तरेरते हुए पिता के गले से सेफ की चाबी उतार ली और घोर अपमान ग्रस्त प्रभुदयाल जब तक कुछ समझें पुत्रों ने उनके एक अन्य स्त्री से संबंध के राज को भी उजागर कर दिया। अंततः वे एक गुमनाम रहस्यमय मौत मर गये। इसके अतिरिक्त एक छोटा सा प्रसंग और है जिसमें किशोर जो वृद्धावस्था के अंतिम छोर पर हैं, नर्सिंग होम से लौट आये है पर अभी भी अस्वस्थ हैं, मिसेज किशोर उनकी सेवा कर रही हैं, बेटी-दामाद भी देखभाल करते हैं पर अंततः जीवन खेल समाप्त हो जाता है। ये सभी अनुभव ईशान और आरण्या के निकट सघन होते हुए उन्हें झकझोर देते हैं। वे दोनों जीवन-यात्रा के इस अंतिम पड़ाव पर अपनी जीवन शैली को सक्रिय और आत्मनिर्भर बनाये रखने के आकांक्षी हैं। उपन्यास में कई स्थानों पर ईशान और आरण्या के बीच विचार-विमर्श के माध्यम से लेखिका ने जीवन और परिवार विषयक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं।

उपन्यास के तेरहवें अध्याय में ईशान किसी सामाजिक संस्थान में पढ़ने वाली दो बच्चियों के लिए संरक्षक की भूमिका में दिखाई पड़ते हैं। यहाँ लेखिका ने सामाजिक कर्तव्य का हवाला देते हुए समर्थवान लोगों के लिए एक अवसर उपस्थित किया है। दोनों बेटियों के आगमन के लिए होने वाली तैयारी में ईशान और आरण्या व्यस्त होते हैं तो उनके घर में बचपन की चहल-पहल गूंजने लगती है।

उपन्यास के अंत में आरण्या अपना यह घर बेच देती है। वह नया फ्लैट ढूंढ रही है पर उसमें काफी कठिनाई है। अकेली स्त्री को कोई फ्लैट देने के लिए आसानी से तैयार नहीं होता। आरण्या की तटस्थता ईशान को प्रभावित करती है। उसे मालूम है कि 'हम दोनों ही अपने सुखों और दुखों से बाहर हैं। इसलिए कि हम अब किन्हीं सुखों की प्रतीक्षा नहीं कर रहे।' उधर आरण्या अपनी पुरानी सहेली विनीता के साथ उसके फ्लैट में रहने की स्वीकृति लेती है, जब तक कि नया घर न ढूंढ ले। इधर ईशान बड़ी सहजता-सरलता से आरण्या को अपने फ्लैट में एक कमरा देते हुए आश्वस्त करते हैं कि 'अभी भी सब कुछ रीत नहीं गया। जितना जल हमारे-तुम्हारे घट में शेष है, वह इस संझाते समय के लिए कम नहीं' और व्यक्तित्व की स्पष्ट भिन्नताओं के बावजूद ईशान और आरण्या अन्ततः एक-दूसरे का साथ चुनते हैं।

10.3 मूल संवेदना

'समय सरगम' की मूल संवेदना है परिवारों के भीतर और बाहर वरिष्ठ नागरिकों की जीवन-शैली की पड़ताल। आज के बदलते परिदृश्य में यह उपन्यास व्यक्ति की विश्वव्यापी स्वाधीनता उसके वैचारिक विस्तार और कुछ नये संस्कार संदर्भों को प्रतिध्वनित करता है। ईशान और आरण्या के माध्यम से कृष्णा सोबती ने बदलते भारत के अत्याधुनिक ढांचे में वृद्ध जिंदगियों के यथार्थ को प्रस्तुत किया है। ये दोनों सयाने

अपनी सहनशीलता और गरिमा के साथ परिपक्व हुए हैं अत: उनके आत्मिक सामाजिक छोर खुले हुए हैं। वे वृद्ध व्यक्तित्व की प्रचलित छवि से भिन्न हैं।

आरण्या और ईशान प्राय: एक-दूसरे के घर आते-जाते हैं चाय की चुस्कियों के बीच दोनों अपने जीवन के अनुभवों से एक-दूसरे को परखते चलते हैं। 'पारिवारिक घनिष्ठता की पुरानी भाव-गठरी अब उन्हें बेमानी' लगती है। दोनों शांत जीवन के हिमायती हैं इसलिए अकेलापन उन्हें अखरता नहीं। ईशान का जीवन पूरी तरह संतुलित एवं अवस्था के अनुरूप गंभीर है। आरण्या को ईशान की आंखें 'शांत महासागर' की तरह प्रतीत होती हैं। ईशान देशगत संस्कार की बात करते हुए कुछ हद तक संयुक्त परिवार के हिमायती हैं पर आरण्या आत्मविश्वास को कुदेरने वाला ऐसा संरक्षण स्वीकार नहीं करती। आधुनिक जीवन-शैली में अब यह पुरानी परिपाटी संभव नहीं। आरण्या के माध्यम से लेखिका ने स्पष्ट कर दिया है कि स्त्री के अस्तित्व और व्यक्तित्व के सूत्र अब पिता पति और पुत्र के हाथ में नहीं रहे। स्थितियां बदल रही है और स्त्री अपने वजूद, अपने अस्तित्व के प्रति सचेत है यद्यपि उपन्यास के अन्य प्रसंगों में दमयन्ती और कामिनी अभी भी अपनों के पराये हाथों में हैं, और संवेदनहीन परिवारों के बीच उनका अकेलापन गहराता जा रहा है और अपने घर में उनके विरूद्ध व्यूह-रचनायें रची जा रही हैं। निरंतर अवहेलना से अवसाद ग्रस्त उनका मन जर्जर और देह क्षीण हो रही है। परिवार के बीच वृद्धों की ऐसी उपेक्षा कहीं कहीं ईशान और आरण्या को भी कमजोर बनाती है। फिर भी स्वयं को चुस्त दुरूस्त रखने के सभी उपाय करते हुए वे जीवन को साक्षी भाव से जीना चाहते हैं। उन्हें यह भली-भांति विदित है कि देह में अब पहली जैसी ऊर्जा नहीं रही पर इस समय की अपनी कीमत है। 'अपनी मेहनत और कमाई की पोटली अभी भी हाथ से सरकी नहीं।' अत: वे जीवन की चुनौतियों के विरूद्ध डटे रहते हैं। उपन्यास के कुछ अन्य पात्रों की भांति वे जीवन ढोने के लिए विवश नहीं है और न ही स्वयं को पिछड़ा हुआ अनुभव करते हैं। किशोर, कामिनी दमयन्ती, प्रभुदयाल जैसे वृद्धों के जीवन को घेरने वाली असुरक्षा या त्रासद मृत्यु से ये दोनों मुख्य पात्र कुछ विचलित अवश्य होते हैं पर मरणधर्मा शरीर की वस्तु स्थिति उन्हें भली-भांति विदित है। वस्तुत: मृत्यु और मृत्यु भय दोनों शाश्वत हैं और उतना ही शाश्वत है जीवन। यही नहीं, जीवन की अंतिम साँस तक जीवित रहना और पूरी आकांक्षाओं के साथ स्वयं को जीवन्त बनाये रखना अपने आप में कम चुनौती पूर्ण नहीं।।

10.4 शिल्प विवेचन

कृष्णा सोबती ने अपनी लंबी साहित्यिक यात्रा में हर नई कृति के साथ अपनी क्षमताओं का अतिक्रमण किया है। 'मित्रो मरजानी' यारों के यार, डार से विछुड़ी, 'ऐ लड़की', 'दिलो दानिश' 'हम हशमत' 'जिंदगीनामा' 'शब्दों के आलोक में' 'जैनी मेहरबान सिंह' और आलोच्य कृति 'समय सरगम' तक उन्होंने जो आलोचनात्मक विमर्श और बौद्धिक उतेजना साहित्य-संसार में पैदा की है उसके लिए उपन्यास का प्रचलित स्वरूप पर्याप्त नहीं था। समय को लाँघ जाने वाला लेखन अपने शिल्प में भी विशिष्ट होता है।

'समय सरगम' में उपन्यास का परंपरागत स्वरूप नहीं है। 21 छोटे अध्यायों में कथानक का ताना-बाना बुना गया है जिनमें से कुछ अध्यायों में लेखिका की गंभीर वैचारिकता टिप्पणियां हैं। ईशान और आरण्या के माध्यम से वे निरंतर स्पंदित होने वाली जीवन रागिनी के मौन सुरों को मुखरित करती चलती हैं। पुरानी पीढ़ी के ये प्रतिनिधि पात्र जिंदगी के समीकरणों को खुली आँख से देखते हैं इसी वजह से सम्बन्ध यहाँ नये सिरे से परिभाषित होते हुए दिखाई देते है। आयु विशेष में संबंधों की तरलता प्रौढ़ होते-होते कितनी सघन हो जाती है, यह वही जान सकता है जो संबंधों के घनत्व में डूबने का साहस रखता हो और उनकी आत्मीय ऊष्मा को गहराई तक अनुभव करता हो। कृष्णा सोबती ने उपन्यास के दोनों पात्रों ईशान और आरण्या के बीच पनपने वाले संबंध को ऐसी ही आत्मीय ऊष्मा से उभारा है। दोनों के बीच होने वाले वार्तालाप और छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से लेखिका ने उनके व्यक्तित्व के कई सूत्र उद्घाटित किये हैं- ईशान की दिनचर्या पूर्णत: व्यवस्थित है- सुबह जल्दी उठना, आसन-व्यायाम आदि के प्रति सजग, नियमानुसार खाना, आराम नींद, सब कुछ व्यवस्थित पर आरण्या को सुबह देर से उठना पसंद है, खाने पीने के प्रति भी वह लापरवाह है। ईशान की अनुशासनबद्ध जीवन शैली से विपरीत आरण्या बंधी-बधायी लीक से हटकर उन्मुक्त भाव से जीवन जीती है। ईशान के घर प्रभात में गूंजने वाली दुर्गास्तुति सुनकर आरण्या अपने और ईशान के स्वभावगत वैभिन्य को स्पष्ट लक्षित करती है। लेखिका ने यह स्पष्ट किया है कि ईशान जीवन को एक विशेष दार्शनिक भाव से जीते हैं जबकि आरण्या इस अमूर्त के प्रति आलोचनात्मक रूख अपनाती है। दोनों के बीच यदा-यदा बहस भी हो जाती है जो उनके बीच की दूरियाँ पाटने का काम करती है।

उपन्यास के अन्य पात्र (दमयन्ती, कामिनी, प्रभुदयाल आदि) गौण हैं और उनके प्रसंगों के माध्यम से लेखिका ने ईशान और आरण्या की जिजीविषा को धार दी है। निःशब्द समय में दोनों एक-दूसरे की धड़कन सुनते हुए उसे महसूस करने लगते हैं और उपन्यास के अंत तक आते-आते एक-दूसरे का साथ सहज स्वीकार करते हैं। कृष्णा सोबती के अनुभव समृद्ध उपन्यासकार ने बेहद चुस्त शिल्प की बुनावट से इस उपन्यास के परिपक्व कथ्य को ऐसी संजीदगी से ढाला है कि पूरे उपन्यास में कहीं एक भी शब्द या वाक्य अतिरिक्त नहीं है। छोटे-छोटे वाक्यों और बिंबों के माध्यम से स्थिति अपने पूरे विस्तार में उतर जाती है। कृष्णा सोबती का गद्य संकेतों के साथ अनकहे को भी अपनी अभिव्यक्ति में शामिल करता है। उपन्यास के कुछ अंश द्रष्टव्य है-

1. 'उम्र कभी धोखे में नहीं आती। उसके पास संचित होता है जिए हुए का सत्यांश। अनुभव' पृ. 121
2. 'बहुत कुछ बदलने को है, जो बाहर है, वह अंदर नहीं। जो अंदर है, वह इतने अंदर कि उसका बाहर भी उसके बाहर नहीं। अंदर ही।' पृ. 123
3. 'अंतहीन हैं जन्म और मरण। हम जी-जीकर मरते हैं और मर-मर कर जीते है। दुबारा शुरूआत करने को फिर जन्म लेने को। जी उठने को।' पृ. 139
4. 'बचपन, यौवन और यह पकते हुए मौसम का सुर निषाद। जब तक हो, इन्हें गुंथे रहने दो। तभी है यह सरगम। समय सरगम।' पृ. 153

ऐसे कई उदाहरण पूरे उपन्यास में यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं जो जीवन लय के दार्शनिक रचाव को प्रकट करते हैं। पूरे उपन्यास को एक ही रौ में पढ़े बिना नहीं रहा जाता। लेखिका ने विचारों का सृजनात्मक कायान्तरण बखूबी किया है। जीवन के कई रहस्य वे इतनी सहजता से शब्दों में ढाल देती हैं कि कहे हुए की अर्थवत्ता द्विगुणित हो जाती है। कहीं-कहीं भाषा प्रबुद्धता की आंच से तप्त है किन्तु पात्रों के अनुकूल गरिमा का निर्वाह करते हुए

"अर्थो के पीछे से चमकता चैतन्य। चैतन्य ही मणिभ है। अपनी पारदर्शी चमक में मणिभ कभी फीका नहीं पड़ता।"

व्यक्ति के संदर्भ में कह रहे है न।

हाँ, वही इस जीवन की परम अद्वितीयता है। एक संपूर्ण संरचना। अपने प्रति चैतन्य होना ही पुनर्रचना है। क्या ठीक कह रहा हूँ? हाँ, समझ रही हूँ।

जितनी बार अपने को संवारना, नया करना, उतनी बार पुनर्जन्म। चुपके से आरण्या ने अपने से पूछा-भला कितने जन्म हो चुके तुम्हारे अब तक।

अनेक सचमुच अनेक जन्मों की तैयारी रही इस एक जन्म में।" पृ. 13

इस प्रकार छोटे छोटे संवादों में जीवन के रहस्य अनुस्यूत हैं और कथ्य उसी के अनुरूप आकार लेता चलता है। उपन्यास के अंत तक आते-आते बीसवें अध्याय में एक युगोस्लाव सैनिक का अपने अजन्मे बच्चे के नाम पत्र का उल्लेख महत्वपूर्ण हैं जिसमें आकार लेते जीवन को इस सांसारिक यात्रा की गतिशीलता में शुभ्र उजली सुबह की मंगल कामनाएँ दी गई हैं। इस जीवन-राग के मानवीय आख्यान को मुखर करते हुए लेखिका संकेतों में अपना अभिप्राय व्यक्त कर देती है कि समय के सातों स्वर जब एक गूंथ में परस्पर आबद्ध हो जाते हैं तो समय-सरगम के अनुरूप ढलता हुआ जीवन पहले से कहीं अधिक श्रेयस्कर और वरेण्य हो जाता है।

निष्कर्षत: कृष्णा सोबती ने कथ्य की मौलिकता व्यक्ति की विश्वव्यापी स्वाधीनता, उसके वैचारिक विस्तार को अपनी गहरी अंतर्दृष्टि और भाषागत प्रौढ़ संस्कार द्वारा प्रस्तुत करते हुए परिपक्व औपन्यासिक दृष्टि का परिचय दिया है।

10.5 व्याख्या

10.5.1 हर सांझ अपने . . . . . पीछे पलटा दो। पृ. 30

प्रसंग-

प्रस्तुत गद्यांश कृष्णा सोबती कृत 'समय-सरगम' उपन्यास से उद्धृत है। कृष्णा सोबती की प्रख्यात कलम ने इस कथाकृति में अपने समय और समाज के वर्तमान सामाजिक यथार्थ को आंतरिकता से प्रस्तुत किया है। आज के बदलते भारतीय परिदृश्य में यह उपन्यास वरिष्ठ नागरिकों की वस्तुस्थिति स्पष्ट करता है।

संदर्भ :-

उपन्यास के दूसरे अध्याय से लिए गये इस अंश में उपन्यास की नायिका आरण्या की मनःस्थिति चित्रित है। दिल्ली महानगर में एकाकी जीवन जीने वाली आरण्या अपने मित्र

ईशान से प्राय: मिलती है और दोनों परस्पर बातें करते हुए जीवन की जीवन्तता को प्रखरता से अनुभूत करते हैं। दोनों एक-दूसरे के संचित जीवन-कोष से प्रभावित होते हैं, इसी क्रम में आरण्या की स्मृति में एक वाक्य कौंधता है- मैं लाल-पीले रंगों से दुखों को साकार करना चाहता हूँ इस कथन के संदर्भ में वह अपने अब तक के जीवन पर एक दृष्टि डालते हुए विचार करती है-

व्याख्या :-

प्रकृति में परिवर्तन अवश्यंभावी है, सांझ ढलने पर रात आती है और रात पुरानी होते-होते प्रात: काल की ताजगी में बदल जाती है। परिवर्तन का यह क्रम निरंतर चलता रहता है और ऐसे में मानव मन के भीतर कुछ स्मृतियां स्थायी हो जाती हैं। कभी जीवन के अभाव पीड़ा बन कर टीस उत्पन्न करते हैं तो कभी कोई पुरानी याद आँख में आसू ला देती है। बीते हुए दिनों की ये स्मृतियाँ रह-रहकर मानव-मन को कचोटती हैं, मन पीछे की ओर लौटता है, और पुन: जीवन आगे की ओर बढ़ने लगता है।

विशेष :-

आरण्या अपने अंतस् को टटोलते हुए पाती है कि पल-प्रतिपल बदलते इस जीवन में कई पुरानी स्मृतियां उसे व्याकुल करती हैं। पर परिवर्तन सृष्टि का नियम है अत: जो नहीं मिला उस पर दुखी होने की अपेक्षा उससे ऊर्जा और ऊष्मा ले कर आने वाले कल को बेहतर बनाया जाये, यही उचित है। लेखिका ने यही वृद्ध होते हुए व्यक्ति की मानसिकता उभारी है जहाँ पहुंच कर मनुष्य जीवन के कुछ योग संयोगों को एक साथ जोड़ कर उसकी समग्रता में देखने की कोशिश करता है। आरण्या भी अपने अब तक के जीवन में क्या खोया क्या पाया का आकलन करती हुए पाती है कि जीवन के गहरे अंधेरों को आलोकित करने वाली उपलब्धियां निराशाजनक नहीं है पर उनके स्मरण से पीड़ा की अनुभूति अवश्य होती है।

10.5.2 ईशान! मुझे संयुक्त . . . . . फरफरा रही है। पृ- 64

प्रसंग :-

पूर्ववत

संदर्भ :-

इस गद्यांश में ईशान और आरण्या आज के परिवेश में परिवार की बदलती हुई संरचना पर विचार करते हैं। ईशान संयुक्त परिवार के दबावों के बाद भी उसे सामाजिक व्यवस्था के लिए अच्छा मानते हैं किन्तु आरण्या उनकी इस बात से सहमत नहीं है।

व्याख्या :-

आरण्या कहती है कि यद्यपि उसे संयुक्त परिवार में रहने का अवसर नहीं मिला है। तथापि अपने आप-पास के घरों पर जब वे नजर डालती हैं तो उन्हें स्थितियाँ सुखकर प्रतीत नहीं होतीं। आरण्या के अनुसार आज के युग में पैसे की अहमियत अधिक है अत: बड़े परिवारों में यदि एक व्यक्ति दूसरे से अधिक कमा रहा हो तो कम अर्जित करने वाले को किसी न किसी रूप में उस कमी की भरपाई करनी होती है। परिवार के सदस्यों में पहले जैसा विश्वास और स्नेह का संबल नहीं रहा। परिवार नामक संस्था की भीतरी

शक्ति खोखली हो चुकी है। आरण्या ईशान के भारतीय संस्कारों के गहरे लगाव से परिचित है और जानती है कि वे उसकी बात से सहमति नहीं रखते पर फिर भी आरण्या दो-टूक कहने से हिचकिचाती नहीं। उसका कथन है कि परिवार की मर्यादा एक-दूसरे को सहारा देने वाली घनी छाँह नहीं रही। आज के आपाधापी वाले युग में कुछ ही परिवार ऐसे हैं जो इस पुराने संस्कार को ढो रहे है।

विशेष :-

उपन्यास के पाँचवें अध्याय से संकलित इस अंश में यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि पारिवारिक आत्मीयता के कमजोर पड़ते धागों के कारण अब परिवार में पहले जैसा सद्भाव दिखाई नहीं पड़ता। जो परिवार पहले संस्कार देने का काम करता था, कई पीढ़ियां एक ही छत के नीचे रहती थीं। अब आर्थिक तनाव के चहले वह आदर्श ढाँचा चरमरा गया है। ईशान की धारणा के वितरित आरण्या आज की वस्तुस्थिति को तल्खी से प्रकट करती है। ईशान परिवार को सुरक्षा का एक नीड़ मानते हैं पर आरण्या का विचार है कि निजी स्वार्थो के बलवती होते जाने के कारण परिवार की परंपरागत व्यवस्था कमजोर पड़ गई है। प्रस्तुत अवतरण में उपन्यास का कथ्य समाहित है, संयुक्त परिवारों के भीतर और बाहर वरिष्ठ नागरिकों के प्रति उपेक्षा और उदासीनता बढ़ती जा रही है। दमयन्ती और कामिनी की जिंदगियाँ इस सच्चाई का जीवन्त दृष्टान्त हैं अत: आरण्या और ईशान के इस वार्तालाप के माध्यम से लेखिका ने आज की वस्तुस्थिति स्पष्ट कर दी है।

10.5.3 अंतहीन है जन्म और मरण। हम . . . . . बना रहे। पृ. 139

संदर्भ -

पूर्ववत्

प्रसंग :-

उपर्युक्त गद्यांश उपन्यास के सत्रहवें अध्याय से लिया गया है। ईशान और आरण्या समय के अंतराल को पाटते हुए निरंतर एक-दूसरे के निकट आते गए हैं। वे दोनों अलग-अलग होते हुए भी साथ हैं और साथ-साथ होते हुए भी अलग। जीवन के उतरार्द्ध के अंतिम चरण में एक दूसरे का साहचर्य उन दोनों को जीवन रहस्यों के विषय में सोचने के लिए विवश कर देता है। लेखिका भी जीवन की जीवन्तता के विषय में अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहती हैं -

व्याख्या :-

इस संसार में जन्म और मरण का अंत नहीं है। मनुष्य जी-जी कर मरता है और मर-मर कर भी जीने की भावना निरंतर बलवती होती जाती है। जीवन जीने की तमाम चुनौतियों को झेलते हुए भी मानव के भीतर प्राणों की लालसा सदैव हरियाती रहती है। वस्तुत: यह ब्रह्मांड एक बड़ा तरण-ताल है जिसमें गोते खाने वाला डूब कर पुनर्जन्म की अपेक्षा रखता है। कृष्णा सोबती 'सच्चिदानन्द' शब्द की व्याख्या नये रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे मानव जीवन के संदर्भ में इस प्रकार देखती हैं- संसार में मनुष्य के हृदय में स्थित सत् सदैव प्रतिष्ठित बने रहना चाहता है। जब तक जीवन है तब तक जीवनी शक्ति को प्रबुद्ध बनाये रख कर मानव अपनी सीमा में आने वाले सब कुछ को जानने समझने की

अपेक्षा रखता है और इन दोनों से उत्पन्न 'आनन्द' में ही मनुष्य सुख की अनुभूति करता है।

विशेष :-

मानव के पुनर्जन्म की परिकल्पना को कृष्णा सोबती ने अपने नजरिये से देखा है। जीवन की अंतिम अवस्था की ओर अग्रसर ईशान और आरण्या जब शेष जीवन व्यतीत करने के लिए एक-दूसरे का साथ चुनते हैं तो मानो यह उनका पुनर्जन्म ही है। सत् चित् और आनन्द की व्याख्या करते हुए लेखिका ने जीवन के इस अंतिम पड़ाव को सौंदर्य से भर दिया है। जीवन के अर्थ सदैव बने रहते हैं, उन्हें साहस और दायित्व से कभी भी किसी भी उम्र में हासिल किया जा सकता है। मानव मानव के बीच होने वाले स्वाभाविक संबंधों की सार्थकता जीवन को अर्थवत्ता से परिपूर्ण कर देती है। इस प्रकार प्रस्तुत अंश में दार्शनिकता का पुट देते हुए जीवन के श्रेयस् को तात्विक ऊँचाइयों तक ले जाया गया है जो उपन्यास को सार्थक एवं प्रासंगिक बनाता है।

वृद्ध जिंदगियों की सच्चाई को प्रस्तुत करने वाले अन्य उपन्यास हैं- निर्मल वर्मा का 'अंतिम अरण्य', चित्रा मुद्गल का 'गिलीगडु' और ममता कालिया का 'दौड़'। इन सभी उपन्यासों में वृद्धों के जीवन की सार्थकता के विभिन्न छोर खोजे गये हैं जो आश्वस्त करते हैं कि जीवन में अब भी सब कुछ रीत नहीं गया, जितना समय बचा है उसे भी पूरे मन से जियें।

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'समय सरगम' उपन्यास की मूल संवेदना स्पष्ट कीजिए।
2. आरण्या और ईशान के स्वभावगत अंतर को स्पष्ट कीजिए।
3. दमयन्ती, कामिनी, प्रभुदयाल आदि के प्रसंगों के माध्यम से लेखिका क्या इंगित करना चाहती है?
4. 'अपनी मेहनत और कमाई की पोटली अभी भी हाथ से सरकी नहीं - आशय स्पष्ट कीजिए।

10.7 संदर्भ - ग्रंथ

1. डॉ. रामचन्द्र तिवारी; हिन्दी का गद्य साहित्य
2. डॉ. वी.के. अब्दुल जलील; समकालीन हिन्दी उपन्यास : समय और संवेदना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. यतीन्द्र मिश्र (संपादक); सहित (वार्षिक पत्रिका) प्रवेशांक, जुलाई 2000
4. प्रभाकर श्रोत्रिय (संपादक); वागर्थ - अंक 17, मई 2001

इकाई-11 'समय सरगम' का प्रतिपाद्य

इकाई की रूपरेखा :

11.1 उद्देश्य
11.2 प्रस्तावना
11.3 प्रतिपाद्य
11.4 जीवन दृष्टि
11.5 शिल्प
11.6 भाषा
11.7 सारांश
11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
11.9 संदर्भ ग्रन्थ

11.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

- 'समय सरगम' के प्रतिपाद्य को समझ सकेंगे।
- 'समय सरगम' के भाषा-शिल्प पर अपने विचार व्यक्त कर सकेंगे।

11.2 प्रस्तावना

इधर जीवन संध्या पर एक साथ कई रचनाएं लिखी गई हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर से लेकर छायावादी कवियों ने मृत्यु को एक उल्लास मय पर्व के रूप में देखा है किन्तु दार्शनिकता के धरातल से नीचे उतरकर समाज में संयुक्त परिवार के विघटन के साथ ही बुजुर्गो की समस्याएं बढ़ने लगी हैं। पश्चिम के बढ़ते प्रभाव में यहाँ के बुजुर्ग भी अकेलापन जीने के लिए अभिशप्त होने लगे हैं। युवाओं द्वारा विदेश गमन अथवा महानगर में निवास अथवा अपनी महत्वाकांक्षाओं में लिप्त होने के कारण बुजुर्गो का जीवन मानसिक और शारीरिक शैथिल्य का पर्याय बनता जा रहा है, ऐसे में स्वयं को निरीहता से उबार कर अपनी स्वतन्त्र सत्ता और अस्मिता की पहचान देने का प्रयास दिखलाई देता है 'समय सरगम' में। कहा जा सकता है कि 'आज के बदलते भारतीय परिदृश्य में यह उपन्यास व्यक्ति की विश्वव्यापी स्वाधीनता उसके वैचारिक विस्तार और कुछ नये संस्कार - संदर्भो को प्रतिध्वनित करता है-

कृष्णा सोबती जीवन की छोटी छोटी घटनाओं को बड़े प्यार, उल्लास और चाव से देखती हैं। जीवन के रोजमर्रा के अनुभवों से वे यथार्थ का ताना-बाना बुनती हैं। इसीलिए उनके चित्र आशावादी और जिजीविषा से भरपूर हैं। यथार्थ को वे नकारती नहीं, न ही किसी काल्पनिक चमत्कार की इंतजार में गुजारती हैं, बल्कि अंदर के अकेलेपन को भी सक्रियता से भर देती हैं। वहाँ आराम तो है किन्तु आलस्य नहीं। उनकी दिनचर्या में एक सरस व्यवस्था है और दूसरों के प्रति चिन्ता और लगाव भी। उनका व्यक्तिमन, सामाजिक मन भी है किन्तु एक परिष्कृत तटस्थता के साथ। सबसे बड़ी खुबी यह है कि संवेदना के धरातल पर वहाँ आत्मदैन्य नहीं है, निरन्तर एक आत्मविश्वास और

सम्पूर्णता से युक्त स्वाभिमान और स्वायत्तता वहाँ बरकरार है। वे अनुभूत यथार्थ और परिचित परिवेश को सशक्त ढंग से अभिव्यक्त करती हैं। उनकी सृजन प्रक्रिया एक गहन अन्तर्दृष्टि, साधना और अन्तश्चेतन के मानसिक व्यापार से उद्भासित होती है। वे जनजीवन के सत्य को, यथार्थ के इतिहास और भविष्य के बीच के वर्तमान को सूक्ष्मता से ग्रहण करती है। इसीलिए उनकी शैली में एक तल्लीन मनोयोग का आभास मिलता है। गाँव हो या शहर - एक सम्पूर्ण सजग संसार अपनी स्वाभाविकता में उनके यहाँ मौजूद है। वे स्वयं कहती हैं - "हाँ यह सच है कि गाँव और शहर की सब खूबियाँ और कमजोरियाँ हममें एकसाथ मौजूद हैं। खुलापन तो जी भर कर। शहर का मुलम्मा तो वह भी जी भर कर।"

कृष्णा सोबती की रचनाएं विविध आयामी हैं। उनके अनुभवों की सघनता और विचार-दृष्टि की तीव्रता एक गहरे भाव बोध के साथ उनके कथा-फलक को धार देती प्रतीत होती है। यही कारण है कि आत्ममंथन से निकला उनका एक एक शब्द अनुभूत सत्य की आभा से युक्त प्रतीत होता है। कृष्णा सोबती का रचना-संसार न केवल एक नयी परम्परा का निर्वाह करता प्रतीत होता है, बल्कि लेखिका का व्यक्तित्व भी दबंग और विद्रोही प्रतीत होता है। उनकी रचनाओं में हमें लगातार सड़ी-गली मान्यताओं का अस्वीकार दिखाई देता है। वे स्वयं मानती हैं - 'जो सार्थक नहीं है, उससे छुटकारा पाना उतना ही जरूरी है, जितना नये को अपनाना।"

उपन्यास - 'समय सरगम' उनके जीवन दर्शन और अनुभवों का निचोड़ प्रतीत होता है। वृद्धावस्था का अकेलापन उनकी उस विवेक-दृष्टि से सम्पृक्त है जिससे वे अपने अधिकारों और सीमाओं को निर्धारित करती हैं। यही सुचिन्तित दर्शन उनको सहज और कुंठा रहित बनाता है।

रचनाकार अपने समय का इतिहास रचता है। कृष्णा सोबती ने वर्तमान युग संदर्भों में वार्धक्य के अकेलेपन और हताशा को दूर कर जीवन को व्यापक संदर्भों से जोड़ा है। उनकी गहन संवेदना सामाजिक यथार्थ की विकृतियों और स्वार्थी मानसिकता की काई को हटाते हुए मन की दृढ़ इच्छाशक्ति और जीवट को उजागर करती है और संघर्षशीलता ही उनका परम लक्ष्य है। उनके लिये सृजनात्मकता किसी आध्यामिक साधना से कम नहीं है। अत: वे एक लेखक के लिये विश्लेषणात्मकता, निडरता और आत्मीयता को आवश्यक मानती हैं।

कृष्णा सोबती मनुष्य के मन के निगूढ़ सच को पहचानती हैं। वह सदा अकेला होता है। उस अकेलेपन को उनकी प्राय: सभी रचनाओं में देखा जा सकता है। लेकिन यह अकेलापन बाहरी परिस्थितियों से लगातार टकराता है और यथासम्भव अपने अस्तित्व की घोषणा करता है। यह अकेलापन शायद आज के व्यक्ति का अन्तर्भूत सच भी है। एक ओर इस अकेलेपन में उसके व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता बनी रहती है, वहीं जीवन में सूनापन भी भर जाता है। कृष्णा जी कहती हैं - "वे नन्हें नन्हें मासूम क्षण जो हर सुबह हर सूरज की तरह हर घर में ज़िंदा होते हैं, वे यहाँ नहीं हैं। यहाँ तो एक मैं ही हूँ। मैं ही मैं अहसास। एक पोशाक। एक ही दरवाज़ा - जिससे मेरी परछांई अन्दर आती है, मेरी ही बाहर निकल जाती है। मुझसे ही सुबह शुरू होती है। मुझसे ही शाम।"

कृष्णा सोबती ने इस 'अकेलेपन' को काव्यात्मक बिम्ब दिया है और इससे उपजे अवसाद को 'समय-सरगम' में जीवन का संगीत बना डाला है। इस उपन्यास में उनकी सृजनात्मकता और मानसिक धरातल एक अन्तर्लोक रचता है। वे एक ऐसी ऊँचाई पर खड़ी दिखती हैं, जहाँ वे सबके बीच होते हुए भी सबको तटस्थ भाव से देख रही हैं। संसार को एक नये दर्शन से अवगत कराते हुए, विनाश और सृजन के नैसर्गिक सत्य को पुन: पुन: स्थापित करते हुए, स्वयं को, स्वयं से अलगाते हुए, ईश्वर की आराधना में अनुभूत प्रकाश को महसूसते हुए यह उपन्यास एक दार्शनिकता का रचाव करता है।

11.3 समय सरगम का प्रतिपाद्य

कृष्णा सोबती ने 'समय सरगम' में जीवन के अंतिम पड़ाव के अकेलेपन को जिस जीवंतता, सार्थकता और चेतनता के साथ चित्रित किया है, वह एक साथ वर्तमान समाज, परिवार और उसके अन्त: सम्बन्ध बदलते संदर्भों के बीच महानगरीय परिवेश की जीवन-चर्या और आत्मविश्वास, आत्मचिंतन के साथ आन्तरिक और बाहरी लय स्वयं अन्तर्ग्रथित सी दिखाई देती है।

प्राय: देखा जाता है कि वृद्धावस्था हताशा और शिथिलता के साथ उपेक्षा की शिकार होती है किन्तु कृष्णा सोबती की अन्तश्चेतना ने एक दार्शनिकता के साथ समय के एक एक पल को स्वीकार किया है। उनका दृष्टिकोण सकारात्मक है, अत: यहाँ केवल मृत्यु की प्रतीक्षा नहीं, बल्कि व्यक्तिमन खाली होने की बजाय पल पल भरता जाता है, क्योंकि अब वर्षो की योजनाएं नहीं, हर क्षण की पूँजी एकत्र होती है। इस उपन्यास में एक स्त्री, एक सम्पूर्ण व्यक्ति के रूप में, आयु के वार्धक्य में ही अपनी समस्त गरिमा समस्त परिपक्वता और समझदारी के साथ भरपूर सहजता लिये जैसे अपनी विशिष्ट और अलग पहचान लिये अपने समय का प्रतिनिधित्व कर रही है। आत्मकथात्मक शैली में चित्रित वह व्यक्तित्व पूरी बीसवीं सदी के अनुभवों का निचोड़ और नई सदी का एक नया व्यक्ति होता है। आरण्या और ईशान - दो अलग व्यक्ति - अलग स्वभाव और अलग पृष्ठभूमि के होते हुए भी दो सहज और विश्वासी मित्र - यहाँ स्त्री पुरूष के पारम्परिक अर्थ बदल गए हैं, सामाजिक दृष्टिकोण भी बदल गए हैं, मगर फिर भी प्रकृतिगत विशिष्टताएँ मौजूद हैं।

भारतीय समाज में वृद्धावस्था की अवधारणा बिल्कुल अलग है। या तो वहाँ परिवार की आगे की पीढ़ियों में घिरे दादा-दादी, नाना-नानी की भूमिका है अथवा नितान्त अकेलेपन को और रूग्णता को ढोते हुए उपेक्षित वृद्ध है। पति-पत्नी का साथ और परस्पर निर्भरता ही मुख्य पहचान होती है। किन्तु कृष्णा सोबती ने परिवार के दन्द-फन्द और कटुताओं, अपेक्षाओं से अलग एक अकेली वृद्धा स्त्री और एक अकेले वृद्ध पुरूष को अपनी अपनी स्वायत्तता के साथ सहज मैत्री और आत्मीयता प्रदान की है। अभी यह अवधारणा असहज अवश्य प्रतीत होती है किन्तु आने वाले समय में इसकी संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

आरण्या और ईशान जिस विश्वास, जिस भागीदारी और जिस वैयक्तिक स्वातन्त्र्य की रचना करते हैं, वह एक नये समाधान, एक नये कौशल और एक नये सोच की

अभिव्यंजना प्रतीत होती है। मनोविज्ञान भी यही कहता है कि तनाव अकेलेपन की त्रासदी है किन्तु परिवार भी कहीं मानसिक उत्पीड़न देता है, जीवन पर अंकुश भी लगाता है, जबकि यहाँ दो पीढ़ियों का संघर्ष नहीं है, यहाँ पर निर्भरता का बोझ भी नहीं है, समय के साथ बदलती दिनचर्या, स्वास्थ्य की माँग, आत्मसजगता और सक्रियता के साथ आंतरिक ऊर्जा का उपयोग है, जो निराशा अवसाद और खालीपन को दूर रखने में सहायक है।

'समय सरगम' की केन्द्रीय पात्र आरण्या है, जो धरती, आकाश, सूरज, हवा और सारी प्रकृति के साथ व्यक्ति के प्राणों को जोड़ती है। अतीत बीतकर भी बीतता नहीं और परम्परा एवं संस्कारों से कभी मुक्त नहीं हुआ जा सकता, इसीलिए इतिहास वर्तमान से अलग नहीं हो सकता। व्यक्तित्व का अन्तर्मन और व्यक्तित्व इन सबसे मिलकर ही बनता है किन्तु अतीत और इतिहास से चिपके रहकर कोई भी जीवन यात्रा तय नहीं कर पाता। कृष्णा सोबती अतीत से सबक लेती हैं और वर्तमान के हर पल को भरपूर जीने के लिए तटस्थ निर्णय भी लेती हैं। उनके सामने हर वह पल है जो सामने है, जो वह जी रही हैं, पूरी तन्मयता के साथ। आत्मविश्वास से भरपूर जीवन का सच उनकी परिपक्वता का संतोष है - 'इस चेहरे पर सताई हुई रेखाएं नहीं। समय के साथ उगी पली हैं। अपने वक्त को खुद जीया है।'

यह आत्मविश्वास और संतोष समय की माँग है या समय की चुनौती, क्योंकि अधिकांशत: उम्र की अधिकता - धर्म, पूजा पाठ, हरिनाम अथवा वैराग्य के गलियारों में चक्कर काटने लगती है। लेखिका ने न तो कोई उपदेशात्मक शैली अपनाई है, न ही दार्शनिक अंदाज में अपने अतीत को कुरेदा है, न ही भविष्य के प्रति किसी चिन्ता या आशंका का विस्तार किया है। वे कहती हैं - 'अंतिम पड़ाव वाली भूमिका कभी भी पास आ खड़ी हो सकती है।' पर अभी जो पल हमारे पास है, वही सबसे बड़ा सच है।

कृष्णा सोबती ने आरण्या के व्यक्तित्व को एक नई पहचान दी है। समाज, परिवार, विवाह आत्मीय सम्बन्ध आरोप-प्रत्यारोप - इन सबसे परे एक स्वतन्त्र इकाई - अपनी सोच और अपनी जीवन दृष्टि के साथ, अपने में सम्पूर्ण, जीवंत और उल्लक्षित - जिसे वे शब्द देती हैं - 'बीती हुई एक पूरी पुरानी पीढ़ी की स्त्री के जीवन का दस्तावेज़ भी कहा जा सकता है।

स्त्री और पुरूष की मानसिकता में अनतर होता है। पति-पत्नी बुढ़ापे में परस्पर अपरिहार्य प्रतीत होते हैं, फिर भी स्त्री अपने बच्चों-नातों-रिश्तों में स्वयं को खपा देती है, पुरूष अधिक अन्तर्मुखी होता चला जाता है। किन्तु वह स्त्री - जो अपनी स्वतन्त्र पहचान और अपने समय की चाह करे, तब क्या नई पीढ़ी उसे वह पहचान दे पायेगी अथवा ऐसी स्थिति में वे वृद्ध स्त्री-पुरूष क्या करें, जिनकी आवश्यकता उनकी संतानों के जीवन में हाशिये पर हो या बिल्कुल खत्म हो जाये। परिवार के समीकरण न केवल अपना रूप-रंग बदल रहे हैं बल्कि अपनी नई परिभाषाएं भी गढ़ रहे हैं, ऐसे में हम परम्परा, मूल्य और आदर्श की दुहाई देकर यथार्थ को नहीं बदल सकते।

कृष्णा सोबती ने आरण्या और ईशान के माध्यम से स्त्री-पुरूष की मित्रता को एक नया स्वरूप दिया है। वृद्धावस्था में ये दोनों पात्र पड़ौसी भी हैं और सहृदय मित्र भी। यह मित्रता बिना किसी अपेक्षा के और शिकवे-शिकायत के, सहृदयता पर आधारित है। यह

एक आदर्श मित्रता है, परस्पर एक दूसरे को सम्मान देते हुए। लेखिका ने दो पात्रों के अन्तर्मत का आन्तरिक और सामाजिक रचाव - एक काव्यात्मक आख्यान की तरह है। यहाँ व्यक्ति की पहचान चैतन्य से होती है।

यथार्थ धरातल - 'समय सरगम' उपन्यास का ताना-बाना छोटे छोटे सुखों के संचय से बुना गया है, फिर वह चाहे शाम की चाय हो या बगीचे की सैर, एक दूसरे को फोन करना हो या अपनी अपनी रूचियों का बयान - 'न पुरानी स्मृतियाँ, न उलाहने, न स्पर्धा, न आक्रामकता, न नम्रता। सिर्फ साथ-साथ चल रहे हम दो हैं। चलना अच्छा है।' अनकहा भी बहुत कुछ कह जाता है, बशर्ते कि अपनी लिपि कोई स्वयं बन जाय। शायद यथार्थ सिर्फ वही नहीं होता - जिसे जिया जाता है, बल्कि वह भी यथार्थ कहला सकता है जिसे जिया जा सकता है। यह व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह कैसा यथार्थ जीना चाहता है।

आज के इस भागते दौर में सब आत्म-केन्द्रित हैं, अपने में लीन। दूसरों की बात सुनने की या दूसरों का दर्द जानने की फुर्सत या संवेदना ही नहीं बची है। अत: क्षणों को पकड़ने की, प्रकृति को महसूस करने की और यह निष्कर्ष निकालने की कि 'हम है' तो समय है। मगर संसार का सत्य यही है कि मनुष्य का होना ही सबसे बड़ा सत्य है। वर्तमान समय में इस अकेलेपन ने उसके अस्तित्व को जकड़ लिया है किन्तु रोजमर्रा के असंतोष और तनाव को परे धकेलकर एक रचनात्मकता का स्वीकार उस अकेलेपन को दूर कर सकता है। ऐसा नहीं है कि आरण्या और ईशान नंदी के द्वीप की तरह समाज और संसार से बेखबर है। समाज में उनके बहुत से मित्र हैं जो निराश और अवसादग्रस्त हैं, चाहे वह किशोर हो या भरे पूरे घर की दमयन्ती - जो पति की मृत्यु के बाद अपने ही बेटों द्वारा उपेक्षित है - जो कभी आश्रम में शान्ति तलाशती है तो कभी मित्रों के साथ पिकनिक पर जाने में। वस्तुत: दमयन्ती का चरित्र विरोधाभासी रंगों में आज का यथार्थ तो है ही, साथ ही जीवन के खोखलेपन को भी दर्शाता है। दमयन्ती का जीवन एक ओर अभिजात भौतिकता से भरपूर है, दूसरी ओर वह अपने ही घर में अपने बेटे-बहू द्वारा तिरस्कृत। वर्तमान की महानगरीय आधुनिकता यही बिल्कुल साफ है - "मैं तुम्हारी तरह अकेली होती तो क्यों परेशान होती। बच्चे साथ रह रहे हैं। मेरे घर में - मेरा किचन चल रहा है। खर्चा मैं कर रही हूँ और मैं अपने कमरे में अकेली पड़ी रहती हूँ। बिना मेरी इजाजत मेरा सामान इधर से उधर करते रहते हैं। आरण्या मैं बहुत दुखी हूँ। पीछे आश्रम गई तो माधो को धमकाते रहे। बताओ, ममा लॉकर की चाबी कहाँ रखती हैं।'

कृष्णा सोबती ने संकेतात्मक और संयमित भाषा में नई पीढ़ी के कठोर तेवर और वृद्धावस्था की घबराहट और असुरक्षा एवं भय को सशक्त ढंग से अभिव्यक्ति दे दी है। कुछ सवाल सार्वभौमिक और सार्वकालिक होते हैं। बूढ़ी माता क्या सिर्फ 'ममता' होती है। क्या उसके अस्तित्व और व्यक्तित्व के सूत्र अब भी पिता, पति और पुत्र के हाथ में हैं। लेखिका का चिंतन प्रखर है - क्या सचमुच कोई किसी की मदद करने के काबिल है? फिर भी वे परिवार और समाज से पूरी तरह नि:संग नहीं हैं। - 'बहू-बेटों की आनाकानी, आँखें चुराना, हमारी भूली-बिसरी गलतियाँ जताना - सब कुछ है गहस्थी में, पर अपने पिछले वक्त अपने पोते-पोतियों से दादू, दद्दा, दादाजी सुनना भी कितना भला।'

आरण्या का स्वाभिमान, स्वत्व, इच्छाशक्ति बहुत प्रबल है। वह न तो अतीत से बँधी है और न ही भविष्य से आक्रान्त। न परलोक सुधारने के लिये साधु-सन्तों के पास जाना पसंद करती है और न ही खोखली भौतिकताओ के पीछे भागती है। जीवन को सम्पूर्णता और सहजता के साथ जीना, अपने आत्मबल को प्रखर रखना महत्वपूर्ण है। लेखिका ने आरण्या के चरित्र के समानान्तर दमयन्ती और कामिनी जैसे चरित्र रखे हैं। कामिनी ईशान की पुरानी मित्र है - मगर आज बीमार बूढ़ा चेहरा - जीर्ण पत्तों की तरह निःशब्द कभी भी झड़ने को तैयार एवं मनोरोगी - लगातार मृत्यु की आशंका से त्रस्त जैसे लूटने को तैयार हो - यह भी जीवन का एक रूप है। बीमारी वृद्धावस्था को अशक्त बना देती है भयभीत भी। जीवन पर खून पसीना बहाकर जो सहेजा जाता है, उससे मुक्त होना सहज नहीं होता, पर सगे-सम्बन्धी, अपने-पराये सब छीन लेने को आतुर दिखाई देते हैं, ऐसे में दिमागी हालत असन्तुलित हो जाती है। इस असन्तुलन और घुटन से सब बचना चाहते हैं। लेकिन आरण्या का निष्कर्ष एक अलग धरातल पर है - लालो कामिनी से कितनी अलग। किस आत्मविश्वास से उसने कैरियर बनाया। अपने को सँवारा। आज इस उम्र में भी अपनी देखभाल कर रही है। व्यक्तित्व सिर्फ सुविधाओं से ही नहीं पनपता। वह बनता है समझ और अनुभव से।

आरण्या जीवन के इन विविध चित्रों को देख समझकर अपनी स्थिति सुदृढ़ करती रहती है, कभी कभी अपने व्यक्तिगत जीवन की हल्की सी झाँकी देती हुई किन्तु सर्वोपरि है - आत्मबल।

समय-सरगम के ये मुख्य पात्र केवल फैंटेसी या सपनों की दुनिया में नहीं जीते। कई बार इनकी सोच और सम्बन्ध यथार्थ प्रतीत नहीं होते, क्योंकि मानव मन की बनावट बहुत जटिल होती है, अन्तर्विरोधी भी और अति संवेदनशील भी, अत: जीवन और सम्बन्धों के समीकरण सम धरातल पर नहीं बन सकते। आरण्या और ईशान जीवन की सभी कठोरताओं को झेल चुके हैं। पीड़ा की अधिकता ने उन्हें निर्वैयक्तिकता भी दी है, स्थायित्व भी, गहराई भी और परिपक्वता भी। बौद्धिकता के समान धरातल पर समानुभूति उपजी है और पारदर्शी सहृदयता के आधार पर विकारहीन मित्रता भी, जो वृद्धावस्था का पुरस्कार प्रतीत होती है। इनके जीवन में स्मृतियाँ या दुखानुभूतियाँ भी हैं। ईशान जिस तरह अपने दिवंगत किशोर वय बेटे की चीजों के माध्यम से अतीत को टटोलते हैं और उसमें अनायास आरण्या भागीदारी करती है, वह प्रसंग बेहद सजग, सन्तुलित और मार्मिक है - वह पूरा प्रसंग दोनों चरित्रों को बहुत गरिमामय बना गया है, बेचारा नहीं। ईशान का बेटा अपने अतीत में से झाँक कर जीवन्त हो उठता है और उसकी वस्तुएँ, उसके पत्र अनायास उसे एक स्वतन्त्र चरित्र बना जाते हैं। लेखिका ने ईशान की यादों को खूबसूरती से स्वप्निल सम्भावनाओं से जोड़ दिया है - "जानता हूँ अगर यहाँ नहीं तो कहीं न कहीं है जरूर। जब गया तो तेरह का था, अब तो किसी का पिता बन गया होगा।" दोनों एक साथ अजीब सा हसँने लगे, जैसे कुछ हल्का सा महसूस किया हो। आरण्या स्मृतियों को महक देती है किन्तु उसका विश्वास है - 'जीने की निपुणता के बाहर हुए नहीं कि गए।'

कृष्णा सोबती ने वृद्धावस्था के मनोविज्ञान को बेहद सूक्ष्मता से पहचाना और चित्रित किया है। एक ओर जीवन भर की कमाई और भविष्य की चिन्ता, बीमारियों का भय, असुरक्षा, असहायता और जीवन के पल-पल को पकड़ लेने की उत्कृष्ट लालसा, साथ ही जीर्णता की वृद्धि के साथ संसार की आँखों की उपेक्षा और वीरानी - जैसे जीवन एक सजा बन जाये। बूढ़ों की बैठक में पेंशन, प्रोविडेन्ट फण्ड के साथ दवाई, डॉक्टर और भक्ति और इन सबके साथ अकेलापन। आत्मीयता की ललक भी और अलगाव भी लेखिका का आत्म मंथन लगातार जारी है -

'जब तक हम हैं तो रहेंगे ही, वैसे ही जैसे रहा जाता है - परिवारों के बाहर हो जाने का कथानक और तर्क इससे बिल्कुल अलग। अगर आप परिवार के बाहर खड़े हैं तो परिवार के मिथक भी अपनी हदों से दूर तेवर चढ़ाए घूरते रहते हैं। परिवार अब भी अन्तर्सम्बन्धों, की नई-पुरानी तारीखों वाला संस्करण मात्र।'

आरण्या और ईशान की समरस जिन्दगी में कभी-कभी आसपास कुछ घटनाएँ घट जाती हैं, जिनमें पुरानी पीढ़ी पर नई पीढ़ी पहरेदारी करती दीखती है, मानों बूढ़े होते ही खुश होने का कोई अधिकार उनके पास नहीं रहना चाहिए - सिर्फ और सिर्फ कान, मुँह, आँख बन्द कर जीवन बिताते जाओ। इच्छाओं और अधिकारों के सिर उठाते ही जीवन समाप्त। इन घटनाओं से ये दोनों पात्र समाज के ही हिस्से लगते है। साल दो साल के लिए छोटे बच्चों के संरक्षक बनकर भी समाज को अपनी सेवायें दी जा सकती हैं।

लेखिका का निष्कर्ष है -

'याद रखो इतना ही कि हर दिन एक आशीर्वाद है।'

11.4 जीवन-दृष्टि

जीवन की सार्थकता सकारात्मकता और कर्मठता में है। जीवन को जीने की पद्धति में है। 'समय-सरगम' उपन्यास से सामरस्य की अन्तर्दृष्टि का विस्तार है। जीवन के अन्तिम प्रहर में जैसे अनन्त का आकर्षण चेतना को बाँध लेता है। कृष्णा सोबती लिखती है - 'सागर और आकाश का जीवट और प्रकाश की तेजस्विता।' यही होना चाहिए जीवन का सत्य। अपने अन्तर्लोक की शून्यता में उल्लास भरने का साहस ही जीवन को भव्य बना देता है। लेखिका ने एक धोबी के मुख से लोकतन्त्र के माध्यम से लोक कल्याण की व्याख्या कर डाली है - 'बहुमत की सहभागिता ही क्या लोकतन्त्र नहीं।' उम्र का एक पड़ाव होता है, जब मानव चेतना का आत्म से संवाद होता है। वह स्वयं को ही बाहर और भीतर दोनों ओर देखता है - 'आत्मा के दो कपाट हैं। एक अन्दर जाने का और एक बाहर जाने का। अगर बाहर की चकाचौंध ही देखते रहोगे तो तुम्हारा अन्दरवाला बिसर जाएगा। अपनी पहचान तक न कर पाओगे और अगर अपने अन्दर ही दुबके रहोगे तो तुम्हारा 'बाहर' दूर चला जाएगा। इतना कि उसे ढूँढना मुश्किल होगा।'

भारतीय दर्शन रहा है कि देह नश्वर है, उसकी चिन्ता क्या। 'हम हैं तो समय है। हमारी ही चेतना में संचित है हमारा काल-आयाम। हम हैं, क्योंकि धरती है, हवा है, धूप है, जल है और यह आकाश।' इसलिए हम जीवित हैं।

भीतर और बाहर- सब कहीं - सब कुछ को अपने में संजोए। विलीन हो जाने को पल-पल अनन्त में।'

आरण्या का आत्म-मन्थन व्यक्ति मन को समाज से जोड़े रखता है। एक-एक दिन बीतता समय के बीतने का अहसास कराता है, मगर रूचियों के बदलने से अथवा परिधानों के रंगों का खान-पान के बदलाव से जीवन का महत्व कम नहीं होता, यहाँ दर्पण डराता नहीं, जीवन का साक्ष्य बन जाता है और कृष्णा जी आए हुए मूल्यवान मौसम का सत्कार करने की बात करती हैं।

जीवन का यथार्थ - सामाजिक सम्बन्धों और मूल्यों से टकराकर आसक्ति और अनासक्ति के बीच प्रतिबिम्बित होता है और अकेलेपन में भी अपने अस्तित्व को बचाये रखने का प्रयास करता है। विशेष रूप से स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के समीकरण वृद्धावस्था में ऐसे उलझनरहित हो सकते हैं, तब मानव मन की चाह स्वप्न या कल्पना केवल कलात्मक या कला क्षेत्रों की रचना बनकर रह जायेगी। गहन संवेदनशीलता को लेखिका ने अन्तर्लोक की वाणी दी है - 'जिन पहाड़ों की हवाओं में सन्नाटे तैरते हैं, वहीं खिलते हैं नरगिस के फूल।'

उम्र के साथ-साथ 'खुद' की तलाश, शान्ति की तलाश में बदल जाती है - जहाँ भीतरी तनाव और अपेक्षाएँ स्थूलता में नहीं तोली जाती। वर्तमान संदर्भों में आर्थिक स्तरों पर जब रिश्तों को आँका जाने लगा है और मूल्यों के स्थान पर आत्मकेन्द्रित सुख तलाशे जाने लगे हैं - तब जैसे समय-सरगम की आरण्या इस सत्य की तलाश कर चुकी है -

"मैं अपनी खुद की निकटता में, सोहबत में कभी उदास नहीं होती।" आरण्या जानती है कि बूढ़े होते लोग अवज्ञा और उपेक्षा के शिकार होकर अपने में ही सिकुड़ जाते हैं किन्तु यहाँ हताशा नहीं है। एक दूसरे की मदद से जीते हुए वरिष्ठ लोग अपने उम्र भर के अनुभवों को बाँट सकते हैं। उनका मानना है - अकेले रहते रहते जान लेंगी कि यह स्थिति भी कम अच्छी नहीं। अकेले होने पर आप अपने से दूर नहीं होते। अपने में उन सम्भावनाओं को खोजते हैं जो मूल्यवान हैं।

कृष्णा सोबती ने 'अकेलेपन' की ऊर्जा का क्षय नहीं, बल्कि उपयोग किया है। अकेलापन व्यक्ति को विवेक दृष्टि तथा तटस्थता देता है। अत: वह प्रत्येक चीज के दोनों पहलुओं को जाँच सकता है। लेखिका गलत परम्पराओं, आडम्बरों और सड़ी-गली रूढ़ियों को तोड़ने के लिए सदा तत्पर है। मैं यह यकीन करना चाहती हूँ कि इन सड़ी परम्पराओं की तह-तले अभी जंग नहीं लगा।

कृष्णा सोबती का अकेलापन स्वत्व और स्वाभिमान का हामी है किन्तु परिवार और समाज के सम्बन्धों की ऊष्मा की पहचान उनमें भरपूर है। वे नन्हें नन्हें मासूम क्षणों को अपनी यादों और कल्पनाओं से भर लेना चाहती हैं। ईशान की दोनों बेटियों के आने की खबर से वे उल्लास से भर जाती हैं और उनके लिए फ्रॉक, जूते, जुराब, रिबन आदि उपहार तैयार करके प्रसन्न हो जाती हैं।

वृद्धावस्था का सूक्ष्म मनोविज्ञान छोटी छोटी बातों में झलक जाता है। यहाँ अकेलापन भी समाज का ही एक हिस्सा है। एक समान आयु के लोगों का एक निर्मित समूह है। सबका परिचित परिवेश और स्वाभाविक परिदृश्य - 'अकेलों के समुदाय की गिनती अब पहले से

कहीं ज्यादा। इनकी अपनी ही कठिनाइयों और अपनी सहूलियतें। परिवार से अलग-अलग अपनी आर्थिक क्षमताओं को संयम से इस्तेमाल करते हुए ये अकेले भी अपने ही ढंग से अपने को संवारते चले जाते हैं।

वृद्धावस्था जीवन के अनुभवों और यादों का खजाना होती है। लम्बे सफर में अनेक सुख-दुख छिपे रहते हैं। व्यक्ति पुराने चित्र, पत्र और पुरानी वस्तुओं को सहेज कर रखे रहता है किन्तु जब पुराने पत्रों, कागजों और डायरियों को फाड़कर फेंक दिया जाता है तब शायद उनके साथ पुरानी स्मृतियों से भी छुटकारा मिल जाता है - यह भी एक प्रकार से 'निर्वाण' की प्रक्रिया है।

अनेक लेखकों ने वृद्धावस्था को हताशा और अवसाद में डूबा बताया है, जब केवल मृत्यु की प्रतीक्षा ही शेष रह जाती है, किन्तु कृष्णा सोबती का स्वर कर्म और राग-विराग का है, जिजीविषा और जीवटता का है क्योंकि मानव जीवन बहुमूल्य है। एक अजन्में बच्चे को, उसके योद्धा पिता द्वारा दिए गए इस आशीर्वाद में ही मानों सारा सच और सत्य छिपा है -

'अनश्वर से सभी नश्वरों को एक मुहलत मिलती है, यहाँ रहने की, रूकने की। ...जहाँ 'स्व' का ही राग-अनुराग नहीं, उन शाश्वत मूल्यों का आग्रह और संघर्ष भी है, जिन्हें मनुष्य बचाना चाहता है।'

इस उपन्यास में वृद्धावस्था में स्त्री-पुरूष मैत्री को नया आयाम दिया गया है। विपरीत ध्रुवों में भी एक लगाव-अलगाव और राग-विराग की स्थिति को बेहद खूबसूरत तरीके से प्रस्तुत किया गया है। मृत्यु को अवश्वम्भावी मानते हुए भी जीवन-रस को सर्वोपरि माना गया है।

11.6 समय-सरगम का शिल्प

आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास काव्यात्मक आख्यान प्रतीत होता है। विरल पात्र, विरल घटनाएँ, चिन्तन-मंथन और एक पूरे जीवन का निचोड़ - सूत्रात्मक रूप में और सूक्तियों में यहाँ प्रस्तुत है। छोटे-छोटे वाक्यों में सक्रियता भी है और तटस्थता भी। पात्र उन्मुक्त भी हैं और अनुशासित भी। नायिका का स्वतन्त्र अस्तित्व है और साफगोई भी। स्वतन्त्र निर्णय की क्षमता, मित्र का सम्मान मगर एक दूसरे के जीवन में कोई हस्तक्षेप नहीं। कृष्णा सोबती की अपनी कथन भंगिमा है - छोटे-छोटे दृश्यात्मक वाक्यों में जीवन-दर्शन, परिवार, समाज, अतीत स्मृतियाँ, भौतिकता, ब्रह्माण्ड-विज्ञान, संगीत-कला इत्यादि को सहज बनाकर वर्तमान की ज्वलन्त समस्या को उदासी के घेरे से बाहर ला खड़ा किया है। एक सहज सक्रियता की अनुभूति निरन्तर है।

कृष्णा सोबती की वाक्य-संरचना और संवाद योजना में एक अभिजात सजगता, सतर्कता और सुरूचि है। आत्म नियन्त्रण और गरिमा की एक बानगी है - "आप दूरी की नजदीकी में विश्वास रखती हैं और घर-परिवार की कुलगाथाएँ मौन रखती हैं। क्या उन्हें हवा लगाना ठीक न होगा।"

"पारिवारिक घनिष्ठता से जी हुई पुरानी भाव-गठरी बेमानी हो चुकी है। शायद इसीलिए अपना पारिवारिक तानपूरा खामोश है।"

उपन्यास की अनेक घटनाएँ कथा सूत्रों के बीच पूरक प्रसंगों की तरह चौंकाती हैं।

11.6 भाषा

दार्शनिकता के आग्रह के कारण समय-सरगम की भाषा काव्यात्मक और संकेतात्मक है। कृष्णा सोबती की प्रत्येक रचना की भाषा परिवेश और पात्रों की प्रकृति के अनुरूप रंग बदल लेती है। उनके लिए लेखन मात्र विद्वता का प्रदर्शन नहीं है - 'एक ही मुखड़े और तेवर वाली भाषा में सोचना और लिखना मुझे उबाऊ लगता है।' समय सरगम की भाषा उनके अनुभवों और जीने की कला से ही निकली है। काव्यात्मक गद्य, विभिन्न बिम्ब, बिना शब्दों के भी अनेक कथन भंगिमाएं, बौद्धिकता का सहज आभास और एक ठसक उनकी भाषा की विशेषताएं हैं। उनकी भाषा के प्रतीक बिम्ब, मुहावरे ताजगी लिए हैं। अनकहे मनोभावों के लिए वे कहती हैं - 'जिन पहाड़ी की हवाओं में सन्नाटे तैरते हैं, वहीं खिलते हैं नरगिस के फूल।'

कृष्णा सोबती की भाषा आधुनिक बोध का मुहावरा रचती है। जीवन सन्दर्भों से उपजी यह भाषा एकाग्रता की मांग करती है।

निष्कर्षत: 'समय-सरगम' - जीवन के परिपक्व समय को जीवन्तता और उल्लास के संगीत से परिपूर्ण कर जीवन के अन्तिम क्षण तक की सार्थकता का संदेश है।

11.7 सारांश

जीवन जीना भी एक कला है। अंतिम समय तक अनुभवों और सम्बन्धों का एक भरपूर खज़ाना साथ होता है। कृष्णा सोबती की दृष्टि में जीने की प्रक्रिया - उल्लास और उमंग से लबालब है, जहाँ बुढ़ापे का डर नहीं, मृत्यु से डर नहीं - हर पल को जी लेने की अकूत अदम्य लालसा। जीवन की सच्चाइयाँ वहाँ बाहर से भीतर तक, चेतना के अन्तरंग तक यात्रा कर आती है।

समय के साथ सारे मूल्य बदले हैं, सोच के तरीके बदले हैं और व्यक्ति के तरीके बदले हैं। व्यक्ति के मन की स्वाधीनता की चाह ने सारी चुनौतियों और अपेक्षाओं से अलग उपेक्षित जीवन को एक नई सार्थकता दी है।

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'समय सरगम' में भी मृत्यु का भय नहीं, उस का सन्नाटा और बेबसी नहीं, बल्कि जीवन के पल-पल को उत्साह और जीवंतता से लबरेज करने वाली जिजीविषा का एक सतत निर्बाध सिलसिला है।

कृष्णा सोबती का उपन्यास 'समय सरगम' जीवन की सार्थकता की तलाश है। वृद्धावस्था के अकेलेपन और उदासी से निकल कर लेखिका ने परिवार, समाज को एक नई दृष्टि दी है। यहाँ स्वयं के बदलने की तथा स्वयं को पूर्ण मानने की उत्कट प्रेरणा है।

एक सहज सक्रियता की अनुभूति इसमें निरन्तर बनी रहती है। रचना का उद्देश्य सत्य, शिव और सुन्दर से जुड़कर भविष्य को अनूठा संदेश देता है।

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'समय-सरगम' उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
2. 'समय-सरगम' की मूल संवेदना की विवेचना कीजिए।

3. 'समय-सरगम' के मुख्य पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।
4. 'समय-सरगम' के माध्यम से कृष्णा सोबती की जीवन-दृष्टि को स्पष्ट कीजिए।
5. 'समय-सरगम' उपन्यास के शिल्प विधान का विवेचन कीजिए।

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नरेन्द्र मोहन; आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ, 1973
2. राजेन्द्र यादव; औरों के बहाने, 1981
3. समकालीन भारतीय साहित्य; अप्रेल-जून, 1992

इकाई-12 कहानी का स्वरूप और वर्गीकरण

इकाई की रूपरेखा -

12.0 इकाई का उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 कहानी का स्वरूप

12.2.1 कहानी की परिभाषा

12.2.2 कहानी का रचनाविधान -कथानक

12.2.3 सामग्री को कहानी के रूप में ढालने के प्रकार और भेद

12.2.4 कथानक में संवेदना का महत्व

12.2.5 वस्तु-विन्यास क्रम

12.3 पात्र या चरित्र चित्रण

12.4 संवाद

12.5 परिस्थिति या वातावरण

12.6 भाषा शैली

12.7 उद्देश्य

12.8 कहानी का वर्गीकरण

12.8.1 विषयवस्तु के आधार पर

12.8.2 शिल्प के आधार पर

12.9 सारांश

12.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.11 संदर्भ ग्रंथ

12.0 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् -

- विद्यार्थी को कहानी विधा की परिभाषा का ज्ञान हो सकेगा।
- विद्यार्थी को कहानी का स्वरूप स्पष्ट हो जाएगा।
- कहानी के रचना विधान के विभिन्न तत्वों से विद्यार्थीगण परिचित हो सकेंगे।
- कहानी के कथावस्तु संगठन की समीक्षा करने की क्षमता विद्यार्थी में विकसित हो सकेगी।
- कहानी में चरित्र या पात्र योजना के विषय में जानकारी हो जाएगी।
- कहानी में संवादों का महत्व उनकी समझ में आ जाएगा।
- कहानी की भाषा की समीक्षा करनी आ जाएगी।
- कहानी के उद्देश्य को समझ सकेंगे।
- कहानी में वर्णित वातावरण की समीक्षा करने की योग्यता उनमें आ जाएगी।
- कहानी के विभिन्न प्रकारों से विद्यार्थी परिचित हो सकेंगे।
- कहानी की तात्विक समीक्षा करने की क्षमता उनमें आ जाएगी।

12.1 प्रस्तावना

कविता यदि मनुष्य का आदिम राग है तो कहानी उसका आदिम पथ-प्रदर्शक है। कहानी एक ओर मनुष्य के हृदय का रंजन कर उसे उदात्त बनाती है तो दूसरी ओर उसे सही मार्ग दिखाती है। पंचतंत्र हितोपदेश तथा पौराणिक कथाओं का यही महत्व रहा है और इन कथाओं ने जहाँ मनुष्य का मनोरंजन किया है वहीं उसे उपदेश भी दिया है। किन्तु आज हम जिसे कहानी विधा के रूप में मान्यता देते है वह सर्वथा एक आधुनिक विधा है तथा उसका स्वरूप इन परम्परागत कथारूपों से भिन्न है। संस्कृत में कथा और आख्यायिका दो शब्दों का प्रयोग मिलता है तथा आचार्यों ने दोनों के स्वरूप और रचनाशिल्प की विवेचना की है किन्तु आधुनिक कहानी इन दोनों ही रूपों से भिन्न है जिसका वर्तमान रूप पश्चिमी साहित्य की देन है।

12.2 कहानी का स्वरूप

12.2.1 कहानी का परिभाषा

आचार्य दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में कथा और आख्यायिका दोनों को परिभाषित्त किया है किन्तु जिसे हम आज कहानी कहते है उसका वर्णन संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता। इसलिए कहानी को परिभाषित करने का प्रयास भी पहले पश्चिम में ही हुआ। पाश्चात्य विद्वानों की कुछ परिभाषाएँ नीचे दी जा रही है:-

समीक्षक हडसन ने अपने 'एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ लिटरेचर' में कहानी के विषय में कहा है कि उसमें एक मूलभाव होता है। उस मूल भाव का विकास तार्किक निष्कर्षो के साथ लक्ष्य की एकनिष्ठता से सरल, स्वाभाविक गति से किया जाना चाहिए। छोटी कहानी आकार में इतनी बड़ी होनी चाहिए कि उसे एक बैठक में पढ़ा जा सके। प्रसिद्ध कहानीकार एलेन पो का कहना है कि कहानी वह गद्य-कथा है जो आधे घंटे से लेकर दो घंटे तक में समाप्त हो जाती है। वे अच्छी कहानी का निकष कहानी के स्थापत्य में खोजते हैं इसलिए घटनाओं के कुशल संयोजन को अच्छी कहानी के लिए जरूरी बताते है। विश्व के सबसे बड़े कथाकारों में एक एंटन चेखव का कथन है कि कहानी में साधारण से साधारण बातों का वर्णन हो सकता है जैसे सैमियोविच ने किस प्रकार मेरिया से विवाह किया-बस इतना ही। जॉन हैडफील्ड ने भी कहानी के छोटे आकार को अधिक महत्वपूर्ण माना है।

हिन्दी के लेखकों में सबसे पहले प्रेमचन्द ने कहानी को परिभाषित करते हुए कहा कि सबसे उत्तम कहानी वह होती है जो किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित हो तथा अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना में अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है। जयशंकर प्रसाद कहानी के सौन्दर्य का मूल उसका रस मानते हैं। इलाचन्द्र जोशी मानते हैं कि जीवन की परिस्थितियों को स्वाभाविक गति प्रदर्शित करने वाली विधा कहानी होती है।

निष्कर्षत: हम यह कह सकते हैं कि कहानी आधुनिक साहित्य की वह विधा है जो गद्य में और छोटे आकार में रची जाए और मानव-जीवन या जगत की किसी एक घटना, वस्तु, व्यक्ति स्थिति, मनोभाव या विचार को लेकर अपना स्थापत्य इस तरह निर्मित

करे कि पाठक उसे पढ़कर अभिभूत और रससिक्त हो जाए। यह अपने-आप में कोई मुकम्मल और अन्तिम परिभाषा नहीं है तथापि सुविधा के लिए हम कह सकते है कि कहानी गद्य और लघु आकार में लिखी ऐसी रचना होती है जिसमें एक मूल संवेदना हो और उस संवेदना की तार्किक प्रभावान्विति हो। उसमें जीवन के किसी एक सत्य खण्ड की प्रतिष्ठा हो और यह प्रतिष्ठा इतने रोचक और आकर्षक ढंग से हो कि पाठक की उसमें रूचि बनी रहे। पाठक कहानी को एक बार पढ़ना आरम्भ करें तो उसे समाप्त करने के बाद ही उसे छोड़े, यह कहानी की मुख्य ताकत होती है। यह तभी हो सकता है जब कहानी मानव-जीवन और उसकी स्थितियों का विश्वसनीय और प्रभावशाली चित्रण करे।

12.2.2 कहानी का रचना-विधान

आज हम जिसे कहानी कहते हैं उसका रचना-विधान यद्यपि पश्चिम से ही आया है तथापि हमने अपने तरीके से नये-नये प्रयोग किये है। परम्परागत रचना-विधान की दृष्टि से कहानी में उसके निम्नलिखित आधार हैं-

कथावस्तु - कहानी का मूल ढांचा जिन घटनाओं, भावों, विचारों, स्थितियों पर खड़ा होता है उन्हें हम कथावस्तु के अन्तर्गत रखते हैं। कथावस्तु के अन्तर्गत अग्रलिखित उपादान आते है-

1. **वस्तु-चयन -** लघु कथा सामान्य चित्रणों से लेकर रिपोर्ट तक (जिनमें शैली तथा रूपरंग सम्बन्धी कोई चमत्कार नहीं होता) से सम्बन्धित रहती है। कहानी के अन्तर्गत वह गद्य खण्ड भी आ जाते हैं, जिनमें उन मनोभावों का चित्रण कर दिया जाता है जिनका चित्रण अन्य साहित्यिक रूपों में कठिन होता है। वैधानिक दृष्टि से सफल कहानी की समस्त विचारधाराएँ और क्रिया-कलाप आदि नियन्त्रित रहते हैं।

   उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि कहानी की परिधि पर्याप्त विस्तृत होती है। इस विस्तार का कारण है उसका मानव-जीवन से सम्बन्धित होना। कहानी का लक्ष्य जीवन के किसी मार्मिक पक्ष या मानव-स्वभाव के किसी विलक्षण चरित्र पर प्रकाश डालना होता है। अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उसे जीवन से अधिक-से-अधिक सम्बन्धित रहना पड़ता है। अधिक सही अर्थों में हम कह सकते है कि वह जीवन का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है।

2. **वस्तु प्राप्ति के स्रोत -** कहानी के लिए हमें कथावस्तु बहुत से स्रोतों से प्राप्त हो सकती है। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

   (क) इतिहास, पुराण आदि

   (ख) पत्र-पत्रिकाएँ

   (ग) दैनिक जीवन की घटनाएँ

   (घ) साहित्य

3. **मूल स्रोतों के उपयोग विधियाँ -** कहानी-कला के कुछ आचार्यों ने मूल स्रोतों से प्राप्त होने वाली सामग्री के संचय और सुरक्षा एवं स्मरण के लिए नोटबुक रखने का उपदेश दिया है। किन्तु मैं इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझता। कहानी जीवन और जगत् के किसी मार्मिक पक्ष के प्रति कौतुहलात्मक प्रतिक्रिया का परिणाम है। कहानी को किसी एक घटना, वस्तु, विषय या धारणा की रोचक झलक मात्र मानता हूँ। झलक के लिए संश्लिष्ट

सजावट की आवश्यकता नहीं होती। अत: नोटबुक में किए हुए सूक्ष्म विवरण कहानी की रचना में बाधा रूप हो सकते हैं। हाँ, उपन्यास-रचना में इस प्रकार के विवरण महत्व रख सकते हैं।

12.2.3 सामग्री को कहानी के रूप में ढालने के प्रकार और भेद

डॉ. जगन्नाथ शर्मा ने उपादान संग्रह के प्रकारों का वर्णन करते हुए स्टीवेन्सन के दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण किया है। मैं भी यहाँ पर उसका उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ - "जहाँ तक मुझे ज्ञात है कहानी लिखने के तीन प्रकार हैं। आप एक प्लाट लेकर उनमें पात्रों को फिट कर लें, अथवा आप पात्र पहले ले लें फिर उनके चरित्र के अनुरूप घटनाओं और परिस्थितियों का विकास करें, अथवा यह भी हो सकता है कि आप मेरे साथ जो मैं कह रहा हूँ सहमत होकर अनुभव करें आप किसी वातावरण को लेकर उसके अनुरूप घटनाओं और पात्रों की योजना करें।"

उपर्युक्त तीन प्रकारों के अतिरिक्त मैं कहानी की रूपरेखा-निर्माण का एक ढंग और अनुभव करता हूँ। मेरी समझ में प्रत्येक कहानी का निर्माण करने से पहले हमें उस संवेदना, धारणा या विचार को पकड़ना पड़ेगा, जिससे सम्बन्धित प्रभावान्विति पाठकों को प्रभावित करना कहानी-लेखक का लक्ष्य हो। जब संवेदना या धारणा तथा प्रभावान्विति का रूप कहानीकार के मन में स्पष्ट हो जाय, तो फिर उसके अनुरूप वातावरण, पात्रों, घटनाओं आदि की कल्पना करें। इस प्रकार जो कहानी लिखी जायेगी, वह निश्चय ही बहुत सफल और प्रभावपूर्ण कहानी होगी। इन विधियों के उपयोग के मूल में कलाकार को अपनी प्रतिभा रहती है।

प्रेरणा- जीवन में पग-पग पुर अनुभूत होने वाली सैकड़ों संवेदनाएँ ही कहानी-लेखन की प्रेरणा प्रदान करती हैं। इनमें प्रत्येक संवेदना एक कहानी की रचना के लिए पर्याप्त होती है। हडसन ने कहानी लेखन की प्रेरणाओं का अच्छा वर्णन किया है। वह लिखता है-

कोई नाटकीय घटनाएँ या परिस्थितियाँ, कोई प्रभावात्मक दृश्य, कोई चरित्र, कोई मार्मिक पक्ष, कोई महत्वपूर्ण अनुभव, खण्ड अथवा जीवन का कोई मार्मिक पक्ष, या कोई नैतिक तथ्य, इनमें से कोई एक अथवा सहस्रों अन्य प्रेरणाओं में से जिनकी परिगणना की जा सकती है, किसी सफल कहानी का मूलभाव बन सकते हैं। कहना न होगा कि मूल भाव या प्रेरणा ही आधुनिक कहानी का प्राण है। प्रेमचन्द ने भी लिखा है - "आज लेखक केवल कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैठ जाता। उसका उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं है। वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है जिसमें सौन्दर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पर्श कर सके।"

कल्पना - कहानी साहित्य का एक उदात्त स्वरूप है। कल्पना कहानी की सर्जना में बहुत बड़ा योग देती है। कहानी लेखक जीवन और जगत् से सामग्री एकत्रित करता है। उसे कहानी के रूप में परिणत करने का श्रेय कल्पना को ही है। यदि कहानी में कल्पना का योग न रहे तो वह कलात्मक कहानी न रहकर कोरा इतिहास या कथा-मात्र रह जायेगी। सच तो यह है कि कहानी को कलात्मक रूप प्रदान करने का श्रेय कहानीकार की कल्पना को है। निबन्ध और कहानी के अन्तर को स्पष्ट करते हुए डॉ. श्री कृष्णलाल ने भी

कल्पना को कहानियों का प्राण कहा है। वे लिखते हैं- "यों तो साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र और विभाग में कल्पना का उपयोग आवश्यक और अनिवार्य हुआ करता है, परन्तु कहानी में ही शायद इसका सबसे अधिक उपयोग होता है। कल्पना कहानी का प्राण है।"

12.2.4 कथानक में संवेदना का महत्व

यहाँ पर एक बार फिर इस बात पर बल देना उचित समझता हूँ कि प्रत्येक कहानी के कथानक में संवेदना का होना नितान्त आवश्यक होता है। संवेदना उस मर्मस्पर्शी अनुभूति को कहते हैं, जो मानव मात्र के हृदय को इस प्रकार प्रभावित कर दे कि वह तिलमिला उठे। कहानी का कथानक किसी-न-किसी संवेदना पर ही केन्द्रित रहना चाहिए। संवेदना के बिना कहानी का कथानक सफल कहानी का निर्माण नहीं कर सकता। यह संवेदना भी एक ही होनी चाहिए। कहानी में अनेक संवेदनाओं के लिए कोई स्थान नहीं होता है।

कथानक में संघर्ष का होना - कहानी के कथानक में संघर्ष की प्रतिष्ठा भी की जा सकती है। घटना-प्रधान कहानियों का तो यह सर्वथा प्राण ही होता है। किन्तु बहुत सी ऐसी कहानियाँ भी हो सकती हैं, जिनमें कोई संघर्ष न भी हो। फिर भी संघर्षप्रधान कहानी सघर्षविहीन कहानी से कहीं अधिक प्रभावपूर्ण होती है।

कथानक में कौतुहल, औत्सुक्य और करूणा आदि की प्रतिष्ठा - विल्की कालिन्स नामक पाश्चात्य आलोचक ने लिखा है कि, "कहानीकार वही श्रेष्ठ होता है जो अपनी कला से पाठकों में कौतूहल और औत्युक्य को जाग्रत कर सके और उन्हें पल में हँसा और रूला सके।" कहानी के कथानक में कौतूहल, औत्सुक्य, करूणा और हास्य आदि तत्वों की पूर्ण प्रतिष्ठा होनी चाहिए। यह सब कहानी में रोचकता उत्पन्न करते हैं।

कथानक का किसी सत्य के उद्घाटन में समर्थ होना - डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के शब्दों में - "कहानी रचना की प्रेरणा यदि ऐसे अनुभव, विश्वास अथवा चिन्तन पर आश्रित है जिसका मूलाधार जीवन का कोई तथ्य अथवा सत्य है, अथवा तद्विषयक कोई कल्पना है तो फिर कथानक की गति स्पष्ट एक-रस, एक-गति, सरल और सीधी होगी। कारण-कार्य और परिणाम की योजना उतनी आवश्यक न होगी जितनी कि उस सत्य अथवा तथ्य को किसी सुनिश्चित आसन अथवा पीठिका पर बैठाना। लेखक का सारा ध्यान केवल इसी बात में लगेगा कि जो तथ्य अथवा सत्य प्रभावोत्पादकता का मुख्य कारण बनाया जा रहा है, उसे ऐसी परिस्थिति के बीच में खड़ा किया जाय जो उसकी प्रकृति के सर्वथा अनुकूल हो। इसलिए ऐसी कहानियों में वह परिस्थिति होंगी और प्रभावान्विति का कारण रूप वह जीवन का सत्य होगा।"

कथानक का खण्डों में विभाजन - कहानियाँ प्राय: दो प्रकार की हुआ करती हैं-एक तो वह जिनका कथानक छोटा होता है, दूसरी वे होती हैं जिनका कथानक बड़ा होता है। उनमें कई चित्र सन्निहित रहते हैं। ऐसी कहानियों को कई खण्डों में विभाजित करना ही उपयुक्त होता है। डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने कथानक को खण्डों में विभाजित करने का चार आधारभूत सिद्धान्त बताए हैं-

1 कथा के प्रवाह में काल के व्यवधान को सूचित करने के लिए।

2 दृश्य और स्थान के परिवर्तन का चित्र उपस्थित करने के लिए।

3 चरित्र की मानसिक वृत्तियों के उत्कर्षापकर्ष को व्यंजित करने के लिए।
4 प्रभावान्विति को उत्तरोत्तर चुटीली बनाने के लिए।

12.2.5 वस्तु-विन्यास क्रम

सामान्यत: कथावस्तु का विन्यास आदि, मध्य और अन्त में रहता है। वास्तव में कहानी रचना-विधान में यह तीन अंग ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। सफल कहानी में इन तीनों का समुचित सामंजस्य रहता है।

आरम्म - कहानी के आरम्भ करने के सैकड़ों प्रकार हो सकते हैं। कुछ प्रसिद्ध प्रकार निम्नलिखित हो सकते हैं:-

1 कुछ कहानियों का प्रारम्भ एक प्रकार की परिचयात्मक भूमिका से किया जाता है। इस परिचयात्मक भूमिका में पात्रों या परिस्थितियों का परिचय कराया जाता है। प्रेमचन्द की 'आत्माराम' कहानी इसका एक उदाहरण है।
2 कुछ कहानियों में लम्बी-चौड़ी भूमिका तो नहीं होती, किन्तु प्रारम्भ प्राय: पात्रों और परिस्थितियों के संक्षिप्त परिचय से किया जाता है। 'शतरंज के खिलाड़ी' नामक कहानी में इसी प्रकार का आरम्भ देखने को मिलता है।
3 **आकस्मिक प्रारम्भ -** इसमें किसी प्रकार का परिचय या भूमिका आदि नहीं होते। कहानी सहसा किसी समस्या को सामने रखकर प्रारम्भ कर दी जाती है। प्रेमचन्द की 'वैर का अन्त' शीर्षक कहानी ऐसी ही है।
4 कुछ कहानियाँ प्रकृति चित्रण आदि से भी प्रारम्भ की जाती हैं। प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियाँ प्राय: इसी प्रकार की हैं। 'चन्दा', 'ग्राम', 'रसिया' नामक कहानियाँ इसी कोटि के प्रारम्भ से युक्त है।
5 **दो पात्रों के नाटकीय कथोपकथन के सहारे -** इस ढंग की कहानियों के उदाहरण के रूप में जैनेन्द्र की 'खेल' विशेष उल्लेखनीय है।
6 कुछ कहानियों का प्रारम्भ इतिवृत्तात्मक होता है। प्रेमचन्दजी की 'ईदगाह' ऐसी ही कहानी है।
7 **कौतुहलोत्पादक प्रारम्भ -** कभी-कभी कहानी कोतूहलोत्पादक विवरणों के सहारे प्रारम्भ होती है। रायकृष्णदास की 'रमणी' तथा आचार्य चतुरसेन की 'सूनी' नामक कहानियाँ ऐसी ही हैं।

इसी प्रकार कहानी को प्रारम्भ करने के और भी सैकड़ों प्रकार हो सकते हैं। कहानी चाहे किसी ढ़ंग से प्रारम्भ की जाय, किन्तु उसके प्रारम्भ में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए-

1 वह कलात्मक होना चाहिए।
2 वह नाटकीय होना चाहिए।
3 उसे पूर्ण कहानी पढ़ने की कौतुहलता और उत्सुकता जाग्रत करने की क्षमता रखने वाला होना चाहिए।
4 उसमें अनिर्वचनीय सौन्दर्य और रसात्मकता होनी चाहिए।

मध्य या विकास- कहानियों में प्रारम्भ का जितना महत्व होता है, उतना ही महत्व तथ्य का भी होता है। मैं तो मध्य का महत्व प्रारम्भ से भी अधिक मानता हूँ। कुछ कहानियों में मध्य से सम्बन्धित दो बातें होती हैं-

1 मुख्य घटना या समस्या की उन्मुखता और परिवर्तन बिन्दु, तथा

2 संघर्ष का स्पष्ट स्वरूप।

कुछ कहानियों में मध्य से सम्बन्धित तीन बातें होती हैं-

1 समस्या प्रवेश की भूमिका।

2 समस्या का समावेश।

3 संघर्ष का स्पष्ट स्वरूप।

कुछ कहानियों में विकास या मध्य के चार भाग होते हैं-

1 समस्या का समावेश।

2 परिचय।

3 संघर्ष का जन्म।

4 संघर्ष का स्वरूप या घात-प्रतिघात।

कहानी के विकास में कहानीकार चाहे कितने भाग स्पष्ट करें किन्तु उसमें निम्नलिखित बातें अवश्य होनी चाहिए-

1 कहानी के मध्य भाग का सम्बन्ध किसी समस्या या संघर्ष से अवश्य होना चाहिए।

2 उस संघर्ष या समस्या का प्रस्तुतीकरण बड़े कलात्मक ढ़ंग से होना चाहिए।

3 यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि कहानी में संवेदना धीरे-धीरे स्पष्ट होती चले। कहानी के प्रति पाठक का औत्सुक्य प्रतिपल बढ़ता रहे।

4 कहानी की वस्तु का विकास प्रवाहपूर्ण ढ़ंग से हो और उसकी रोचकता कहीं भी जरा सी क्षीण न होने पावे।

अन्त - कहानी के विकास की यह अन्तिम अवस्था है। डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा के शब्दों में, "जितना भी विवरण कहानी में प्रसारित रहता है, उसका सारा सौन्दर्य पुंजीभूत होकर अन्त में आकर एक विशेष प्रकार की संवेदनशीलता को स्फुरित करता है। सिद्धान्त की दृष्टि से इसी को प्रभावान्विति और समष्टि प्रभाव माना जाता है।"

अन्त के भी दो पक्ष होते हैं - (क) चरम सीमा, और (ख) अन्त। कुछ कहानियों में केवल चरम सीमा भर होती है, अन्त अलग से नहीं होता। कुछ कहानियों में चरम सीमा और अन्त दोनों ही होते हैं।

चरम सीमा - चरम सीमा कहानी का प्राण है। यह वह स्थल है जहाँ आकर प्रतिपाद्य संवेदना पूर्ण सम्वेद्य बन जाती है और पाठक मंत्रमुग्ध होकर रह जाता है। इसी स्थल पर पाठक का मन प्रभावान्विति से आप्लावित हो जाता है। कहानी-लेखक की बहुत बड़ी कला चरम सीमा की योजना में रहती है। कहानी का यही वह स्थल होता है जहाँ जाकर पाठक की समस्त जिज्ञासाएँ शान्त हो जाती हैं, कहानी की चरम सीमा नाटकीय और संक्षिप्त हो तो और भी अच्छा है।

जिन कहानियों में चरम सीमा के साथ अन्त अलग से जुड़ा रहता है उसमें लेखक को अधिक सजग रहना पड़ता है। चरम सीमा और अन्त दोनों का निर्वाह सफल कथाकार ही कर पाते हैं।

कहानी और मनोविज्ञान - कहानी-साहित्य के विकास के आरम्भ काल में क्हानी का मनोविज्ञान से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं समझा जाता था, किन्तु अब यह बात नहीं रही है। प्रेमचन्द के शब्दो में 'गल्प' का आधार अब घटना नहीं, मनोवैज्ञानिक सत्य होता है। "आज लेखक कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने जिसमें सौन्दर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की भावनाओं को सार्थक कर सके।"

कहानी का शीर्षक - कहानी में शीर्षक का बहुत बड़ा महत्व होता है। यह महत्व कई दृष्टियों से है। शीर्षक कहानी का दर्पण है। कहानी अच्छी है या बुरी या बहुत कुछ शीर्षक से पता चल जाता है। शीर्षक कहानी का ही दर्पण नहीं है, वरन् कहानीकार की व्यक्तिगत विशेषताओं की भी व्यंजना करने में समर्थ होता है। कहानी जीवन के किसी मार्मिक पक्ष का रहस्योद्घाटन करती है। उसके शीर्षक में उसकी प्रतिच्छाया अवश्य रहनी चाहिए। शीर्षक ही प्राय: कहानी की संवेदना को वहन किए रहता है।

अच्छे शीर्षकों की कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं। कहानी लेखकों को उन पर ध्यान रखना चाहिए। वे इस प्रकार हैं-

1 शीर्षक पाठक में पढ़ने का औत्सुक्य जाग्रत करने की क्षमता रखता हो। उसे कौतूहल और प्रमुख आकर्षण के लिए भी पाठक को तैयार करना चाहिए।
2 शीर्षक लघु होना चाहिए।
3 वह नवीनता और मौलिकता को लिये हुए हो।

शीर्षक का कहानी और उसकी मुख्य संवेदना से सम्बन्धित होना आवश्यक है। शीर्षक कहानी की भावना, वर्ण्य आदि के अनुरूप होना चाहिए।

कहानीकार को कहानी का शीर्षक बहुत सोच-समझकर चुनना चाहिए। कहानी का शीर्षक निश्चित रूप से ही अच्छा होना चाहिए। अच्छा शीर्षक वही होता है जो कहानी की प्रकृति के अनुरूप हो।

12.3 पात्र और चरित्र-चित्रण

नाटक के प्रसंग में वर्णित आर्थर जोन्स का यह कथन कि, "किसी अभिनेय कृति में कथानक, घटनाएँ, वातावरण जब तक कि वे चरित्र-चित्रण से सम्बन्धित न हों, अपेक्षाकृत अबौद्धिक और लड़कपन लिये रहते हैं।" कहानी के सम्बन्ध में भी यह पूरी तरह सत्य है। प्रत्येक कहानी में, चाहे वह किसी कोटि की क्यों न हो, चरित्र-चित्रण का बड़ा भारी महत्व है।

जीवन में हमें दो प्रकार के चरित्र दिखाई देते हैं- (1) वे जिनका चरित्र निर्विवाद रूप से किसी एक दिशा मे झुका रहता है। (2) वे जिनके चरित्र के अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता रहती है। साहित्य क्षेत्र में स्थिर चरित्र को विशेष महत्व नहीं दिया जाता है। उसमें तो अन्तर्द्वन्द्व प्रधान चरित्रों का महत्व रहता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि अन्तर्द्वन्द्व प्रधान चरित्रों में सभी प्रकार के पाठकों के मनोरंजन की सामग्री रहती है।

अन्तर्द्वन्द्व प्रधान पात्रों के चरित्र में एक गत्यात्मकता भी होती है। यह गत्यात्मकता ही उसे सौन्दर्य प्रदान करती है और पाठक के मन को आकृष्ट करती हैं किन्तु कहानी के प्रसंग में यह नहीं भूलना चाहिए कि वह एक छोटी सी रचना है। उसमें किसी भी पात्र के चरित्र की एक चलती हुई झलक होती है। पाश्चात्य आचार्य हडसन ने इस तथ्य को समर्थित करते हुए लिखा है- "कहानी में चरित्र का उद्घाटन मात्र किया जाता है। जबकि उपन्यासों में चरित्र का विकास दिखाया जाता हैं" इसी प्रकार प्रेमचन्द ने भी कहा है कि, "वह अपने चरित्रों के मनोभावों की व्याख्या करने नहीं बैठता, केवल उसकी तरफ इशारा भर कर देता है।"

कहानीकार को चरित्र-चित्रण में सदैव चरित्र के मूलभाव को पकड़कर विवृत करने का प्रयास करना चाहिए। चरित्र के मूलभाव के विवृत हो जाने पर चरित्र सम्बन्धी सूक्ष्मताओं का संश्लिष्ट चित्रण नहीं करना पड़ता। चरित्र के इस मूलभाव को अभिव्यक्ति भी अधिकतर कलापूर्ण नाटकीय शैली में हो तो और भी अच्छा है। चरित्रांकन की इस नाटकीय शैली का स्वरूप क्या है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने लिखा है - "कहानी की सर्वाधिक प्रभावशाली और व्यवहारोपयोगी चरित्रांकन पद्धति वह होती है जिसमें नाटकीय विधि का उपयोग होता है। इस विधि के अनुसार संवादों के अन्तराल में पात्र स्वयं अपने मुख से अपने चरित्र के प्रकाशक वविध गुण धर्मों, विचारों, अनुभूतियों, आशाओं, निराशाओं, आकांक्षाओं, आदर्शों अथवा अपनी रूचि, अरूचि, मंतव्यों और भावनओं का विवरण उपस्थित करता है अथवा परिचय देता है। यहाँ वह अपने विषय में स्वयं बोलता है और अपने मंतव्यों का इस प्रकार कथन करता है कि उसके अन्तःकरण का स्वयमेव और भली-भाँति उद्घाटन हो जाता है।"

चरित्र-चित्रण का जो स्वरूप हमें साहित्य में मिलता है, वह यथार्थ होते हुए भी यथार्थ जगत् से भिन्न होता है। साहित्य में यथार्थ जगत् की प्रत्येक बात कल्पना या भावना के माध्यम से आती है। कल्पना या भावना के माध्यम से चित्रित होने के कारण वह यथार्थ जगत् की होते हुए भी यथार्थ जगत् से सर्वथा भिन्न हो जाती है। अत: हमें यथार्थ जगत् के साथ पात्रों के चरित्र-निर्माण में मनोविज्ञान शास्त्र को भी दृष्टि में रखना चाहिए।

कहानी में पात्रों की संख्या अधिक न हो, क्योंकि अधिक पात्रों को निभाना कठिन हो जाता है। कहानी अधिक विवरणात्मक हो जाती है। वास्तव में कहानी में केवल प्रमुख पात्र के चरित्र पर ही दृष्टि रखनी चाहिए। उसके चरित्र का चित्रण करते समय यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि उसके चरित्र के सहारे ही अन्य सहायक पात्रों के चरित्र के प्रमुख तत्वों की भी निवृत्ति होती जाय। अत: कहानी में प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण विशेष महत्व रखता है। चरित्र को अधिक-सें-अधिक यथार्थ रूप देने का प्रयास करना चाहिए।

12.4 संवाद

संवाद कहानी का प्राणदायक तत्व है। डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा के शब्दों में, "यों तो जहाँ कहीं भी कहानी में इसका उपयोग किया जायेगा वहाँ अपने-अपने ढ़ंग के परिणाम खिल उठेंगे। पर जहाँ इस तत्व का क्षिप्र और द्रूत प्रयोग कथा-भाग को उत्कर्षोन्मुख करेगा वहाँ एक प्रकार का विशेष चमत्कार दिखाई देगा। कहानी के जिस अंश में संवाद-सौन्दर्य

निखरा मिलेगा वह अंश अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ उमड़ पड़ेगा। यदि कहानी का आरम्भ लय और गतिशील, पर स्वाभाविक और औचित्यपूर्ण संवादों में किया गया है तो पाठकों का ध्यान उसी प्रकार केन्द्रित हो उठता है जैसे रंगमंच पर होने वाले किसी अभिनय की ओर।"

कुछ आलोचक तो संवादों को कहानी का प्राण तक कह डालते हैं। ऐसे ही आलोचकों ने कहानी की परिभाषा देते हुए उसे 'संवादात्मक-चित्र-विधा' तक कहा है।

संवाद कहानी में कई कार्य करते हैं-

1 पात्रों के चरित्र को उभारते हैं।
2 वर्णन में रोचकता और प्रवाह डालते हैं।
3 वे कथावस्तु को विकास की ओर ले जाते रहै।
4 कहानी को अधिक-सें-अधिक संवेद्य बनाते हैं।
5 वे एक विशेष प्रकार का वातावरण निर्माण करने में समर्थ होते हैं।
6 कहानी में स्वाभाविकता लाते हैं।

इस सब कार्यों का सम्पादन सफल संवादों से होता है। सफल संवादों में निम्नलिखित गुण होते हैं-

1 संवाद-देश, काल, पात्र, परिस्थिति, घटना, भाव आदि के अनुकूल होने चाहिए।
2 संक्षिप्त, ध्वन्यात्मक और अभिनयात्मक होने चाहिए।
3 तर्कयुक्त, कौतूहलोद्दीपक वक्रोक्ति-प्रधान, चुटीले और प्रवेगपूर्ण होने चाहिए।
4 संवाद पात्रों के चरित्रों को उभारने वाले और कथावस्तु के विकास में योग देने वाले होने चाहिए।
5 संवाद के मध्य में आवश्यक विराम, गति, यति आदि का उचित ध्यान रखना चाहिए।
6 संवादों की प्रकृति ऐसी होनी चाहिए कि वे सक्रियता और सजीवता के साथ-साथ कहानी मे एक अनिर्वचनीय सौन्दर्य-विधान करने की क्षमता रखने वाले हों।
7 कहानी में स्वगतोक्ति भाषणों और सिद्धांत विवेचनों के लिए अधिक स्थान नहीं होता।

12.5 परिस्थिति या वातावरण

कहानी में दृश्य जगत् की या जीवन की किसी एक घटना, परिस्थिति आदि का संवेदनात्मक और सजीव वर्णन होता है। कहानी में सजीवता और स्वाभाविकता लाने वाले तत्वों में वातावरण का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। वातावरण से विरहित कहानी ठीक उसी तरह प्रभावहीन लगेगी जिस प्रकार दुष्यन्त और शकुन्तला का अभिनय करने वाले पात्रों का रंगमंच पर आकर अपने दिन-प्रतिदिन के कपड़ों में ही अभिनय करना। अब प्रश्न यह है कि वातावरण से क्या तात्पर्य है? वातावरण वास्तव में दर्शक मस्तिष्क पर पड़ने वाला वह प्रभाव है जो देश, काल और व्यक्ति की पारस्परिक अनुरूपता से उत्पन्न होता है।

वातावरण के सामान्यतया तीन पक्ष हो सकते हैं- एक वह जो हमारी इन्द्रिय विशेष को प्रभावित कर उद्दीप्त करता है, दूसरा वह जो हमारी कृत्रिम सौन्दर्यानुभूति की वृत्ति की

परितृप्ति करता है और तीसरा वह जो हमारी सच्ची सहानुभूति की वृत्ति को जाग्रत करता है।

प्रत्येक कहानी में उपर्युक्त तीन प्रकार में से किसी-न-किसी प्रकार के वातावरण का निर्माण अवश्य रहना चाहिए।

12.6 भाषा और शैली

छोटी कहानियों की भाषा और शैली पर भी कथाकार को ध्यान रखना चाहिए। उसकी बहुत बड़ी सफलता इन दोनों पर अवलम्बित रहती हैं शैली में सजीवता, रोचकता, संकेतात्मकता और प्रभावात्मकता का होना नितांत आवश्यक होता हे। इन विशेषताओं के लाने के लिए कुछ लेखक तो आलंकारिकता लाने का प्रयत्न करते हैं और कुछ मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग। प्रसाद की शैली अपनी आलंकारिकता के कारण सरस और प्रभावपूर्ण मालूम होती है। उनकी 'भिखारिन' कहानी से यह उदाहरण देखा जा सकता है।

"जाह्नवी अपने बालू के कम्बल में ठिठुरकर सो रही थी। शीत कुहासा बनकर प्रत्यक्ष हो रहा था। दो-चार साल धाराएँ प्राची के क्षितिज में बहना चाहती थीं।"

प्रेमचन्द की 'नशा' नामक कहानी में मुहावरों और लोकोक्तियों की छटा देखी जा सकती है। शैली की दृष्टि से कहानियाँ पाँच प्रकार की होती हैं-

(क) ऐतिहासिक - इस शैली में कहानी लिखने वाले अधिकतर अन्य पुरूष के रूप में कहानी लिखते हैं। उसमें इत्तिवृत्तात्मक घटनाओं को विशेष प्रश्रय दिया जाता है। प्रसाद की 'पुरस्कार' नामक कहानी इस शैली में लिखी गई है। उसके इस वाक्य से यह बात प्रकट होती है- 'मगध का एक राजकुमार अरूण अपने रथ पर बैठा हुआ बड़े कौतूहल से यह दृश्य देख रहा था।'

(ख) आत्मकथन प्रधान शैली या प्रथम पुरूष प्रधान शैली - बहुत सी कहानियाँ स्वयं कहानी-नायक के मुख से प्रथम पुरूष में कहलाई जाती हैं। उनको पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई परिचित पुरूष अपनी सच्ची गाथा कह रहा हो। प्रेमचन्द की 'शान्ति' नामक कहानी इसी शैली में लिखी गई है। उसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है- "जब मैं सुसराल आई तो बड़ी फूहड़ थी।"

(ग) संवादात्मक या कथोपकथन-प्रधान शैली - इस शैली में लिखी गई कहानियों में कथोपकथनों की ही प्रधानता होती है। हिन्दी में ऐसी कहानियाँ कम हैं।

(घ) पत्रात्मक शैली - बहुत सी कहानियाँ पत्रों के उत्तर और प्रत्युत्तर के रूप में लिखी जाती हैं। बेचन शर्मा 'उग्र' ने इस शैली में 'चन्द हसीनों के खतूत' नामक प्रसिद्ध उपन्यास लिखा हैं। प्रेमचन्द की 'दो सखियाँ नामक कहानी इसी शैली मे लिखी गई है।

(ङ) डायरी शैली - कुछ कहानी लेखक डायरी के पृष्ठों का ही वर्णन करके कहानी कह डालते हैं। प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'मोटेराम शास्त्री' की डायरी के नाम से दो-तीन कहानियाँ लिखी गई हैं। किन्तु हिन्दी में इस ढ़ंग की कहानियाँ कम हैं।

12.7 उद्देश्य

कहानी का एक उद्देश्य भी होता है। वह मनोरंजन का एक प्रमुख साधन है सही, किन्तु मनोरंजन को हम उसका प्राण नहीं मान सकते। आजकल की छोटी कहानियों में

अधिकतर किसी सत्य की-चाहे वह मनोवैज्ञानिक हो, धार्मिक हो, या और किसी अन्य प्रकार का हो-प्रतिष्ठा की जाती है। छोटी कहानी में सम्पूर्ण जीवन की व्याख्या तो नहीं की जा सकती, किन्तु जीवन के किसी पक्ष के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण अवश्य प्रस्तुत किया जा सकता है। आजकल कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी जाने लगी हैं, जिनका उद्देश्य किसी सत्य की प्रतिष्ठा न होकर पाठकों को केवल चरित्र-वैचित्र्य में रमाना होता है। ऐसी कहानियाँ अधिकतर कलावादियों की होती हैं। जो लोग कला को जीवन के लिए मानते हैं, वे छोटी कहानियों में किसी सत्य खण्ड की प्रतिष्ठा अवश्य करते हैं। गुलेरीजी की 'उसने कहा था' कहानी का बहुत बड़ा महत्व इस बात पर भी निर्भर है कि उसमें प्रेम के आदर्श की प्रतिष्ठा की गई है। उसका मुख्य प्रतिपाद्य हमारी समझ में प्रेम में त्याग के महत्व और स्थान का संकेतित करना है। हमारी समझ में वह अपनी इसी विशेषता के कारण इतनी अधिक लोकप्रिय हो सकी है।

12.8 कहानी का वर्गीकरण

कहानी बहुत लोकप्रिय और लचीली विधा है। इसका वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है

1. **कहानी की रचना के आधार पर -** कहानी की रचना में केन्द्रीय तत्व क्या है - इस आधार पर कहानी का वर्गीकरण किया जा सकता है। जो इस प्रकार होगा -

   घटना प्रधान कहानी - इसे कथानक प्रधान कहानी भी कह सकते हैं। इनमें लेखक का पूरा ध्यान घटनाओं को बुनने और कथानक के विकास पर होता है। विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'आर्त' कहानी घटना प्रधान कहानी का श्रेष्ठ उदाहरण है। जासूसी, रहस्यपूर्ण तथा अद्भुत कहानियाँ इस कोटि में आती है।

   चरित्र प्रधान कहानी - जिस कहानी में कहानी लक्ष्य चरित्र - चित्रण और चरित्र-विश्लेषण होता है वह चरित्र प्रधान कहानी होती है। लेखक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पात्रों का विकास करता है। प्रेमचन्द की 'बूढी काकी' प्रसाद की 'मधुआ' अमरकान्त की 'जिन्दगी और जोंक' श्रेष्ठ चरित्र प्रधान कहानियाँ है।

   वातावरण प्रधान कहानी - कहानी में वर्णित जीवन परिवेश या वातावरण सापेक्ष होता है। कहानीकार पात्र के परिवेश के वर्णन को घटनाओं तथा चरित्रों का आधार बनाता है। अज्ञेय की 'रोज' निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' वातावरण प्रधान कहानियाँ है।

   भाव प्रधान कहानी - जिस कहानी में लेखक घटना, चरित्र या कार्य व्यवहार के चित्रण से अधिक किसी भाव की और व्यक्ति को प्रभाव मानता है, उन्हें भाव प्रधान कहानी कहते है। जैनेन्द्र की 'तत्सत' राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह को 'कानो में कंगना' अच्छी प्रधान कहानी के उदाहरण है।

2. **कहानी के विषय के आधार पर -** कहानीकार जीवन के अनेक क्षेत्रों से कहानियाँ उठाता है। मूल विषय तो मनुष्य और समाज ही हैं किन्तु इसके बहुत से आयाम हो सकते है -

   ऐतिहासिक कहानी - किसी ऐतिहासिक अध्ययन या घटना या पात्र को केन्द्र में रखकर लिखी कहानी ऐतिहासिक कहानी कहलाती है जिसके लेखक इतिहास तथा साहित्यिक कला दोनों को कुशलता से साधता है। प्रेमचन्द, प्रसाद, वृंदावन लाल वर्मा, चतुर सेन

शास्त्री आदि ने श्रेष्ठ ऐतिहासिक कहानियों लिखी है। प्रसाद की 'देवस्थ' प्रेमचन्द की 'शतरंज के खिलाडी' वृंदावन लाल वर्मा की 'खजुराहों की मूर्त्तियाँ, चुतरसेन शास्त्री की 'बसंत' आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक कहानियाँ है।

सामाजिक कहानी - सामाजिक जीवन के विविध पक्षों, संघर्षों और अन्तर्द्वन्द्वों को केन्द्र में रखकर सामाजिक होती है तथा प्रेमचन्द की 'बडे घर की बेटी' (पारिवारिक) दर्शन की 'हाकीजोत' (सामाजिक मूल्यों की रक्षा) मोहन राकेश की 'एक और जिन्दगीं (व्यक्ति प्रधान) उषा प्रियंवदा की 'वापसी' (पीढियों के बीच अन्तर) आदि सामाजिक कहानी की कोटि में आती है।

मनोवैज्ञानिक कहानी - जब कहानीकार किसी पात्र के आन्तरिक जगत या मानसिक संसार में चलने वाले घात-प्रतिघातों का चित्रण करता है तो वह मनोवैज्ञानिक कहानी कहलाती है। हिन्दी में अज्ञेय की 'सांप' इलाचन्द्र जोशी की दुष्कर्मी' आदि मनोवैज्ञानिक कहानियाँ है'। राजेन्द्र यादव की 'टूटना' कहानी में किशोर और लीना के अहंकारों के टकराव से उनकी अन्तविधिया प्रकट होते है जिसमें लेखक पात्र के मानसिक संघर्ष की व्याख्या करता है। जैनेन्द्र 'पत्नी' कहानी में एक निष्ठावान पत्नी के मानसिक जगत का विश्लेषण करते है। भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' कहानी में बीस के समक्ष उसके कर्मचारी की अवज्ञाजन्य व्यवहार का सुचारू चित्रण है।

रोमांचक कहानी - जिस कहानी में पाठक के कौतूहल को जगाने के लिए घटनाओं को अप्रत्याशित ढंग से सजाया जाए उसे रोमांचक कहानी कहेंगे। दुर्गा प्रसाद खत्री की 'रूप ज्वाला' एक रोमांचक कहानी है।

रोमांचक कहानी के अन्तर्गत ही साहसिक कहानी (मथुराप्रसाद खत्री की 'शिखराडी' कहानी), जंगल की कहानियाँ तथा शिकार कथाएँ (श्रीराम शर्मा की बाघ से भिडंत, पुष्पा भारती की 'जाँच और एल्ला का प्यार) जासूसी कहानी आदि प्रकार की कहानियाँ भी आती है।

3. **शैली के आधार पर वर्गीकरण -** भाषा, शैली और कहानी के रूप विधान के आधार पर भी कहानियों का वर्गीकरण किया जा सकता है। - आत्मकथात्मक शैली (उत्तमपुष्प) में लिखी कहानी जैसे सुदर्शन की 'कवि की स्त्री'। पत्रात्मक शैली में लिखी कहानी - पूरी कहानी पात्रों के पत्रों द्वारा ही विकसित होती है, जैसे उपेन्द्र नाथ अश्क की - 'नरक का चुनाव' तथा अज्ञेय की 'सिगनेला'। अमरी शैली - भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'अन्ना' कहानी पूरी तरह उभरी के अंशों में रची गयी है। पूर्व दीप्ति शैली - स्मृति के आधार कहानी का विकास होता जाता है, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी में इस शैली को सुन्दर प्रयोग हुआ है)

फैण्टेसी युक्त कहानी - मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं और कहानियों के शिल्प में फैण्टेसी का प्रयोग किया है। 'काष्ठ का सपना' एक सुन्दर फेण्टेसी है।

इनके अतिरिक्त वर्णनात्मक शैली (प्रसाद की आकाश दीप), विवरणात्मक शैली (प्रेमचन्द की 'बड़े भाई साहब'), ख्मित्मक शैली - (प्रसाद की पुरस्कार), बिम्बात्मक शैली (निर्मल वर्मा की आदिम, परिन्दे), संस्करात्मक शैली - (ज्ञानरंजन की पिता) के आधार पर की कहानियों का वर्गीकरण किया जा सकता है।

12.9 सारांश

कहानी आधुनिक युग की एक लोकप्रिय और सशक्त विधा है। हिन्दी में कहानी कविता की तरह महत्व प्राप्त कर चुकी है। हिन्दी कहानी के विवास में प्रेमचन्द, प्रसाद, जैनेन्द्र, अज्ञेय, उपेन्द्र नाथ अश्क आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी कहानी का वैविध्य भरा विकास हुआ है। भाषा तथा शिल्प के स्तर पर कहानी में नये-नये प्रयोग हो रहे है। कहानी अपने परम्परागत रूप के अनिदभय घर रिपोर्ताज, फीचर, जीवनी आदि को समाहित करने का प्रयास कर रही है। जीवन के विविध रंगों को कहानी आत्मसात करती हुई निरंतर आगे बढ़ रही है। 'उसने कहा था' (गुलेरी) से लेकर 'और अंत में प्रार्थना' (उदयप्रकाश) तक हिन्दी कहानी ने काफी समृद्ध यात्रा तय की है।

12.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 कहानी की परिभाषा दीजिए।

2 कहानी और उपन्यास में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

3 कहानी की संरचना किन तत्वों के आधार पर होती है? स्पष्ट कीजिए।

4 'कहानी मानव जीवन का चित्र मात्र है' इस कथन के आधार पर कहानी के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

5 कहानी का वर्गीकरण किन-किन आधारों पर किया जा सकता है? स्पष्ट कीजिए।

6 निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिए -

(i) कहानी में कथावस्तु का विकास

(ii) कहानी में संवाद योजना का महत्व।

(iii) कहानी में पात्र योजना की व्यवस्था।

(iv) कहानी में परिवेश चित्रण की दिशाएँ।

(v) कहानी के उद्देश्य की आवश्यकता।

(vi) कहानी के शीर्षक की सार्थकता।

(vii) कहानी में रोमांच।

12.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (सं.); हिन्दी साहित्य कोश (भाग- 1)
2. नामवर सिंह; कहानी नयी कहानी
3. लक्ष्मीनारायण लाल; हिन्दी कहानी में शिल्प विधि का विकास
4. हेतु भारद्वाज; हिन्दी कहानी का उद्भव औपचारिकता
5. रघुवरदयाल; समकालीन हिन्दी कहानी : परिदृश्य
6. देवी शंकर अवस्थी; नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति
7. परमानंद श्रीवास्तव; हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया

इकाई-13 कहानी की परम्परा और विकास

इकाई की रूपरेखा -

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 कहानी की परम्परा
13.3 कथा साहित्य स्वरूप
13.4 हिन्दी साहित्य में कहानी का आविर्भाव
13.5 कहानी आंदोलन
13.5.1 नयी कहानी
13.5.2 सचेतन कहानी
13.5.3 सहज कहानी
13.5.4 अकहानी
13.5.5 सक्रिय कहानी
13.5.6 जनवादी कहानी
13.6 कहानी का वर्तमान दौर
13.7 सारांश
13.8 संदर्भ ग्रंथ
13.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त विद्यार्थी -

- कहानी के अतीत एवं परम्परा के बारे में जान सकेंगे।
- कथा साहित्य के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- हिन्दी साहित्य में कहानी के आविर्भाव के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- कहानी के विभिन्न आंदोलनों एवं इसके कारणों के बारे में जान सकेंगे।
- आधुनिक कहानियों के स्वरूप-विकास की पड़ताल कर सकेंगे।
- प्रमुख कथाकार एवं कहानी के वर्तमान दौर के बारे में अवगत हो सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही कहानी का इतिहास जुड़ा है। ये कहानियाँ ही हैं जिन्होंने आम आदमी के सुख-दुख, हर्ष-विषाद के साथ ही उसकी उद्भावनाओं को स्वर दिया है। विश्व में मनुष्य के जीवन और उसके समाज के सत्य को कहानियों के जरिए ही अब तक समझा जाता रहा है और भविष्य में भी यही होना है। कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा कि कहानी की परम्परा मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति के विकास से जुड़ी है। किसी भी दौर, जाति, वर्ग, समुदाय के सच को उस दौर की कहानियों से ही पूरी तरह से समझा जा सकता है। भाषा के आविष्कार के साथ ही मनुष्य कहानियाँ कहने, सुनने और लिखने-पढ़ने की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त हुआ। यह कहानी

की परम्परा ही है जो काल और वय की बाधाओं को तोड़ती हुई बदलते वक्त और हालात में लगातार अपना नवीनीकरण करती हुई, हरदम ताजा और प्रासंगिक बनी रहती है। समय के सवालों को उठाते, उनसे रू-ब-रू होते मानवता या मनुष्य मात्र के सर्वकालिक सत्य को समय विशेष की कहानियों में ही ढूंढा जा सकता है। जीवन और उसके सच या यूं कहें कि मनुष्य के सच की व्याख्या प्रस्तुत करने का सबसे सशक्त माध्यम कहानी ही है। यही नहीं काल की गति के अनुसार जीवन में निरंतर होने वाले परिवर्तनों तथा घटनाओं का वर्णन करती कहानियाँ कल्पना लोक के साथ यथार्थ लोक का ऐसा मेल होती हैं जिनमें समय के अनुसार पात्र, सृष्टि, युग बोध, नयी चेतना और बौद्धिकता जुड़ी रहती है।

विश्व की तमाम लुप्त-विलुप्त, अर्वाचीन और प्राचीनतम सभ्यताओं का आधार स्तम्भ उनसे जुड़ी कहानियाँ ही हैं। सभ्यताओं के अस्तित्व ओर उनकी संरचनाओं की पहचान का महत्वपूर्ण स्त्रोत कहानियाँ ही रही हैं। पौराणिक, नैतिक कथाओं के अंतर्गत कहानियों की लोकधर्मी परम्परा सदियों से अक्षुण है। आज जो सच है, कल वह इतिहास होना है। इस इतिहास को जानने का स्त्रोत तब कहानियाँ ही होगी। ऐसे में कहानी को सभ्यता एवं संस्कृतियों को जानने का महत्वपूर्ण स्त्रोत या आधार स्तम्भ कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। आईए जानें कहानी की परम्परा और उसके विकास को-

13.2 कहानी की परम्परा

चीन, मिश्र, सुमेरी, अक्कादी, अमेरिकी आदिवासियों की अजटेक-माया आदि सभी सभ्यताओं को उनसे संबंधित कहानियो के जरिये ही जाना जा सका है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में बात करें तो यह सहज ही कहा जा सकता है कि संसार का श्रेष्ठतम कथापीठ आरंभ से ही हमारा देश ही रहा है। वेद, पुराणों की कथाएं आज भी अतीत की समृद्ध धरोहर है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। इनमें अलौकिक प्रसंग और विवरण ही नहीं है बल्कि प्राचीन जीवन जीने की शैली भी एक प्रकार से समाहित है। ऐसे ही पंचतंत्र की पशु-पक्षी कथाएं, वेताल पचीसी, बौद्ध कथाओं आदि की लोकधर्मी परम्परा भी हमारे यहां आरंभ से ही समृद्ध रही है। रामायण की राम कथा भारत में ही नहीं विश्व के अन्य देशों में भी बेहद लोकप्रिय है तो भगवान बुध की जातक कथाओं का संसार दुनियाभर में अपनी विशालता के लिए जाना जाता है।

ऐसे ही लोककथाओं का अपना संसार है। पीढ़ी दर पीढ़ी लोककथाएं विश्वभर में संस्कारों की तरह हस्तांतरित होते जन जीवन के समानान्तर चलती रही है। खास बात यह भी है कि लोककथाओं से जिन्दगी का कोई भी पहलू कभी छूटा नहीं है। चाहे राजनीति हो, अर्थनीति हो, संस्कृति हो या फिर कुछ ओर-लोककथाएं जीवन में अपने विशिष्ट शिल्प के कारण रस घोलती रही है। दरअसल लोक कथाओ का सीधा सबंध उनमे निहित लौकिक तत्व से ही होता है। जिन्दगी के जिन हिस्सों को इतिहास नजरअंदाज करके आगे बढ़ जाता है, उनकी उपयोगिता को रेखांकित और सुरक्षित करने का कार्य हमारी लोककथाओं ने किया है। लोक कथाएं जनता द्वारा जनता के लिए लिखी गयी हैं। लोक कथाओ का आदि स्वरूप ही 'कथासरित्सागर', 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'गोपीचंद भरथरी',

'सहस्त्र रजनी चरित्र' आदि ग्रंथ रहे हैं। स्थान विशेष की संस्कृति, वहां की सभ्यता के साथ ही लोक जीवन के विविध प्रसंगों में 'ढोला मारू', 'हीर रांझा' आदि प्रेम कथाएं आज भी जन मानस में बेहद लोकप्रिय है।

लोक कथाओं में कल्पना, कौतूहल, विवके दृष्टि, बुद्धि कौशल, व्यवस्थित सूत्रबद्धता और उद्देश्यपरकता तत्व निहित होते हैं। किसने लोक कथाओं को लिखा? पहले पहल किसने इन्हें कहा? इन प्रश्नों का जवाब किसी किस पास नहीं है परन्तु इतना अवश्य सच है कि जब आवागमन के साधनों का विश्वभर में अभाव था, तब भी ये अबाध विश्व के एक कोने से दूसरे काने तक पहुंचती रही। ऐसा माना जाता है कि विभिन्न यात्रियों एवं खानाबदोशों के माध्यम से लोक कथाएं एक स्थान से दूसरे स्थान तक निरंतर पहुंचती रही है। बाद में लोक कथाएं ही साहित्य में भी पहुंची। यह बात इसलिए कही जा सकती है कि कहानियों का मूल स्त्रोत लोकधर्मी कथा परम्परा ही रही है।

गुणाढ्य और उनकी कालजयी रचना 'बृहत्कथा' वैश्विक कथा संस्कृति का मूल स्त्रोत कही जा सकती है। मूल रूप में पैशाची प्राकृत में लिखी गयी 'बृहत्कथा' ऐसा ग्रंथ है जिसके बहुतेरे अनुवाद संस्कृत में भी हुए। कहा यह भी जाता है कि सोमनाथ ने इसी का संस्कृत अनुवाद 'कथासरित्सागर' के रूप में किया। लौकिक कथा रचना में 'बृहत्कथा' इसलिए बेहद महत्वपूर्ण है कि इसमें कहानियाँ में से कहानियाँ निकलती है-बेहद रोचक और प्रयोगधर्मी शैली के ताने-बाने में। सदियों बाद इसी 'बृहत्कथा' से प्रेरित होकर इसी की अनुकृति के रूप में 'अरेबियन नाइट्स' की रचना की गयी। इसमें सुल्तान शहरयार को शहरजाद प्रत्येक रात एक अधुरी कहानी सुनाती है। वह कहानी को जिज्ञासा के उस चरम बिन्दु पर ले जाकर छोड़ देती है, जहां सुल्तान कहानी समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगता है और कहानी है जो समाप्त होने का नाम ही नहीं लेती। इधर कहानी में से कहानी निकलती रहती है उधर शहरयार चूंकि उसे कहने वाली है, इसलिए उसकी जान भी बचीं रहती है। बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी, हितोपदेश, पंचतंत्र आदि कथाओं का ऐसे ही बाद में निरंतर विस्तार होता रहा तो अरब देशों से होती हुई सिन्दबाद जहाजी, ईसप, बोकोशियो आदि कथाएं विश्वभर के देशों में पहुंची।

राधावल्लभ त्रिपाठी के अनुसार - "बृहत्कथा में कहानी ने अपना सहज (लौकिक) रूप पाया, वह जन-जन के मन में रमी। समाज में कही-सुनी जानेवाली कथाओं से जुड़कर आगे बढ़ी। रामायण और महाभारत के पश्चात बृहत्कथा कदाचित भारतीय साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित और अनुप्रमाणित करने वाला ग्रंथ है।"

कहानी की लौकिक परम्परा विश्वभर में एक समान रही है। विश्व की तमाम प्राचीन सभ्यताओं वाले देश यथा चीन, रूस, जर्मनी, दक्षिण अफ्रिका, आयरलैण्ड, ग्रीस आदि में संस्कृति, मिथक-कथा, लोक कथा का सुदीर्घ इतिहास रहा है। हमारे देश मे वेद, पुराणों की कथाओं के साथ ही जैन आगम कथाओं, जातकों, थेरिगाथाओ ने कहानी परम्परा को निरंतर विकसित और समृद्ध किया है। इसी कथा परम्परा से बाद में आधुनिक कहानी परम्परा निंरतर विकसित होती चली गयी।

13.3 कथा साहित्य स्वरूप

कथा कहने की प्रवृत्ति मनुष्य में आरंभ से ही रही है। जब भी मनुष्य और उसके जीवन में परिवर्तन हुए तब तब कहानी कहने के ढंग, उसकी वस्तु और उसकी संवेदना में भी परिवर्तन हुआ है। कहा जा सकता है कि जीवन के सभी प्रकार के आनन्द, सभी अंतर्द्धनद ओर सम्पूर्ण रस कहानी के विस्तृत क्षेत्र में आकर सिमट जाते हैं। यही कहानी की वह विशेषता है जो मनुष्य को उसकी संवेदना से जोड़ती है।

यह कहना मुश्किल है कि कथा साहित्य की उत्पति कहां से हुई परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि सर्वकाल ओर सर्वदेशों में कहानी सदा ही विद्यमान रही है। कहानी, गल्प, लघु कथा अथवा आख्यायिका आदि सभी के रूप प्राय: एक ही हैं।

कहानी या कथा को घटनाओं का लेखा-जोखा, उनका एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रवाह के रूप में देखा जाता है परन्तु उसमें घटनाएं किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के साथ घटित होती है। अपने आप में घटित होने वाली घटनाएं जिनका व्यक्तियों के जीवन से कोई संबंध नहीं हो, कहानी साहित्य के लिए कोई महत्व नहीं रखती। इसे और अधिक स्पष्ट हम यूं भी समझ सकते हैं कि परिर्वतन प्रकृति का नियम है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हर घटना जो प्रकृति के अंदर घटती है, कहानी का रूप ले ले।

कथा साहित्य की प्रमुख विशेषता यह है कि वह नैसर्गिक सत्यों को गौण मानते हुए उन घटनाओ को अधिक महत्व देता है जो उन नैसर्गिक सत्यों को एक दूसरे से मिलाती है। घटनाओं पर मनुष्य की विशिष्ट प्रतिक्रिया उसके विशिष्ट चरित्र के कारण होती है। मनुष्य या पात्रों के साथ जो घटनाएं घटित होती हैं वे किसी स्थान काल एवं वातावरण में ही घटित होती है। अत: देश, काल व वातावरण को स्वत: ही कहानियो में महत्व प्राप्त हो जाता है, चूंकि इनका व्याख्याकार कहानीकार होता है। कहानीकार कहानी के नायक को विभिन्न परिस्थिति एवं संबंधों में चित्रित करने के लिए कथा श्रृंखलाओं का सर्जन करता है। आर्थर कानन की 'शरलाक होम्स', स्थीवेन्सन की 'न्यू अरेबियन नाइट्स' आदि कथा श्रृंखलाओ में इस रूप का विस्तार देखा जा सकता है। मुख्यत: कथा साहित्य के छ: संघटनात्मक तत्व बताए गए है -

1 कथा वस्तु
2 पात्र एवं चरित्र चित्रण
3 वार्तालाप
4 देश-काल एवं वातावरण
5 उद्देश्य
6 जीवन दर्शन

कथा विधा-विशिष्ट की अपनी आवश्यकता के अनुसार इन प्रमुख तत्वों में थोड़ा बहुत परिवर्तन हो सकता है परन्तु मूलत: कथा साहित्य इन छ: संघटनात्मक तत्वों पर ही आधारित होती है। वस्तुत: कहानी को जीवन की एक झलक या झांकी कहा जा सकता है। जिस प्रकार जीवन की एक झलक का अपना आकर्षण होता है, ठीक वैसे ही कहानी का भी अपना आकर्षण होता है।

अपने जन्म के साथ ही कहानी वैचारिक रही है परन्तु इसे किसी एक रूप में बांधकर नहीं देखा जा सकता। यह बात अलग है कि कहानी को उसकी शैलियों के अंतर्गत उसे रूप विधानों पर अलग-अलग दौर में समीक्षकों ने परिभाषित किया है परन्तु कहानी के किसी एक स्वरूप या एक परिभाषा में बांध कर कभी नहीं देखा गया। मूलतः कहानी आरंभ से ही एक जीवंत विधा रही है। ऐसी जिसमें मनुष्य के चिंतन, उसकी सोच, उसके जीवन को विविध आधारों पर रोचक रूप में व्यक्त किया गया है। यह जरूर कहा जा सकता है कि कहानी के अंतर्गत आधारभूमि के रूप में किसी न किसी सत्य की प्रतिष्ठा अवश्य की जाती है। यदि ऐसा नहीं होता है तो किसी खास अनुभूति, स्थिति-परिस्थितियों या किसी प्रश्न, आवेग की संवेदना को प्रस्तुत किया जाता है।

13.4 हिन्दी साहित्य में कहानी का आविर्भाव

कहानी और उपन्यास से पहले हिंदी में गद्यकथाओं का प्रचलन रहा है। ऐसा माना जाता है कि सैयद ईशा अल्ला खां कृत उदयमानचरित या 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक गद्यकथा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इसका रचना काल विक्रम संवत 1855 और 1860 अर्थात सन् 1798 से 1803 के बीच है। इसके बाद उन्नीसवीं शताब्दी में अनूदित गद्यकथाओं का बाहुल्य रहा। बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी, हितोपदेश, गोरा बादल, किस्सा हातिमताई, राबिंसन क्रूसो का इतिहास, आदि का प्रकाशन काल भी 1800 से 1889 के बीच माना जाता है।

कहानी के लिए आरंभ में 'वृतान्त' शब्द का प्रयोग भी किया जाता रहा है। पहले पहल कहानी के लिए वृतान्त शब्द का प्रयोग पंडित श्रीलाल ने किया। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में उन्होंने 'धर्मसिंह का वृतान्त' शीर्षक से गद्यकथा की रचना की परन्तु हिन्दी में कहानी शब्द को प्रतिष्ठित इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' ने ही किया। सन् 1855 में राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद द्वारा विरचित 'वीरसिंह का वृतान्त' बनारस से प्रकाशित हआ। यह इकतालिस पृष्ठों की गद्यकथा है। बाद में राजा शिवप्रसाद सितारेहिद ने ही 'लड़कों की कहानी' की भी रचना की। पंडित श्रीलाल रचित 'धर्मसिंह का वृतान्त' और किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा रचित 'इंदुमती' आदि कहानियाँ विविध संकलनों और पत्र-पत्रिकाओं के जरिए पाठकों तक पहुंची। रोचक पहलू इस सबंध में यह भी है कि आरंभ में कहानी और उपन्यास के बीच किसी प्रकार की विभाजक रेखा नहीं बन पाई थी, ऐसे में उपन्यास के लिए भी कहानी शब्द ही प्रचलित था। मसलन 1870 में पंडित गौरीदत्त के उपन्यास 'देवरानी जेठानी की कहानी' को कहानी कहा गया। कहानी में कहने की विशेषता आरंभ से ही रही है। लोक और शिष्ट दोनों ही रूपों में कहानी का संबंध वाचिक परम्परा से ही रहा है।

हिन्दी साहित्य में कहानी का विधिवत आविर्भाव बीसवीं सदी के आरंभ से साहित्य पत्रकारिता के आंरंभ के साथ ही माना जाता है। बीसवीं सदी के पहले दशक में 1900 में किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इदुमती', 1902 में मास्टर भगवानदास की 'प्लेग की चुड़ैल', 1903 में रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' और 1907 में राजेन्द्रबाला घोष 'बंगमहिला' द्वारा लिखी गयी 'दुलाईवाली' कहानियाँ प्रमुख रूप से सामने आई। इन

कहानियों के बाद हिन्दी कहानी ने परिपक्वता की जो राह पकड़ी वह आज तक बदस्तुर जारी है।

चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 1915 में 'सरस्वती' पत्रिका में 'उसने कहा था' कहानी प्रकाशित हुई। यह ऐसी कहानी थी जिसने पाठकों को अंदर तक उद्वेलित किया और अपनी इस एक कहानी के जरिए ही गुलेरी ने साहित्य जगत में अपार ख्याति प्राप्त की। हिन्दी की पहले पहल की आधुनिक कहानियों में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' (1915), प्रेमचन्द की हिन्दी कहानी 'सौत' तथा 'पंच परमेश्वर' को सम्मिलित किया जाता है।

प्रेमचन्द की कहानियाँ का ताना-बाना घटनाओं, प्रसंग के साथ ही चरित्र की संवेदनशीलता के लिए विशेष रूप से जाना जाता है। यथार्थ का चित्रण प्रेमचन्द ने इस खूबसूरती से किया है कि उनकी कहानियों में जीवन के विविध पक्षों की टकराहट होते हुए भी वह पाठक को अंदर तक झकझोरती है। मनुष्य की जिजीविषा का जैसा चित्रण प्रेमचन्द ने 'पंच परमेश्वर' कहानी से लेकर 'कफन' तक में जिस तरह से किया है, उसमें पाठक कथा वस्तु के निकट अपने को पाता सहज ही पात्रों के चरित्र की संवेदना से जुड़ जाता है। प्रेमचन्द की 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'मंत्र', 'बूढ़ी काकी' आदि लगभग सभी कहानियों में यथार्थ का मार्मिक चित्रण है।

प्रेमचन्द युग के बाद मार्क्सवाद के प्रभाव ने कहानी पर गहरा असर किया। मार्क्सवाद के प्रभाव से कहानी कल्पना लोक की बजाय समाज के जीवन्त धरातल की सहज कथा मे रूपान्तरित होती चली गयी। इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, अज्ञेय, जैनेन्द्र, जयशंकर प्रसाद आदि कहानीकारों ने आदर्शवाद और सुधारवाद की बजाय पात्र-सृष्टि में मनोविज्ञान को स्थान देना प्रारंभ कर दिया था। कहानीकारों ने कहानी को सर्वथा नया कलेवर देते उसमें वर्जित प्रसंगों का उद्घाटन, परम्परागत मान्यताओं का खंडन और उच्छृंखल कही जाने वाली चेष्टाओं का निरूपण किया। इस दौर में कहानी के वर्ण्य विषय, पात्र, सृष्टि, युगबोध के साथ नयी चेतना और बौद्धिकता से कहानी कलात्मक से और अधिक कलात्मक होती चली गयी।

चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, राहुल सांकृत्यायन, पाण्डेय बेचेन शर्मा 'उग्र', यशपाल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजा राधिकारमण सिंह, सच्चिदानन्द हीरानन्द वास्लायन 'अज्ञेय', सियारामशरण गुप्त, विष्णु प्रभाकर, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर आदि ने समकालीन कथानको के अंतर्गत कहानी विधा को निरंतर समृद्ध किया।

नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, भैरवप्रसाद गुप्त, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, डॉ.देवराज, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', उषा प्रियवंदा, कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु', श्रीलाल शुक्ल, प्रभाकर माचवे, नरेन्द्र कोहली, निर्मल वर्मा, मनोहरश्याम जोशी, राही मासूम रज्जा, रमेशचन्द्र शाह, राजकमल चौधरी, मन्नू भंडारी, नासिरा शर्मा, शिवानी, बलराम, कृष्ण बलदेव वैद, मृदला गर्ग, चंद्रकिरण सोनरेक्सा, प्रतिभा वर्मा मालती जोशी, मंजुल भगत आदि कथाकारों ने जीवन के विविध पक्षों पर स्तरीय कहानियाँ लिखी हैं। हिन्दी कहानी को

नयी दिशा दृष्टि देते हुए अपनी सर्जनात्मकता में जीवन के सभी क्षेत्रों से बटोरे अनुभवों को संवेदनशीलता से कहानियों में जिया है।

13.5 विभिन्न कहानी आंदोलन

कहानी के विकास को तथा उसमें निरंतर होते परिवर्तनों को समझने और जानने के लिए कहानी आदोलनों के बारे में समझना बेहद जरूरी है। स्वतंत्रता से पहले देश में प्रगतिशील आंदोलन ही एक मात्र प्रमुख कहानी आंदोलन रहा परन्तु स्वतंत्र भारत में हमारे यहां 'नयी कहानी', 'सचेतन कहानी', 'अकहानी', 'सहज कहानी', 'सक्रिय कहानी', 'समान्तर कहानी' आदि बहुत से कहानी आंदोलन और नारों के बीच से कहानी को गुजरना पड़ा। इनमें से कुछ ही आंदोलन ऐसे थे जिसने कहानी पर गहरा प्रभाव डाला बाकी के ऐसे थे जो क्षणिक और काफी हद तक व्यक्ति प्रधान रहकर अधिक चर्चा नहीं पा सके।

कमलेश्वर ने कहानी, पुरानी कहानी और नयी कहानी को अपने तई परिभाषित किया है। कहानी के संबंध में चल रही मान्यताओं और विभिन्न पक्षधरों के आधार पर उन्होंने कहानी, पुरानी कहानी और नयी कहानी की व्याख्या करते हुए कहा-

कहानी - कहानी के पक्षधरों का सीधा तात्पर्य किस्सागोई से है, यानी वे कहानी में कथनात्मकता- वर्णनात्मकता को ही उसका मूल्य समझते हैं।

पुरानी कहानी - वह रूढ़ कहानी जो एक सांचे में ढलती थी, जो गहन मानवीय संकट और अपेक्षाओं को वाणी देने में असमर्थ थी, जिसने किस्सागोई को तो कुछ कुछ छोड़ दिया था पर निष्कर्ष वादी अंतों से जुड़ी हुई थी। 'पुरानी कहानी' कुछ न कहने में विश्वास नहीं रखती थी बल्कि जो कुछ कहती थी वह संश्लिष्ट मानव प्रकृति की अवज्ञा करके, वह मात्र लेखक के अभिसिप्त मंतव्य की जोरदार वाहक होती थी।

नयी कहानी - कहानी का यह ऐसा मोड़ था जो आंतरिक और बाह्य कारणों से हिन्दी कहानी में आया। इसके अंतर्गत कहानी के फार्म तथा कथ्य दोनों स्तरों पर एक नवीन दिशा की खोज की गयी। कहानी की आन्तरिक मांग ही यही थी कि उसकी यात्रा जीवन के साहित्य की ओर हो। वैचारिक धरातल पर नयी कहानी लघु मानववादी, क्षण मानववादी विजातीय बौद्धिकता को स्वीकार नहीं करती-वह अपने राष्ट्रीय-जातीय परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध है और उसका मूल स्त्रोत है-जीवन, अपनी समस्त जटिलताओं और सश्लिष्टताओं के साथ।

कहानी के इतिहास की जब भी चर्चा की जाती है उससे संबंधित ये विभिन्न कहानी आदोलनों भी गिनाए जाते हैं और कहानी के विकास में इन आदोलनों की भी भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं रही है। कहानी आंदोलनों ने कहानी के शिल्प और भाषा को कितना समृद्ध किया या फिर उसे नुकसान पहुंचाया इस पर कोई मतैक्य नहीं है परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कहानी आंदोलनों ने कहानी की जीवंतता और ग्राह्यता को प्रमाणित जरूर किया।

हिन्दी कहानी को आंदोलनो ने क्या दिया और इनसे कहानी कितनी विकसित हुई, इसके बारे में तो ठीक से कुछ नही कहा जा सकता परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कहानी के शिल्प स्वरूप को निर्धारित करने में इन आंदोलनों से जरूर मदद मिली है।

कहानी आदोलनों के अंतर्गत प्रमुखत: नयी कहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी आदि आंदोलन गिनाए जाते हैं। ये इस प्रकार से हैं-

13.5.1 नयी कहानी

ऐसा कहा जाता है कि सन् 1950 के आसपास जो हिन्दी कहानी जड़ थी, दिशाहीन कही जाती थी उसे नयी कहानी आंदोलन ने स्पन्दनयुक्त किया। समकालीन तथ्य और सत्य अपने अविकल रूप में जब कहानी में स्थान पाने लगे तब कहानी नयी कहानी बन गयी। नयी कहानी के अंतर्गत कहानीकार अपनी जटिल अनुभूति को व्यापक बनाने के लिए प्रतीक और बिम्बों का सहारा लेने लगे। कुछ आलोचक नयी कहानी को कहानी परम्परा का विकसित रूप मानते हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, अश्क, मोहन राकेश के अनुसार -" नयी कहानी गांव की कहानी है, नयी कहानी नये शिल्प की कहानी है, नयी कहानी सहज सांकेतिकता की कहानी है, नयी कहानी सामाजिक संघर्ष की कहानी है, नयी कहानी साधारण परिचित जीवन की कहानी है, नयी कहानी स्वच्छ पारदर्शक भाषा में लिखी जाने वाली कहानी है, नयी कहानी सभी तरह की कहानी है।"

राजेन्द्र यादव के अनुसार - "नयी कहानी से पहले कहानी एक आइडिया हुआ करती थी, एक विचार, सुक्ति या कभी कभी तो केवल एक बिट। यह आइडिया या विचार कहीं अंत की ओर किसी घटन या वाक्य में डाल दिया जाता था। कहानी के बाकी सारे तत्व इस आइडिया को घटाने या सिद्ध करने के लिए ला जुटाए जाते थे। सामग्री जुटाने की इस प्रक्रिया में, न तो देश बाधक होता था, न काल।'

नामवरसिंह ने इस दौर में निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' से 'नयी कहानी' की शुरूआत मानी। नयी कहानी को आलोचक जब विशेष रूप से उल्लेखित कर रहे थे तब कहानी में प्रमुख रूप से मार्कण्डेय, अमरकान्त, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, हरिशंकर परसाई, रमेश बक्षी, शैलेष मटियानी, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, श्रीकान्त वर्मा, भैरव प्रसाद गुप्त, लक्ष्मीनारायण लाल, शिवप्रसादसिंह, कमलेश्वर आदि सक्रिय थे।

नयी कहानी की प्रमुख प्रवृतियाँ

1 यथार्थ का सांकेतिकता, बिम्ब, प्रतीकात्मकता के जरिए चित्रण।
2 मनौवैज्ञानिक स्तर पर परिवेश और घटनाओ चित्रण।
3 जटिल अनुभूति को व्यापक बनाते हुए कथा रचना।
4 परिवेश को पूर्ण प्रतिबद्धता के साथ कहानी में पिरोना।
5 अनुभव की प्रामाणिकता का कहानी में रूपान्तरण।
6 कथ्य के स्तर पर पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर आये संबंधों के बदलाव को रूपायित करना।
7 अस्तित्वाद और मार्क्सवाद का प्रभाव।
8 मूल्यगत संक्रमणों की यथार्थ अभिव्यक्ति।

13.5.2 सचेतन कहानी

नयी कहानी के बाद कुछ और आंदोलन भी सामने आने लगे जिनमें 'सचेतन कहानी' की विशेष रूप से चर्चा रही। नयी कहानी के परिणाम और प्रभाव को स्वीकार नहीं करने वाले कथाकार इस आंदोलन से जुड़े। 'सचेतन कहानी' के प्रमुख प्रवक्ता महीपसिंह बनें। उनके सम्पादन में नवम्बर 1964 में 'आधार' पत्रिका का 'सचेतन कहानी विशेषांक' प्रकाशित हुआ। इसमें मुख्य रूप से धमेन्द्र गुप्त, मधुकरसिंह मनहर चौहान, योगेश गुप्त, आनन्दप्रकाश जैन, कमल जोशी, कुलभूषण, वेदराही, सुखवीर, हिमांशु जोशी आदि 20 कहानीकारों की कहानियाँ प्रकाशित की गयी। महीप सिंह ने तब कहा कि 'नयी कहानी' में जो अन्तर्विरोध थे, उन्हें स्पष्ट करने के लिए ही सचेतन कहानी का जन्म हुआ। बाद में महीपसिंह ने 'संचेतना' नाम से त्रैमासिक पत्रिका का संपादन भी प्रारंभ किया जो सचेतन कहानी का प्रमुख मंच बनी।

महीपसिंह के अनुसार - "सचेतन कहानी ने फिर से मनुष्य के 'टोटल सेल्फ' को स्थापित करने का प्रयत्न किया। सचेतन कहानी मनुष्य और जीवन के तनाव का ही चित्रण नहीं बल्कि उसके संघर्ष को भी समर्पित है।"

सचेतन कहानी की मान्यता को स्थापित करने के लिए यहां तक कहा गया कि सचेतना एक दृष्टि है, वह दृष्टि जिसमें जीवन जिया भी जाता है ओर जाना भी जाता है। निष्क्रियता ओर निरर्थकता के बहुचर्चित मुहावरों के मध्य सचेतन दृष्टि में जीवन के सक्रिय भावबोध पर विशेष आग्रह किया गया। सचेत कथाकारों ने कहा कि हम जीवन को मात्र एक प्रदत्त वस्तु के स्तर पर ही नहीं ग्रहण करते हैं जहां सक्रिय रूप से जीने की अपेक्षा कुछ घटित होने का बोध ही अधिक रहता है। जीवन को केवल अनुभूति के स्तर पर जीना उसे एकांगी जीना है। जीवन को समग्र रूप से जीने का अर्थ उसे जानना भी है।

सचेतन कहानी की प्रमुख प्रवृतियां -

1 नयी कहानी के मैनरिज्म का विरोध।
2 व्यक्ति और समाज के आलेखन पर जोर।
3 कहानियों में जीवन को जीने और जानने की प्रक्रिया पर बल।
4 कहानियों के केन्द्र में मानव नहीं बल्कि उसका जीवन प्रमुख।
5 कहानी में कहानीकार की आत्म सजगता ओर संघर्षेच्छा।
6 व्यक्ति और समाज की टूटती आस्थाओं के बीच नये मूल्यों के निर्माण का मुखर स्वर।

13.5.3 सहज कहानी

सहज कहानी की मान्यता की स्थापना कथाकार अमृतराय द्वारा हुई मानी जाती है। वर्ष 1968 में 'नयी कहानियाँ' पत्रिका को इलाहबाद से प्रकाशित करते उन्होंने इसके संपादकीय 'सहज कहानी' से लिखने प्रारभ किए। अपने संपादकीय में उन्होंने घोषणा की- "नयी कहानियों के आंदोलन की उपलब्धियों का लेखा जोखा इतिहास अपने समय से निश्चित करेगा, लेकिना इतना तो साफ है कि नयी कहानी की खोज में सहज कहानी खो

गयी।" सहज कहानी का आंदोलन अमृतराय की पत्रिका 'नयी कहानियाँ' तक ही सीमित रहा।

अमृतराय के अनुसार - "सहज वह है जिसमें आडंबर नहीं है, बनावट नहीं है, ओढी हुई पद्धति (मैनरिज्म) या मुद्राकोष नहीं है, आईने के सामने खड़े होकर आत्मरति के भाव से अपने अंग-प्रत्यंग को अलग-अलग कोणों से निहारते रहने का प्रबल मोह नहीं है।"

13.5.4 अकहानी

एक दौर ऐसा भी आया जब कहानीकारों ने अपनी कहानी को कथानक और शिल्प की नवीनता के आधार पर कहानी कहने का साहस भी किया। अकविता की तर्ज पर अकहानी शब्द का प्रयोग हुआ। कहानी की परम्परागत अवधारणाओं को अस्वीकार करती 'अकहानी' अमूर्त कथा-विधा अथवा शिल्पहीन कहानी मानी गयी।

यहां यह महत्वपूर्ण बात है कि साठोतरी कहानी को डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने पहले तो 'समकालीन कहानी' कहा परन्तु बाद में उन्होंने उसकी व्याख्या 'अकहानी' के रूप में करनी प्रारंभ कर दी। वर्ष 1960 के बाद हिन्दी कहानी के क्षितिज पर 'अकहानी' एक आंदोलन के रूप में जैसे प्रारंभ हो गयी। डॉ. गंगाप्रसाद विमल, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, सुधा अरोड़ा, ज्ञानरंजन, जगदीश चतुर्वेदी, विश्वेसर आदि ने 'अकहानी' आंदोलन का पक्ष लेते हुए इसका समर्थन किया।

13.5.5 सक्रिय कहानी

सक्रिय कहानी आंदोलन को प्रारंभ करने का श्रेय 1973 में प्रकाशित 'मंच' के संपादक राकेश वत्स को जाता है। उन्होंने 'मंच' के इस अंक में 'सक्रिय कहानी' की अवधारणा प्रस्तुत की तथा कहा कि 'सक्रिय कहानी' सक्रिय पात्रों और विचारों की कहानी है। अत: या तो उसमें पुराने मूल्यों को उखाड़ा जा रहा है या जेनुइन मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्ष जारी है।

'सक्रिय कहानी' में समग्र ध्यान सक्रियता पर दिया गया। इसके अंतर्गत आम आदमी के संगठित होकर जूझने, उसके आत्मविश्वास, समाज में जनसमर्थक मूल्यों तथा समानता की स्थापना को रेखांकित किया गया।

राकेश वत्स के अनुसार - "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है कि चेतनात्मक ऊर्जा ओर जीवंतता की कहानी। उस समझ और अहसास की कहानी, जो आदमी को बेबसी, निहत्थेपन और नपुसंकता से निजात दिलाकर स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर लेती है। जो साहित्य की इस सार्थकता के प्रति समर्पित है कि साहित्य संकल्प ओर प्रयत्न के बीच की दरार को पाटने का एक जरिया है।"

13.5.6 जनवादी कहानी

प्रगतिशील आंदोलन के विकसित रूप में ही जनवादी आंदोलन को माना जाता है। जनवादी आंदोलन से ही जनवादी कहानी आंदोलन ने जन्म लिया। वर्ष 1982 में दिल्ली में 'जनवादी लेखक संघ' की स्थापना हुई और इसके साथ ही 'जनवादी कहानी' आंदोलन

को भी गति मिली। जनवादी कहानी को समृद्ध करने वालों में रमेश उपाध्याय, स्वयं प्रकाश, नमिता सिंह, असगर वजाहत, राजेश जोशी, उदय प्रकाश,, हेतु भारद्वाज, धीरेन्द्र अस्थाना आदि का नाम लिया जाता है।

जनवादी कहानी का मूल वैचारिक आधार मार्क्सवाद है। जनवादी कहानियों के अंतर्गत उनके पात्र संघर्षरत ऐसे है जो निर्णय लेने की स्थिति में है। वे अपने संघर्ष की दिशा को भी भली प्रकार समझते हैं। इसकी मूल प्रवृति श्रमजीवी वर्ग के प्रति सहानुभूति है और यह अंतर्चेतना के निरंतर विकास का परिणाम मानी जाती है।

हेतु भारद्वाज के अनुसार - "जनवादी कहानी वह है जिसमें अनुभव और विचार का सामंजस्य जीवन की समस्याओं के संदर्भ में देखा गया है। कृव्यक्तिगत स्तर पर सत्य, ईमानदारी, परहित आदि मूल्यो के लिए संघर्षरत चरित्र भी जनवादी कहानी में उपलब्ध है। जनवादी कहानी वैचारिक दृष्टि से मार्क्सवादी विचारधारा का पोषण करती है परन्तु वह विचारधारा को रचनाकार के अनुभव का अंग बनाकर अभिव्यक्त करने में विश्वास करती है। यहां विचारधारा की अनुभव से अलग सत्ता नहीं है।"

13.6 कहानी का वर्तमान दौर

समकालीन कहानियाँ का दायरा इतना विस्तृत है कि उन्हें किसी सीमित परिधि मे समेटना असंभव है। साठोतरी कहानी के अंतर्गत जो कहानीकार सक्रिय हुए उनमें कहानी के कथानक की बजाय उसके संवेदनीय मूल कथ्य पर अधिक ध्यान दिया गया है।

समकालीन कहानी बढ़ते आतंकवाद, बाजारवाद, धार्मिक उन्माद, मीडिया, जातिवाद के नये आतंक और निरंतर बदलते जीवन मूल्यों पर करारा प्रहार करती मनुष्य की उस संवेदना से साक्षात्कार कराती है जिसमें भौतिकता की भागम भाग में जीवन मूल्य निरंतर तिरोहित होते जा रहे हैं। कहानी की बनावट तथा अभिव्यक्ति की जटिल भंगिमाओं में अब कहानीकार जीवन की अबूझ परतों को उभारते हुए वर्तमान में परम्परागत मान्यताओ में व्याप्त जड़ और रूढ़िवादी तत्व को उजागर करते कहानियों को नये भाव बोध के तेवर कहानीकारों ने दिए हैं। समकालीन कहानी का प्रतिनिधित्व नये कहानीकारों की कहानियाँ करती हैं। इनें शिवमूर्ति, सुवास कुमार, शैवाल, अखिलेश, अरूण प्रकाश, महेश दर्पण, जयनंदन, विभांशु दिव्याल, संजीव, स्वयंप्रकाश, संजय खाती, शैलेन्द्र सागर, सृंजय, ओमप्रकाश वाल्मीकी, जयप्रकाश कर्दम, अजय नावरिया, श्योराजसिंह बेचेन, रतन कुमार आदि कथाकारों के साथ ही स्त्री कथाकारों में मैत्रेयी पुष्पा, राजी सेठ, लवलीन, मृणाल पाण्डेय, चन्द्रकांता, अलका सरावगी, क्षमा शर्मा, गीतांजलि श्री, लता शर्मा, जयाजादवानी, दूर्वासहाय, पंखूरी सिन्हा आदि कहानी विधा को निरंतर समृद्ध कर रही हैं।

कहानी के एक शताब्दी के लम्बे इतिहास के अंतर्गत वर्तमान में कहानी की अन्तर्वस्तु ओर संरचना दोनों के ही अंतर्गत बेहद परिवर्तन हुआ है। अब कहानी में समकाल बोध अतीत बोध के साथ गहराई से दिखायी देता है। इन्टरनेट ने सुदूर देशों की दूरियों को कम कर दिया है। कहानी में भी इसका असर स्पष्ट देखा जा सकता है। कहानीकार अपने परिवेश और आस-पास के सच को ही कहानियों में नहीं पिरो रहे बल्कि वे अपने

से अलग संस्कृति और जीवन का भी कहानियों में एक प्रकार से वैश्वीकरण कर रहे हैं। ऐसे दौर में जब इन्टरनेट से आप विश्वभर के मीडिया से निंरतर रू-ब-रू होते हों, यह कैसे संभव है कि दूसरे स्थानों की संवेदना को कहानीकार आपके समक्ष नहीं रखे। नये कहानीकार वैश्विकदृश्यों को कहानियों में जीवंत करते अपने समकालीन सरोकारों से हर आम और खास को जोड़ रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के इस दौर में वर्तमान कथा के दौर को गतिशील जीवन दृष्टि का युग कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए। संरचनात्मक लक्षणों के अंतर्गत आज की कहानी में रचना की नयी सौन्दर्यसृष्टि है। आज की कहानियाँ अनुभव का ऐसा भव लिए हुए हैं जिसमें संवेदनाएं भविष्य के मूल्यों को भी जैसे तय कर रही है। यही आज की कहानी का सच है। कहानीकार इस सच को जी रहे हैं और पाठक उनकी रचनाओ में इस सच को यत्र-तत्र-सर्वत्र पा सकते हैं। कहानी का यह ऐसा दौर है जिसमें कहानी अपने स्वरूप में खासा बदलाव किया है। यह बदलाव ऐसा है जिसमें दृश्य भाषा के रूप में कहानीकार पाठक को कहानी पढाता नहीं बल्कि दिखा भी रहा है।

13.7 सारांश

कहानी की परम्परा मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति के विकास से जुड़ी है। यह कहानी की परम्परा ही है जो काल और वय की बाधाओं को तोड़ती हुई बदलते वक्त और हालात में लगातार अपना नवीनीकरण करती हुई, हरदम ताजा और प्रासंगिक बनी रहती है। समय के सवालों को उठाते, उनसे रू-ब-रू होते मानवता या मनुष्य मात्र के सर्वकालिक सत्य को समय विशेष की कहानियों में ही ढूंढा जा सकता है। विश्व की तमाम लुप्त-विलुप्त, अर्वाचीन और प्राचीनतम सभ्यताओं का आधार स्तम्भ उनसे जुड़ी कहानियाँ ही हैं। सभ्यताओं के अस्तित्व ओर उनकी संरचनाओं की पहचान का महत्वपूर्ण स्त्रोत कहानियाँ ही रही हैं। पौराणिक, नैतिक कथाओं के अंतर्गत कहानियों की लोकधर्मी परम्परा सदियों से अक्षुण है। आज जो सच है, कल वह इतिहास होना है। इस इतिहास को जानने का स्त्रोत तब कहानियाँ ही होगी।

चीन, मिश्र, सुमेरी, अक्कादी, अमेरिकी आदिवासियों की अजटेक-माया आदि सभी सभ्यताओं को उनसे संबंधित कहानियो के जरिये ही जाना जा सका है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में बात करें तो यह सहज ही कहा जा सकता है कि संसार का श्रेष्ठतम कथापीठ आरंभ से ही हमारा देश ही रहा है। वेद, पुराणों की कथाएं आज भी अतीत की समृद्ध धरोहर है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। इनमें अलौकिक प्रसंग और विवरण ही नहीं है बल्कि प्राचीन जीवन जीने की शैली भी एक प्रकार से समाहित है।

कथा साहित्य की प्रमुख विशेषता यह है कि वह नैसर्गिक सत्यों को गौण मानते हुए उन घटनाओं को अधिक महत्व देता है जो उन नैसर्गिक सत्यों को एक दूसरे से मिलाती है। घटनाओं पर मनुष्य की विशिष्ट प्रतिक्रिया उसके विशिष्ट चरित्र के कारण होती है। मनुष्य या पात्रों के साथ जो घटनाएँ घटित होती हैं वे किसी स्थान काल एवं वातावरण

में ही घटित होती है। अत: देश, काल व वातावरण को स्वत: ही कहानियो में महत्व प्राप्त हो जाता है, चूंकि इनका व्याख्याकार कहानीकार होता है।

हिन्दी साहित्य में कहानी का विधिवत आविर्भाव बीसवीं सदी के आरंभ से साहित्य पत्रकारिता के आरंभ के साथ ही माना जाता है। बीसवीं सदी के पहले दशक में 1900 में किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इदुमती', 1902 में मास्टर भगवानदास की 'प्लेग की चुड़ैल', 1903 में रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' और 1907 में राजेन्द्रबाला घोष 'बंगमहिला' द्वारा लिखी गयी 'दुलाईवाली' कहानियाँ प्रमुख रूप से सामने आई। इन कहानियों के बाद हिन्दी कहानी ने परिपक्वता की जो राह पकड़ी वह आज तक बदस्तुर जारी है।

स्वतंत्रता से पहले देश में प्रगतिशील आंदोलन ही एक मात्र प्रमुख कहानी आंदोलन रहा परन्तु स्वतंत्र भारत में हमारे यहां 'नयी कहानी', 'सचेतन कहानी', 'अकहानी', 'सहज कहानी', 'सक्रिय कहानी', 'समान्तर कहानी' आदि बहुत से कहानी आंदोलन और नारों के बीच से कहानी को गुजरना पड़ा। इनमें' से कुछ ही आंदोलन ऐसे थे जिसने कहानी पर गहरा प्रभाव डाला बाकी के ऐसे थे जो क्षणिक और काफी हद तक व्यक्ति प्रधान रहकर अधिक चर्चा नहीं पा संके। हिन्दी कहानी को आंदोलनो ने क्या दिया और इनसे कहानी कितनी विकसित हुई इसके बारे में तो ठीक से कुछ नही कहा जा सकता परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कहानी के शिल्प स्वरूप को निर्धारित करने में इन आंदोलनों से जरूर मदद मिली है।

समकालीन कहानी बढ़ते आतंकवाद, बाजारवाद, धार्मिक उन्माद, मीडिया, जातिवाद के नये आतंक और निरंतर बदलते जीवन मूल्यों पर करारा प्रहार करती मनुष्य की उस संवेदना से साक्षात्कार कराती है जिसमें भौतिकता की भागम भाग में जीवन मूल्य निरंतर तिरोहित होते जा रहे हैं। कहानी की बनावट तथा अभिव्यक्ति की जटिल भंगिमाओं में अब कहानीकार जीवन की अबूझ परतों को उभारते हुए वर्तमान में परम्परागत मान्यताओ में व्याप्त जड़ और रूढ़िवादी तत्व को उजागर करते कहानियों को नये भाव बोध के तेवर कहानीकारों ने दिए हैं।

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 हिन्दी कहानी की परम्परा पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

2 हिन्दी कथा साहित्य में कहानी आंदोलनों की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए कहानी के विभिन्न आंदोलनों को संक्षेप में समझाइए।

3 कहानी के स्वरूप विधान से आप क्या समझते हैं?

4 नयी कहानी के बारे में आलोचनात्मक टिप्पणी कीजिए। नयी कहानी की मुख्य प्रवृत्तियां क्या रही है?

5 आधुनिक कहानी में शिल्प एवं विचार की दृष्टि से क्या परिवर्तन आया है? समझाइए।

13.9 संदर्भ ग्रंथ

1 विजेन्द्र स्नातक; हिन्दी साहित्य का इतिहास

2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्य का इतिहास

3 हेतु भारद्वाज; हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास
4 कमलेश्वर; कथा संस्कृति
5 रामस्वरूप चतुर्वेदी; हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास
6 सुरेन्द्र तिवारी; कथारंग
7 डॉ. रामचन्द तिवारी; हिन्दी का गद्य साहित्य

इकाई-14 प्रेमचन्द कृत 'शतरंज के खिलाड़ी' का अध्ययन व विवेचन

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 प्रेमचन्द का साहित्यिक परिचय

14.3 शतरंज के खिलाड़ी कहानी का सारांश

14.4 शतरंज के खिलाड़ी (संवेदनागत विवेचन)

14.4.1 विलासिता से युक्त जीवन

14.4.2 राजनीतिक चेतना का अभाव

14.4.3 ऐतिहासिक यथार्थ का उद्घाटन

14.5 शतरंज के खिलाड़ी (शिल्पगत विवेचन)

14.5.1 शैली

14.5.2 संवाद

14.5.3 भाषा

14.6 व्याख्या

14.7 शब्दावली

14.8 सारांश

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.10 संदर्भ ग्रन्थ

14.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम प्रसिद्ध कथाकार प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- कहानी को संक्षेप में जान सकेंगे।
- प्रेमचन्द का साहित्यिक परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- कहानी की मूल संवेदना को समझ सकेंगे।
- कहानी की शिल्पगत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- कहानी का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- कहानी के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा साहित्य को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। उन्होंने तीन सौ के लगभग कहानियों की रचना की। उनकी कहानियों की विषय वस्तु जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बद्ध है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज मैं सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि उस

समय भारत अंग्रेजों का गुलाम था और सामाजिक जड़ता का शिकार। ऐसी स्थिति में प्रेमचन्द कलम का सिपाही की भूमिका का निर्वाह कर रहे थे। वे उन बिन्दुओं से आम जनता को अवगत करा रहे थे जिनके कारण भारतीय जनता को ब्रिटिश दासता को स्वीकार करना पड़ा था। 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में ऐसे ही ऐतिहासिक सत्य का उद्घाटन हुआ है।

14.2 प्रेमचन्द का साहित्यिक परिचय

प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य में 'उपन्यास सम्राट' के नाम से विख्यात हैं लेकिन इसके साथ-साथ उन्होंने अपनी उच्च कोटि की प्रतिभा द्वारा कहानी साहित्य को केवल ठोस आधार भूमि ही प्रदान नहीं की अपितु उसे सुसमृद्ध भी बनाया। छत्तीस वर्षो के रचनाकाल में प्रेमचन्द ने कई उपन्यास और लगभग 300 कहानियॉ लिखीं। उनके उपन्यास हैं - देवस्थान रहस्य, प्रेमा, रूठी रानी, किशना, सेवासदन, वरदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, प्रतिज्ञा, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान, मंगलसूत्र (अपूर्ण)।

उन्होंने अपने आरम्भिक उपन्यासों से ही अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का संकेत दे दिया था। 1918 में प्रकाशित 'सेवासदन' उनकी उपन्यास यात्रा का महत्वपूर्ण बिन्दु है। 'सेवासदन' में नारी जीवन की त्रासदी के मार्मिक चित्र हैं। उन्होंने इस उपन्यास में दहेज की समस्या, अनमेल विवाह की समस्या पर प्रकाश डाला है और वेश्याओं की स्थिति में सुधार पर बल दिया है। 'निर्मला' उपन्यास में भी दहेज और अनमेल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों की भयावहता का अंकन किया है।

'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में किसान जीवन के व्यापक चित्र हैं। ये उपन्यास भारतीय ग्राम्य जीवन की गाथा हैं। 'गोदान' उपन्यास में महाजनी सभ्यता के विकृत स्वरूप को उजागर करते हुये कृषक जीवन के सम्पूर्ण यथार्थ को प्रस्तुत किया है।

'रंगभूमि' आकार की दृष्टि से प्रेमचन्द का सबसे बड़ा उपन्यास है। इसमें एक ओर गरीबों और दलितो का चित्रण है वहीं दूसरी ओर पूंजीपति, ब्रिटिश शासन और सामन्तों के अन्याय और अत्याचार का अंकन। इसमें ग्रामीण जीवन की सरलता, स्वच्छता, औद्योगिक सभ्यता की जटिलता, पूंजी का केन्द्रीकरण और नैतिक पतन का उल्लेख है। 'कायाकल्प' में सांम्प्रदायिक समस्या का चित्रण किया गया है। 'गबन' उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग के झूठे बड़प्पन एवं दिखावे की भावना, नारियों की आभूषण प्रियता, भारतीय समाज में नारी की स्थिति तथा देशभक्तों के प्रति पुलिस के अमानवीय व्यवहार के चित्र मौजूद हैं। 'मंगलसूत्र' के चार अध्याय लिखने के पश्चात् प्रेमचन्द की लेखनी थम गयी क्योंकि इसकी कथा पूर्ण होने से पहले ही प्रेमचन्द की मृत्यु हो गई और हिन्दी उपन्यास साहित्य एक महत्वपूर्ण कृति से वंचित हो गया। हिन्दी उपन्यास साहित्य को सुदृढ़ करने में प्रेमचन्द का अतुलनीय योगदान है।

प्रेमचन्द ने तीन सौ के लगभग कहानियां लिखकर हिन्दी कहानी के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया। 'नमक का दरोगा', 'पंच परमेश्वर', 'ईदगाह', 'नशा',' मंत्र', 'बूढ़ी काकी', 'बड़े घर की बेटी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'पूस की रात', 'सद्गति', 'दूध का दाम', 'कफन' उनकी बेहद चर्चित कहानियों में गिनी जाती हैं। उनके कहानियों के संग्रह

'सप्त सरोज', 'नव निधि', 'प्रेरणा', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेम प्रसून', 'प्रेम द्वादशी' 'सोजे वतन', 'समर यात्रा', 'कफन', 'मानसरोवर', 'गुप्त धन' आदि नामों से प्रकाशित हुये हैं। उनकी कहानियों से भारतीय जन जीवन की जीवन्त तस्वीर पाठक के सामने उभरकर आ जाती है।

प्रेमचन्द ने अपने पूरे लेखकीय जीवन में तीन नाटकों की रचना की थी। ये नाटक लोकप्रिय भले ही कम हुये लेकिन सामाजिक प्रतिबद्धता से युक्त हैं। उनकें नाटक निम्नलिखित हैं - संग्राम, कर्बलां, प्रेम की वेदी।

प्रेमचन्द अपने समाज एवं देश के प्रति अत्यन्त जागरूक थे। रचनात्मक लेखन के साथ-साथ वैचारिक लेखन भी करते रहे। अपने लेखन के आरम्भ से ही वे जमाना, मर्यादा आदि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में लेख, निबन्ध एवं टिप्पणियॉ लिखते रहे। 'हंस' और 'जागरण' के संपादन के द्वारा उन्होनें सक्रिय पत्रकारिता में भी योगदान दिया। अपने समय के हर सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक घटना क्रम को उन्होनें पैनी दृष्टि से देखा और विचार प्रकट किये। उनके लेखों, निबन्धों और टिप्पणियों के संग्रह 'विविध प्रसंग (तीन भाग)', 'साहित्य का उद्देश्य', 'कुछ विचार दो भाग' नाम से उपलब्ध हैं।

14.3 शतरंज के खिलाड़ी कहानी का सारांश

यह कहानी ऐतिहासिक धरातल पर लिखी गई है। इस कहानी में उस समय की घटना का वर्णन है जब अवध के शासक नवाब वाजिद अली शाह थे और उनकी राजधानी लखनऊ विलासिता के रंग में डूबी हुई थी। राजा और रंक सभी विलासिता का जीवन जी रहे थे। समाज और देश की किसी को परवाह नहीं थी। नवाब के दो जागीरदार मिर्जा सज्जाद अली और मीर रोशन अली अपना अधिकांश समय शतरंज खेलने में व्यतीत करते थे। दोनों मित्र सुबह से लेकर देर रात तक खेलते रहते थे। यह खेल मिर्जा के घर खेला जाता था क्योंकि उनके घर कोई बुजुर्ग नहीं था लेकिन मिर्जा की बेगम इससे बहुत चिढ़ती थी। एक दिन सिर दर्द का बहाना कर उसने मिर्जा को अंदर बुलाया लेकिन मिरजा जाना नहीं चाह रहे थे। क्योंकि वे मीर से बाजी जीत रहे थे लेकिन मीर ने उन्हें अंदर भेज दिया। मिरजा साहब बेगम की नाराजगी से बचने के लिये इस खेल के लिये मीर को जिम्मेदार ठहरा देते थे कि मैं तो मजबूरी में खेल रहा हूँ। अतएव उनका गुस्सा मीर साहब पर ज्यादा था। इसलिए मिरजा के बहुत मना करने पर भी वे दीवानखाने के अन्दर गयीं और शतरंज की बाजी उलट दी और कुछ मोहरे तख्त के नीचे कुछ बाहर फेंक दिये। मीर साहब ने मोहरे फेंके जाते देखकर भॉप लिया कि बेगम बहुत गुस्से में है और तुरन्त घर के लिए रवाना हो गयें।

इस घटना के उपरान्त शतरंज की बाजी मीर साहब के यहॉ जमने लगी। लेकिन मीर साहब की पत्नी चाहती थी कि वे घर से बाहर ही रहें ताकि उन्हें अपने प्रेमी से मिलने में कोई असुविधा न हो। इसी तरह घर के नौकर - चाकर भी काम - काज से बचने के लिए चाहते थे कि मीर साहब घर पर शतरंज न खेलें। बेगम साहिबा का प्रेमी एक दिन सरकारी घुड़सवार बनकर मीर साहब के घर पहुँचा और यह संदेश दिया कि उन्हें मोर्चे

पर जाना होगा। यह सुनकर मीर साहब घबरा गये। उन्होंने तय किया कि वे घर पर नहीं मिलेंगे और गोमती के पार शतरंज खेलेंगे।

दोनों मित्र गोमती के किनारे शतरंज के खेल में मग्न थे और अंग्रेजों की फौजें लखनऊ पर कब्जा करने के लिये बढ़ती जा रही थीं। नवाब वाजिद अली शाह कम्पनी की फौज के द्वारा बिना खून बहाये गिरफ्तार कर लिये जाते हैं। सेना मिरजा ओर मीर के सामने गिरफ्तार बादशाह को लेकर निकल जाती है लेकिन उन पर कोई असर नहीं पड़ता और शतरंज की बाजी खेलने में पुन: मशगूल हो जाते हैं। खेल में मोहरों को लेकर उनके बीच विवाद हो जाता है। दोनों में पहले वाक् - युद्ध होता है फिर तलवारें निकल आती हैं और दोनों की लाशें बिछ जाती हैं। अपने बादशाह के लिए जिनकी ऑखो में एक बूँद ऑसू न निकला, उन दोनों प्राणियों ने शतरंज के वजीर की रक्षा में प्राण दे दिये।

14.4 शतरंज के खिलाड़ी (संवेदनागत विवेचन)

प्रेमचन्द की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' 'माधुरी' में अक्टूबर 1929 ई० में प्रकाशित हुई। भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन कर चौतरफा शोषण का शिकार हो गया। भारत की इस दुर्दशा के लिये काफी हद तक भारतीय स्वयं जिम्मेदार थे। प्रेमचन्द ने अपनी इस कहानी में यथार्थ के धरातल पर इसी कटु सत्य का उद्घाटन किया है।

14.4.1 विलासिता से युक्त जीवन

प्रेमचन्द ने 'शतरंज के खिलाड़ी' के आरम्भ में ही स्पष्ट कर कर दिया है कि चारों तरफ विलासिता का वातावरण था। क्या राजा क्या प्रजा सभी विलासिता युक्त जीवन शैली के रंग में रगे हुए थे। छोटे-बडे, गरीब-अमीर सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता थ, तो कोई अफीम की पीनक में ही मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद - प्रमोद का प्राधान्य था। शासन विभाग में, साहित्य - क्षेत्र में, सामाजिक अवस्था में, कला - कौशल में, उद्योग - धन्धों में, आहार - व्यवहार में, सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राज कर्मचारी विषय वासना, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलावत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमें, इत्र, मिस्सी और उबटन का कारोबार करने में लिप्त थे। निश्चित रूप से यह किसी जीवन्त समाज की तस्वीर नहीं है बल्कि जर्जर व्यवस्था का खाका है। विलासिता से युक्त इस वातावरण में स्वाभाविक है कि बदहाली होगी और संघर्ष क्षमता का हास। ऐसी स्थिति किसी भी विदेशी शासक के लिये अपना राज्य स्थापित करने के लिये सर्वथा अनुकूल होती है। अंग्रेजों ने भारत के अनेक क्षेत्रों में व्याप्त इस दशा का भरपूर फायदा उठाया और बहुत कम संघर्ष करके अपनी सत्ता स्थापित कर ली।

14.4.2 राजनीतिक चेतना का अभाव

भारतीय समाज में राजीतिक चेतना का अभाव था। इसी के परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने आसानी से सत्ता स्थापित कर ली। इस कटु सत्य का उद्घाटन 'शतरंज के खिलाड़ी' में बड़ी सफलता के साथ किया गया है। अवध के विलासी नवाब वाजिद अली शाह, उनके अधिकारियों और समाज को यह खबर ही नहीं थी कि अंग्रेज उनका राज्य हड़पने का

प्रयास कर रहे हैं। कुल मिलाकर सारा समाज देश प्रेम की भावना से शून्य एवं राजीतिक चेतना के अभाव में जीवन व्यतीत कर रहा था। मिरजा और मीर अवध के राज्य के जागीरदार हैं और यह स्वाभाविक है कि जागीर के बदले राज्य की रक्षा करना उनका दायित्व है। दोनों शतरंज के खेल में लिप्त रहते हैं। शतरंज के खेल में माहिर होने से यह साफ संकेत मिल जाता है कि दोनो की बुद्धि तीव्र है लेकिन देश पर आये संकट के लिए अपनी बुद्धि का इस्तेमाल नहीं करते। दोनों अपने दायित्वों को दरकिनार कर शतरंज के खेल के लिए घर द्वार, बेगम, खाना-पीना तक त्याग देते हैं। कहानी में दर्शाया गया है कि अंग्रेजों की फौजें लखनऊ की ओर बढ़ रही हैं लेकिन उन्हें इसकी कोई चिन्ता नहीं है वे तो शतरंज के खेल में मग्न हैं। नवाब वाजिद अली शाह अंग्रेज फौज द्वारा गिरफ्तार कर लिये गए। फौज उन्हें गिरफ्तार कर मीर और मिरजा जैसे सामन्तों के सामने से निकल गई और वे चुपचाप देखते रहे और फिर शतरंज के खेल में मशगूल हो गये। प्रेमचन्द ने नवाब की गिरफ्तारी पर अपने विचार इस तरह व्यक्त किये हैं - "नवाब वाजिद अली पकड़ लिये गये थे और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लिये जा रही थी। शहर में न कोई हलचल थी, न मार काट। एक बूंद भी खून नही गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शान्ति से, इस तरह खून बहे बिना न हुई होगी। यह वह अंहिसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं। यह वह कायरपन था, जिस पर बड़े- बड़े कायर भी ऑसू बहाते हैं। अवध के विशाल देश का नवाब बंदी चला जाता था और लखनऊ ऐश की नींद में मस्त था। यह राजनीति अध: पतन की चरम सीमा थी।"

प्रेमचन्द ने कहानी के अंत में एक घटना घटित करायी है जो पूरी स्थिति को स्पष्ट कर देती है। शतरंज के खेल में मिरजा और मीर में विवाद हो जाता है। यह विवाद इस सीमा तक बढ़ जाता है कि दोनों तलवारें निकाल लेते हैं और एक दूसरे पर प्रहार कर देते हैं। इसके परिणामस्वरूप दोनों की मृत्यु हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि दोनों में व्यक्तिगत वीरता का अभाव नहीं है। इसे राजनीतिक चेतना का अभाव ही समझना उचित होगा कि जिनकी ऑखो से अपने बादशाह की गिरफ्तारी के लिये एक ऑसू नहीं निकला शतरंज के वजीर की रक्षा के लिये प्राणों का बलिदान कर दिया।

14.4.3 ऐतिहासिक यथार्थ का उद्घाटन

'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी का कथानक ऐतिहासिक धरातल लिए हुए है। ऐतिहासिक तथ्य बताते हैं कि वाजिद अली शाह विलासी प्रवृत्ति का था। यही हाल राज्य के कर्मचारियों और अधिकारियों का भी था। वह ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार था। इसके बावजूद जनरल आउट्रम ने 7 फरवरी, 1856 को चीफ कमिश्नर की हैसियत से लखनऊ शहर पर अधिकार कर लिया और अवध का शासन अपने हाथ में ले लिया। बादशाह अपने परिवार के साथ कलकत्ता रवाना हो गए। जनरल आउद्रम ने गर्वनर जनरल लार्ड डलहौजी को लिखा कि सभी शान्तिपूर्ण ढ़ग से हुआ। ब्रिटिश सेनायें आगे बढ़ी और सभी ओर शान्ति थी। ऐतिहासिक तथ्य यह भी बताते हैं कि वाजिद अली शाह के मन में शुरू से ही अंग्रेजों के विरूद्ध सशस्त्र विरोध का भाव उत्पन्न नहीं हुआ था। जनरल आउट्रम के

आगमन पर बादशाह ने अपने अंगरक्षकों एवं प्रहरियों तक को निःशस्त्र करा दिया था और अपनी सेनाओं को अंग्रेजो की आज्ञा मानने का आदेश दिया था। इतिहासकारों की दृष्टि में अवध सल्तनत के पतन के लिये केवल वाजिद अली शाह ही जिम्मेदार नहीं था बल्कि अवध के समाज में निष्क्रियता और राजनीतिक चेतना के अभाव ने इसे अवश्यम्भावी बना दिया।

14.5 शतरंज के खिलाड़ी (शिल्पगत विवेचन)

प्रेमचन्द की कहानियों की लोकप्रियता में उनके शिल्प का भी योगदान है। वे अत्यन्त सरल शैली एवं भाषा में कहानी लिखने में सिद्धहस्त थे।

14.5.1 शैली

शतरंज के खिलाड़ी कहानी में लेखक ने वर्णनात्मक शैली अपनायी है। वर्णनात्मक शैली से आशय यह है कि लेखक ने कहानी मे वर्णन को प्रमुखता प्रदान की है। कहानी में प्रेमचन्द ने इतिहास को आधार बनाकर अंग्रेजों के समय के लखनऊ के विलासी जीवन की गतिविधियों का वर्णन दो पात्रों मीर साहब और मिरजा जी के माध्यम से किया है। इस क्रम में पहले लखनऊ के वातावरण का फिर मिरजा और मीर की हैसियत का, उनके पारिवारिक वातावरण का, उनकी मनःस्थितियों का वर्णन लेखक ने किया है। प्रेमचन्द के कहानी शिल्प की यह विशेषता रही है कि वे वर्णन करते - करते स्वयं पाठकों से बात करने लगते हैं। ऐसे स्थलों पर उनके वर्णन टिप्पणियों की शक्ल ले लेते हैं। यही टिप्पणियॉ कई स्थलों पर चित्रों का रूप भी ले लेती हैं - ऐसे स्थलों पर चित्रात्मकता का गुण प्रभावी रूप में दृष्टिगत होता है जैसे खंडहर की शाम का चित्र - "अंधेरा हो चला था। बाजी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने - अपने सिंहासनों पर बैठे हुये मानो इन दोनों वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। खण्डहर की टूटी हुई मेहराबें, गिरी हुई दीवारें, और धूलि-धूसरित मीनारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती थीं।" उक्त वर्णन में एक के बाद एक तथ्य प्रस्तुत होता हुआ ऑखों के समक्ष चित्र सा उपस्थित करता चलता है। वर्णनात्मकता एवं चित्रात्मकता शैली के अतिरिक्त लेखक ने नाटक में प्रयुक्त संवाद शैली का प्रयोग भी कहानी में किया है।

14.5.2 संवाद

संवाद प्रमुखतः नाटक का गुण है। किन्तु कहानी में संवाद पात्रों की मनोदशा को व्यक्त करने के साथ साथ कहानी को भी आगे बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। 'शतरंज के खिलाड़ी' में भी प्रेमचन्द ने संवादों का उचित प्रयोग किया है। अधिकांश संवाद मीर और मिरजा के हैं। बीच-बीच में अन्य पात्रों के भी एक - दो संवाद आये हैं। कहानी के संवाद पात्रों की भाषा एवं उनकी सामाजिक और मानसिक स्थिति के अनुकूल हैं। मीर और मिरजा दोनों ही उर्दू भाषी हैं साथ ही वातावरण भी लखनऊ का है इसलिये दोनों पात्रों की भाषा में उर्दू के शब्दों का प्रयोग अधिक है -

"मिरजा - अजी, जाइए भी, गाजीउद्दीन हैदर के यही बावरची का काम करते - करते उम्र गुजर गयी, आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नहीं है।

मीर - क्यों अपने बुजुर्गों के मुँह में कालिख लगाते हो - वे ही बावरची का काम करते होंगे। यहाँ तो हमेशा बादशाह के दस्तरख्वान पर खाना खाते चले आए हैं।"

आकारगत लघुता एवं नाटकीयता संवादो का प्रमुख त्तव है। कहानी के संवादों में ये विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं -

"मीर - धाँधली आप करते है। हार - जीत तकदीर से होती है, धाँधली करने से कोई नहीं जीत्ता। मिरजा - तो इस बाजी में तो आप की मात हो गई।

मीर - मुझे क्यों मात होने लगी।

मिरजा - आप मुहरा उसी घर में रख दीजिए, जहाँ पहले रखा था।

मीर - वही क्यों रखूँ? नहीं रखता।"

14.5.3 भाषा

भाषा कहानी का अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। भाषा के माध्यम से ही लेखक कथ्य को वयक्त करता है। कहानी की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि भाषा पात्रों के परिवेश के अनुकूल हो। प्रेमचन्द की कहानियों की भाषा पात्रों और परिवेश के अनुकूल रहती है। कहानी के पात्र मुस्लिम परिवेश के उच्च वर्ग से संबंध रखते हैं इस कारण भाषा में उर्दू के शब्दों का बाहुल्य है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में आकर्षण उत्पन्न हो गया है। वाक्य छोटे और प्रभावशील हैं।

14.6 व्याख्या

व्याख्या खण्ड -1

वाजिद अली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे - बड़े, गरीब-अमीर सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफीम की पीनक ही में मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद - प्रमोद का प्राधान्य था। शासन - विभाग में, साहित्य - क्षेत्र में, सामाजिक अवस्था में, कला - कौशल में, उद्योग - धन्धों में, आहार - व्यवहार में सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी।

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत गद्यांश 'शतरंज के खिलाड़ी' शीर्षक कहानी से उद्धृत है। इसके लेखक प्रसिद्ध कथाकार प्रेमचन्द हैं। इस प्रसंग में लेखक ने लखनऊ के विलासिता से युक्त जीवन का वर्णन किया है।

व्याख्या -

प्रेमचन्द वर्णन करते हुए लिखते हैं कि यह वह समय था जब अवध पर नवाब वाजिद अली शाह का शासन था। अवध की राजधानी लखनऊ में विलासिता का वातावरण था। यह विलासिता इतनी बढ़ गयी थी कि क्या छोटे क्या बड़े अर्थात गरीब अमीर - सभी विलासिता युक्तं जीवन में निमग्न थे। कोई नृत्य और गान का दरबार लगाता था अर्थात नाच गाने में ही अपना समय व्यतीत करता था तो कोई अफीम के नशे में डूबा रहता था। प्रेमचन्द आगे वर्णन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में

विलासिता व्याप्त थी। यह विलासिता शासन व्यवस्था, साहित्य, कला, उद्योग-धंधों और दैनिक किया-कलापों में भली-भांति परिलक्षित होती थी।

विशेष -

1 वर्णनात्मक शैली का प्रयोग कर लखनऊ के त्तकालीन वातावरण से परिचित कराया है।

2 यह वर्णन ऐतिहासिक यथार्थ है।

3 भाषा सहज बोलचाल की है तथा प्रवाहमान है।

व्याख्या खण्ड - 2

राज्य में हाहाकार मचा हुआ था। प्रजा दिन दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फरियाद सुनने वाला न था। देहातों की सारी दौलत लखनऊ में खिंची आती थी और वह वेश्याओं में, भॉडों में और विलासिता के अन्य अंगों की पूर्ति में उड़ जाती थी। अंग्रेज कम्पनी का ऋण दिन-दिन बढ़ता जाता था। कमली दिन-दिन भीग कर भारी होती जाती थी। देश में सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी वसूल न होता था। रेजीडेंट बार-बार चेतावनी देता था, पर यहॉ तो लोग विलासिता के नशे में चूर थे, किसी के कानों पर जूँ न रेंगती थी।

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत गद्यांश 'शतरंज के खिलाड़ी' शीर्षक कहानी से उद्धृत है। इसके लेखक प्रसिद्ध कथाकार प्रेमचन्द हैं। इस प्रसंग में लेखक ने लखनऊ के विलासिता से युक्त जीवन का वर्णन किया है। अवध राज्य ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्ज तले दबा हुआ था लेकिन यहॉ के हुक्मरान विलासिता के मद में चूर थे।

व्याख्या

प्रेमचन्द अवध राज्य की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि राज्य में अराजकता का वातावरण था प्रजा का खूब शोषण किया जा रहा था। जनता पर होने वाले अत्याचार की कहीं कोई सुनवाई नहीं थी। शासक वर्ग विलासिता में डूबा हुआ था वह गरीब किसानों का शोषण करके धन एकत्र करता था और गॉव की इस पूंजी को वेश्याओं पर, भॉड़ों पर तथा विलासिता के अन्य अंगों पर खर्च करता था। शासकों के विलासिता में डूबे होने के कारण अवध के गॉवों की श्रम से कमाई गयी पूंजी लखनऊ में खर्च होती थी। यही नहीं शासकों की विलासितापूर्ण जीवन शैली के परिणामस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी का कर्ज भी दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। यह कर्ज राज्य पर भारी बोझ बन गया था। राज्य में अराजकता और उचित व्यवस्था के न होने के कारण सालाना कर भी वसूल नहीं हो पाता था। अंग्रेज रेजीडेंट इस अव्यवस्था के लिए यहॉ के शासकों को निरन्तर चेतावनी देता था लेकिन विलासिता में डूबे होने के कारण इन पर कोई असर नहीं होता था। अवध की स्थिति इस विलासी वातावरण के परिणामस्वरूप शोचनीय हो गयी थी।

विशेष -

1 प्रेमचन्द ने अवध में व्याप्तं अराजकता एवं कुव्यवस्था का चित्र प्रस्तुत किया है।

2 वर्णनात्मक शैली का प्रयोग कर अवध के तत्कालीन वातावरण से परिचित कराया है।

3 यह वर्णन ऐतिहासिक यथार्थ है।

4 भाषा बोलचाल की सहज भाषा है तथा परिवेश को सटीक रूप में प्रस्तुत करने में सहायक है। 'कान पर जगूँ न रेंगना' मुहावरे का प्रयोग भाषा को प्रभावशाली बनाता है।

व्याख्या खण्ड - 3

शहर में न कोई हलचल थी, न मार-काट। एक बूँद भी खून नहीं गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शांति से, इस तरह खून बहे बिना न हुई होगी। यह वह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं। यह वह कायरपन था, जिस पर बड़े-बड़े कायर भी ऑसू बहाते हैं।

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत पंक्तियॉ कथा सम्राट प्रेमचन्द की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' से उद्धृत है। प्रस्तुत पंक्तियों में उस समय का वर्णन है जब लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह को अंग्रेजी फौज पकड़ कर ले जा रही है। इतने बड़े घटनाकम पर भी लखनऊ में कोई हलचल नहीं होती। अपने बादशाह को गिरफ्तार होते देखकर भी लखनऊ निवासियों में आत्मसम्मान की प्रतिकिया नहीं होती। भारतीयों की इसी आत्महीनता पर टिप्पणी करते हुयें लेखक ने ये वचन कहे हैं -

व्याख्या -

आत्मसम्मान व राष्ट्रीयता की भावना से युक्त हर देश की प्रजा अपने राज्य व अपने राजा की रक्षा के लिये प्रतिबद्ध होती है। बादशाह के शत्रुओं के हाथ में पड़ जाने पर समस्त प्रजा में हलचल मच जाती है। जनता अपने बादशाह को छुड़ाने के लिये अपनी जान की बाजी तक लगा देती है। जागरूक प्रजा के यही लक्षण होते हैं। किन्तु 'यथा राजा यथा प्रजा' की कहावत को चरितार्थ करती लखनऊ की प्रजा भी अपने नवाब की भांति विलासिता में डूबी हुई थी, उसे अपने बादशाह की कोई परवाह नहीं थी। न ही उसमें कोई सामाजिक, राजनीतिक चेतना थी। इसी कारण बादशाह की गिरफ्तारी का उस पर कोई प्रभाव नही पड़ा। वह अपने विलासिता के क्रियाकलाप में डूबी रही। किसी ने विरोध नहीं किया स्पष्टत: एक बूँद भी रक्त बहने का प्रश्न ही कहॉ था। लेखक टिप्पणी करता हुआ स्पष्ट करता है कि स्वाधीन देश में स्वाधीन प्रजा मे चेतना, ऊर्जा और स्वाभिमान जैसी भावनाऍ होती हैं जनता वास्तव में स्वाधीनता का अर्थ समझती है और वह अनुभव करती है कि राजा ही उनके सुख-शांति का रक्षक है, उसके विकास के लिए उत्तरदायी है यहॉ तक कि उसके स्वतंत्र अस्तिव की रक्षा भी राजा से ही संभव है। इस कारण प्रजा राजा का सम्मान करती है, उसे महत्व देती है। यदि राज्य अथवा राजा पर कोई विपत्ति आये तो प्रजा अपने राजा की रक्षा के लिये अपना प्राणोत्सर्ग तक खुशी-खुशी कर देती है। किन्तु विलासिता में डूबे इस राजा और इस प्रजा में ऐसी चेतना नहीं थी। फलत: प्रजा ने शांति से अपने राजा को गिरफ्तार हो जाने दिया। कोई विरोध नहीं हुआ तो कोई हिंसा भी नहीं हुई। लेखक खेद के साथ कहता है कि आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शांति से, इस तरह खून बहे बिना न हुई होगी। लेखक टिप्पणी करता है कि सामान्यत: हिंसा या विरोध न करने को हम अहिंसा मानते हैं, जो एक श्रेष्ठ मानवीय गुण माना जाता है। किन्तु लखनऊ की प्रजा का यह कार्य

अहिंसा नहीं कायरता थी। अहिंसा का आचरण करने वाला व्यक्ति मानवतावादी मूल्यों की रक्षा में स्वयं का बलिदान करता है। उसके इस कृत्य पर देवता प्रसन्न होते हैं। किन्तु लखनऊ की विलासी प्रजा का यह कृत्य उदासीनता और कायरता थी अहिंसा नहीं। यह उस कोटि की कायरता थी जिसे देखकर बड़े - बड़े कायर भी दुखी होते हैं।

विशेष -

1 उपर्युक्त अंश में लेखक ने युगीन त्रासदी और विलासी वर्ग की उदासीनता पर प्रकाश डाला है।

2 भाषा सरल, सहज और आम बोलचाल के निकट है।

3 वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

व्याख्या खण्ड - 4

दोनों दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल लीं। नवाबी जमाना था; सभी तलवार, पेशकब्ज कटार वगैरह बॉधते थे। दोनों विलासी थे, पर कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था - बादशाह के लिए, बादशाहत के लिए क्यों मरें; पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनों जख्म खा कर गिरे, और दोनों ने वहीं तड़प-तड़प कर जानें दे दीं। अपने बादशाह के लिए जिनकी ऑखों से एक बूँद ऑसू न निकला, उन्हीं दोनों प्राणियों ने शतरंज के वजीर की रक्षा में प्राण दे दिये।

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत पंक्तियॉ प्रसिद्ध कथाकार प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी से ली गयी हैं। इन पंक्तियों में कहानीकार ने उन स्थितियों की ओर संकेत किया है जिनके कारण अवध रियासत अंग्रेजों द्वारा हथिया ली गयी। नवाब वाजिद अली शाह अंग्रेजो द्वारा गिरफ्तार किये जाते हैं और उधर गोमती के तट पर उनके दो सामंत शतरंज के खेल में मग्न हैं।

व्याख्या -

प्रेमचन्द लिखते हैं कि मीर और मिरजा के मध्य शतरंज के खेल में विवाद हो जाता है और यह इस सीमा तक बढ़ जाता है कि वे कमर से तलवारें निकाल लेते हैं। प्रेमचन्द यही उनके चरित्र को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि दोनों विलासी थे परन्तु कायर नहीं थे। उनमें राजनीतिक चेतना का पतन हो गया था। देश प्रेम की भावना गायब थी। इसी कारण तो वे ब्रिटिश सेना से युद्ध करने के स्थान पर शतरंज के खेल में डूबे हुए थे। लेकिन दोनों में व्यक्तिगत वीरता का अभाव नहीं था। दोनों आपसी संघर्ष में जख्म खा कर गिर पड़ते हैं और वहीं तड़प-तड़प कर प्राण दे देते हैं। वास्तव में यह उन सामंतों के पतन का नमूना था जिनकी ऑखें से उस समय ऑसू भी नहीं निकला जब उनके बादशाह को अंग्रेजी सेना बंदी बनाकर ले जा रही थी लेकिन शतरंज के वजीर की रक्षा के लिए उन्होंने संघर्ष किया और प्राण त्याग दिये। अगर यही संघर्ष और बलिदान उन्होंने अपने राज्य के लिए किया होता तो अंग्रेज इतनी आसानी से अवध पर अपना अधिकार नहीं कर पाते।

विशेष -

1 इन पंक्तियों में उस ऐतिहासिक सत्य का उद्घाटन हुआ है जिसके कारण भारत ब्रिटिश दासता का शिकार हुआ।

2 प्रेमचन्द ने स्पष्ट किया है कि लोगों में वीरता की भावना तो थी लेकिन राजनीतिक चेतना का नितान्त अभाव था।

3 इन पंक्तियों में प्रेमचन्द ने बोलचाल की सहज भाषा का प्रयोग किया है। व्यंग्य का पुट इसे और प्रभावशाली बना देता है।

14.7 शब्दावली

रईस	–	अमीर
रंक	–	गरीब
दीवानखाना	–	अतिथिकक्ष
मशगूल	–	लिप्त रहना
दस्तरख्वान	–	खाना रखने के लिए प्रयुक्त होने वाला कपड़ा
वाक्	–	युद्ध वाद विवादमुँह से झगड़ा करना
मजलिस	–	सभा
पीनक	–	नशा
पेशकब्ज	–	छोटी कटार
फरियाद	–	प्रार्थना
दौलत	–	धन, सम्पत्ति
देहात	–	गॉव
धॉधली	–	बेईमानी
हैसियत	–	अधिकार, स्थिति
जर्जर	–	कमजोर

14.8 सारांश

प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा साहित्य के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया। उन्होंने इसे सामाजिक आधार प्रदान किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में न केवल समस्याओं को उठाया बल्कि उनका समाधान देने का भी प्रयत्न किया। वे अत्यन्त जागरूक लेखक थे। इसीलिए अपने समय के प्रत्येक घटनाक्रम पर उनकी पैनी निगाह थी। उनका इतिहास बोध भी अत्यन्त प्रबल था। इसी का परिणाम है कि वे अपने समय की समस्याओं और विसंगतियों को इतिहास के आइने में देखकर प्रस्तुत करते हैं। प्रेमचन्द जिस समय लेखन कार्य कर रहे थे, भारत ब्रिटेन की पराधीनता में जकड़ा हुआ था। इस पराधीनता से मुक्ति के लिए देश में स्वाधीनता संग्राम चल रहा था। प्रेमचन्द भी अपनी कलम के माध्यम से इस राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभा रहे थे। वे देश की जनता को जगाने का प्रयास कर रहे थे ताकि अधिक से अधिक लोग स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी करें। वे आम लोगों को उन कारणों से भी परिचित करा रहे थे जिनके

परिणामस्वरूप देश को गुलाम होना पड़ा। 'शतरंज के खिलाड़ी' प्रेमचन्द की इसी तरह की एक कहानी है।

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 प्रेमचन्द का साहित्यिक परिचय दीजिए।
2 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी का कथानक स्पष्ट कीजिए।
3 शतरंज के खिलाड़ी' कहानी की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।
4 "शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में ऐतिहासिक यथार्थ का चित्रण हुआ है।" इस कथन पर विचार प्रकट कीजिए।
5 "प्रेमचन्द ने 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में विलासी सामंतवर्ग के चरित्र का सटीक उद्घाटन किया है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
6 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी के शिल्पगत वैशिष्टय को रेखांकित कीजिए।
7 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी की समीक्षा कीजिए।

14.10 संदर्भ गन्थ

1 डॉ. कमल किशोर गोयनका एवं डॉ. लोठार लुत्स; प्रेमचन्द और शतरंज के खिलाड़ी, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली
2 डॉ. राम विलास शर्मा; प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
3 अमृतराय; प्रेमचन्द: कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
4 प्रेमचन्द; प्रेमचन्द के विचार भाग - 2, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
5 इन्द्रनाथ मदान; प्रेमचन्द प्रतिभा, सरस्वती प्रेस, नई दिल्ली
6 ए. अरविंदाक्षन (संपादक); प्रेमचन्द के आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

इकाई-15 जयशंकर प्रसाद कृत 'मधुआ' कहानी का अध्ययन व विवेचन

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 मूल पाठ -मधुआ
15.2 प्रस्तावना
15.3 जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक परिचय
15.4 जयशंकर प्रसाद की कहानी कला
15.5 'मधुआ' कहानी का सारांश
15.6 'मधुआ' कहानी का प्रतिपाद्य (संवेदना)
15.7 'मधुआ' कहानी का शिल्प
15.8 सन्दर्भ एवं प्रसंग सहित व्याख्या
15.9 शब्दावली
15.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.11 संदर्भ ग्रंथ

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी-

- हिन्दी गद्य की प्रमुख विधा कहानी के विषय में जान सकेंगे।
- जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- कहानीकार प्रसाद तथा उनकी कहानी कला से परिचित होंगे।
- 'मधुआ' कहानी के आधार पर कहानी की विश्लेषण पद्धति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- कहानी के शिल्प से परिचित होंगे।
- शराबी के चरित्र के माध्यम से मानव की सबलताओं तथा दुर्बलताओं के विषय में जान सकेंगे।

15.1 मूल पाठ - मधुआ

आज सात दिन हो गये, पीने की कौन कहे, छुआ तक नहीं! आज सातवाँ दिन है सरकार! तुम झूठे हो। अभी तो तुम्हारे कपड़े से महक आ रही है।

वह ..... वह तो कई दिन हुए सात दिन से ऊपर- कई दिन हुए अँधेरे में बोतल उँड़ेलने लगा था। कपड़े पर गिर जाने से नशा भी नहीं आया। और आपको कहने का..... क्या कहूँ .....सच मानिये। सात दिन- ठीक सात दिन से एक बूँद भी नहीं।

ठाकुर सरदार सिंह हँसने लगे। लखनऊ में लड़का पढ़ता था। ठाकुर साहब भी कभी-कभी वहीं आ जाते। उनको कहानी सुनने का चसका था। खोजने पर यही शराबी मिला। वह रात को, दोपहर में, कभी-कभी सबेरे भी आ जाता। अपनी लच्छेदार कहानी सुनाकर ठाकुर का मनोविनोद करता।

ठाकुर ने हँसते हुए कहा-तो आज पियोगे न!

झूठ कैसे कहूँ आज तो जितना मिलेगा, सब पिऊँगा। सात दिन चने-चबेने पर बिताये हैं किस लिए। अद्भुत! सात दिन पेट काटकर आज अच्छा भोजन न करके तुम्हें पीने की सूझी है! यह भी.. सरकार! मौज-बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दुःखपूर्ण जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी में रूखे दिन काट लिये जा सकते हैं।

अच्छा आज दिन-भर तुमने क्या-क्या किया है?

मैंने?-अच्छा सुनिये-सबेरे कुहरा पड़ता था, मेरे धुआँ से कम्बल सा वह भी सूर्य के चारों ओर लिपटा था। हम दोनों मुँह छिपाये पड़े थे।

ठाकुर साहब ने हँसकर कहा-अच्छा तो इस मुँह छिपाने का कोई कारण?

सात दिन से एक बून्द भी गले न उतरी थी। भला मैं कैसे मुँह दिखा सकता था। और जब बारह बजे धूप निकली तो फिर लाचारी थी। उठा, हाथ-मुँह धोने में जो दुःख हुआ, सरकार वह क्या कहने की बात है। पास में पैसे बचे थे। चना चबाने से दाँत भाग रहे थे। कटी-कटी लग रही थी। पराठे वाले के यही पहुँचा, धीरे-धीरे खाता रहा और अपने को सेंकता भी रहा। फिर गोमती-किनारे चला गया। घूमते-घूमते अन्धेरा हो गया, बूँदें पड़ने लगी। तब कहीं भगा और आप के पास आ गया।

अच्छा जो उस दिन तुम ने गड़रिये वाली कहानी सुनाई थी, जिस में आसफुद्दौला ने उसकी लड़की का आँचल भुने हुए भुट्टे के दानों के बदले मोतियों से भर दिया था! वह क्या सच है?

सच! अरे वह गरीब लड़की भूख से उसे चबा कर थू-थू करने लगी!.... रोने लगी। ऐसी निर्दय दिल्लगी बड़े लोग कर ही बैठते हैं। सुना है श्रीरामचन्द्र ने भी हनुमानजी से ऐसी ही....

ठाकुर साहब ठठाकर हँसने लगे। पेट पकड़ कर हँसते-हँसते लोट गये। साँस बटोरते हुए सम्हल कर बोले-और बड़प्पन कहते किसे हैं? कंगाल तो कंगाल! गधी लड़की! भला उसने कभी मोती देखे थे, चबाने लगी होगी। मैं सच कहता हूँ आज तक तुमने जितनी कहानियाँ सुनाई, सब में बड़ी टीस थी। शाहजादों के दुखड़े, रंग-महल की अभागिनी बेगमों के निष्फल प्रेम, करुण कथा और पीड़ा से भरी हुई कहानियाँ ही तुम्हें आती हैं; पर ऐसी हँसाने वाली कहानी और सुनाओ, तो मैं तुम्हें अपने सामने ही बढ़िया शराब पिला सकता हूँ।

सरकार! बूढ़ों से सुने हुए वे नवाबी के सोने के दिन, अमीरों की रग-रेलियाँ, दुखियों की दर्द-भरी आहें, रंग-महलों में घुल-घुल कर मरने वाली बेगमें, अपने-आप सिर में चक्कर काटती रहती हैं। मैं उनकी पीड़ा से रोने लगता हूँ। अमीर कंगाल हो जाते हैं। बड़ों-बड़ों के घमण्ड चूर होकर धूल में मिल जाते हैं। तब भी दुनिया बड़ी पागल है। मैं उसके पागलपन को भूलने के लिए शराब पीने लगता हूँ- सरकार! नहीं तो यह बुरी बला कौन अपने गले लगाता!

ठाकुर साहब ऊँघने लगे। अँगीठी में कोयला दहक रहा था। शराबी सरदी से ठिठुरा जा रहा था। वह हाथ सेंकने लगा। सहसा नींद से चौंक कर ठाकुर साहब ने कहा-अच्छा

जाओ, मुझे नींद लग रही है। वह देखो, एक रुपया पड़ा है, उठा लो। लल्लू को भेजते जाओ।

शराबी रुपया उठा कर धीरे से खिसका। लल्लू था ठाकुर साहब का जमादार। उसे खोजते हुए जब वह फाटक पर की बगलवाली कोठरी के पास पहुँचा तो उसे सुकुमार कंठ से सिसकने का शब्द सुनाई पड़ा। वह खड़ा होकर सुनने लगा।

तो सुअर रोता क्यों है? कुँअर साहब ने दो ही लातें न लगाई हैं! कुछ गोली तो नहीं मार दी? कर्कश स्वर से लल्लू बोल रहा था; किन्तु उत्तर में सिसकियों के साथ एकाध हिचकी ही सुनाई पड़ जाती थी। अब और कठोरता से लल्लू ने कहा-मधुआ! जा सो रह! नखरा न कर, नहीं तो उठूँगा तो खाल उधेड़ दूँगा।

समझा न?शराबी चुपचाप सुन रहा था। बालक की सिसकी और बढ़ने लगी। फिर से उसे सुनाई पड़ा-ले अब भागता है कि नहीं? क्यों मार खाने पर तुला है? भयभीत बालक बाहर चला आ रहा था। शराबी ने उसके छोटे से सुन्दर गोरे मुँह को देखा। आँसू की बूँदें ढुलक रही थीं! बड़े दुलार से उसका मुँह पोंछते हुए उसे लेकर वह फाटक के बाहर से चला आया। दस बज रहे थे। कड़ाके की सर्दी थी। दोनों चुपचाप चलने लगे। शराबी की मौन सहानुभूति को उस छोटे से सरल हृदय ने स्वीकार कर लिया। वह चुप हो गया। अभी वह एक तंग गली पर रुका ही था कि बालक के फिर से सिसकने की उसे आहट लगी। वह झिड़क कर बोल उठा-

अब क्या रोता है रे छोकरे?

मैंने दिन-भर से कुछ खाया नहीं।

कुछ खाया नहीं; इतने बड़े अमीर के यहाँ रहता है और दिनभर तुझे खाने को नहीं मिला?

यही कहने तो मैं गया था जमादार के पास; मार तो रोज ही खाता हूँ। आज तो खाना ही नहीं मिला। कुँअर साहब का ओवर कोट लिये खेल में दिन भर साथ रहा। सात बजे लौटा, तो और भी नौ बजे तक कुछ काम करना पड़ा। आटा रख नहीं सका था। रोटी बनती तो कैसे! जमादार से कहने गया था-भूख की बात कहते-कहते बालक के ऊपर उसकी दीनता और भूख ने एक साथ ही जैसे आक्रमण कर दिया, वह फिर हिचकियाँ लेने लगा।

शराबी उसका हाथ पकड़ कर घसीटता हुआ गली में ले चला। एक गन्दी कोठरी का दरवाजा ढकेल कर बालक को लिए हुए वह भीतर पहुँचा। टटोलते हुए सलाई से मिट्टी की ढेबरी जलाकर वह फटे कम्बल के नीचे से कुछ खोजने लगा। एक पराठे का टुकड़ा मिला। शराबी उसे बालक के हाथ में देकर बोला- तब तक तू इसे चबा; मैं तेरा गढ़ा भरने के लिए कुछ ओर ले आऊँ-सुनता है रे छोकरे! रोना मत, रोयेगा तो खूब पीटूँगा। मुझ से रोने का बड़ा बैर है। पाजी कहीं का, मुझे भी रुलाने का...

शराबी गली के बाहर भागा। उसके हाथ में एक रुपया था।-बारह आने का एक देशी अद्धा और दो आने की चाप... दो आने की पकौड़ी नहीं-नहीं आलू, मटर... अच्छा, न सही। चारों आने का माँस ही ले लूँगा; पर यह छोकरा! इसका गढ़ा जो भरना होगा, यह कितना खायेगा और क्या खायेगा। ओह! आज तक तो कभी मैंने दूसरों के खाने का सोच विचार

किया ही नहीं। तो क्या ले चलूँ? पहले एक अद्धा ही ले लूँ !-इतना सोचते-सोचते उस की आँखों पर बिजली के प्रकाश की झलक पड़ी। उसने अपने को मिठाई की दूकान पर खड़ा पाया। वह शराब का अद्धा लेना भूल कर मिठाई-पूरी खरीदने लगा। नमकीन लेना भी न भूला। पूरा एक रुपये का सामान लेकर वह दूकान से हटा। जल्द पहुँचने के लिए एक तरह से दौड़ने लगा। अपनी कोठरी में पहुँच कर उसने दोनों की पाँत बालक के सामने सजा दी। उनकी सुगन्ध से बालक के गले में एक तरावट पहुँची। वह मुस्कराने लगा।

शराबी ने मिट्टी की गगरी से पानी उड़ेलते हुए कहा-नटखट कहीं का हँसता है, सोंधी बास नाक में पहुँची न! ले खूब ठूस कर खा ले, और फिर रोया कि पिटा!

दोनों ने बहुत दिन पर मिलने वाले दो मित्रों की तरह साथ बैठ कर भरपेट खाया। सीली जगह में सोते हुए बालक ने शराबी का पुराना बड़ा कोट ओढ़ लिया था। जब उसे नींद आ गई, तो शराबी भी कम्बल तान कर बड़बड़ाने लगा- सोचा था आज सात दिन पर भर पेट पीकर सोऊँगा; लेकिन यह छोटा-सा रोना पाजी, न-जाने कहाँ से आ धमका।

X X X

एक चिन्ता-पूर्ण आलोक में आज पहले पहल शराबी ने आँख खोल कर कोठरी में बिखरी हुए दारिद्रय की विभूति को देखा और देखा उस घुटनों से ठुड्डी लगाये हुए निरीह बालक को। उसने तिलमिलाकर मन-ही-मन प्रश्न किया-किसने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की? आह री नियति! तब इसको लेकर मुझे घर-बारी बनना पड़ेगा क्या? दुर्भाग्य! जिसे मैंने कभी सोचा भी न था।

मेरी इतनी माया-ममता- जिस पर, आज तक केवल बोतल का ही पूरा अधिकार था- इसका पक्ष क्यों लेने लगी? इस छोटे से पाजी ने मेरे जीवन के लिये कौन सा इन्द्रजाल रचने का बीड़ा उठाया है। तब क्या करूँ? कोई काम करूँ?

अच्छा तेरा बाप जो मुझको पकड़े तो?

कोई नहीं पकड़ेगा, चलो भी। मेरे बाप कभी के मर गये।

शराबी आश्चर्य से उसका मुँह देखता हुआ कल उठा कर खड़ा हो गया। बालक ने गठरी लादी। दोनों कोठरी छोड़ कर चल पड़े।

15.2 प्रस्तावना

गद्य की विभिन्न विधाओं में कहानी एक लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण विधा है। कहानी के लिए 'कहानी' संज्ञा भ्रामक प्रतीत होती है। एक अर्थ में वह गद्य की एक विधा के रुप में प्रयुक्त होती है तो दूसरे अर्थ में भिन्न-भिन्न कलात्मक अभिव्यक्ति में पाए जाने वाले व्यापक 'कथा' या कथानक तत्व के रुप में प्रयुक्त होती है। गद्य की विभिन्न विधाओं में विद्यमान कहानी शब्द अपने व्यापक अर्थ में अंग्रेजी के 'Story' शब्द का समानार्थी है और विधा विशेष के लिए प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक 'कहानी' शब्द को अंग्रेजी में 'Short-story' कहा जाता है। अपने व्यापक अर्थ में कहानी उतनी ही पुरानी है जितनी मनुष्य की वाणी। राजेन्द्र यादव ने 'कहानी: स्वरूप और संवेदना' पुस्तक में लिखा है - "मैं कहानी को आदिविधा मानता हूँ। वह गद्य में लिखी गयी हो या पद्य में, या इससे

भी पहले संकेतों में। पद्य या गीतों के माध्यम से स्वयं उनका रस ग्रहण करते हुए भी इन सबके पीछे नेपथ्य में चलने वाली कहानी ही प्रमुख रही है।"

कहानी के तात्विक स्वरूप से अभिप्राय कहानी में पायी जाने जाने वाली उन विशेषताओं से है जो आदिम मानव द्वारा प्रस्तुत की गयी पहली कहानी में भी थीं और उस नयी से नयी कहानी में भी पायी जाती हैं जो आज प्रकाशित हुई है। जैसे- गद्यात्मकता, जीवन से जुड़ाव, संवेदनात्मक अनुभूति, कथात्मक या आख्यानात्मक शैली। वैसे विद्वानों ने कथानक, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, देशकाल एवं वातावरण, कथोपकथन, भाषा शैली एवं उद्देश्य की चर्चा कहानी के तत्वों के रूप में की है।

भिन्न-भिन्न विद्वानों ने कहानी को उसकी विशेषताओं के आधार पर अपने-अपने तरीके से परिभाषित करने का प्रयास किया है। कथा सम्राट प्रेमचन्द के अनुसार-"कहानी (गल्प) एक रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं।"

इस प्रकार कहानी गद्य की वह विधा है जो एक बैठक में जीवन के किसी एक प्रसंग या प्रतिबिम्ब को कथात्मक शैली में प्रस्तुत करके पाठक अथवा श्रोता में किसी एक प्रत्यक्ष संवेदना की अनुभूति कराती है।

15.3 जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक परिचय

सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी प्रसाद ने कविता, कहानी, निबंध, नाटक एवं उपन्यास सभी रूपों में साहित्य-सेवा की है

(क) काव्य- मुक्तक- झरना, चित्राधार, काननकुसुम।

प्रबन्ध- करुणालय, महाराणा का महत्व, आँसू प्रेम पथिक, अयोध्या, लहर, कामायनी(महाकाव्य)।

(ख) नाटक- सज्जन, कल्याणी-परिणय, स्कन्दगुप्त, प्रायश्चित्त, विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना, चन्द्रगुप्त, एक घूँट, ध्रुवस्वामिनी।

(ग) चंपू-काव्य- उर्वशी, प्रेम-राज्य।

(घ) उपन्यास- कंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण)

(ङ) निबन्ध- काव्य और कला एवं अन्य निबंध

कहानीकार जयशंकर प्रसाद

आधुनिक कहानी का आरम्भ 1900 में किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी के 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशन से माना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे हिन्दी की पहली कहानी माना है। रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' 1903 में तथा बंगमहिला की कहानी 'दुलाईवाली' सन् 1907 में सरस्वती में प्रकाशित हुई। 1900 से 1910 तक के समय को आलोचकों ने हिन्दी कहानी के प्रयोगात्मक युग की संज्ञा दी है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी आचार्य शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी मानते हैं। इस युग में कहानी का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन अथवा शिक्षा देना था।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से वैचारिक मतभेद होने के कारण जयशंकर प्रसाद ने 'इन्दु' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' 1911 में 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। अनेक विद्वान प्रसाद की 'ग्राम' कहानी को ही हिन्दी की प्रथम उत्कृष्ट मौलिक कहानी मानते हैं।

इस प्रकार कहानी के क्षेत्र में प्रसाद ने उपन्यास से पहले प्रवेश किया। भावों को कहानी रूप में ढालने के लिए कवि प्रसाद के पास कल्पना शक्ति थी और उस कल्पना को कथात्मक रूप देने के लिए श्रेष्ठ अभिव्यंजना, प्रभावी एवं प्रौढ़ कथोकथन तथा मानव मनोवृतियों का सूक्ष्म निरीक्षण एवं विश्लेषण।

प्रसाद के पाँच कहानी संग्रह हैं-

1. छाया (1912)
2. प्रतिध्वनि (1928)
3. आकाशदीप (1929)
4. आँधी (1931)
5. इन्द्रजाल (1936)

1. छाया - 'छाया के प्रथम संस्करण में पाँच कहानियाँ थीं। बाद में प्रसाद ने इसमें छह अन्य कहानियाँ जोड़ी। 'छाया' की ग्यारह कहानियाँ निम्नलिखित हैं- तानसेन, चन्दा, ग्राम, रसिया बालम, शरणागत, सिकन्दर की शपथ, चित्तौर उद्धार, अशोक, गुलाम, जहाँआरा, मदन मृणालिनी। प्रसाद की कहानी कला की प्रारम्भिक प्रवृत्तियों की छाप इन कहानियों पर दिखायी पड़ती है।

2. प्रतिध्वनि - 'प्रतिध्वनि' की कहानियों को कुछ विद्वानों ने गद्यगीत की संज्ञा ही है। प्रतिध्वनि में पन्द्रह कहानियाँ संकलित हैं-प्रसाद, गूदड़ साईं, गुदड़ी में लाल, अघोरी का मोह, पाप की पराजय, सहयोग, पत्थर की पुकार, उस पाट का योगी, करुणा की विजय, खण्डहर की लिपि, कलावती की शिक्षा, चक्रवर्ती का स्तम्भ, दुखिया, प्रतिमा, प्रलय।

इस संग्रह की कहानियों पर प्रसाद का कवि रूप छाया रहता है। फिर भी प्रसाद की कहानी कला के विकास के अध्ययन हेतु इन कहानियों का ऐतिहासिक महत्व है।

3. आकाशदीप - 'आकाशदीप' में 19 कहानियाँ संकलित हैं-आकाशदीप, ममता, स्वर्ग के खण्डहर में, सुनहला साँप, हिमालय का पथिक, भिखारिन, प्रतिध्वनि, कल्प, देवदासी, समुद संतरण, वैरागी, बनजारा, चूड़ीवाली, अपराधी, प्रणय चिहन, रूप की छाया, ज्योतिष्मती, रमला, बिसाती। 'आकाशदीप इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी हैं। 'आकाशदीप' में प्रसाद की भावात्मक कथा शैली का विकास हुआ है।

4. आँधी - 'आँधी' में प्रसाद की कहानी कला का पूर्ण विकास हो चुका है। 'आँधी' को प्रसाद की कहानी कला का प्रतिनिधि संकलन माना जा सकता है। 'आँधी' में संकलित ग्यारह कहानियों के नाम इस प्रकार हैं- आँधी, मधुआ, दासी, घीसू, बेड़ी, व्रतभंग, ग्रामगीत, विजया, अमिट स्मृति, नीरा, पुरस्कार।

5. इन्द्रजाल - यह प्रसाद की कहानियों का अंतिम संग्रह है। इस संग्रह में प्रसाद का कहानीकार अपने प्रौढत्व की प्राप्ति कर चुका है। इस संग्रह में कुल चौदह कहानियाँ

हैं- इन्द्रजाल, सलीम, छोटा जादूगर, नूरी, परिवर्तन, सन्देह, भीख में, चित्रवाले पत्थर, चित्रमन्दिर, गुण्डा, आनेवाला, देवरथ, विरामचिह्न, सालवती।

15.4 प्रसाद की कहानी कला

कहानी में काव्य तत्व की उपस्थिति प्रसाद की कहानी कला की सर्वप्रमुख विशेषता है। उनके कवित्व का विधान उनकी कहानियों में भी मिलता है। उनके कवि रूप की झाँकी उनकी कहानियों में भी प्राप्त हो जाती है। प्रसाद की कहानियों में भावात्मकता का प्राधान्य होता है। कहानी की पृष्ठभूमि कुछ भी हो काव्यात्मकता तथा भावुकता का आवरण छाया रहता है। कथानक और घटनाओ के साथ काव्यांनद की धारा भी कहानी में प्रवाहित रहती है। कहानियों के कथोकथन भी काव्यात्मकता से युक्त हैं-

"मेरी वेदना रजनी से भी काली और दुःख समुद्र से विस्तृत है। स्मरण है? इसी महोदधि के तट पर बैठकर सिकता में हम लोग अपना नाम साय ही साथ लिखते थे। चिर-रोदनकारी निष्ठुर समुद्र अपनी लहरों की उँगली से उसे मिटा देता था। मिट जाने दो हृदय की सिकता से प्रेम का नाम।" (देवरथ,)

प्रसाद को अतीत एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति विशेष लगाव है। सुदूर सांस्कृतिक परिवेश में कल्पना की संयोजना के माध्यम से प्रसाद ने अनेक सुन्दर कहानियों की सृष्टि की है। इन ऐतिहासिक कहानियों के माध्यम से प्रसाद ने उदात्त सांस्कृतिक आदर्शों व श्रेष्ठ मानव मूल्यों की स्थापना की है- "मैं ब्रह्मणी हूँ, मुझे तो अपने धर्म से अतिथि देव की उपासना का पालन करना चाहिए।" (ममता, आकाशदीप)

हृदय के घात-प्रतिघात तथा भावनाओं की प्रगाढ़ता के चित्रण से प्रसाद की कहानियाँ चरित्र प्रधान हो जाती हैं। प्रसाद की कहानियों के पात्र असाधारण हैं। पात्रों के चरित्रांकन में प्रसाद वर्ग को नहीं व्यक्ति को महत्व प्रदान करते हैं। इसलिए पात्रों के चारित्रिक वैशिष्टय को प्रसाद अपनी कहानियों में बखूबी उभारते हैं। विशेष एवं विषम परिस्थितियों के कारण ही प्रसाद की कहानी के चरित्रों का निर्माण होता है। प्रसाद के पात्र कहानी में अपने निजी जीवन की विषम एवं मार्मिक परिस्थितियों को लेकर चलते हैं। वे सामाजिक प्रश्नों एवं समस्याओं को लेकर आगे नहीं बढ़ते। इस प्रकार प्रसाद की कहानियों के पात्र विशेष वैयक्तिक गुणों की अमिट छाप पाठक के हृदय पर अंकित कर देते हैं जैसे- गुंडा,, चम्पा इत्यादि। कहानी के सीमित फलक में व्यक्तिगत चरित्र का निर्माण सरल कार्य नहीं। कहीं-कहीं अवश्य सामाजिक-नैतिक, रुढ़ियों के प्रति विद्रोह दिखायी देता है-

"मैंने कल्पना की आँखों से देखा, कि लैला अबाध गति से चलने वाली एक निर्झरणी है। पश्चिम की सर्राटे से भरी हुई वायु तरंगमाला है। उसको रोकने की किसमें सामर्थ्य है।" (आँधी)

छायावादी कवि होने के नाते प्रसाद प्रकृति प्रेमी हैं। प्रकृति उनकी कहानियों में भी विशिष्ट स्थान पाती है। प्रसाद की बहुत्सी कहानियों का आरम्भ एवं अन्त प्रकृति चित्रण से ही होता है। सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के चित्र खींचते समय प्रसाद की भाषा भी काव्यमयी हो जाती है-

"आर्द्रा नक्षत्र। आकाश में काले-काले बादलों की घुमड जिसमें देवदुंदुभि का गंभीर घोष। प्राची के निरभ्र कोने से स्वर्ण पुरुष झाँकने लगा था.... देखने लगा था... महाराज की सवारी।... प्रभात की हेम किरणों से अनुरंजित नन्हीं बूँदों का एक झोंका आया और स्वर्ण-मल्लिका के समान बरस पड़ा।" (पुरस्कार)

प्रसाद की कहानियों का मूल विषय 'प्रेम' है। इन कहानियों में यों तो प्रेम के विविध पहलू दिखायी देते हैं किन्तु प्रमुखता 'प्रेम की पीड़ा' की ही है। प्रेम एवं सौन्दर्य का बहुत करीबी रिश्ता है। कहानी के क्षेत्र में भी प्रसाद रूप एवं यौवन के अप्रतिम चितेरे माने जाते हैं। उनकी कहानियों में सौन्दर्य एवं यौवन के विविध चित्र यत्र-तत्र बिखरे पडे हैं। उनकी कहानियों के नायक- नायिकाएं, युवा, भावुक एवं चित्ताकर्षक हैं- "चम्पा के असंयत कुंतल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा अपनी महिमा में अलौकिक एक तरुण बालिका। वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नयी वस्तु का पता चला। वह थी- कोमलता।" (आकाशदीप)

पात्रों के चरित्र निर्माण में कल्पना, अनुभूति एवं आदर्श का सुन्दर समन्वय दिखायी देता है। उन्होंने अपने प्रणय पात्रों में दया, क्षमा, एकनिष्ठता, संयम, त्याग जैसे उच्च मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा की है। प्रसाद के पात्रों के चित्रण में विचारों एवं अन्तर्मन की सूक्ष्म वृत्तियों का उद्घाटन अधिक हुआ है। मानवीय भावनाओं का घात-प्रतिघात प्रसाद के पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि करता है।

"यौवन काषाय से कहीं छिप सकता है? संसार को दुःखपूर्ण समझकर ही तो वह संघ की शरण में आयी थी। उसके आशापूर्ण हृदय पर कितनी ही ठोकरें लगी थीं। तब भी यौवन ने साथ न छोड़ा, भिक्षुणी बनकर भी वह शान्ति न पा सकी थी। वह आज अत्यन्त अधीर थी।" (देवरथ)

प्रसाद के पात्र बाह्य संघर्ष की अपेक्षा भावात्मक संघर्ष में उलझे दिखायी देते हैं। प्रसाद के चरित्र मूलत: भावमूलक व आदर्शवादी हैं, उनमें उदात्त मानव मूल्यों के प्रति विशेष आग्रह है- "मैं उपहार देता हूँ बेचता नहीं। इसमें मूल्य ही नहीं हृदय भी लगा है। ये दाम पर नहीं बिकते।" (बिसाती)

प्रसाद ने नारी चरित्रों का चित्रांकन पूर्ण मनोयोग से किया है। प्रसाद की कहानियों की प्राय: सभी नायिकाएं अलौकिक सौन्दर्य एवं दिव्य मानवीय गुणों से युक्त हैं। प्रसाद के नारी चरित्र जहाँ एक ओर मानवता के रक्षक हैं वहीं दूसरी ओर विषम परिस्थितियों में नारी के कोमल हृदय में कैसे कठोरता घर कर जाती है और वह प्रतिहिंसा की उद्दाम भावना से युक्त हो जाती है इसका प्रसाद ने बहुत सुन्दर चित्रण किया है- "मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण जलदस्यु! हट जाओ। सहसा चम्पा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा।" (आकाशदीप)

प्रसाद की कहानियों की भाषा परिष्कृत एवं गम्भीर है। भाषा में काव्यात्मकता का पुट प्रसाद की कहानियों में भावात्मकता की सृष्टि करता है। लाक्षणिकता, काव्यात्मकता, सांकेतिकता एवं व्यंजनात्मकता प्रसाद की कहानी शैली की विशेषताएं हैं।

15.5 'मधुआ' कहानी का सारांश

'मधुआ' जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित एक लघु कहानी है जो उनके कहानी संग्रह 'आँधी' में संकलित है। मधुआ इस संकलन की दूसरी कहानी है।

'मधुआ' कहानी में एक शराबी के सरल, भावुक एवं करुणापूर्ण हृदय का चित्रण किया गया है कि किस प्रकार एक छोटी सी घटना शराबी के चरित्र और दिनचर्या में आमूलचूल परिवर्तन कर देती है।

कहानी का प्रमुख पात्र एक शराबी है जिसे शराब की लत ने निकम्मा बना दिया है जो ठाकुर सरदार सिंह को किस्से-कहानी सुनाकर उनका मनोरंजन कर उनसे एक-आध रुपया प्राप्त करता है और उसे शराब की भेंट चढ़ा देता है। ऐसे ही वह अपने दिन काट रहा है। एक दिन रात्रि में शराबी ठाकुर सरदार सिंह का मनोरंजन कर और बदले में उनसे एक रुपया प्राप्त करके लौट रहा था। ठाकुर सरदार सिंह ने उसे आदेश दिया था कि जाते हुए वह जमादार लल्लू को ठाकुर साहब के पास भेज दे। लल्लू को ठाकुर साहब का संदेश देने के लिए जब वह फाटक के बगल वाली कोठरी की ओर गया तो उसे एक बालक की सिसकने की आवाज सुनायी दी। वह कोठरी के बाहर खड़े होकर उस बालक की व्यथा-कथा और लल्लू द्वारा उसे दी जाने वाली प्रताड़ना सुनने लगा। जब वह बालक बाहर आया तो बालक की दयनीय किन्तु सुकुमार मोहक आकृति ने शराबी के मन में उस बालक के लिए करुणा उत्पन्न की। कड़ाके की सदी में यह भूखा बालक कहाँ रहेगा-यह सोचकर लल्लू उसे अपनी गन्दी सी कोठरी में ले आया। शराबी की कोठरी में उस भूखे बालक 'मधुआ' की भूख शांत करने के लिए बहुत खोजने पर एक पराठे का टुकड़ा मिला। अब शराबी को उस भूखे बालक के पेट भरने की चिन्ता हुई। बालक को वह पराठे का टुकड़ा खाने के लिए पकड़ाकर वह शराबी बाजार की ओर चला। उसके पास ठाकुर सरदार सिंह द्वारा दिया गया एक रुपया था। बाजार जाकर उसने सोचा क्यों न बारह आने का देशी अद्धा और दो आने की चाय या पकौड़ी इत्यादि खरीद ले, परन्तु फिर उसे भूखे बालक के पेट भरने का विचार आया। इस विचार ने उसके 'क्या खरीदे' के अन्तर्द्वन्द्व का अंत कर दिया। वह शराब का अद्धा छोड़कर बच्चे के लिए हलवाई से मिठाई, पूरी और नमकीन खरीद लाया। दोनों ने पेट भर खाया, जो बचा वह शराबी ने बालक के सवेरे के भोजन के लिए रख दिया। दोनों जाकर लेट गये। जब बालक सो गया तो शराबी पुन: बड़बड़ाने लगा "सोचा था आज सात दिन पर भरपेट पीकर सोऊँगा; लेकिन यह छोटा-सा रोना पाजी न जाने कहाँ से आ धमका।" दूसरे दिन प्रातःकाल जब शराबी जागा तो उसे पहली बार अपनी गरीबी की अनुभूति हुई। वह सरल शराबी निरीह बालक के मोह में फँस चुका था। बालक का भरण-पोषण उसे अपना उत्तरदायित्व जान पड़ा। उसे अपने ऊपर आश्चर्य हो रहा था कि उसके हृदय की ममता जिस पर अभी तक केवल शराब की बोतल का अधिकार था, वह बालक का पक्ष क्यों लेने लगी। उसे लगा अब उसे भी गृहस्थी की जिम्मेदारी उठानी पड़ेगी, दोनों का पेट भरने के लिए कोई काम करना पड़ेगा। अन्तत: उसने निर्णय किया कि वह जागने पर बालक को यहाँ से भगा देगा।

किन्तु वह ऐसा न कर सका। मधुआ ने तो शराबी के व्यक्तित्व, उसकी दिनचर्या में ही परिवर्तन कर दिया था। उसने फिर कभी शराब न पीने की सौगन्ध खायी और रामजी की कोठरी में रखी अपनी बरसों पुरानी सान देने की कल उठा लाया। उसे लगा कि अब उसे अपना और बालक दोनों का पेट भरने के लिए पुन: काम करना ही पड़ेगा।

15.6 मधुआ कहानी का प्रतिपाद्य (संवेदना)

'मधुआ' कहानी 'आँधी' में संकलित है। आँधी का प्रकाशन 1931 में हुआ। इस काल तक पहुँचतेपहुँचते प्रसाद प्रेम एवं सौन्दर्य की अपेक्षा यथार्थ के अधिक निकट आ गये हैं। फलत: उन्होंने कहानियों में वास्तविक जीवन के प्रश्न उठाये। 'मधुआ' एक छोटी सी कहानी है जिसमें एक निकम्मा शराबी एक निराश्रित बालक के प्रेम के वशीभूत हो नया जीवन आरम्भ करता हुआ कर्मपथ पर अग्रसर होता है। शराबी एक मानवीय चरित्र है। कहानी का मूल प्रतिपाद्य इस शराबी का चरित्र चित्रण ही है। प्रसाद उसे विभिन्न परिस्थितियों एवं प्रसंगों में डालकर उसके चरित्र के मानवीय पक्ष को चरमसीमा तक पहुँचा देते हैं। कहानी में शराबी के सरल, भावुक एवं करूणापूर्ण हृदय का उद्घाटन प्रसाद का प्रमुख लक्ष्य रहा है। यह कहानी इस तथ्य पर प्रकाश डालती है कि निकम्मा तथा ऊपर से लापरवाह प्रतीत होने वाला शराबी भी दूसरों के दु:ख... एव कष्ट से व्यथित होने की सामर्थ्य रखता है- "..... दुखियों की दर्द भरी आहें, रंग-महलों में घुल-घुलकर भरने वाली बेगमें, अपने आप सिर में चक्कर काटती रहती हैं। मैं उनकी पीड़ा से रोने लगता हूँ।"

शराबी का व्यक्तित्व इस बात का प्रमाण है कि दीनों ओर समाज के उपेक्षित मानवों में भी मानवता के श्रेष्ठ गुण छिपे रहते हैं। अत: समाज को उनकी उपेक्षा करने का अधिकार नहीं है। स्वयं दारिद्रय के वैभव को भोगने वाला शराबी अन्तत: बालक मधुआ के भरण-पोषण का दायित्व उठाता है और प्रसाद की यह कहानी व्यक्ति-प्रधान होते हुए भी समाज-सापेक्ष हो जाती है। इन्द्रनाथ मदान 'हिन्दी कहानी: अपनी जुबानी' पुस्तक में लिखते हैं- "मधुआ के बारे में यह कहा गया है कि यह प्रसाद की कहानियों से भिन्न है। इसकी रचना सामाजिक स्तर पर है। यह अधिक भिन्न इसलिए लगती है कि इसके रचना विधान पर प्रसाद का कवि हावी नहीं है।" शराबी के मनोभावों, उसकी सीमाओं, उसकी निरीहता, उसके मानसिक एवं शारीरिक संघर्ष को लेकर ही 'मधुआ' कहानी आगे बढ़ती है।

इसके साथ ही प्रसाद ने मानव जीवन के चिर प्रश्न को भी इस कहानी में प्रसंगवश उठाया है- "अमीर कंगाल हो जाते हैं बड़ों-बड़ों के घमण्ड चूर होकर धूल में मिल जाते हैं। तब भी दुनिया बड़ी पागल है।"

शराबी के मनोविज्ञान का प्रसाद ने बखूबी चित्रण किया है। इस चित्रण का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन बताता है कि मनुष्य में सबलताएं एवं दुर्बलताएं दोनों ही होती हैं तथा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उसके हृदय के सद्भाव एवं दुर्भावों में संघर्ष स्वाभाविक होता है। प्रसाद मानव की अन्तर्वृत्तियों की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया एवं विचारों के संघर्ष के चतुर-चितेरे हैं। शराबी भी ठाकुर सरदार सिंह द्वारा दिये गये रुपये

को बाजार में ले जाकर सोच में पड़ जाता है- "उसके हाथ में एक रुपया था।.... बारह आने का एक देशी अद्धा और दो आने की चाय..... दो आने की पकौड़ी, नहीं.. नहीं आलू मटर; अच्छा न सही। चारों आनों का माँस ही ले लूँगा, पर यह छोकरा! इसका गढ़ा जो भरना होगा। " अन्ततः शराबी के हृदय की करुणा उसके स्वार्थ पर बलवती सिद्ध होती है और वह बालक के पेट भरने की व्यवस्था करके घर लौटता है। उसके द्वन्द्व की परिणति हृदय परिवर्तन के सुन्दर धरातल पर होती है। प्रसाद ने इस कहानी में प्रकारान्तर से वर्ग वैषम्य भी उभारा है कि किस प्रकार उच्चवर्ग गरीब, निरीह मनुष्यों का प्रयोग अपनी दिल्लगी के लिए करता है। ठाकुर सरदार सिंह फुर्सत के क्षणों में अपने कहानी सुनने के चस्के को पूरा करने के लिए शराबी से लच्छेदार कहानियाँ सुनते हैं। यह एक प्रकार से शराबी का भावात्मक शोषण है साथ ही इस प्रकार वे शराबी को मद्यपान के लिए प्रेरित करते हैं और निठल्ला बना रहे हैं। शराबी की संवेदनशीलता उसके किस्से-कहानियों में भी झलकती है- "यह गरीब लड़की भूख से उसे चबाकर थू-थू करने लगी! रोने लगी। ऐसी निर्दय दिल्लगी बड़े लोग कर ही बैठते हैं।"

इस प्रकार 'मधुआ' कहानी में प्रसाद ने शराबी के भावात्मक के साथ बाह्य जगत अर्थात् सामाजिक स्तर से जुड़े प्रश्नों की ओर भी संकेत किया है। कहानी की यह संवेदना 'मधुआ' को प्रसाद की अद्भुत एवं श्रेष्ठ कहानियों में स्थान दिलाती है। प्रेमचन्द ने भी 'मधुआ' कहानी को जयशंकर प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ कहानी घोषित किया था।

15.7 'मधुआ' कहानी का शिल्प

'मधुआ' यथार्थ भावभूमि पर लिखी गयी कहानी है। कथासूत्र की लघुता एवं प्रासंगिकता ने इस कहानी की कलात्मकता में वृद्धि की है। कथानक के जीवन की यथार्थ समस्याओं से जुड़े होने के कारण कहानी आधुनिकता की परीधि में आती है। यह पुरुष चरित्र प्रधान कहानी है।

प्रसाद भाषा शैली के धनी कहानीकार हैं। प्रसाद की भाषा समृद्धशाली है। यूँ तो प्रसाद अपनी संस्कृतनिष्ठ परिष्कृत शैली के लिए जाने जाते हैं, किन्तु 'मधुआ' कहानी में विषयानुरूप प्रसाद ने रसात्मक भाषा सरल एवं स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत की है- "सात दिन से एक बूँद भी गले न उतरी थी। भला मैं कैसे मुँह दिखा सकता था। और जब बारह बजे धूप निकली, तो फिर लाचारी थी। उठा, हाथ-मुँह धोने में जो दुःख हुआ सरकार, वह क्या कहने की बात है। चना चबाने से दाँत भाग रहे थे। कटी-कटी लग रही थी। पराठे वाले के यहाँ पहुँचा, धीरे-धीरे खाता रहा और अपने को सेंकता भी रहा।"

'कहानी में भावों' का वेग प्रसाद की भाषा में काव्यात्मकता की सृष्टि करता है- 'एक चिन्तापूर्ण आलोक में आज पहले पहल शराबी ने आँख खोलकर कोठरी में बिखरी हुई दारिद्रय की विभूति को देखा और देखा उस घुटनों से ठुड्डी लगाये हुए निरीह बालक को। उसने तिलमिलाकर मन ही मन प्रश्न किया-किसने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की है?"

मधुआ कहानी में प्रसंगानुकूल लघु एवं दीर्घ वाक्य विन्यास मिलता है। कहानी का आरम्भ वार्तालाप से होता है-

"आज सात दिन हो गये, पीने की कौन कहे, छुआ तक नहीं। आज सातवीं दिन है सरकार।

तुम झूठे हो। अभी तो तुम्हारे कपड़े से महक आ रही है।"

'मधुआ' कहानी में प्रसंग की विविधता के साथ-साथ विषय प्रतिपादन शैली में भी विविधता दिखायी देती है। कहानी के संवादों में नाटकीय प्रयोग का कौशल प्रसाद की विशेषता है। 'मधुआ' कहानी के कथोकथन भी नाटकीयता से युक्त हैं-

"अब क्या रोता है रे छोकरे?

मैंने दिन भर से कुछ खाया नहीं।"

प्रसाद किसी भी घटना का चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ है। 'मधुआ' कहानी में शैली की चित्रात्मकता दृष्टव्य है-

"ठाकुर साहब ऊँघने लगे थे। अँगीठी में कोयला दहक रहा था। शराबी सर्दी से ठिठुरा जा रहा था। वह हाथ सेंकने लगा।"

'मधुआ' कहानी में वर्णनात्मकता होते हुए भी संवेदनात्मक स्थलों पर प्रसाद की शैली भावात्मक हो जाती है- 'भूख की बात कहते-कहते बालक के ऊपर उसकी दीनता तथा भूख ने एक साथ ही जैसे आक्रमण कर दिया, वह फिर हिचकियाँ लेने लगा।"

कहानी में यत्र-तत्र प्रस्तुत सुभाषित वाक्यों ने प्रसाद की सूक्ति शैली में महारथ को प्रमाणित किया है- "मौज-बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दुःखपूर्ण जीवन से अच्छी है।"

प्रसाद की भाषा लाक्षाणिकता से युक्त है। काव्यात्मक लाक्षणिक प्रयोगों ने भाषा के सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है,जैसे-दारिद्रय की विभूति, चना चबाने से दाँत भाग रहे थे इत्यादि।

इस प्रकार 'मधुआ' कहानी में प्रसाद ने लीक से हटकर प्रतिदिन की बोली जाने वाली सजीव एवं प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है और प्रसंगानुरूप विविध शैली रूपों का।

15.8 प्रसंग एवं संदर्भ सहित व्याख्या

बूढ़ों से सुने हुए.....कौन अपने गले लगाता।

सन्दर्भ:-

प्रस्तुत गद्यांश बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार 'जयशंकर प्रसाद' द्वारा रचित कहानी 'मधुआ' से उद्धृत है। 'मधुआ' प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है जो प्रसाद के चौथे कहानी संग्रह 'आँधी' में संकलित है।

प्रसंग:-

कहानी का प्रमुख पात्र शराबी ठाकुर सरदार सिंह को लच्छेदार किस्से-कहानी सुनाकर उनका मनोविनोद करता था। ठाकुर साहब उससे खूब हँसाने वाली कहानी सुनाने का आग्रह करते हैं। उन्हें शिकायत है कि शराबी की सभी कहानियों में बड़ी टीस है। वे उसे लालच देते हैं कि अगर वह हँसाने वाली कहानी सुनाए तो वे उसे अपने सामने बिठाकर बढ़िया शराब पिलायेंगे। तब शराबी उन्हें अपनी कहानियों में पीड़ा की उपस्थिति का कारण बताते हुए जीवन के सत्य का उद्घाटन करता है-

व्याख्या:-

शराबी ठाकुर सरदार सिंह से कहता है कि उसने अपने पूर्वजों एवं बड़े-बूढ़ों से जो अनुभव सुने है; उनमें एक ओर नबाबों का चित्रण है जो अत्याधिक सुखी जीवन व्यतीत करते थे; जिनके जीवन में कोई चिन्ता, कोई विषाद् नहीं था, धनी मनुष्य थे जो रंगरेलियों का जीवन व्यतीत करते थे तथा दूसरी ओर पीड़ित-त्रस्त मानवों की आहें हैं; राजमहलों की शानोशौकत में घुट-घुटकर मरने वाली बेगमें हैं; जिनका प्रेम निष्फल रहा और जिन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध इन महलों में जीवन ढोना पड़ रहा है। दीन-दुखियों की व्यथा ओर बेगमों की करुण गाथाएं अनायास ही मेरे दिमाग में घूमती रहती हैं। मैं उनकी पीडा से व्यथित होकर विलाप करने लगता हूं। शराबी कहता है कि इस दुनिया में कुछ भी शाश्वत नहीं है। बडे से बड़े अमीर भी कभी परिस्थितियों की मार से गरीबी का जीवन जीने पर मजबूर हो जाते हैं। बड़े से बड़े मनुष्य का गर्व चूर-चूर हो जाता है। शराबी कहता है कि दुनिया न जाने क्यू इस सत्य को नहीं समझ पाती और थोड़ी सी खुशी पर फूली नहीं समाती। इसीलिए शराबी को यह दुनिया पागल प्रतीत होती है जिस प्रकार पागल व्यक्ति को अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं होता है वैसे ही संसार के मनुष्य भी चार दिन की चाँदनी में बौराने लगते हैं। शराबी कहता है कि मैं इस संसार रूपी पागलपन को भूलने के लिए शराब का सहारा लेता हूँ अन्यथा इसमें ऐसी क्या अच्छाई है जो कोई भी व्यक्ति शराब का सेवन करता।

विशेष:-

1. सदैव पीड़ा का स्वर किस्से-कहानियों की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम रहा है।
2. शराबी एक मानवीय चरित्र है जो दूसरे की पीड़ा से व्यथित होता है।
3. संसार नश्वर है। यही कुछ भी शाश्वत नहीं। कबीर भी इसलिए सांसारिक मनुष्य को गर्व न करने की चेतावनी देते हैं-

   कबिरा गरब न काजिये, काल गहे कर केस।
   ना जानौं कित मारिहै, कै घर कै परदेस।।
4. यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि शराब का सेवन करने वाला व्यक्ति शराब पीने की कोई न कोई वजह अवश्य ढूँढ लेता है या किसी विशेष स्थिति को अपने मद्य-सेवन के लिए उत्तरदायी ठहराता है।
5. भाषा सहज प्रवाह से युक्त है। भाषा में मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है, जैसे-घुल-घुल कर मरना, सिर में चक्कर काटना, घमण्ड चूर होना इत्यादि।
6. शैली वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है।

एक चिन्तापूर्ण..... पेट चलेगा।

प्रसंग:-

एक सुकुमार बालक की दयनीय दशा देखकर शराबी का हृदय पिघल जाता है और वह भूखे-निरीह बालक को अपने साथ अपनी कोठरी पर ले आता है। वह भूखे बालक का पेट भरने के लिए ठाकुर साहब द्वारा दिये गये एक रुपये की पूरी, मिठाई व नमकीन ले आता है। दोनों भरपेट खाकर सो जाते हैं। दूसरे दिन जब शराबी जागता है तो उसकी

मनःस्थिति परिवर्तित हो चुकी है। उसके मन में पहली बार दायित्व बोध का उदय होता है।

व्याख्या:-

आज प्रात:काल जब शराबी सोकर उठा तो चिन्ता से युक्त दिन के प्रकाश में उसे पहली बार अपनी कोठरी में फैली हुई गरीबी का आभास हुआ। प्रसाद 'दारिद्रय की विभूति' पद साभिप्राय प्रयोग करते हैं:- कोठरी में गरीबी का इस कदर साम्राज्य है कि कोठरी दरिद्रता के वैभव से युक्त प्रतीत होती है। कोठरी में विद्यमान दरिद्रता के आभास के साथ ही उस शराबी का ध्यान घुटनों से ठुड्डी लगाकर बैठे हुए निरीह बालक की ओर गया। उस सुकुमार निरीह बालक को देखकर शराबी को क्रोध आया। उसके तिलमिलाए हुए मन में विचार उठा कि भला विधाता ने निर्दयता की सृष्टि ही क्यों की, क्योंकि न निर्दयता का अस्तित्व होता और न ही ऐसे सुकोमल फूल जैसे बालक कष्ट उठाते। उसे लगा कि भाग्य उसे गृहस्थ बनने की दिशा की ओर उन्मुख कर रहा है। यदि बालक का भरण-पोषण करना है तो गृहस्थ बनना ही होगा। उसे यह अपना दुर्भाग्य प्रतीत होता है, क्योंकि उसने कभी सोचा भी न था कि वह कभी घर-गृहस्थी की जिम्मेदारी उठाएगा। किस्से-कहानी सुनाकर ठाकुर का मनोरंजन करना और बदले में जो कुछ मिले उससे शराब पी लेना और कुछ खा-पीकर निश्चित होकर सो जाना यही उसकी दिनचर्या थी, जिसमें चिन्ता, फिक्र जैसे शब्दों के लिए कोई अवकाश न था। वह आज तक शराब के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के मोह में ग्रसित न हुआ था। उसे संसार में शराब के अतिरिक्त किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति माया-ममता न थी। लापरवाही उसके व्यक्तित्व की विशेषता थी। उसे अपने ऊपर आश्चर्य होने लगा क्यू उसके हृदय में इस बालक के प्रति ममता उमड़ रही है? उसे लगा इस छोटे से बालक ने अवश्य मेरे जीवन में तिलिस्मी परिवर्तन करने की ठान ली है। बालक के प्रति ममता एवं मोह से युक्त होकर वह गम्भीर सोच में पड़ गया कि अब मुझे अवश्य कोई काम करना चाहिए अन्यथा हम दोनों का पेट कैसे भरेगा? अर्थात् बालक के प्रति मोह ने उसके हृदय में कर्त्तव्य बोध उत्पन्न किया।

विशेष:-

1. परिस्थितियाँ विचारधारा में परिवर्तन की सामर्थ्य रखती है; शराबी का चरित्र इसका प्रमाण है।
2. शराबी के व्यक्तित्व का चित्रात्मक प्रस्तुतीकरण।
3. 'पाजी' शब्द में निहित वात्सल्य की अनुभूति।
4. वात्सल्य प्रेम कर्त्तव्य का भाव उत्पन्न करता है इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को लेखक ने कलात्मक रुप में प्रस्तुत किया है।
5. भाषा में काव्यात्मकता का पुट है- एक चिन्तापूर्ण....
6. लाक्षाणिक शब्द प्रयोग-दारिद्रय की विभूति।
7. शैली वर्णनात्मक। स्वगत कथन शैली।'

15.9 शब्दावली

शब्द	–	अर्थ
मनोविनोद	–	मनोरंजन
दिल्लगी	–	मजाक, उपहास
कंगाल	–	गरीब
सुकुमार	–	कोमल, नाजुक
दारिद्रय	–	दरिद्रता, निर्धनता, गरीबी
विभूति	–	विभव, अधिकता, ऐश्वर्य
नियति	–	नियत होने की क्रिया, भाग्य, ठहराव
इन्द्रजाल	–	जादूगरी, मायाकर्म
सान	–	वह पत्थर जिस पर रगड़कर अस्त्रों आदि की धार तेज की जाती है।

15.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'मधुआ' कहानी के आधार पर शराबी का चरित्र-चित्रण कीजिए।
2. 'मधुआ' कहानी की भाषा पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए।

15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव; हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया, ग्रन्थम, कानपुर, 1965
2. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल; हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1960
3. डॉ. बच्चन सिंह; हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1996
4. राजेन्द्र यादव; कहानी: स्वरूप और संवेदना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1968
5. इन्द्रनाथ मदान; हिन्दी-कहानी (अपनी जुबानी) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1988
6. प्रेमचंद; (संकलन-अमृमराय), कुछ विचार, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962
7. प्रेमचन्द; (संकलन-अमृमराय,मदन गोपाल), चिट्ठी-पत्री, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962
8. जयशंकर प्रसाद; आँधी, लीडर प्रेस इलाहाबाद, वि. 2001

इकाई-16 जैनेन्द्र कृत 'पत्नी' कहानी का विवेचन व विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 मूल पाठ
16.2 प्रस्तावना
16.3 जैनेन्द्र का साहित्यिक परिचय
16.4 जैनेन्द्र की कहानी कला
16.5 'पत्नी' कहानी का सारांश
16.6 'पत्नी' कहानी का प्रतिपाद्य
16.7 'पत्नी' कहानी का शिल्प
16.8 सन्दर्भ एवं प्रसंग सहित व्याख्या
16.9 शब्दावली
16.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
16.11 संदर्भ ग्रंथ

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी -

- हिन्दी साहित्य में मनोवैज्ञानिक कहानी का विकास एवं विशेषताओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- जैनेन्द्र के बहु आयामी साहित्यिक व्यक्तिव का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- जैनेन्द्र की कहानी कला की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- 'पत्नी' कहानी के अध्ययन के आधार पर जैनेन्द्र के नारी के प्रति दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगे।
- भारतीय मध्यवर्गीय परिवार में पत्नी की स्थिति का आकलन करने में समर्थ हो सकेंगे।
- जैनेन्द्र के कहानी-शिल्प से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक कहानी तथा समकालीन कहानी के अध्ययन की प्रेरणा प्राप्त करने में सक्षम होंगे।

16.1 मूलपाठ - पत्नी

शहर के एक ओर एक तिरस्कृत मकान। दूसरा तल्ला। वहाँ के चौके में एक स्त्री अँगीठी सामने लिये बैठी है। अँगीठी की आग राख हुई जा रही है। वह जाने क्या सोच रही है। उसकी अवस्था बीस-बाईस के लगभग होगी। देह से कुछ दुबली है और सम्भ्रान्त-कुल की मालूम होती है।

एकाएक अँगीठी में राख होती हुई आग की ओर स्त्री का ध्यान गया। घुटनों पर हाथ देकर वह उठी। उठ कर कुछ कोयले लायी। कोयले अँगीठी में डाल कर फिर किनारे ऐसे

बैठ गयी, मानो याद करना चाहती है कि 'अब क्या करूं?' घर में और काई नहीं है और समय बारह से ऊपर हो गया है।

दो प्राणी इस घर में रहते है, पति और पत्नी। पति सवेरे से गये हैं कि लौटे नहीं और पत्नी चौके में बैठी है।

वह (सुनन्दा) सोचती है-नहीं सोचती कहाँ है अलसभाव से वह तो वहाँ बैठी ही है। सोचने को है तो यही कि कोयले न बुझ जायें। ..वह जाने कब आयेंगे। एक बज गया है। कुछ हो, आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी चाहिए।... और सुनन्दा बैठी है। वह कुछ कर नहीं रही है। जब वह आयेंगे तब रोटी बना देगी। वह जाने कहाँ-कहाँ देर लगा देते हैं। और कब तक बैठूँ। मुझसे नहीं बैठा जाता। कोयले भी लहक आये हैं। उसने जोर से खीझ कर आटे की थाली सामने खींच ली और रोटी बेलने लगी।

थोड़ी देर बाद उसने जीने पर पैरों की आहट सुनी। उसके मुख पर कुछ तल्लीनता आयी। क्षण-भर वह आभा उसके चेहरे पर रह कर चली गयी और वह फिर उसी भाँति काम में लग गयी।

कालिन्दीचरण (पति) आये। उनके पीछे-पीछे तीन और उनके मित्र भी आये। वे आपस में बातें करते चले आ रहे थे। और खूब गर्म थे। कालिन्दीचरण मित्रों के साथ सीधे अपने कमरे में चले गये। उनमें बहस छिड़ी थी। कमरे में पहुँच कर रुकी हुई बहस फिर छिड़ गयी। ये चारों व्यक्ति देशोद्धार के सम्बन्ध में बहुत कटिबद्ध हैं। चर्चा उसी सिलसले में चल रही है। भारत-माता को स्वतन्त्र करना होगा- और नीति-अनीति हिंसा-अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा। मीठी बातों से बाघ के मुँह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ को मारना ही एक इलाज है। आतंक! हां, आतंक। हमें क्या आतंकवाद से डरना होगा? लोग हैं जो कहते हैं आतंकवादी मूर्ख हैं वे बच्चे हैं। हां वे हैं बच्चे और मूर्ख। उन्हें बुजुर्गी और बुद्धिमानी नहीं चाहिए। हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह बाल-बच्चों का। हमें नहीं गर्ज धन-दौलत की। तब हम मरने के लिए आजाद क्यों नहीं हैं? जुल्म को मिटाने के लिए कुछ जुल्म होगा ही। उससे वे डरें जो डरते हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं है।

फिर वे चारों आदमी निश्चय करने में लगे कि उन्हें खुद क्या करना चाहिए।

इतने में कालिन्दीचरण को ध्यान आया कि न उसने खाना खाया है न मित्रों से खाने के लिए पूछा है। उसने अपने मित्रों से माफी माँग कर छुट्टी ली और सुनन्दा की ओर चला।

सुनन्दा जहाँ थीं, वहाँ है। वह रोटी बना चुकी है। अँगीठी के कोयले उल्टे तवे से दबे हैं। माथे को उँगलियों पर टिकाकर वह बैठी है। बैठी-बैठी सूनी-सी देख रही है। सुन रही है कि उसके पति कालिन्दीचरण अपने मित्रों के साथ क्यों और क्या बातें कर रहे हैं। उसे जोश का कारण नहीं समझ में आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है, स्पृहणीय और मनोरम और हरियाली। यह भारतमाता की स्वतन्त्रता को समझना चाहती है; पर उसको न भारतमाता समझ में आती है, न स्वतन्त्रता समझ में आती है। उसे इन लोगों की इस जोरों की बातचीत का मतलब ही समझ में नहीं आता। फिर भी, उत्साह की उसमें बड़ी भूख है। जीवन की हौंस उमसे बुझती-सी जा रही है; पर वह जीना चाहती है। उसने बहुत चाहा है कि पति उससे भी

कुछ देश की बात करें। उसमें बुद्धि तो जरा कम है, फिर धीरे-धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी? सोचती है, कम पढ़ी हूँ तो इसमें मेरा ऐसा कसूर क्या है? अब तो पढ़ने को मैं तैयार हूँ लेकिन पत्नी के साथ पति का धीरज खो जाता है। खैर उसने सोचा है उसका काम तो सेवा है। बस, यह मान कर जैसे कुछ समझने की चाह ही छोड़ दी है। वह अनायास भाव से पति के साथ रहती है और कभी उनकी राह के बीच में आने की नहीं सोचती। वह एक बात जान चुकी है कि उसके पति ने अगर आराम छोड़ दिया है, घर का मकान छोड़ दिया है, जान-बूझकर उखड़े-उखड़े और मारे-मारे जो फिरते हैं, इसमें वे कुछ भला ही सोचते होंगे। इसी बात को पकड़ कर वह आपत्ति-शून्य भाव से पति के साथ विपदा-पर-विपदा उठाती रही है। पति ने कहा भी है कि तुम मेरे साथ क्यों दुःख उठाती हो; पर सुन कर वह चुप रह गयी है सोचती रह गयी है कि देखो, यह कैसी बात करते हैं। वह जानती है कि जिसे 'सरकार' कहते हैं, वह सरकार उनके इस तरह के कामों से बहुत नाराज है। सरकार सरकार है। उसके मन में कोई स्पष्ट भावना नहीं है कि 'सरकार क्या होती है; पर यह जितने हाकिम लोग हैं, वे बड़े जबरदस्त होते हैं और उनके पास बड़ी-बड़ी ताकतें है। इतनी फौज, पुलिस के सिपाही और मजिस्ट्रेट और मुन्शी और चपरासी और थानेदार और वायसराय ये सब सरकार के ही हैं। इन सबसे कैसे लड़ा जा सकता है? हाकिम से लड़ना ठीक बात नहीं है; पर यह उसी लड़ने में तन-मन बिसार बैठे हैं। खैर, लेकिन ये सब-के-सब इतने जारे से क्यों बोलते हैं? उसको यही बहुत बुरा लगता है। सीधे-सादे कपड़ों में एक खुफिया पुलिस का आदमी हरदम उनके घर के बाहर रहता है। ये लोग इस बात को क्यों भूल जाते हैं? इतने जोर रो क्यों बोलते हैं?

बैठे-बैठे वह इसी तरह की बातें सोच रही है। देखो, अब दो बजेंगे। उन्हें न खाने की फिक्र है, न मेरी फिक्र। मेरी तो खैर कुछ नहीं; पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी बेपरवाही से तो वह बच्चा चला गया। उसका मन कितना भी इधर-उधर डोले; पर अकेली जब होती है, तब भटक-भटक कर वह मन अन्त में उसी बच्चे के अभाव पर आ पहुँचता है। तब उसे बच्चे की वही-वही बातें याद आती हैं-वे बड़ी प्यारी आंखे, छोटी-छोटी उँगुलियां और नन्हें-नन्हें ओंठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती है। सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है। ओह! यह मरना क्या है। इस मरने की तरफ उससे देखा नहीं जाता। यद्यपि वह जानती है कि मरना सबको है-उसको मरना है, उसके पति को मरना है; पर उस तरफ भूल से छन-भर देखती है, तो भय से भर जाती है। यह उससे सहा नहीं जाता। बच्चे की याद उसे मथ उठती है। तब वह विह्वल होकर आँखें पोंछती है और हठात् इधर-उधर की किसी काम की बात में अपने को उलझा लेना चाहती है; पर अकेले में, वह कुछ करे, रह-रह कर वही वह याद-वही वह मरने की बात उसके सामने हो रहती है और उसका चित्त बेबस हो जाता है।

वह उठी। अब उठ कर बरतनों को माँज डालेगी, चौका भी साफ करना है। ओह! खाली बठी मैं क्या सोचती रहा करती हूँ। इतने में कालिन्दीचरण चौके में घुसे।

सुनन्दा कठोरतापूर्वक शून्य को ही देखती रही। उसने पति की ओर नहीं देखा।

कालिन्दी ने कहा-सुनन्दा, खाने वाले हम चार हैं। खाना हो गया?

सुनन्दा चून की थाली और चकला-बेलन और बटलोई वगैरह खाली बरतन उठाकर चल दी, कुछ भी बोली नहीं।

कालिन्दी ने कहा-सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और हैं। खाना बन सके तो कहो; नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे।

सुनन्दा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। यह उससे क्षमा-प्रार्थी से क्यों बात कर रहे हैं, हँस कर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गैर हूँ। अच्छी बात है, तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम में लगी रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना-वाना। और वह चुप रही।

कालिन्दीचरण ने जरा जोर से कहा-सुनन्दा!

सुनन्दा के जी में ऐसा हुआ कि हाथ की बटलोई को खूब जोर से फेंक दे। किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठ-बैठे इन्ही अपने पति के बारे में कैसी प्रीति की और भलाई की बातें सोच रही थी। इस वक्त भीतर-ही-भीतर गुस्से से घुट कर रह गयी।

"क्यों! बोल भी नहीं सकती?"

यह कह कर कालिन्दी तैश में पैर पटकते हुए लौटकर चले गये।

कालिन्दीचरण अपने दल में उग्र नहीं समझे जाते, किसी कदर उदार समझे जाते हैं। सदस्य अधिकतर अविवाहित है, कालिन्दीचरण विवाहित ही नहीं हैं, वह एक बच्चा खो चुके हैं। उनकी बात का दल में आदर है। कुछ लोग उनके धीमेपन पर रुष्ट भी हैं। वह दल में विवेक के प्रतिनिधि हैं और उत्ताप पर अंकुश का काम करते हैं। बहस इतनी बात पर थी कि कालिन्दी का मत था कि हमें आतंक को छोड़ने की ओर बढ़ना चाहिए। आतंक से विवेक कुंठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है, या उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियाँ श्रेष्ठ नहीं हैं। हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं। सरकार व्यक्ति के और राष्ट्र के विकास के ऊपर बैठकर उसे दबाना चाहती है। आतंक से वह काम नहीं होगा। जो शक्ति के मद में उन्मत्त है, असली काम तो उसका मद उतारने और उसमें कर्त्तव्य-भावना का प्रकाश जगाने का है। हम स्वीकार करें कि मद उसकी टक्कर खाकर, चोट पाकर ही उतरेगा। यह चोट देने के लिए हमें अवश्य तैयार रहना चाहिए; पर यह नोचा-नोची उपयुक्त नहीं। इससे सत्ता का कुछ बिगड़ता तो नहीं, उल्टे उसे अपने औचित्य पर सन्तोष हो आता है। पर जब (सुनन्दा के पास से) लौट कर आया, तब देखा गया कि कालिन्दी अपने पक्ष पर दृढ़ नहीं है। वह सहमत हो सकता है कि हां, आतंक जरूरी भी है। "हाँ", उसने कहा-"यह ठीक है कि हम लोग कुछ काम शुरू कर दें।" इसके साथ ही कहा- "आप लोगों को भूख नहीं लगी क्या? उनकी तबियत खराब है, इससे यहाँ तो खाना बना नहीं। बताओ क्या किया जाये? कहीं होटल चलें?"

एक ने कहा कि कुछ बाजार से यहीं मँगा लेना चाहिए। दूसरे की राय हुई कि होटल ही चलना चाहिए। इसी तरह की बातों में लगे थे कि सुनन्दा ने एक बड़ी थाली में खाना परोस कर उनके बीच ला रखा। रख कर वह चुपचाप चली गयी। फिर आकर पास ही चार गिलास पानी के रख दिये और फिर उसी भाँति चुपचाप चली गयी।

कालिन्दी को जैसे किसी ने काट लिया।

तीनों मित्र चुप हो रहे। उन्हें अनुभव हो रहा था कि पति-पत्नी के बीच स्थिति में कहीं कुछ तनाव पड़ा हुआ है। अन्त में एक ने कहा-कालिन्दी, तुम तो कहते थे, खाना नहीं है?

कालिन्दी ने झेंप कर कहा-मेरा मतलब था, काफी नहीं है।

दूसरे ने कहा-बहुत काफी है। सब चल जायेगा।

देखूँ, कुछ और हो तो-कह कर कालिन्दी उठ गया। आकर सुनन्दा से बोला-यह तुमसे किससे कहा था कि खाना वहाँ ले आओ? मैंने क्या कहा था?

सुनन्दा कुछ न बोली।

"चलो, उठा कर लाओ थाली। हमें किसी को यहाँ नहीं खाना है। हम होटल जायेंगे।"

सुनन्दा नहीं बोली। कालिन्दी भी कुछ देर गुम खड़ा था। तरह-तरह की बातें उनके मन में और कंठ में आती थीं। उसे अपना अपमान मालूम हो रहा था, और अपमान उसे असह्य था।

उसने कहा-सुनती नहीं हो कि कोई क्या कह रहा है! क्यों?

सुनन्दा ने और मुँह फेर लिया।

'क्या मैं बकते रहने के लिए हूँ?'

सुनन्दा भीतर-ही-भीतर घुट गयी।

'मैं पूछता हूँ कि जब मैं कह गया था, तब खाना ले जाने की क्या जरूरत थी?'

सुनन्दा ने मुड़कर और अपने को दबा कर धीमे से कहा-खाओगे नहीं? एक तो बज गया। कालिन्दी निरस्त होने लगा। यह उसे बुरा मालूम हुआ। उसने मानो धमकी के साथ पूछा-खाना और है? सुनन्दा ने धीमे से कहा-अचार लेते जाओ।

'खाना और नहीं है? अच्छा, लाओ अचार।'

सुनन्दा ने अचार ला दिया और लेकर कालिन्दी भी चला गया।

सुनन्दा ने अपने लिए कुछ भी बचा कर नहीं रखा था। उसे यह सूझा ही न था कि उसे भी खाना है। अब कालिन्दी के लौटने पर उसे जैसे मालुम हुआ कि उसने अपने लिए कुछ भी नहीं बचाकर रखा है। वह अपने से रुष्ट हुई। उसका मन कठोर हुआ; इसलिए नहीं कि क्यों उसने खाना नहीं बचाया। इस पर तो उसमें स्वाभिमान का भाव जागता था। मन कठोर यों हुआ कि वह इस तरह की बातें सोचती ही क्यों है? छि:! यह भी सोचने की बात है! और उसमें कड़वाहट भी फैली। हठात् यह उसके मन को लगता ही है कि देखो, उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी! क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊँ और उनके मित्र भूखे रहें; पर पूछ लेते तो क्या था। इस बात पर उसका मन टूटता-सा है। मानो उसका जो तनिक-सा मान था, वह भी कुचल गया हो। पर वह रह-रहकर अपने को स्वयं अपमानित कर लेती हुई कहती है कि छि:! छि:! सुनन्दा, तुझे ऐसी जरा-सी बात का अब तक खयाल होता है। तुझे तो खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक रोज भूखे रहने का तुझे पुण्य मिला। मैं क्यों उन्हें नाराज करती हूँ? अब से नाराज न करूँगी; पर वह अपने तन की भी सुध तो नहीं रखते। यह ठीक नहीं है। मैं क्या करूँ।

और वह अपने बरतन माँजने में लग गयी। उसे सुन पड़ा कि वे लोग फिर जोर-शोर से बहस करने में लग गये। बीच-बीच में हँसी के कहकहे भी उसे सुनाई दिये। 'ओ!' सहसा उसे खयाल हुआ, 'बरतन तो पीछे भी मल सकती हूँ; लेकिन उन्हें कुछ जरूरत हुई तो?' यह सोच, झटपट हाथ धो वह कमरे के दरवाजे के बाहर दीवार से लगकर खड़ी हो गयी।

एक मित्र ने कहा-अचार और है? अचार और मँगाओ यार।

कालिन्दी ने अभ्यासवश जोर से पुकारा-अचार लाना भाई, अचार। मानो सुनन्दा कहीं बहुत दूर हो; पर वह तो बाहर लगी खड़ी ही थी। उसने चुपचाप अचार लाकर रख दिया। जाने लगी, तो कालिन्दी ने तनिक स्निग्ध वाणी से कहा-थोड़ा पानी भी लाना।

और सुनन्दा ने पानी ला दिया। देकर लौटी और फिर बाहर द्वार से लगकर ओट में खड़ी हो गयी। जिससे कालिन्दी कुछ माँगे, तो जल्दी से ला दे।

16.2 प्रस्तावना

कहानी गद्य की सशक्त विधा मानी जाती हैं। आधुनिक जीवन की जटिलताओं, विसंगतियों, विद्रूपताओं तथा क्रूरताओं की जितनी सजीव अभिव्यक्ति कहानी में संभव हो पायी है उतनी अन्य किसी विधा में नहीं। इसीलिये कहानी को गद्य की महत्वपूर्ण और लोकप्रिय विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के अनुसार- "कहानी का यह व्यक्तिव इतना व्यापक और महान है कि उसकी सीमा में समस्त मानव व्यापार, उसकी समस्त समस्याएँ, निदान और भाव स्वीकृति रहती है।" कहानी तथा मनोविज्ञान का निकट संबंध है। प्रेमचंद के अनुसार- "सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।" व्यक्ति का अपने परिवेश से निरंतर संघर्ष होता रहता है। बाह्य परिस्थितियाँ मानव के मन को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित करती हैं तथा मानव की प्रतिक्रिया भी उनके प्रति भिन्न-भिन्न रूपों में होती है। स्वतंत्रता पूर्व कहानियों में पात्र सुलझे हुए अथवा इकहरे व्यक्तिव वाले होते थे। कहानीकार पात्र के बाह्य व्यक्तिव पर ही अधिक प्रकाश डालता था। स्वातंत्रयोत्तर कहानीकार का यह मानना है कि मनुष्य के व्यक्तिव में अनेक उलझाव होते हैं, इसलिये वह सरल नहीं जटिल होता है। मनुष्य की अंत: वृत्तियां, उसके मनोविकार तथा उसके अचेतन में घटित क्रियाएं उसके व्यक्तिव को प्रभावित करती हैं तथा वह इन्हीं के आधार पर समाज में व्यवहार करता है। इसीलिये स्वातंत्रयोत्तर कहानी में व्यक्ति के मानसिक उथल-पुथल, उसके अचेतन के संघर्ष तथा उसके गढ़ भावों को भी अभिव्यक्ति प्रदान की गयी। प्रेमचंद के पश्चात् कहानी ने सामाजिक यथार्थ के स्थान पर मन के यथार्थ को चित्रित करने का बीड़ा उठाया। कहानी ने स्थूल यथार्थ की अपेक्षा अंतःस्थल की गहराइयों में उलझे मनुष्य के मनोविश्लेषण को आधार बनाकर मानव के अंतःकरण की अनेक गुत्थियों को सहज तथा सीधे रूप में पाठकों के समक्ष रखा। जैनेन्द्र पहले कहानीकार थे जिन्होंने अपनी कहानी के पात्रों को असाधारण स्थितियों में रखकर मनोविश्लेषण के आधार पर उनके व्यक्तिव को प्रस्तुत किया। राजेन्द्र यादव इसीलिये कहानी में जैनेन्द्र के आगमन को महत्वपूर्ण मानते हैं- "हिंदी कहानी की दृष्टि से जैनेन्द्र का आगमन सबसे पहला और अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है।"

ये कहानीकार कहानी को व्यक्ति के अपने प्रश्नों, संदेह, चिंता तथा जिज्ञासा का समाधान खोजने का एक माध्यम मानते हैं। जैनेन्द्र लिखते हैं- "कहानी मेरे लिये शिल्प नहीं, वह संवेदन और संवेद है। शिल्प अनावश्यक नहीं। कारीगरी को किसी तरह छोटी चीज नहीं समझा जा सकता, लेकिन उससे किनारे बनते हैं, नदी का पानी नहीं बनता।" इस प्रकार स्वातंत्रयोत्तर कहानीकारों ने मनोविज्ञान के व्यवहारिक पक्ष को कहानी के साथ जोड़कर कहानी को अधिक विश्वसनीयता प्रदान की। कहानी ने मानव मन के उन क्षेत्रों में भी प्रवेश किया जहाँ अभी तक उसका प्रवेश अवरूद्ध था। सिर्फ नैतिकता के आधार पर किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति का समर्थन तथा आकलन मनोवैज्ञानिक कहानी में नहीं होता क्योंकि इस कहानी में समाज नहीं, व्यक्ति महत्वपूर्ण होता है। चरित्र-चित्रण की गहनता तथा विचारों की प्रधानता इन कहानियों का प्रमुख लक्ष्य है। स्वातंत्रयोत्तर मनोवैज्ञानिक कहानी में चरित्र के सूक्ष्म तथा प्रच्छन्न पक्षों का उद्घाटन तथा पात्र की मनःस्थिति एवं अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्रण मिलता है। इन कहानियों का प्रमुख विषय स्त्री-पुरुष संबंध तथा उस संबंध से जुड़ी समस्याएँ हैं।

इस प्रकार मनोवैज्ञानिक कहानीकारों ने कहानी को सामाजिक यथार्थ के सीमित फलक से ऊपर उठाकर उसे मनुष्य के अन्तर्जगत या मनोजगत में पहुँचाया। इन कहानियों के चरित्र साधारण की अपेक्षा विशिष्ट हैं। बहिर्मुखी की अपेक्षा अंतर्मुखी है और हर तरह से पूर्ण मानवीय चरित्र हैं। कहानीकार यहाँ कथा तत्व को उतना महत्व नहीं देता जितना चरित्र विश्लेषण को। इसीलिये मनोवैज्ञानिक कहानियों में कथा तत्व साधन है तथा चरित्र का संयोजन उसका साध्य।

16.3 जैनेन्द्र का साहित्यिक परिचय

हिंदी कथा साहित्य में एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी जैनेन्द्र की गणना विश्व के प्रमुख विचारशील लेखकों में की जाती है। जैनेन्द्र को 'विचारक-सर्जक' की संज्ञा से अभिहित करना समीचीन होगा। जैनेन्द्र को हिंदी कथा साहित्य में एक नए युग के शुभारम्भ का श्रेय जाता है। अपने युग के प्रतिनिधि साहित्यकार जैनेन्द्र ने एक प्रसिद्ध उपन्यासकार, युग प्रवर्तक कहानीकार, चिंतनशील विचारक तथा श्रेष्ठ अनुवादक के रूप में हिंदी साहित्य में अपना योगदान दिया।

उपन्यास- जैनेन्द्र का उपन्यास लेखन 1929 से 1985 तक फैला हुआ है-

परख	1929	हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, मुंबई
तपोभूमि	1932	"
सुनीता	1935	"
त्यागपत्र	1937	हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, मुंबई
कल्याणी	1938	"
सुखदा	1952	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
विवर्त	1953	"
व्यतीत	1954	"
जयवर्धन	1956	"

मुक्तिबोध	1965	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
अनाम स्वामी	1974	"
दशार्क	1985	"

निबंध संग्रह

1. जड़ की बात	1945	हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर, मुंबई
2. पूर्वोदय	1950	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
3. सोच-विचार	1953	"
4. साहित्य का श्रेय और प्रेय	1953	"
5. मंथन	1953	"
6. काम, प्रेम, परिवार	1954	"
7. वृत्त विहार-I	1964	"
8. वृत्त विहार-II	1965	"
9. राष्ट्र और राज्य	1965	"
10. वृत्त विहार III	1968	"
11. समय, समस्या और सिद्धान्त दर्शन	1971	"

संस्मरण

1. ये और वे	1955	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
2. प्रेमचंद: एक कृती व्यक्तित्व	1967	"
3. अकालपुरुष गांधी	1968	"
4. मेरे भटकाव	1982	"

वैचारिक संवाद-

1. समय और हम	1962	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
2. जीवन, समय और स्वतंत्रता	2001	"
3. गाँधी और हमारा समय	2001	"
4. संस्कृति, आस्था और तत्व दर्शन	2001	"

अनूदित ग्रंथ

1. मंदाकिनी (नाटक)	मेटरलिंक (मूल)	1935	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
2. पाप और प्रकाश (नाटक)	टॉल्सटॉय (मूल),	1937	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
3. प्रेम में भगवान व अन्य कहानियाँ	टॉल्सटॉय (मूल),	1937	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
4. यामा (यामा द पिट : उपन्यास)	एलेक्जेंडर क्यूप्रिन (मूल),	1958	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
5. क्या भविष्य है?	बर्टेण्ड रसेल (मूल),	2001	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

कहानीकार जैनेन्द्र

जैनेन्द्र ने सैकड़ों कहानियाँ लिखी हैं। उनके अनेक कहानी संग्रह समय-समय पर प्रकाशित होते रहे। उनका पहला कहानी संग्रह 'फाँसी' 1929 में हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, मुंबई से प्रकाशित हुआ।

1.	फाँसी	1929	हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, मुंबई
2.	वातायन	1930	"

3.	नीलम देश की राजकन्या	1933	"
4.	एक रात	1934	"
5.	दो चिड़िया	1935	"
6.	पाजेब	1948	"
7.	जयसंधि	1949	"
8.	अपना-अपना भाग्य	1955	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
9.	जाह्नवी	1955	"
10.	साधु की हठ	1955	"
11.	तिरबेनी	1955	"
12.	अभागे लोग	1955	"
13.	दो सहेलियाँ	1962	"
14.	महामहिम	1966	"

15. जैनेन्द्र प्रतिनिधि कहानियाँ (संपादक शिवनंदन प्रसाद)1969 पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

16. जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ (संपादक डॉ. निर्मला जैन) 1973 पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

16.4 जैनेन्द्र की कहानी कला

जैनेन्द्र की कहानी कला विचार तथा अनुभव संश्लिष्ट है। जैनेन्द्र ने कहानी में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को स्थान दिया है। सामान्यत: परिस्थिति पात्रों की नियामक होती है। परंतु जैनेन्द्र के पात्र परिवेश में घट रही क्रियाओं से कभी अनासक्त रहते हैं और कभी - स्थिति का यथासंभव विरोध भी करते हैं। आत्मपीड़न उनके पात्रों की विशेषता है। वे अपने पात्रों को आत्म पीड़ा के संताप से तप्त करते हैं। ये पात्र अनेक प्रश्नों एवं चिंताओं में डूबे रहते हैं। पात्रों की यह चिंतनशीलता-उनकी कहानियों में दर्शन की सृष्टि करती है। प्रियव्रत कहानी का एक संवाद इस संदर्भ में उद्धृत है-"सुना था कि तुम दार्शनिक हो गये हो? यही तुम्हारा दर्शन हैं? अभिव्यक्ति की जरूरत ही क्यों? उस जरूरत का मतलब है कि आदमी आत्मतुष्ट नहीं है। असल में स्वत: में मग्न रहना चाहिए। मग्नता में फिर क्या अभिव्यक्ति और किसके प्रति।"

-(प्रियव्रत)

आलोचकों ने जैनेन्द्र के पात्रों की आत्मपीड़ा को गाँधीवादी अहिंसा का प्रभाव माना है।

जैनेन्द्र की कहानियों में मात्र कथानक का सौन्दर्य नहीं होता। उनकी कहानी का लक्ष्य केवल पाठक का मनोरंजन करना नहीं होता है। उनकी कहानी का सृजन मौलिक चिंतन का परिणाम होता है। इसीलिये उनकी कहानियाँ विचार प्रधान होती हैं। जीवन में घट रहे क्रियाकलापों को जैनेन्द्र उतना महत्व नहीं देते, जितना उन क्रियाकलापों के प्रति मानव-मन की प्रतिक्रियाओं को देते हैं। 'पाजेब' कहानी ने एक छोटी-सी घटना कि पुत्री मुन्नी की पाजेब नहीं मिल रही है लेखक के मन में विभिन्न प्रतिक्रियाओं को जन्म देती है।

इसी प्रकार बालक आशुतोष पर संदेह की अवस्था में लेखक के मन में विभिन्न प्रकार के सिद्धांतों का संघर्ष हो जाता है-

"मेरे मन में उस समय तरह-तरह के सिद्धांत आए। मैंने स्थिर किया कि अपराध के प्रति करुणा ही होनी चाहिए। रोष का अधिकार नहीं है। प्रेम से ही अपराध-वृत्तिज्ञा को जीता जा सकता है। आतंक से उसे दबाना ठीक नहीं है। बालक का स्वभाव कोमल होता है और सदा ही उससे स्नेह से व्यवहार करना चाहिए इत्यादि।" **-(पाजेब)**

नारी के प्रति जैनेन्द्र की दृष्टि अति उदार है। प्रेम में तल्लीनता जैनेन्द्र के नारी चरित्रों की विशेषता है। जैनेन्द्र की कहानियों के नारी पात्र परिस्थितियों के प्रति चाहे कैसी भी प्रतिक्रिया करें, भिन्न-भिन्न परिवेश में उनका व्यवहार जैसा भी हो वे अंत्त: उदात्त ही बनी रहती हैं। पाठक के मन में जैनेन्द्र के नारी चरित्रों के प्रति सद्भाव ही बना रहता है। 'जाह्नवी' कहानी की जाह्नवी भी अपने पत्र के माध्यम से पात्रों की सहानुभूति तथा सम्मान ही प्राप्त करती है- "आप जब विवाह के लिये यहाँ पहुँचेंगे तो मुझे प्रस्तुत भी पाएंगे। लेकिन मेरे चित्त की हालत इस समय ठीक नहीं है और विवाह जैसे धार्मिक अनुष्ठान की पात्रता मुझमें नहीं है। एक अनुगता विवाह द्वारा आपको मिलनी चाहिए। वह जीवन संगिनी भी हो। फिर भी अगर आप चाहें आपके माता-पिता चाहें तो प्रस्तुत मैं अवश्य हूँ.।.. आपकी कृपा मानूंगी। कृतज्ञ होऊँगी। पर निवेदन है कि यदि आप मुझ पर अपनी माँग उठा लेंगे-मुझे छोड़ देंगे, तो भी मैं कृतज्ञ होऊँगी। निर्णय आपके हाथ में है। जो चाहे, करें।"

-(जाह्नवी)

इस प्रकार जैनेन्द्र की कहानियाँ का फलक बहुत विस्तृत है, किन्तु है आतंरिक तथा सूक्ष्म, क्योंकि जैनेन्द्र यह मानते हैं कि "मनुष्य वह नहीं है जो दिखता है वरन् मनुष्य वह है जो उसके भीतर है"। जैनेन्द्र की कहानियों की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सहजता है। गूढ़-गम्भीर चिंतन को इतनी सीधी सहज भाषा में अभिव्यक्त करना जैनेन्द्र जैसे कलाकार के लिये ही संभव है। जैनेन्द्र अपनी विलक्षण प्रतिभा के माध्यम से बहुत कम शब्दों में बहुत कुछ कह देते हैं। उनकी भाषा पर राजेन्द्र यादव की टिप्पणी दृष्टव्य है- "कहानी के परम्परागत शिल्प को तोड़कर उसे नया स्वरूप देने से भी अधिक मैं जैनेन्द्र का महत्व इसमें मानता हूँ कि उन्होंने कहानी को एक बेलौस सहज-स्वाभाविक पारदर्शी भाषा और भंगिमा दी, अपनापन और खुलाव दिया।"

सहजता, निजीपन, संकेतात्मकता तथा उन्मुक्ता जैनेन्द्र की कहानी शैली की विशेषता है।

16.5 'पत्नी' कहानी का सारांश

जैनेन्द्र की कहानियों में घटनाओं की अपेक्षा विचारों एवं प्रतिक्रियाओं की बहुलता होती है। 'पत्नी' कहानी भी इसका अपवाद नहीं है। इस कहानी का कथानक भी अत्यंत संक्षिप्त है जिसमें एक मध्यवर्गीय परिवार में एक व्यस्त क्रांतिकारी पति की पत्नी सुनंदा के मानसिक संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। कहानी का सारांश इस प्रकार है-

शहर के एक ओर साधारण से मकान की दूसरी मंजिल पर पत्नी सुनंदा रसोई में धीरे-धीरे बुझती हुई अँगीठी के सामने बैठी कुछ सोच रही है। रात्रि के बारह बजे हैं। सुनंदा के

क्रांतिकारी पति कालिन्दीचरण अभी तक घर नहीं लौटे हैं। घर में दो ही प्राणी रहते हैं पति और पत्नी। एक बालक जन्म के कुछ समय पश्चात ही मर गया था। अँगीठी के सामने बैठी सुनंदा अपने पति की प्रतीक्षा कर रही है कि वे आएं तो वह उनके लिये रोटियाँ सेक दे। रोज रात को देर से आना उसके पति की दिनचर्या में सम्मिलित है। सुनंदा अपने पति की चिंता में निमग्न है कि वे भूखे-प्यासे न जाने कहाँ भटक रहे हैं। प्रतीक्षा में खीझकर वह रोटी बनाना आरंभ कर देती हैं। थोड़ी देर बाद उसके पति कालिन्दीचरण तीन मित्रों को साथ लेकर आते हैं और सीधे अपने कमरे में चले जाते हैं। चारों व्यक्ति देश की स्वतंत्रता और उद्धार के लिये चिंत्ति प्रतीत होते हैं वे चारों आतंकवाद, देश की स्वतंत्रता तथा उससे जुड़े विभिन्न मुद्दों पर बहस कर रहे हैं। अचानक कालिन्दीचरण को यह ध्यान आता है कि उसने तथा उसके मित्रों ने खाना नहीं खाया है। सुनंदा अभी भी अँगीठी के सामने बैठी विचारों में खोई है। वह अपने पति तथा मित्रों की बातें सुन रही है परन्तु उसे विदेशी सरकार भारत माता और उसकी स्वतंत्रता से जुड़ी बातें समझ में नहीं आतीं। वह भी इन बातों को समझना चाहती है। क्योंकि उसे ये बातें महत्वपूर्ण लगती हैं। फिर भी उसे इतना समझ में आता है कि उसके पति तथा पति के मित्रों की गतिविधियाँ सरकार विरूद्ध हैं। इसीलिये उनके जोर-जोर से बोलने पर उसे भय लगता है। उसे अचानक ध्यान आता है कि दो बजने को हैं। उसके पति को न अपने शरीर की चिन्ता है न अ पति पत्नी की। उसे अपने पति की लापरवाही पर क्रोध आता है। उसे लगता है कि पति की लापरवाही के कारण ही उसके बच्चे की मृत्यु हुयी थी। वह अचानक अपने बच्चे की स्मृति में डूब जाती है। वह अत्यंत, व्याकुल हो जाती है, उसके नेत्रों में आँसू आ जाते हैं, वह आँखें पोंछकर पुन: अपने को किसी कार्य में व्यस्त करने का प्रयास करती है। तभी उसका पति कालिन्दीचरण आकर पूछता है कि हम चारों के लिये खाना होगा? सुनंदा अपने पति के स्वर में विनय नहीं अपनत्व से युक्त आदेश चाहती है। अत: वह कोई उत्तर नहीं देती। पति लौटकर मित्रों से झूठ बोल देता है कि आज पत्नी सुनंदा की तबियत ठीक नहीं इसीलिये घर में खाना नहीं बना। हम लोग होटल चलकर कुछ खा आते हैं या यहीं मँगा लेते हैं। इस मुद्दे पर मित्रों में विचार हो ही रहा था कि सुनंदा एक बड़ी-सी थाली में खाना परोसकर रख जाती है। कालिन्दीचरण को इसमें अपना अपमान प्रतीत होता है। वह आकर सुनंदा पर क्रोधित होता है तथा खाना वापिस उठाकर लाने को कहता है। सुनंदा भीतर ही भीतर घुट रही थी, वह कुछ भी उत्तर नहीं देती। पति के बहुत उकसाने पर वह केवल एक वाक्य बोलती है- "खाओगे नहीं एक तो बज गया।' कालिन्दीचरण निरस्त्र होकर लौट जाता है। सुनंदा अचार दे देती है। उसने अपने लिये कुछ भी नहीं बचाया। एक बार उसे लगता है कि उसके पति ने उससे खाने के विषय में नहीं पूछा पर दूसरे ही क्षण वह पति परायण नारी यह सोचती है कि उसे एक रोज अपने पति के लिये भूखे रहने का पुण्य मिला। यह सोचकर उसका सारा क्रोध एक क्षण में ही समाप्त हो जाता है। वह तन्मयता से बर्तन माँजने लगती है और झटपट हाथ धोकर दरवाजे के बाहर खड़ी हो जाती है कि 'उन्हें कुछ जरूरत हुई तो?' कालिन्दी के मित्र अचार माँगते हैं। वह अचार ले जाकर रख देती है और पुन: दीवार से लगकर खड़ी हो जाती है कि 'कालिन्दी कुछ माँगे तो जल्दी से ला दे।

16.6 'पत्नी' कहानी का प्रतिपाद्य (संवेदना)

हिंदी कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक कहानी का आरंभ करने वाले जैनेन्द्र की पत्नी कहानी की आधारिशला भी 'स्त्री मनोविज्ञान' ही है। कहानी में दो ही प्रमुख पात्र हैं। एक पति कालिन्दीचरण जिसकी दुनिया बहुत विस्तृत है, जिसकी चिन्ताएं बहुत बड़ी-बड़ी हैं जैसे देश की स्वतंत्रता, देश का विकास, राष्ट्र का उद्धार इत्यादि। दूसरी ओर पत्नी सुनन्दा है जो घर के सीमित परिवेश में दिन काटती है। रात्रि के बारह बजे हैं। क्रांतिकारी व्यस्त पति अभी तक घर नहीं लौटा है और सुनंदा रोटियाँ बनाने की प्रतीक्षा में जलती हुयी अँगीठी के सामने बैठी है। उसके सोचने का क्षेत्र भी बहुत सीमित है- "सोचने को है तो यही कि कोयले न बुझ जाय।.. वह जाने कब आएँगे। एक बज गया है।" इस सीमित घुटन भरे परिवेश में सुनंदा अपने आप से ही बातें करती रहती है। उसके मन में अनेक प्रश्न उठते रहते हैं, जिनमें से कुछ का वह तत्काल समाधान भी कर लेती है। उसका उदास और सूना मन खिन्न रहता है। भीड़ में अकेला होने की व्यथा बड़ी भारी होती है। सुनंदा का अकेलापन इसीलिये और भयावह हो जाता है क्योंकि वह वास्तव में अकेली नहीं है घर में उसका पति भी है। परंतु दुनिया जहान की चिंता में डूबे उसके पति को सुनन्दा की चिंताओं से कोई सरोकार नहीं। इसीलिए उसका अभावग्रस्त मन अपने आप से ही बातें किया करता है। पति की बड़ी-बड़ी बातें उसके कुछ समझ आती हैं, कुछ नहीं। अपने पति की इन बातों और क्रियाकलापों के प्रति उसके मन में सम्मान की भावना है, पर कहीं एक कचोट भी कि पति उससे देश और उससे जुड़े विषयों पर बात क्यों नहीं करता? उसकी अवस्था मात्र बीस-बाईस वर्ष है। वह भी जीना चाहती है, उत्साहित होना चाहती है, किन्तु पति की उदासीनता और घर का घुटन भरा एकाकीपन उसकी जीवन के प्रति ललक को मंद कर रहा है- "फिर भी उत्साह की उसमें पड़ी भूख है। जीवन की हौंस उसमें बुझती जा रही है पर वह जीना चाहती है। उसने बहुत चाहा है कि पति उससे भी कुछ देश की बात करें।" सुनन्दा प्रेम तथा समर्पण में विश्वास रखती है और प्रेम अधिकार चाहता है। मध्यरात्रि में घर लौटा कालिन्दीचरण सुनन्दा से अपने तथा अपने मित्रों के लिए खाना बनाने की लगभग याचना-सी करता है, उसका यह व्यवहार स्वाभाविक है, ऐसी स्थिति में एक पति का स्वर ऐसा ही हो सकता है, किन्तु सुनन्दा आहत है वह चाहती है कि उसका पति उससे अधिकारपूर्ण खाने की माँग करे- "उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। यह उससे क्षमा-प्रार्थी से क्यों बात कर रहे हैं, हँसकर क्यों नहीं कह देते कुछ और खाना दो। जैसे मैं गैर हूँ।" वह अपने लिये थोड़ा भी खाना नहीं बचाती। सब एक बड़ी थाली में रखकर, कालिन्दीचरण और उसके मित्रों को दे देती है। अपने इस त्याग पर उसे तनिक भी मलाल नहीं परन्तु इस बात की टीस जरूर है कि उसके पति ने एक बार भी यह नहीं पूछा कि उसने अपने लिये भी खाना रखा है अथवा नहीं। एक ओर सुनंदा है जिसे पति ही नहीं पति के मित्रों के भी खाने की फिक्र है दूसरी ओर कालिदीचरण है जो पूरी तरह निश्चिंत है। उसे यह होश ही नहीं कि घर में उसकी पत्नी भूखी है। यह कचोट, यह अकेलापन सुनंदा को व्यथित कर देता है। उसे रह-रहकर अपने मरे हुये बच्चे की याद आती है। बच्चे की मृत्यु के लिये भी वह अपने पति की

लापरवाही को ही उत्तरदायी ठहराती है। इतने पर भी सुनंदा को पति पर क्रोध आता है पर क्षणिक। अंन्ततः वह पति के प्रति सम्मान एवं कर्तव्य की भावना से युक्त पति के हर आदेश की पूर्ति के लिये तत्पर रहती है। जैनेन्द्र ने सुनंदा के रूप में भारतीय पत्नी की सहनशक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया है। आत्म पीड़ा जैनेन्द्र के नारी चरित्रों की विशेषता है। सुनंदा भी अपनी हर व्यथा को दबाकर सहज बने रहने का प्रयास करती है। भारतीय पत्नी के लिये अपना स्वभाव बदलना संभव नहीं चाहे पति कितना ही अनुदार क्यों न हो।

'पत्नी' कहानी में सुनंदा के रूप में केवल अपने घर-संसार तक सिमटी भारतीय मध्यवर्गीय घरेलू पत्नी की घुटन, पीड़ा, संवेदना, कर्तव्य बोध, समर्पण, कुंठाओं तथा मानसिक ऊहापोह को उभारना ही जैनेन्द्र का प्रतिपाद्य है। गोविन्द मिश्र 'पत्नी' कहानी की संवेदना को एक अलग ही नजरिए से देखते हैं- "पत्नी के दृष्टिकोण से लिखी गयी यह कहानी पत्नी की घुटन मात्र की कहानी नहीं रह जाती उसके पार जाती है। जिस तरह पति कालिन्दीचरण और उसके क्रोध को एक तरफ रखकर पत्नी उनके क्रांतिकारियों को खाना खिलाने में लग जाती है, उससे बगैर कहे तो यह रेखांकित हो जाता है कि उस समय की क्रांतिकारिता में खासा योगदान पत्नियों का था।"

यह दृष्टिकोण कहानी के प्रतिपाद्य को और अधिक विस्तृत फलक प्रदान करता है।

16.7 'पत्नी' कहानी का शिल्प

सहजता तथा स्वाभाविकता जैनेन्द्र के शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता है। 'पत्नी' कहानी के शिल्प की भी सबसे वही विशेषता उसकी प्रत्यनहीनता है। ऐसा लगता ही नहीं है कि जैनेन्द्र कहानी लिखने का प्रयास कर रहे हैं वरन् कहानी पत्नी की सोच के साथ-साथ स्वयंमेव विकसित होती जा रही है। 'पत्नी' कहानी की भाषा संवेदना के अनुकूल सहज-स्वाभाविक प्रवाहयुक्त भाषा है। कहानी के कथ्य के अनुरूप भाषा को दुरूह शब्दों के प्रयोग से बचाने में जैनेन्द्र पूर्णतया सफल रहे हैं- "दो प्राणी इस घर में रहते हैं, पति और पत्नी। पति सवेरे से गये लौटे नहीं और पत्नी चौके में बैठी है।" भाषा कहानी के मर्म को खोलकर रख देती है जैसे भारतीय पत्नी की नियति ही है चौके में रहना। 'पत्नी' कहानी में जैनेन्द्र की भाषा की बोधगम्यता भाषा में माधुर्य एवं रसात्मकता की सृष्टि करती है जिसमें पाठक को अभिभूत करने की क्षमता है- "देखो, अब दो बजेंगे। उन्हें न खाने की फिक्र न मेरी फिक्र। मेरी तो खैर कुछ नहीं, पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी बेपरवाही से तो वह बच्चा चला गया। उसका मन कितना भी इधर-उधर डोले, पर अकेली जब होती है तब भटक-भटक कर यह मन अंत में उसी बच्चे के अभाव पर आ पहुँचता है।" कहानी में जैनेन्द्र ने सर्वत्र छोटे-छोटे वाक्यों का ही प्रयोग किया है एक आध लम्बे वाक्य का प्रयोग किया भी है तो उसे खण्डों में विभक्त कर बोधगम्य बना दिया है। जैनेन्द्र चिंतक कथाकार है। उनके पात्रों के चरित्र निर्माण में उनके मानसिक संघर्ष, अचेतन की स्थिति तथा परिस्थितियों पर उनकी प्रतिक्रिया का योगदान होता है। इसलिये जैनेन्द्र में स्वगत कथन शैली का प्रयोग बहुत मिलता है। इस कहानी में सोच में डूबी सुनंदा का मानस पटल उसके स्वगत कथनों के माध्यम से पाठकों के

समक्ष खुलता जाता है- "और कब तक बैठूँ। मुझसे नहीं बैठा जाता। कोयले भी लहक आए हैं। और उसने झल्लाकर तवा अँगीठी पर रख दिया। नहीं अब वह रोटी बना ही लेगी।" जैनेन्द्र कथानक में घटनाओं को महत्व नहीं देते। बहुत सी जगह वह केवल संकेत मात्र से काम चला लेते हैं। 'पत्नी' कहानी में भी स्थान-स्थान पर संकेतात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिये जैनेन्द्र कहानी में शहर का नाम देना आवश्यक नहीं समझते- "शहर के एक ओर तिरस्कृत मकान।" शहर कोई भी हो क्या फर्क पड़ता है।

प्रतीकात्मकता जैनेन्द्र के चिंतन को संप्रेषणीय बनाती है। कहानी में 'अचार' का प्रयोग प्रतीकात्मक है। भिन्न स्थितियों, पात्रों, घटनाओं एवं परिवेश पर चिंतन प्रक्रिया के दौरान जैनेन्द्र अनेक सूक्तियों की सृष्टि करते हैं। 'पत्नी' कहानी में भी यत्र-तत्र प्राप्त सूक्तियाँ जैनेन्द्र के विचारक रूप से परिचित कराती हैं-

1. आतंक से विवेक कुंठित होता है।
2. हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं।

पत्नी के मानसिक संघर्ष को जैनेन्द्र इतनी बखूबी इतनी सहजता से उभारते हैं कि सुनंदा का चरित्र एक रेखाचित का स्वरूप प्राप्त कर लेता है।

'पत्नी' कहानी में जैनेन्द्र की शैली अत्यंत निजी है, इतनी निजी की पाठक को भी कहानी में अपनेपन का आभास होने लगता है।

पत्नी कहानी में अनेक स्थान पर प्रश्नोत्तर शैली के दर्शन होते हैं। अपनी चिंताओं में डूबी सुनंदा अपने आप से ही प्रश्न करती रहती है और स्वयं ही उनका समाधान भी खोज लेती है। एक भी वाक्य निरर्थक नहीं। सहज भाषा में गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया है- "मन कठोर यों हुआ कि, वह इस तरह की बातें सोचती ही क्यों है? छि:। यह भी सोचने की बात है।"

16.8 संदर्भ एवं प्रसंग सहित व्याख्या

भारतमाता ..... जवानों के लिए नहीं है।

सन्दर्भ:-

मनोविश्लेषणात्मक कहानियों के माध्यम से हिन्दी कहानी की अन्तर्यात्रा का आरम्भ करने वाले जैनेन्द्र हिन्दी कथासाहित्य में एक विशेष स्थान रखते हैं। युगप्रवर्तक कथाकार जैनेन्द्र का कथा साहित्य भी उनके चिंतक एवं विचारक व्यक्तिव की झाँकी प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत गद्यांश जैनेन्द्र द्वारा रचित 'पत्नी' कहानी से उद्धृत है। 'पत्नी' जैनेन्द्र की कालजयी कहानियों में से एक है। नारी के प्रति उदार दृष्टिकोण रखने वाले जैनेन्द्र ने इस कहानी में पत्नी सुनन्दा की मनोदशा, मनोव्यथा, अन्तर्द्वन्द्व एवं चिन्तन को उभारा है।

प्रसंग:-

सुनन्दा का क्रान्तिकारी पति कालिन्दीचरण रात्रि में बारह बजे के उपरान्त अपने तीन मित्रों को लेकर घर में प्रवेश करता है। वे चारों मित्र देशोद्धार के लिए कटिबद्ध हैं। उनमें हिंसा और अहिंसा को लेकर बहस छिड़ी हुई है। वे खूब जोश में है।

व्याख्या:-

मित्रों में चल रही चर्चा एवं विचार-विमर्श का मूलभाव है कि भारत को अंग्रेजों से स्वतन्त्र कराना है। आजादी प्राप्त करनी है चाहे वह किसी भी तरह से प्राप्त हो। क्रांतिकारियों का विश्वास है कि देश की स्वतन्त्रता के लिए नीति अथवा अनीति, हिंसा अथवा अहिंसा कोई भी मार्ग अपनाया जा सकता है। मित्रों में इस बात को लेकर क्रोध है कि शांति एवं सद्भाव के द्वारा हम अभी तक आजादी प्राप्त नहीं कर पाए हैं। मधुर व्यवहार सदैव उपयुक्त नहीं होता है। अहिंसा का परिणाम हमारे समक्ष है। वे 'शठे शाठयं समाचरेत' में विश्वास रखते हैं। जिस प्रकार मीठी बातों द्वारा बाघ के मुंह से किसी व्यक्ति का सिर नहीं छुड़ाया जा सकता है। इसका एकमात्र उपाय बाघ को मारना होता है। उसी प्रकार इस समय आजादी केवल सशस्त्र क्रांति के द्वारा ही सम्भव है। मित्रों के विचार में लोग आतंकवादियों को मूर्ख एवं अपरिपक्व बालक समझते हैं। उन पर इस सोच का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उन्हें बुद्धिमान कहलवाने का कोई शौक नहीं है। परिपक्वता से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनका एकमात्र लक्ष्य तो देश की स्वतन्त्रता है। चाहे वह किसी भी कीमत पर प्राप्त हो। इस स्वतन्त्रता के लिए वे अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को तैयार हैं। उन्हें जीवन से कोई मोह नहीं। सन्तान का मोह भी उन्हें इस लक्ष्य से विमुख नहीं कर सकता। उन्हें किसी प्रकार की धन-सम्पत्ति की चाह नहीं। जब कोई इच्छा ही शेष नहीं तो प्राणों का भय कैसा? आजादी की लड़ाई में वे हर प्रकार का अन्याय सहने को तैयार हैं। उन्हें कोई भय नहीं। वे युवा हैं। युवा तो निर्भयता का ही दूसरा नाम है।

विशेष:-

1. ये चारों मित्र उग्र क्रान्तिकारी हैं जो केवल साध्य की प्राप्ति में विश्वास करते हैं। उन्हें आजादी चाहिए चाहे साधन कुछ भी हो। गाँधी की भांति साधनों की पवित्रता में उनका विश्वास नहीं।
2. बाघ के दृष्टान्त द्वारा तथ्य निरूपण।
3. देशप्रेमी देश के लिए मर-मिटने को सदैव तत्पर रहता है।
4. आतंकवादियों के विचारों के अनुकूल भाषा में भी ओज गुण है। सहज, सरल भाषा है। भाषा के प्रवाह को बनाए रखने के लिए जैनेन्द्र ने प्रचलित उर्दू भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है- आजादी, बुजुर्गी, गर्ज, जुल्म इत्यादि।
5. विवेचनात्मक एवं संवाद शैली का प्रयोग।

2. सुनन्दा जहाँ थी ..... धीरज खो जाता है।

प्रसंग:-

दिन भर अकेली रहकर देर रात्रि तक पति की प्रतीक्षा सुनन्दा की विवशता है। पति की प्रतीक्षा करते-करते वह रोटियाँ बना चुकी है। पति आ चुके हैं। वे अपने कमरे में मित्रों के साथ बहस में मग्न है। वह अपने पति और उनके मित्रों की बातें सुन रही है। ये बातें सुनन्दा में एक विशेष मनःस्थिति को जन्म देती है। प्रस्तुत गद्यांश में सुनन्दा की इसी मनःस्थिति पर प्रकाश डाला गया है-

व्याख्या:-

सुनन्दा आलस भाव से सोचती हुई अभी भी जहाँ की तहाँ है अर्थात् अँगीठी के सामने बैठी है। उसकी आँखों में सूनापन है। वह अँगीठी के सामने माथे पर अंगुलियाँ टिकाकर

चिन्तनीय मुद्रा में बैठी अपने पति तथा उनके मित्रों का वार्तालाप सुन रही है। वह जानना चाहती है कि उसके पति अपने मित्रों के साथ इस तरह की बातचीत क्यों करते हैं। वे चारों मित्र क्रांतिकारी हैं। अत: जोश से भरे हुए हैं। सुनन्दा को यह समझ में नहीं आता कि वे क्यों इस प्रकार जोश में डूबे हैं। वास्तव में सुनन्दा में स्वयं कोई उत्साह नहीं। जीवन के प्रति किसी प्रकार के उत्साह से उसका अभी तक वास्ता नहीं पड़ा। इसीलिए उसे यह उत्साह का भाव आकर्षित तो करता है, परंतु ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सुदूर व्याप्त हरीतिमा सुन्दर एवं सुखद लगती है। इसीलिए दूसरों में विद्यमान यह उत्साह का भाव भी उतरने आकर्षक, मनोरम, सुखद एवं प्रशंसनीय लगता है, किंतु वह स्वयं इस उत्साह से अपरिचित है। वह भी इस उत्साह से परिचित होना चाहती है। देश की स्वतन्त्रता को समझना चाहती है। परन्तु प्रयास करने पर भी वह भारत माता तथा उसकी स्वतन्त्रता के विषय में कुछ समझ नहीं पाती। इन क्रान्तिकारियों का उत्साह से युक्त होकर जोर-जोर से वार्तालाप भी घर-संसार में सिमटी, एकाकी जीवन व्यतीत कर रही इस युवती की समझ से परे है। उसकी जिजीविषा शनै: शनै: क्षीण हो रही है। जीने के प्रति इच्छा की कमी होने पर भी वह जीना चाहती है। वह चाहती है कि उसका पति उससे देश जैसे महत्वपूर्ण विषय पर वार्तालाप करे। उसे इस योग्य समझे कि उससे विचारणीय मुद्दों पर बात की जा सकती है। अगर वह पति जितनी बुद्धिमान न भी हो तो भी धीरे-धीरे 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान' के आधार पर वह पति की बातों को समझने लगेगी। सुनन्दा सोचती है कि वह अधिक पढ़ी-लिखी नहीं है तो इसके लिए वह दोषी नहीं, अवसरों की कमी ही इसके लिए उत्तरदायी है। वह जीना चाहती है इसलिये अभी भी पढ़ने को तैयार है, किन्तु उसके पति में इतना धैर्य कहाँ कि वह अपनी पत्नी सुनन्दा को पढ़ाए अथवा पढ़ाने की व्यवस्था करे। सुनन्दा का विचार है कि व्यक्ति चाहे कितना भी सहिष्णु क्यों न हो अपनी पत्नी के प्रति उदार होने में उसका धैर्य जबाब दे जाता है।

विशेष -

1. घर की चाहरदीवारी में सुनन्दा के लिए केवल प्रतीक्षा, एकाकीपन एवं घुटन है। अत: जीने के प्रति उसका उत्साह ही समाप्त हो रहा है।
2. पत्नी पति से बौद्धिक स्तर पर भी संवाद चाहती है। सुनन्दा को भी कष्ट है कि पति उससे अपने मित्रों के समान बातचीत क्यों नहीं करता? पति के होते हुए भी सुनन्दा अकेलेपन की व्यथा झेल रही है।
3. मनोवैज्ञानिक तथ्य की स्वाभाविक प्रस्तुति- 'पत्नी के साथ पति का धीरज खो जाता है'।
4. एकाकीपन एवं सीमित परिवेश नारी के व्यक्तिव में अनेक कुण्ठाओं को जन्म देता है।
5. प्रवाहयुक्त सरल भाषा।
6. सुनन्दा की मनःस्थिति के अनुकूल चिन्तन प्रधान शैली।

3. सुनन्दा ने ..... मैं क्या करूँ?

प्रसंग-

सुनन्दा सारा भोजन एक थाली में परोसकर पति कालिन्दीचरण एवं उसके मित्रों के सामने रख आती है। उसका पति पूछता है- "खाना और नहीं है? अच्छा लाओ अचार।" वह अचार लेकर चला जाता है। सुनन्दा ने अपने लिए कुछ भी नहीं बचाया। अपने पति के व्यवहार पर वह क्षुब्ध है कि उसे अपनी पत्नी के खाने की तनिक भी चिन्ता नहीं, परन्तु भारतीय परिवेश में पली यह पत्नी किस प्रकार इस तरह की सोच पर नियन्त्रण रखती है, इसका प्रस्तुत गद्यांश में जैनेन्द्र ने बहुत सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या:-

रात्रि का एक बज रहा है। पत्नी सुनन्दा घर में पका सारा भोजन एक थाली में परोसकर पति तथा उसके मित्रों के समक्ष रख देती है। उसका पति आकर पूछता है खाना और है? पति के इस प्रश्न पर उसे ध्यान आता है कि उसने अपने खाने के लिए कुछ भी नहीं बचाया। पति तथा उसके मित्रों को खाना परोसते वक्त उसे यह ध्यान ही न था कि उसे भी भोजन करना है। उसे अपने ऊपर क्रोध आया। उसके मन में कठोरता का भाव उत्पन्न हुआ। उसे इस बात का क्रोध नहीं था कि उसने अपने लिए खाना क्यों नहीं रखा, क्योंकि दूसरों को खिलाने में एक प्रकार की तृप्ति होती है, व्यक्ति गर्व अनुभव करता है कि देखो स्वयं भूखे रहकर मैंने दूसरे का पेट भरा। उसके मन में कटुता अपने पति के व्यवहार के प्रति है। उसके पति ने यह जानकर भी कि भोजन समाप्त हो चुका है एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी? दिन भर पति की प्रतीक्षा में रत, उसके खाने-पीने की चिन्ता में डूबी पत्नी पति से इतनी अपेक्षा तो रखती ही है। वह भी चाहती है कि पति कम से कम उसके प्रति इतना संवेदनशील तो हो ही कि यह जानने की कोशिश करे कि पत्नी ने भी खाना खाया है अथवा नहीं। सुनन्दा के स्वाभिमान को ठेस लगती है। वह अपमानित अनुभव करती है। दूसरे ही क्षण उसे विरासत में मिले भारतीय पत्नी के संस्कार जाग उठते हैं। उसे लगता है कि पति के विषय में इस प्रकार सोचना भी गलत है। वह स्वयं को धिक्कारती है। उसे अपनी यह सोच तुच्छ प्रतीत होती है। उसे लगता है कि उसे तो प्रसन्न होना चाहिए कि उसे पति व असमय घर आए अतिथियों के लिए एक दिन भूखे रहने का पुण्य मिला। भारतीय संस्कार तो दोनों को ही देवता घोषित करते हैं। सुनन्दा संकल्प करती है कि वह आगे से कभी अपने पति को नाराजगी का अवसर नहीं देगी। पति परायणा सुनन्दा के मन में पति के प्रति प्रेम उमड़ पड़ता है। वह उसी प्रेमभाव से खीझ उठती है कि उसके पति को अपने स्वास्थ्य की भी चिन्ता नहीं। दिन भर भूखे-प्यासे घूमते हैं।

विशेष:-

1. सुनन्दा के वैचारिक संघर्ष एवं मानसिक ऊहापोह की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है।
2. पत्नी भी एक मनुष्य है, उसमें भी स्वाभिमान है, वह भी अपने पति से अपने प्रति कतिपय कर्त्तव्यों की अपेक्षा रखती है।
3. भारतीय मध्यवर्गीय परिवेश में पत्नी का पति के प्रति अनुदार होना लगभग असंभव सा है। सुनन्दा का चरित्र इसका उदाहरण है।

4. घरेलू स्त्री और पुरुष की दुनिया में एक चौड़ी खाई है। पत्नी की दुनिया चौके-चूल्हे तक सिमटी है, जिसमें हर क्षण पति की वैचारिक मौजूदगी है। जबकि पति का संसार फैला हुआ है जिसमें पत्नी से भोजन के लिए पूछने का भी अवकाश नहीं।
5. भावात्मक, संवाद एवं विवेचनात्मक शैली।
6. कृत्रिमता से मुक्त सुनन्दा के भावों के संघर्ष को अभिव्यक्त करती सहज एवं सरल भाषा का प्रयोग।

16.9 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
तिरस्कृत	अनादृत, अनादर पूर्वक त्याग किया हुआ।
तल्ला	मंजिल, ऊपर-नीचे मकान का खण्ड
स्पृहणीय	गौरवशाली, जिसके लिए कामना की जा सके
मनोरम	मनोहर, सुन्दर
अनायास	बिना प्रयास के, सहसा
अठखेलियां	विनोद क्रीड़ा, चपलता
विह्वल	व्याकुल, बैचेन
रुष्ट	नाराज, कुपित
हठात्	जबरदस्ती, अचानक
स्निग्ध	स्नेहयुक्त, प्रेममय, चिकना

16.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'पत्नी' कहानी के आधार पर जैनेन्द्र की कहानी कला की विशेषताएं बताइये।
2. 'पत्नी' कहानी में लेखक के देश की स्वतन्त्रता तथा विदेशी सरकार के प्रति व्यक्त विचारों पर प्रकाश डालिए।
3. भाषा तथा शैली की दृष्टि से 'पत्नी' कहानी की समीक्षा कीजिए।
4. 'पत्नी' कहानी की प्रमुख पात्र सुनन्दा के अन्तर्द्वन्द्व पर एक टिप्पणी लिखिए।

16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. राजेन्द्र यादव; कहानी : स्वरूप और संवेदना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1968
2. इन्द्रनाथ मदान; हिन्दी-कहानी (अपनी जुबानी) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1968
3. डॉ. हेतु भारद्वाज; स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1983
4. जैनेन्द्र कुमार; समय और हम, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1962
5. प्रभाकर माचवे (संपादक); जैनेन्द्र के विचार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1996
6. डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर; जैनेन्द्र : एक अध्ययन, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, 1994
7. नामवर सिंह; कहानी : नयी कहानी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973
8. जैनेन्द्र; साहित्य का प्रेय और श्रेय, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1953
9. अमृतराय; आधुनिक भावबोध की संज्ञा, हंस प्रकाशन इलाहाबाद, 1977

इकाई-17 यशपाल की 'महाराजा का इलाज' का संवेदना व शिल्प

इकाई की रूपरेखा -

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 यशपाल का साहित्यिक परिचय

17.3 महाराजा का इलाज कहानी का सारांश

17.4 महाराजा का इलाज (संवेदनागत विवेचन)

17.4.1 वर्गगत श्रेष्ठता का भाव

17.4.2 रोग ध्यानाकर्षण का माध्यम

17.4.3 जीवन-रक्षक पेशे का धन-बल से दुरूपयोग

17.4.4 महाराजा के अहम् एवं वहम् का इलाज

17.5 महाराजा का इलाज (शिल्पगत विवेचन)

17.5.1 शैली

17.5.2 भाषा

17.5.3 संवाद

17.6 व्याख्या

17.7 शब्दावली

17.8 सारांश

17.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.10 संदर्भ ग्रन्थ

17.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम प्रसिद्ध कथाकार यशपाल द्वारा लिखित 'महाराजा का इलाज' कहानी का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद विद्यार्थी -

- कहानी को संक्षेप में जान सकेंगे।
- यशपाल का साहित्यिक परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- कहानी की मूल संवेदना को समझ सकेंगे।
- कहानी की शिल्पगत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- कहानी का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- कहानी के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

यशपाल प्रेमचन्द की परम्परा को विकसित करने वाले रचनाकार हैं। वे समाज की वास्तविकता, उसकी कुरूपता, विसंगतियों और अन्तर्विरोधों का चित्रण करते हैं। वे शोषण

की मूल इकाई पर वैज्ञानिक चिन्तन के द्वारा प्रहार करते हैं। इसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण वे 'पूस की रात', 'कफन', और 'गोदान' की सामाजिक यथार्थवादी राह पर निरन्तर आगे बढ़ते गये। यह सही है कि उन पर मध्यवर्गीय संस्कारों का दबाव था लेकिन उन्होंने यथार्थ और सामाजिक प्रतिबद्धता के मार्ग से कभी मुँह नहीं मोड़ा! अपनी सक्षम रचनाशीलता के बल पर उन्होंने विपुल साहित्य हिन्दी जगत को दिया जिनमें कई कालजयी रचनाएं सम्मिलित हैं। 'महाराजा का इलाज' इसी तरह की उनकी चर्चित कहानी है। इसमें उन्होंने सांमती वैभव और दंभ का पर्दाफाश ही नहीं किया बल्कि उस पर व्यंग्य भी किया है।

17.2 यशपाल का साहित्यिक परिचय

यशपाल का जन्म 03 दिसम्बर 1903 को फिरोजपुर छावनी में एक साधारण खत्री परिवार में हुआ था। इनके पिता हीरालाल एक साधारण कारोबारी थे और माता श्रीमती प्रेमदेवी अनाथालय के स्कूल में अध्यापिका थीं। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। सात-आठ वर्ष की अवस्था में गुरूकुल कांगड़ी में प्रवेश लिया लेकिन सातवीं कक्षा में पढ़ते समय असाध्य रोग के कारण गुरूकुल से लाहौर आ गये। 1921 में फिरोजपुर छावनी के मनोहरलाल मेमोरियल स्कूल से प्रथम श्रेणी में मैट्रिक में जिले में प्रथम स्थान प्राप्त किया। वजीफा मिलने के बावजूद उन्होंने सरकारी कालेज में प्रवेश लेने से इंकार कर दिया और लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित नेशनल कालेज में प्रवेश लिया यहीं उनका भगत सिंह, सुखदेव आदि क्रांतिकारियों से परिचय हुआ। उन्होंने क्रांतिकारी आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। इसके परिणामस्वरूप उनकी गिरफ्तारी हुई और उन्हें जेल जाना पड़ा। जेल में रहते हुए ही 07 अगस्त 1936 को प्रकाशवती जी से उनका विवाह हुआ। 26 दिसम्बर 1976 को महान क्रांतिकारी एवं साहित्यसेवी यशपाल का निधन हुआ। इस अवधि में उन्होंने विपुल साहित्य का सृजन किया। उनके क्रांतिकारी जीवन की छाप उनके रचना संसार में साफ दिखाई पड़ती है। यशपाल अपने साहित्य की प्रयोजनशीलता स्पष्ट करते हुए लिखते हैं - "मेरे साहित्यिक कार्य कलाप हमेशा ही राजनीति से अभिन्न रहे हैं मेरा उद्देश्य है जनता के हितों की रक्षा करना। जब मैं सक्रिय क्रांतिकारी था तब भी मैंने कलम को नहीं छोड़ा और जेल में भी लिखता था क्योंकि मैं समझता हूँ कि साहित्य विद्रोह की भावना पैदा करने का साधन है और उससे जनता की क्रांतिकारी चेतना विकसित होती है।" वास्तव में यशपाल दूर एकांत में बैठकर कल्पना के महल निर्मित नहीं करते बल्कि प्रेमचन्द की भांति यथार्थ की ठोस भूमि पर रहकर पाठकों का उससे साक्षात्कार कराते हैं। साम्यवादी और जनवादी विचारधारा उनके साहित्य का प्रमुख आधार है। उन्होंने जनजीवन की समस्याओं को रोचक और कलात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने उपन्यास और कहानियों में ही प्रसिद्धि प्राप्त नहीं की बल्कि अन्य विधाओं पर भी अपनी लेखनी चलायी यथा - निबन्ध, नाटक, संस्मरण, आत्मकथा। नेशनल कालेज के अध्यापक प्रसिद्ध कवि और लेखक उदय शंकर भट्ट के प्रोत्साहन से उनकी पहली रचना बरेली से प्रकाशित पत्रिका 'भ्रमर' में 1924 में छपी। उनकी साहित्यिक कृतियाँ इस प्रकार है -

उपन्यास -

1. दादा कामरेड (1941)
2. देशद्रोही (1943)
3. दिव्या (1945)
4. पार्टी कामरेड (1947)
5. मनुष्य के रूप (1949)
6. अमिता (1956)
7. झूठा सच (वतन और देश) (1958)
8. झूठा सच (देश का भविष्य) (1960)
9. बारह घण्टे (1963)
10. अप्सरा का 'शाप (1965)
11. क्यों फसें! (1965)
12. मेरी तेरी उसकी बात (1973)

कहानी संग्रह

1. पिंजरे की उड़ान (1939)
2. वो दुनिया (1942)
3. ज्ञान दान (1943)
4. अभिशप्त (1944)
5. तक्र का तूफान (1944)
6. भस्मावृत चिंगारी (1946)
7. फूलों का कुर्ता (1949)
8. धर्म युद्ध (1950)
9. उत्तराधिकारी (1951)
10. चित्र का शीर्षक (1951)
11. तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ? (1954)
12. उत्तमी की माँ (1955)
13. ओ भैरवी (1958)
14. सच बोलने की भूल (1962)
15. खच्चर और आदमी (1965)
16. भूख के तीन दिन (1968)

आत्मकथा -

1. सिंहावलोकन (प्रथम भाग) (1951)
2. सिंहावलोकन (द्वितीय भाग) (1952)
3. सिंहावलोकन (तृतीय भाग) (1955)

संस्मरण -

1. लोहे की दीवार के दोनों ओर (1952)
2. राह बीती (1953)

निबन्ध साहित्य -

1. न्याय का संघर्ष (1940)
2. मार्क्सवाद (1941)
3. गांधीवाद की शव परीक्षा (1942)
4. चक्कर क्लब (1943)
5. बात - बात में बात (1950)
6. राम राज्य की कथा (1950)
7. देखा, सोचा, समझा (1951)
8. बीवी जी कहती हैं मेरा चेहरा रोबीला है (1961)
9. जग का मुजरा (1962)

यशपाल आजीवन साहित्य सेवा में संतिप्त रहे। नवम्बर 1938 ई0 में 'विप्लव' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह पत्रिका बेहद लोकप्रिय रही। फरवरी 1974 ई0 में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें डॉ0लिट्0 की मानद उपाधि प्रदान की गयी। 1976 ई0 में मरणोपरान्त 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास पर साहित्य आकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया।

17.3 महाराजा का इलाज कहानी का साराश

'महाराजा का इलाज' कहानी वहम् पालने वाले एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो अपनी बीमारी को अपने अहं की संतुष्टि का माध्यम बनाता है। महाराजा मोहाना सिर में पीड़ा व घुटनों के जुड़ जाने की असाध्य बीमारी से ग्रस्त हैं। महाराजा की बीमारी के विषय में लोगों का विचार है कि चिकित्सा शास्त्र के इतिहास में ऐसा रोग देखा-सुना नहीं गया। ऐसे राजरोग को कोई साधारण आदमी झेल भी कैसे सकता था। महाराज की यह बीमारी न केवल आम लोगों में चर्चा का विषय है वरन् वह महाराज के लिए सहानुभूति एवं आकर्षण पाने का माध्यम भी है। महाराजा के इलाज के लिए, उनके रोग पर विचार - विमर्श कर कोई इलाज ढूँढने के लिए प्रतिवर्ष बड़े - बड़े सम्मेलन किये जाते हैं जिनमें देश के बड़े - बड़े डॉक्टर आते हैं, जिनकी सम्मिलित राय पर प्रतिवर्ष एक बुलेटिन भी प्रकाशित होता है। इन सम्मेलनों से महाराजा की बीमारी का इलाज तो नहीं होता किन्तु डॉक्टर राजसी आतिथ्य का आन्नद अवश्य भोग लेते हैं। इसी क्रम में एक वर्ष मसूरी में डॉक्टरों का सम्मेलन आयोजित किया जाता है जिसमें डॉक्टर कोराल की सिफारिश पर डॉक्टर संघटिया जो नई चिकित्सा पद्धति 'साइकोसोमेटिक' (मानसिक उपचार) प्रणाली से इलाज कर रहें थे, को आमंत्रित किया जाता है।

सभा में डॉक्टर संघटिया अपना नम्बर आने पर अपने विचार प्रकट करते हुए महाराज के रोग की तुलना एक मेहतर से करते हैं, यह महाराज के लिए असह्य अनुभव है। यह विचार कि महाराज के रोग की तुलना एक मेहतर से की जा रही है महाराज के अहं को चोट पहुँचाता है और वे अपना बरसों का रोग भूलकर आवेश में खड़े हो जाते हैं और कड़े स्वर में डॉक्टर संघटिया को बाहर निकाल देने का आदेश देते हैं।

यह घटना अन्य डॉक्टरों को विस्मित कर देती है। उन्हें अत्यंत क्रोध आता है कि जीवन रक्षा के सम्मानित पेशे का महाराज द्वारा अपने अहम् के कारण पँजी के बल पर अपमान और दुरूपयोग किया जा रहा है। किन्तु डॉक्टर संघटिया द्वारा महाराज की सनक और वहम् का इलाज कर दिये जाने पर वे संतुष्ट हो जाते है।

17.4 महाराजा का इलाज (संवेदनागत विवेचन)

'महाराजा का इलाज' यशपाल की बहुचर्चित कहानी है। जिसमें लेखक ने महाराज के माध्यम से सांमती वैभव के अंह को ढ़ोते वर्ग का चरित्र उद्घाटित किया है। महाराज मोहाना अपनी असाध्य बीमारी का बोझ सगर्व उठाते हैं, क्योंकि उनकी बीमारी आमजन को होने वाली बीमारी नहीं, वह भी उन्हीं की तरह विशिष्ट है।

17.4.1 वर्गगत श्रेष्ठता का भाव

'महाराजा का इलाज' कहानी में लेखक यह स्पष्ट करना चाहता है कि किस प्रकार वर्गगत श्रेष्ठता का भाव व्यक्ति में सनक की हद तक बढ़ जाता है। महाराज मोहाना जो वर्षों से बीमारी का बोझ ढो रहे हैं। वे अपने रोग की तुलना भी किसी मेहतर के रोग से करना पसंद नही करते और डॉ० संघटिया द्वारा ऐसा करने पर महाराजा अपने वर्षों से जुड़े घुटनों की पीड़ा भूलकर क्रोधवश कॉपते घुटनों से खड़े हो जाते हैं। उनके लिए असहनीय है कि उनकी या उनकी तुच्छ से तुच्छ वस्तु यहाँ तक कि रोग की तुलना भी किसी निम्नवर्गीय क्षुद्र व्यक्ति से की जाए - "निकाल दो बाहर बदजात को। हमको मेहतर से मिलाता है.... निकाल दो बदजात को डॉक्टर बना है।"

इस प्रकार यशपाल ने डॉ0 संघटिया द्वारा मोहाना के रोग की सनक के माध्यम से वर्गगत श्रेष्ठता के झूठे दंभ को सपष्ट किया है।

17.4.2 रोग ध्यानाकर्षण का माध्यम

महाराज मोहाना वर्षों से एक रोग के साथ जीवन व्यतीत कर रहे हैं। किन्तु वे इस रोग को एक माध्यम की तरह प्रयोग करते हैं-लोगों का ध्यान आकर्षित करने एवं प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्तियों की सहानुभूति प्राप्त करने में। गर्वनर की ओर से महाराज की बीमारी के प्रति चिंता और सहानुभूति प्रकट करने वाले पत्र को काँच की चौखट में मढ़वाकर ड्राइंगरूम में लगवाया गया है। जिससे सभी उसे देखकर महाराज के महत्व से परिचित हो सकें साथ ही गाँधी जी और मदनमोहन मालवीय के ऐसे ही पत्र अतिथियों को दिखाए जाते हैं।

इतना ही नहीं महाराज इस रोग को अपने वैभव प्रर्दशन का माध्यम भी बनाते हैं। उनके इलाज के लिये आयोजित होने वाली सभाओं में डॉक्टरों को कीमती पेन, पैन्सिल प्रदान किए जाते हैं जिन पर महाराज का नाम खुदा हुआ है।

17.4.3 जीवन-रक्षक पेशे का धन-बल से दुरूपयोग

यशपाल पूँजीवाद के प्रबल विरोधी रहे हैं। इस कहानी में भी यशपाल ने महाराज मोहाना के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि धन का दुरूपयोग किस प्रकार होता है।

महाराज मोहाना को बीमारी नहीं, बीमारी का वहम् है और इस वहम् के पीछे डॉक्टरों की भीड़ लगाए रखते हैं। विशिष्ट बने रहने के लिए यह रोग पालना उनका शौक है। जिसका इलाज कराना उनका उद्देश्य नहीं बल्कि उनका उद्देश्य हैं - महत्व बनाये रखना, विशिष्टता के सुख का अनुभव करना और अपने धन एवं वैभव का प्रदर्शन करना। जब डॉ0 संघटिया महाराजा मोहाना के रोग की वास्तविकता पहचान कर मानसिक उपचार प्रणाली (साइकोसोमेटिका) द्वारा महाराजा को उकसाते हैं तो महाराज अपना रोग भूलकर उठ खड़े हो जाते हैं। यह देखकर महाराजा के इलाज के लिए वहाँ उपस्थित डॉक्टरों को अत्यन्त क्रोध आता है कि उनके सम्मानित व्यवसाय का महाराजा द्वारा अनुचित लाभ उठाया गया। किन्तु इस वहम् का इलाज होते देख वे राहत की सांस भी लेते हैं।

17.4.4 महाराजा के अहम् एवं वहम् का इलाज

'महाराजा का इलाज' ऐसी कहानी है जो अहम् एवं वहम् दोनों का इलाज करती है। समाज में वर्गगत श्रेष्ठता का अहम् पालने वालों की कमी नहीं और इस अहम् की रक्षा में वे वहम और सनक की सीमा तक पहुँच जाते हैं, ऐसे स्तर पर जहॉ उनके व्यक्तिव के अतिरिक्त कुछ और महत्तपूर्ण नहीं है। ऐसे लोगों को एक झटके की आवश्यकता होती है जो उन्हें इस भ्रम से निकाल सके। यशपाल इस कहानी में शॉक ट्रीटमेंट का प्रयोग कर सामन्ती व्यवस्था के गर्व में सो रहे वहमी, सनकी महाराजा का इलाज करते हैं।

17.5 महाराजा का इलाज (शिल्पगत विवेचन)

'महाराजा का इलाज' कहानी अपनी कथावस्तु के साथ - साथ अपने शिल्पगत वैशिष्टय के लिए प्रसिद्ध रही है। यशपाल ने अत्यन्त कलात्मक एवं रोचक ढंग से कहानी को प्रस्तुत किया है।

17.5.1 शैली

'महाराजा का इलाज' कहानी की शैली वर्णनात्मक है जिसमें प्रसंग के अनुकूल नाटकीयता एवं व्यंग्य का भी समावेश है। कहानी में आरंभ से चरम तक पहुँचने के कुछ पहले तक वर्णनात्मकता ही दिखाई देती है जहाँ महाराजा की बीमारी और उनके सनकी व्यवहार, आत्मप्रदर्शन की प्रवृति के विषय में लेखक वर्णन करता है यथा - "महाराज गर्मियों में प्रतिवर्ष मंसूरी में जाकर रियासत की कोठी में रहते थे। कोठी की अपनी रिक्शाएँ थीं। रिक्शा खींचने वाले कुलियों की नीली वर्दियों पर मुहाना स्टेट के पीतल के चमचमाते बिल्ले लगे रहते थे। महाराजा जब कभी कोठी से बाहर निकलते तो रिक्शा खींचने वाले चार कुलियों के साथ, बदली के लिए अन्य चार कुली भी साथ दौड़ते चलते। " कहानी का चरम आते - आते यशपाल ने नाटकीयता का प्रयोग कर कहानी को अत्यधिक रोमांचकारी एवं प्रभावी बना दिया है। डॉ0 संघटिया द्वारा महाराजा के रोग को मेहतर के रोग के समान बताने पर महाराज क्रोध से आग बबूला हो जाते हैं और बरसों से जुड़े घुटनों का दर्द भूलकर पहिये लगी आराम कुर्सी से उठकर खड़े हो जाते हैं और सेवकों की सहायता की प्रतीक्षा किये बिना स्वयं चलकर हॉल रो बाहर चले जाते हैं। इस प्रसंग में

हम नाटकीय शैली का उपयुका प्रयोग देखते हैं जो कहानी के प्रमुख तत्व रोमांच और जिज्ञासा की सृष्टि करने में पर्याप्त सहायक है - "सब डॉक्टरो ने सुना और वे विस्मय से देख रहे थे कि महाराजा पहिये लगी आराम कुर्सी से उठकर खड़े हो गये थे। महाराज के वर्षो से जुड़े घुटने काँप रहे थे और उनके होंठ क्रोध में फड़फड़ा रहे थे, आँखे सुर्ख थीं - "निकाल दो बाहर बदज़ात को। हमको मेहतर से मिलाता हैकृकृकृ? महाराज सेवकों द्वारा हॉल से कुर्सी पर ले जाये जाने की प्रतीक्षा न कर काँपते हुए पाँवो से हाल से बाहर चले गए।"

महाराज द्वारा डॉक्टरों को अपने इलाज के लिए बुलाकर अपने वैभव का प्रर्दशन करने के प्रसंग में यशपाल ने व्यंगात्मक शैली का प्रयोग किया है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कथ्य के अनुरूप यशपाल ने वर्णनात्मक शैली एवं प्रसंगानुकूल नाटकीयता एवं व्यंग्य का सफल प्रयोग किया है।

17.5.2 भाषा

कहानी की संप्रेषणीयता में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। यशपाल कहानी में भाषा का सटीक प्रयोग कर उपयुक्त शब्द चयन से वस्तुस्थिति का प्रभावी चित्र अंकित करते हैं। यशपाल की भाषा सरल, सहज एवं स्वाभाविक है। राजसी वातावरण के अनुकूल यशपाल ने परिष्कृत खड़ी बोली का प्रयोग किया है यथा - "यह सब डॉक्टर महाराज के शरीर की परीक्षा और उनकी बीमारी का निदान करले के लिए बुलाये जाते थे। सब डॉक्टर बारी - बारी से महाराज की परीक्षा कर चुकते तो महाराज की बीमारी का निदान का निश्चय करने के लिए डॉक्टर का एक सम्मेलन होता " प्रस्तुत अंश में भाषा की परिनिष्ठता एवं गम्भीरता स्पष्ट दिखाई देती है। कहानी की भाषा में परिस्थिति के अनुकूल व्यंग्य भी सहजता से प्रकट हुआ है।" महाराज के चेहरे पर रोगी की उदासी और दयनीय चिन्ता नहीं, असाधारण दुर्बोध रोग के बोझ को उठाने का गर्व और गम्भीरता छाई हुई थी।" इन पंक्तियों में प्रछन्न व्यंग्य का आभास अत्यंत रोचक है। यह एक ही वाक्य महाराज की सनक और उनके झूठ को स्पष्ट कर देता है। यशपाल ने कहीं-कहीं एकाध अंग्रेजी, उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी किया है। कुल मिलाकर कहानी पढ़ने पर हम लेखक के भाषिक प्रयोग से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। कहानी की भाषा कथ्य को अपनी पूर्ण संवेदना में पाठकों तक पहुँचाने में सक्षम है।

17.5.3 संवाद

महाराजा का इलाज कहानी वर्णनात्मक शत। में लिखी गई है। अत: संवादो का प्रयोग इसमें अधिक नहीं हुआ है किन्तु जहाँ भी संवाद आये हैं वहाँ वे भाव को स्पष्ट करने में सफल रहे हैं। संवाद कहानी के अंतिम भाग में ही आए हैं जो डॉ० संघटिया एवं महाराज मोहाना के हैं। महाराज मोहाना के संवाद जहाँ उनके झूठे अहम् एवं श्रेष्ठता की भावना को व्यक्त करते हैं तो वहीं डॉ0 संघटिया के संवाद उनके संतुलित चरित्र की अभिव्यक्ति करते हैं - "निकाल दो बाहर बदजात को। हमको मेहतर से मिलाता है कृकृकृ? निकाल दो बदज़ात को डॉक्टर बना है!" महाराज क्रोध से थुलथुलाते हुए चीख पड़े।

डॉ0 संघटिया ने सबसे अधिक मुस्कराकर कहा - " खैर जो हो, बीमारी का इलाज हो गया...।"

'महाराजा का इलाज' कहानी को भाषा, शैली और संवाद इसे कलात्मक स्तर पर प्रभावशाली एवं रोचक बनाने में सहायक रहे हैं।

17.6 व्याख्या

व्याख्या खण्ड - 1

जिला कोर्ट बार में, जिला मजिस्टेट्र के यहाँ और लखनऊ के गवर्नमेंट हाल तक में महाराज की बीमारी की चर्चा थी। युद्ध काल में महाराज को गवर्नर के यहाँ से युद्ध कोष में चन्दा देने के लिए पत्र आया था। महाराज के सेक्रेटरी ने पच्चीस हजार रूपये के चेक के साथ महाराज की असाध्य बीमारी की चर्चा लेकर खेद प्रकट किया था कि इस रोग के कारण महाराज सरकार की उचित सेवा के अवसर से वंचित रह गये।

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत गद्यांश 'महाराजा का इलाज' शीर्षक कहानी से उद्वृत है। इसके लेखक प्रसिद्ध कथाकार यशपाल हैं। इस प्रसंग में लेखक ने ब्रिटिश कालीन भारत के टूटते - कमजोर पड़ते रजवाड़ों के चापलूस चरित्र को उद्घाटित किया है। इन चरित्रों की विशेषता थी कि स्वदेशियों पर रौब जमाना और विदेशी शासकों के कृपापात्र बने रहना। महाराजा मोहाना भी एक ऐसा ही चरित्र है।

व्याख्या -

महाराजा मोहाना, जो एक असाध्य बीमारी से ग्रस्त हैं, ने अपनी बीमारी की चर्चा जिला कोर्ट बार, जिला मजिस्ट्रेट, गवर्नर हाऊस तक में फैला रखी है। जिसका उद्देश्य है इन महत्वपूर्ण जगहों से सहानुभूति प्राप्त करना। महाराज सहानुभूति प्राप्त कर अपना हित साधे रखना चाहते हैं ताकि उनकी राजशाही को किसी तरह की क्षति न पहुँचे। इसी कारण महाराज ब्रिटिश युद्ध कोष में पच्चीस हजार रूपये का चन्दा भी देते हैं। यही नहीं वे तो इस बात पर भी खेद प्रकट करते हैं कि अपनी बीमारी के कारण ब्रिटिश सरकार की उचित सेवा के अवसर से वंचित रह गए। इस प्रकार लेखक यह स्पष्ट करता है कि अंग्रेजों के शासन काल में एक ओर जहाँ स्वतंत्रता की भावना से युक्त भारतीय थे तो दूसरी ओर ऐसे रजवाड़ों की कमी नहीं थी जिनमें राष्ट्रीय भावना नाममात्र को भी न थी। उनके लिए उनकी राजशाही, उनकी सत्ता का बना रहना ही आवश्यक था और वे यह मानते थे कि अंग्रेजों की चापलूसी कर उनकी कृपा प्राप्त करके ही वे अपने अधिकारों की रक्षा कर पायेंगें। अत: वे अपने स्वाभिमान को ताक पर रख अंग्रेजों को खुश करने में लिप्त रहते थे।

विशेष -

1. स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित रजवाड़ो के चरित्र का उद्घाटन लेखक ने महाराज मोहाना के माध्यम से किया है।
2. शैली वर्णनात्मक है।

3. भाषा सरल, परिनिष्ठित खड़ी बोली है। लेखक ने कहानी में वर्णन की प्रधानता रखी है। ऐसे में भाषा भावों को सरल तरीके से वर्णित करने में सफल रही है।

व्याख्या खण्ड - 2

महाराज को साधारण लोग-बाग की तरह कोई साधारण बीमारी नहीं थी। देश विदेश से आये हुए बड़े से बड़े डॉक्टर भी उनकी बीमारी का निदान और उपचार करने में मुँह की खा गये थे। लोगों का विचार था कि चिकित्साशास्त्र के इतिहास में ऐसा रोग अब तक देखा-सुना नहीं गया। ऐसे राजरोग को कोई साधारण आदमी झेल भी कैसे सकता था।

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत पंक्तियाँ यशपाल द्वारा रचित 'महाराजा का इलाज' कहानी से ली गयी हैं। इन पंक्तियों में कहानीकार ने महाराजा मोहाना की बीमारी की विशिष्टता का वर्णन करते हुये स्पष्ट किया है कि महाराज की तरह उनकी बीमारी भी विशेष है, अनोखी है।

व्याख्या -

लेखक वर्णन करता हुआ कहता है कि मोहाना के महाराजा एक असाध्य बीमारी से पीड़ित थे और उनकी यह बीमारी कोई साधारण बीमारी न थी जो प्राय: आम लोगों को हो जाती है। महाराज की बीमारी असाधारण थी और इसीलिए चर्चा का विषय बनी हुई थी। महाराज की बीमारी के इलाज के लिए देश - विदेश से कई बड़े डॉक्टर आये किन्तु वे महाराज का उपचार न पर सके। सभी का विचार था कि ऐसा विलक्षण रोग चिकित्साशास्त्र के इतिहास में अब तक देखा सुना नही गया। केवल महाराज ही इस रोग को झेलने में समर्थ है आम आदमी के वश की यह बात नहीं। लेखक ने यहाँ स्पष्ट किया है कि महाराज के पास अकूत सम्पत्ति और दौलत है जिसका व्यय कर वे अपनी बीमारी का प्रचार और प्रदर्शन करने में समर्थ है, आम आदमी जो बड़ी मेहनत से अपनी जीविका निर्वाह करता है वह कैसे इस तरह की बीमारी का बोझ उठा सकता है।

विशेष -

1. उपर्युक्त अंश में लेखक व्यंग्य के माध्यंम से यह स्पष्ट करता है कि महाराज लोगों का ध्यान आकृष्ट करने की कमजोरी से ग्रस्त हैं। वे विशिष्ट बने रहने के लियें असाध्य बीमारी का बोझ ढ़ोते रहते है।
2. लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली में लिखा है" ऐसे राजरोग को कोई साधारण आदमी झेल भी कैसे सकता है।"
3. भाषा सरल एवं स्वाभाविक है तथा कथ्य को स्पष्ट करती है।

व्याख्या खण्ड - 3

तीसरे दिन दोपहर बाद बत्तीस डॉक्टरों की एक सभा का आयोजन किया गया था। कोठी के बड़े हाल में मेज-कुर्सियों के बत्तीस जोड़े अण्डाकार लगाये गये थे जैसे विशेषज्ञों की कान्फ्रेंसों की प्रणाली है। प्रत्येक मेज पर एक डॉक्टर का नाम लिख था और मेज पर उस डॉक्टर के नाम और उपाधि सहित छपे हुए कागज मौजूद थे। सभी मेजों पर बहुत कीमती फाउन्टेनपेन और पेंसिल के सेट केसों में सजे हुए थे। कलमों, पेंसिलों और केसों पर भी खुदा हुआ था - 'महाराज मोहाना की ओर से भेंट।' डॉक्टरों के बैठने का क्रम अंग्रेजी वर्णमाला में डॉक्टरों के नाम के पहले अक्षर के क्रम के अनुसार था।

संदर्भ एवं प्रसंग -

उपर्युक्त पंक्तियाँ प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रमुख कथाकार यशपाल द्वारा लिखित 'महाराजा का इलाज' कहानी से ली गयी हैं।

इस प्रसंग में लेखक ने देसी राजे-रजवाड़ों के वैभव प्रदर्शन की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है।

व्याख्या -

अपने झूठे दंभ और दूसरों के शोषण से एकत्र किये गये वैभव का प्रदर्शन भारतीय राजाओं की विशेषता रही है। ये छोटे-छोटे राजे-महाराजे अपने अज्ञान, अपनी कर्त्तव्य हीनता, न्याय करने की असमर्थता को अपने वैभव प्रदर्शन से दबा कर जनता को प्रभावित किया करते थे। यशपाल ने कहानी में ऐसे ही चरित्रों को महाराज मोहाना के माध्यम से उद्घाटित किया है। महाराज की बीमारी का निदान ढूढ़ने के लिये प्रतिवर्ष डॉक्टरों का एक बहुत बड़ा सम्मेलन होता है। इस सम्मेलन में महाराज के रोग का निदान मिले या न मिले महाराज के अकूत वैभव का प्रदर्शन अवश्य होता है। डॉक्टरों की सभा के लिये अंग्रेजी कान्फ्रेन्सों की प्रणाली के आधार पर एक बड़े हाल में अण्डाकार बत्तीस मेज-कुर्सियों के जोड़े लगाये गये हैं। प्रत्येक मेज पर डॉक्टर का नाम लिखा है। साथ ही उन्हें कागज और कीमती पेन-पेन्सिल उपलब्ध करवाये गये हैं जिनके केसों पर लिखा है - महाराजा मोहाना की ओर से भेंट। यही नहीं डॉक्टरों के बैठने का क्रम भी अंग्रेजी वर्णक्रम के हिसाब से रखा गया है।

विशेष -

1. भारत की दासता के करणों पर प्रकाश डालते हुए विद्वानों ने झूठे वैभव प्रदर्शन को भी एक कारण माना है। भारत के बहुत से छोटे-छोटे राजा अपनी राज-व्यवस्था को मजबूत करने की अपेक्षा अपने झूठे - दंभ में अपने वैभव का बढ़ - चढ़कर प्रदर्शन करने में ही अपनी शान समझते थे। यशपाल गहरे इतिहास-बोध के लेखक हैं अत: उन्होंने महाराज मोहाना के माध्यम से ऐसे राजाओं के सच को उजागर किया है।
2. पाश्चात्य जीवन शैली के अंधानुकरण की ओर संकेत किया गया है।
3. शैली वर्णनात्मक है।
4. भाषा आम बोलचाल की है।

17.7 शब्दावली

निदान - उपचार करना

प्रदर्शन - दिखावा

दासता - गुलामी

कान्फ्रेन्स- सम्मेलन

शोषण - दूसरे के श्रम का अनुचित लाभ उठाना

विलक्षण -लक्षण रहित, अत्यंत लक्षणों वाला

असाध्य - लाइलाज, अच्छा न होने वाला

प्रच्छन्न - छिपा हुआ

बदजात - नीच,कमीना
विस्मित - आश्चर्य
विसंगति - असंगति
अंधानुकरण - बिना सोचे समझे नकल करना
दुर्बोध - जिसे सरलता से न जाना जा सके
सेक्रेटरी - सचिव

17.8 सारांश

यशपाल प्रेमचन्द्र की परम्परा के महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। उन्होंने प्रचुर मात्रा में साहित्य का सृजन किया। उनकी कहानियों का फलक बहुत विस्तृत है। उन्होंने अपनी कहानियों में भारतीय जन - जीवन के विविध पक्षों का यथार्थ के धरातल पर उद्घाटन किया है। वे मार्क्सवादी विचारधारा के लेखक थे। अतएवं उनकी रचनाओं में सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विसंगतियों का सटीक उद्घाटन हुआ है वहीं पूँजीवादी और सामंती संस्कृति पर प्रहार भी मिलता है।

'महाराजा का इलाज' यशपाल की बहुचर्चित कहानी है। इस कहानी में सामंती वैभव और विलासिता के चित्र अंकित हैं तथा सामंती दंभ का उद्घाटन हुआ है। महाराजा मोहाना की बीमारी का निदान मनोवैज्ञानिक तरीके से दिखाकर जातीय एवं वर्गगत दंभ का पर्दाफाश किया है।

'महाराजा का इलाज' कहानी बहुत रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत की गयी है। इसकी शैली, भाषा एवं संवाद कहानी के कथ्य को सहज रूप में प्रस्तुत करते है।

17.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. यशपाल का साहित्यिक परिचय दीजिए।
2. 'महाराजा का इलाज' कहानी का कथानक स्पष्ट कीजिए।
3. 'महाराजा का इलाज' कहानी की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।
4. " 'महाराजा का इलाज' कहानी में सामंती जीवन शैली का यथार्थ चित्रण हुआ है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
5. यशपाल ने 'महाराजा का इलाज' कहानी में सामंती जीवन पर व्यंग्य किया है। इस कथन का विवेचन कीजिए।
6. 'महाराजा का इलाज' कहानी के शिल्पगत वैशिष्टय को रेखांकित कीजिए।
7. 'महाराजा का इलाज' कहानी की समीक्षा कीजिए।

17.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. मधुरेश; यशपाल: रचनात्मक पुनर्वास की एक कोशिश, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा)
2. कुंवरपाल सिंह; यशपाल : पुनर्मूल्यांकन, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली
3. गोपाल राय; हिन्दी कहानी का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
4. रघुवर दयाल वार्ष्णेय; हिन्दी कहानी : बदलते प्रतिमान, पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली

इकाई-18 अमरकान्त कृत 'जिन्दगी और जोंक' का अध्ययन व विवेचन

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 कहानी का सार

18.3 व्याख्या खण्ड

18.4 कहानी का प्रतिपाद्य

- 18.4.1 अदम्य जिजीविषा
- 18.4.2 समाज की शोषण प्रवृत्ति पर व्यंग्य
- 18.4.3 यथार्थवादी चित्रण

18.5 संरचना

- 18.5.1 शिल्प संरचना
- 18.5.2 भाषा संरचना
- 18.5.3 संवाद संरचना

18.6 अभ्यास प्रश्न

18.7 संदर्भ ग्रन्थ

18.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप अमरकान्त द्वारा रचित 'जिन्दगी और जोंक' कहानी का विस्तृत विश्लेषण पढ़ेंगे। इस इकाई में आप -

- अमरकान्त के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- महत्वपूर्ण गद्यांशों की व्याख्या की समुचित विधि से परिचित होंगे।
- कथावस्तु के स्वरूप और उसकी विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- कहानी के संरचना शिल्प की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- कहानी के प्रतिपाद्य एवं कहानीकार की दृष्टि का विश्लेषण कर सकेंगे।
- उपर्युक्त सभी विशेषताओं के आधार पर कहानी का मूल्यांकन कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

नई कहानी के दौर में जिन कथाकारों ने अपनी रचनाओं से विशिष्ट पहचान बनाई है उनमें अमरकान्त का नाम उल्लेखनीय है। अमरकान्त प्रारम्भ में 'सैनिक', 'अमृत बाजार पत्रिका', 'भारत', 'कहानी' आदि पत्र पत्रिकाओं के सम्पादन से भी जुड़े रहे हैं। 'डिप्टी कलक्टरी', 'दोपहर का भोजन' और 'जिन्दगी और जोंक' जैसी कहानियों से अमरकान्त ने अलग पहचान बनाई है। उनकी प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं :-

उपन्यास - सूखा पत्ता, काले उजले दिन, आकाश पक्षी, सुन्नर पाण्डे की पतोहू, बीच की दीवार, इन्हीं हथियारों से, कंटीली राह के फूल, सुख जीवी, सुरंग, ग्राम सेविका, बिदा की रात आदि।

कहानी संग्रह - देश के लोग, कुहासा, मौत का नगर, दोपहर का भोजन, जिन्दगी और जोंक मित्रमिलन तथा अन्य कहानियां, तूफान कला प्रेमी आदि।

अन्य साहित्य - नेऊर भाई, वानर सेना, खूँटा में दाल है, सुग्गी चाची का गाँव, एक स्त्री का सफर, झगरूलाल का फैसला आदि।

इस तरह अमरकान्त के 120 से अधिक कहानियां और लगभग 12 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। अमरकान्त की कहानियाँ मध्यवर्गीय जीवन के विविध पहलुओं को सहजता के साथ प्रस्तुत करती हैं। अमरकान्त का मानना है कि कहानी की पहली शर्त है - "कहानी का कहानीपन। वह कहानी लगे। कब लगेगी यह? जाहिर है कि जब उसमें रोचकता होगी। रोचकता और सच्चाई से कहानी सम्प्रेषित होगी। सच्चाई की तलाश कहानी की सौन्दर्य प्रक्रिया का अंग है। सच्चाई आखिर हमारा जिया हुआ जीवन है। इसी की पुनर्रचना हम करते हैं।" इस कथन से स्पष्ट है कि अमरकान्त जीवन की सच्चाई को कहानी का मूल मानते हैं। अमरकांत का नाम उन आरम्भिक कहानीकारों में लिया जाता है जिन्होंने अपनी सीधी सपाट अभिव्यक्ति के द्वारा जन आकांक्षाओं का अत्यन्त स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से वे भीष्म साहनी और शैलेश मटियानी के अधिक निकट हैं।

'जिन्दगी और जोंक' एक यथार्थवादी कहानी है। इस कहानी की गिनती हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में होती है। प्रस्तुत कहानी का पात्र रजुआ अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए निरन्तर जूझता रहता है। उसकी अदम्य जिजीविषा को विभिन्न रूप में चित्रित किया गया है। वह शरीर से दुर्बल, अनेक बीमारियों से ग्रस्त, बेसहारा तथा भीख मांगकर जीवन चलाने वाला है। उसके जीवन में न कोई रस है और न ही कोई उमंग शेष है फिर भी वह विषम परिस्थितियों से जूझता हुआ जिन्दगी से जोंक की तरह चिपका हुआ है। विषम परिस्थितियों में जीवन जीते हुए भी कहानी के पात्र रजुआ में निराशा की भावना नहीं है अपितु उसकी जीवन के प्रति आस्था की प्रवृति सामने आती है यही लेखक की जीवन के प्रति आशावान दृष्टि है। यह कहानी मध्यवर्गीय मानसिकता और स्वार्थपरता का चित्रण करती है।

18.2 कहानी का सार

'जिन्दगी और जोंक' कहानी में 'रजुआ' नामक पात्र है जो आर्थिक परेशानी से जूझता हुआ अपना गांव रामपुर छोड़कर बलिया के एक मोहल्ले में रहने आ जाता है। यह मोहल्ला कहानी लेखक (मैं) का है। कहानी का प्रारम्भ 'रजुआ' की मोहल्ले वासियों की पिटाई से होता है। शिवनाथ बाबू की पत्नी की साड़ी उनके घर में ही गुम हो जाती है। इस साड़ी की चोरी का आरोप रजुआ पर लगाकर शिवनाथ बाबू उसे बहुत मारते हैं, जिसमें मोहल्ले वाले उनका पूरा सहयोग करते हैं। इतने में शिवनाथ बाबू का लड़का आकर बताता है कि साडी घर में ही मिल गई है। निरपराध रजुआ को पीटने और

गालियां निकाल लेने के बाद भी लोगों को अपने कृत्य पर पश्चाताप नहीं होता है। अपितु शिवनाथ बाबू यही कहते हैं कि भविष्य में यह इस प्रकार की चोरी करते हुए डरेगा।

रजुआ मार खाने के बावजूद उसी मोहल्ले में रहने लगा। सम्भवत: उसे विश्वास था कि अब उस मोहल्ले में दुबारा उस पर झूठे आरोप नहीं लगेंगे जबकि दूसरी जगह जाने पर अनिश्चितता की स्थिति बनी रहेगी। रजुआ मोहल्ले के लोगों के छोटे-मोटे काम करने लगा। बदले में लोग उसे बासी चावल या रोटी दे देते। रजुआ किसी घर के बरामदे या ओसारे में सोकर रात काट देता। धीरे-धीरे रजुआ मोहल्ले की स्त्रीयों से हंसी मजाक करने लगा जो इस बात का परिचायक था कि रजुआ ने मोहल्ले वालों का विश्वास जीत लिया था।

ऐसी ही कई घटनाएँ हुई, पर रजुआ पर किसी का स्थाई अधिकार निश्चित न हो सका। उसकी सेवाओं की उपयोग-सम्बन्धी खींचातानी सें उसका समाजीकरण हो गया मुहल्ले का कोई भी व्यक्ति उसे दो-चार रूपये देकर स्थाई रूप से नौकर रखने को तैयार न हुआ, क्योंकि वह इतना शक्तिशाली कतई न था कि चौबीस घण्टे नौकर की महान् जिम्मेदारियाँ सम्भाल सके। वह तेजी के साथ पच्चीस-पचास गगरे पानी न भर सकता था, बाजार से दौड़कर भारी सामान-सौदा न ला सकता था, अतएव लोग उससे छोटा-मोटा काम ले लेते और इच्छानुसार उसे कुछ-न-कुछ दे देते। अब न वह शिवनाथ बाबू के यहाँ टिकता और न जमुनालाल के यहाँ, क्योंकि उसको कोई टिकने ही न देता। इसको रजुआ ने भी समझ लिया और मुहल्ले के लोगों ने भी। वह अब किसी व्यक्ति विशेष का नहीं, बल्कि सारे मुहल्ले का नौकर हो गया।

लोग उससे छोटा-बड़ा काम लेकर इच्छानुसार उसको मजदूरी चुका देते। यदि उसने कोई छोटा काम किया तो उसे बासी रोटी या भात या भुना हुआ चना या सत्तू दे दिया और वह एक कोने में बैठकर चापुड़-चापुड़ खा फाँक लेता। अगर कोई बड़ा काम कर देता तो एक जून का खाना मिल जाता, पर उसमें अनिवार्य रूप से एकाध चीज़ बासी रहती और कभी-कभी तरकारी या दाल नदारद होती। कभी भात-नमक मिल जाता, जिसे वह पानी के साथ खा जाता। कभी-कभी रोटी-आचार और कभी-कभी तो सिर्फ तरकारी ही खाने या दाल पीने को मिलती। कभी खाना न होने पर दो-चार पैसे मिल जाते या मोटा पुराना कच्चा चावल या दाल या चार-छ: आलू। कभी उधार भी चलता। वह काम कर देता और उसके एवज में फिर किसी दिन कुछ-न-कुछ पा जाता।

रजुआ को गर्मियों में हैजा हो जाता है। इस अवस्था में मोहल्ले के लोग उसे अपने घर के पास भी नहीं आने देते। नतीजा यह हुआ कि रजुआ एक खण्डहर में गन्दगी से लिथड़ा हुआ पड़ा रहा और लोग दूर से उसे देखकर उसकी मरणासन्न स्थिति के बारे में बातें करते हैं लेकिन उसकी मदद के लिए कोई आगे नहीं आता। लेखक के अस्पताल के अधिकारियों को लावारिस-बीमार रजुआ के विषय में बताने पर वे अस्पताल की गाड़ी में डालकर रजुआ को ले जाते हैं। कुछ दिन अस्पताल में रह कर ठीक होने पर रजुआ वापस उसी मोहल्ले में आ जाता है और अपना पेट भरने की जुगत करने लगता है। लेकिन रजुआ का दुर्भाग्य कि इस बार उसे खुजली हो जाती है। लोग उसे दूर से ही दुत्कारने लगते हैं।

एक दिन लेखक अपने घर में बैठा हुआ था कि एक लड़का हाथ में पोस्टकार्ड लेकर आता है। लड़का रजुआ की मृत्यु का समाचार रामपुर में उसके रिश्तेदार को लिखने का आग्रह लेखक से करता है। रजुआ की मृत्यु का समाचार सारे मोहल्ले में आग की तरह फैल जाता है। सारे मोहल्ले वाले रजुआ की ईमानदारी की चर्चाएं करते हैं और रजुआ की मृत्यु पर अफसोस व दुख प्रकट करते हैं। अचानक कुछ दिनों बाद स्वयं रजुआ अपने उसी रिश्तेदार को अपने जीवित रहने का समाचार लिखाने आ जाता है। उसे जीवित देखकर लेखक आश्चर्यचकित रह जाता है। रजुआ लेखक की मनःस्थिति को समझकर सोचता है यह गद्यांश कहानी से उद्धृत है -

वह मेरे निकट आ गया। सम्भवत: मेरी परेशानी भाँपकर बोला, "सरकार, मैं मरा नहीं हूँ जिन्दा हूँ।" अन्त में वह सूखे होठों में हँसने लगा।

"तब वह लड़का क्यों आया था ?" मैंने गम्भीरतापूर्वक प्रश्न किया।

उसने पहले दाँत निपोर दिये, फिर बोला, "सरकार, वह गुडडी बाजार के बचनराम का लड़का है। मैंने ही उसको भेजा था। बात यह हुई सरकार, कि मेरे सिर पर एक कौआ बैठ गया था। हजूर; कौवे का सिर पर बैठना बहुत असुम माना जाता है। उससे मौअत आ जाती है।"

"फिर गाँव पर चिट्ठी लिखने का क्या मतलब?" मेरी समझ में अब भी कुछ न आया था।

उसने समझाया, "सरकार, यह मौअतवाली बात किसी सगे-सम्बन्धी के यहाँ लिख देने से मौअत टल जाती है। भजनराम बरई मेरे चाचा होते हैं। मालिक हैं, एक और कारड है, इस पर लिख दें, सरकार कि गोपाल ज़िन्दा है, मरा नहीं।"

मैंने पूछना चाहा कि तू क्यों नहीं आया, लड़के को क्यों भेज दिया। लेकिन यह सब व्यर्थ था। सम्भ्वत: उसने सोचा हो कि उसका मतलब कोई न समझे और लोग बात को मज़ाक समझकर कहीं दुरदुरा न दें।

मैंने पोस्टकार्ड लेकर उस पर उसकी इच्छानुसार लिख दिया।

पोस्टकार्ड लौटाते समय मैंने उसके चेहरे को गौर से देखा। उसके मुख पर मौत की भीषण छाया नाच रही थी और वह जिन्दगी से जोंक की तरह चिमटा था- लेकिन जोंक वह था या जिन्दगी? वह जिन्दगी का खून चूस रहा था या जिन्दगी उसका ? - मैं तय न कर पाया।

18.3 व्याख्या खण्ड

(1) लोग शिवनाथ बाबू को बुरा-भला कहकर रास्ता नापने लगे। मैंने उनकी ओर मुस्कराकर देखा तो मेरे पास आकर झेंपते हुए बोले, "इस बार तो साड़ी घर में ही मिल गई है, पर कोई बात नहीं। चमार-सियार डाँट-डपट पाते ही रहते हैं। अरे, इस पर क्या पड़ी हैं, चोर-चाई जो रात-रातभर मार खाते हैं और कुछ भी नहीं बताते।" फिर बायीं आँख को खूबी से दबाते हुए दाँत खोलकर हँस पड़े, "चलिए साहब, नीच और नींबू को दबाने से ही रस निकलता है।"

कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता है कि उस दिन की पिटाई के बाद भी खण्डहर का वह भिखमंगा मुहल्ले में टिके रहने की हिम्मत कैसे कर सका? हो सकता है, उसने सोचा हो

कि निर्दोष छूट जाने के बाद मुहल्ले के लोगों का विश्वास और सहानुभूति उसको प्राप्त हो जायेगी और दूसरी जगह उसी अनिश्चितता का सामना करना पड़ेगा।

प्रसंग :

प्रस्तुत गद्यांश अमरकान्त की कहानी 'जिन्दगी और जोंक' से लिया गया है। कहानी के अन्तर्गत रजुआ (गोपाल) नामक व्यक्ति नया-नया मोहल्ले में आया है। यह एक कमजोर प्राणी है और मात्र एक-दो रोटियों के बदले लोगों की बेगार करता है। इसी से उसका पेट भरता है। एक दिन शिवनाथ बाबू के घर से साडी गुम हो जाती है जिसका आरोप रजुआ पर लगा दिया जाता है और न केवल शिवनाथ बाबू बल्कि आस-पास के सभी लोग चोर समझकर उसे बेदर्दी से पीटने लगते हैं। रजुआ बार बार अपने को निर्दोष बताता है परन्तु कोई उसकी नहीं सुनता। इसी बीच शिवनाथ बाबू का लड़का आकर उनके कान में बताता है कि साड़ी घर में ही मिल गई है। लोग शिवनाथ बाबू को बुरा-भला कहकर चले जाते हैं। शिवनाथ बाबू की रजुआ के प्रति व्यक्त की गई मानसिकता को इस गद्यांश में अभिव्यक्ति दी गई है।

व्याख्या :

जब यह ज्ञात हो गया कि रजुआ निर्दोष है तब लोग शिवनाथ बाबू को बुरा-भला कहते हुए अपने-अपने घरों को चल दिये। लेखक से जब उनकी दृष्टि मिली तो झेंप मिटाते हुए बाले कि देखो इस बार तो साड़ी घर में ही मिल गई है, इसलिए कोई बात नहीं। ये तो छोटी जाति के जाहिल लोग है, चमार और सियार तो डांट-डपट खाते ही रहते हैं। इसे तो कुछ ज्यादा मार ही कहां पडी है, चोर-उचक्के तो मार खाते ही रहते हैं फिर भी उन पर कोई असर नहीं होता, बुरी तरह पिटकर भी उनकी जबान नहीं खुलती। शिवनाथ बाबू ने कहा 'चलिये साहब,, नीच और नींबू को दबाने से ही रस निकलता है।' यहां उनका अभिप्राय यही था कि जिस प्रकार नींबू से रस निकालने के लिए उसे अधिकाधिक दबाना पड़ता है उसी प्रकार नीच लोगों से काम करवाने, उनसे मनमानी करवाने के लिए प्रताड़ना, मार-पिटाई परम् आवश्यक है।

शिवनाथ बाबू के इस व्यवहार तथा लोगों द्वारा बेवजह इतनी पिटाई के बावजूद रजुआ द्वारा मौहल्ले में रहने से लेखक को बड़ा आश्चर्य हुआ। लेखक की समझ से यह बाहर की बात थी कि इतना पिटने के बावजूद रजुआ इसी मोहल्ले में कैसे रह रहा है? लेखक ने यही अनुमान लगाया कि संभव है, रजुआ यही सोचता है कि अब उसके निर्दोष साबित हो जाने से लोग उससे सहानुभूति रखेंगे, उसका विश्वास करेंगे। उसके यहां जमे रहने के बारे में लेखक ने दूसरा अनुमान यह लगाया कि यदि वह कहीं दूसरी जगह जाएगा तो उसे अनिश्चितताओं का सामना करना पडेगा। वहां के लोग उस पर अविश्वास करेंगे।

चोरी चकारी के मिथ्या आरोप भी लगेंगे जबकि यहां पर लोग निश्चित ही विश्वास करने लगे हैं कि वह निर्दोष है और कोई चोरी जैसा बुरा आचरण नहीं कर सकता। अत: उसने इस बार निर्दोष सिद्ध होकर यहां रहना अधिक उचित माना हो।

विशेष :

मध्यवर्गीय समाज के लोगों की निम्नवर्गीय लोगों के प्रति दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है। 'नीच और नींबू को दबाने से ही रस निकलता है' में भाषा की लाक्षणिकता व व्यंजकता है।

(2) सच कहता हूँ, रजुआ की मृत्यु का समाचार सुनकर मेरे हृदय को अपूर्व शान्ति मिली, जैसे दिमाग पर पड़ा हुआ बहुत बड़ा बोझ हट गया हो। उसको देखकर मुझे सदा घृणा होती थी और कभी-कभी यह सोचकर कष्ट होता था कि इस व्यक्ति ने सदा ऐसे प्रयास किये, जिससे इसको भीख न माँगनी पड़े और उसको भीख माँगनी भी पड़ी है तो इसमें उसका दोष कतई नहीं रहा है। मैंने उसकी दशा देखकर कई बार क्रोधवश सोचा है कि यह कम्बख्त एक ही मुहल्ले से क्यों चिपका हुआ है? घूम-घूमकर शहर में भीख क्यों नहीं माँगता? मुझे कभी-कभी लगता है कि वह किसी का मुहताज न होना चाहता था और उसके लिए उसने कोशिश भी की जिसमें वह असफल रहा। चूँकि वह मरना न चाहता था, इसलिए जोंक की तरह जिन्दगी से चिमटा रहा है। लेकिन लगता है, जिन्दगी स्वयं जोंक-सरीखी उससे चिमटी थी और धीरे-धीरे उसके रक्त की अन्तिम बूँद तक पी गई।

प्रसंग :

प्रस्तुत गद्यांश अमरकान्त कृत 'जिन्दगी और जोंक' कहानी से लिया गया है। कथालेखक (मैं) से एक लड़का आकर पोस्टकार्ड पर रजुआ की मृत्यु का समाचार उसके परिजनों के लिए लिखवाने आता है। लेखक उस लड़के से पूछना चाहता है कि वह कब मरा? कहां मरा? लेकिन पूछ नहीं पाता। वस्तुतः रजुआ अभी मरा नहीं है बल्कि उसके सिर पर एक कौआ बैठ जाने से हुए अपशकुन को दूर करवाने के लिए अपने रिश्तेदारों को झूठा पत्र भिजवाता है। लेकिन लेखक इस सूचना को सत्य मानकर अत्यधिक संतोष का अनुभव करता है। लेखक रजुआ की अदम्य जिजीविषा और मेहनतकशी की भावना के विषय में विचार कर रहा है।

व्याख्या :

लेखक को रजुआ की स्थिति से हमेशा घृणा होती थी तथा कभी-कभी दुःख भी होता था। शारीरिक अक्षमता के बावजूद रजुआ भीख नहीं मांगना चाहता था। वह लोगों के काम के बदले में जूंठा बासी भोजन करके भी उसी मोहल्ले में रहता था। लेखक सोचता है कि रजुआ यदि एक मोहल्ले मे न रहकर पूरे शहर में भीख मांगता तो शायद दो व्यक्ति दुत्कारते और दो व्यक्ति कुछ दे ही देते। लेकिन रजुआ स्वाभिमानी प्रकृति का व्यक्ति था जो भीख नहीं मांगना चाहता और अत्यधिक बीमारी की अवस्था में लोगों ने उसे खाने को दिया तो यह उसकी मजबूरी थी। अन्यथा रजुआ किसी पर आश्रित नहीं रहने वाला।

रजुआ भयंकर हैजा और खुजली होने पर मरणासन्न स्थिति में पहुँच कर बच गया। अदम्य जिजीविषा रजुआ को मृत्यु के मुंह से बार-बार खींच लाती है। इसलिए लेखक का मानना है कि वह जोंक की तरह जिन्दगी से चिपटा हुआ है। जैसे जोंक मनुष्य के शरीर से चिपटकर उसका सारा रक्त खींच लेती है। उसी तरह रजुआ जिन्दगी को नहीं छोड रहा और मौत को हरा देता है। पर अब लड़के द्वारा रजुआ की मृत्यु समाचार पा कर

लेखक को लगता है कि रजुआ जोंक की तरह नहीं था अपितु जिन्दगी जोंक की तरह थी जो रजुआ के शरीर की आखिरी बूंद भी धीरे-धीरे करके पी गई। जीवन में आई अन्तिम विकट परिस्थितियों के जूझते-जूझते अन्ततः रजुआ हार गया।

विशेष :

रजुआ की अदम्य जिजीविषा, स्वाभिमानी कर्मण्यता की प्रवृति को बताया गया है। 'भाषा में जिन्दगी जोंक सरीखी' में बिम्बात्मकता है।

(3) पोस्टकार्ड लौटाते समय मैंने उसके चेहरे को गौर से देखा। उसके मुख पर मौत की भीषण छाया नाच रही थी और वह जिन्दगी से जोंक की तरह चिमटा था- लेकिन जोंक वह था या जिन्दगी? वह जिन्दगी का खून चूस रहा था जिन्दगी उसका? - मैं तय न कर पाया।

प्रसंग:

प्रस्तुत गद्यावतरण अमरकान्त द्वारा लिखित 'जिन्दगी और जोंक' कहानी से लिया गया है। कहानी का पात्र रजुआ अपने सिर पर कौवे के बैठने से हुए अपशकुन को टालने के लिए अपने गांव स्वयं की मृत्यु का झूठा पत्र भिजवाता है। कुछ समय के बाद गांव परिजनों को अपने जीवित होने के विषय में पत्र लिखवाने वह लेखक के पास आता है। रजुआ की मृत्यु का पत्र भी लेखक ने ही लिखा था सो रजुआ को जिन्दा देखकर लेखक को आश्चर्य होता है। रजुआ द्वारा वास्तविक संदर्भ ज्ञात होने पर वह पुनः रजुआ के कहे अनुसार पत्र लिख देता है। जब लेखक रजुआ को लिखा हुआ पोस्टकार्ड लौटाता है उस समय रजुआ को लेकर जो विचार लेखक के मन में उपस्थित होते है, यहां उन्हीं विचारों को चित्रित किया गया है।

व्याख्या :

लेखक को लगा कि रजुआ के चेहरे पर कोई उमंग का या जीवन का कोई भाव नहीं बचा था। भयंकर बीमारियों, भूखमरी तथा लोगों की मार इन सबसे लड़ते-लड़ते अब उसकी जीवनी शक्ति चुक गयी थी और मृत्यु उसके पास थी किन्तु फिर भी जिजीविषा पूरी तरह उसमें थी वह मृत्यु के मुख में से जिन्दगी को बार-बार लौटा लाता था। लेखक को लगा कि वह जोंक की तरह जिन्दगी से चिपका हुआ है और कभी लगता है जिन्दगी ही जोंक की तरह उससे चिपकी हुई है। जोंक मनुष्य के रक्त की अन्तिम बूंद तक निचोड़ लेती है तब छोड़ती है। उसी प्रकार रजुआ कृशकाय होते हुए भी मौत से लडकर जिन्दा था और जिन्दगी को पूरी तरह निचोड़ रहा था अथवा जिन्दगी भी रजुआ से जोंक की तरह चिपकी हुई थी और रजुआ को छोड़ नहीं पा रही थी। लेखक तय नहीं कर पा रहा था कि रजुआ जोंक था या जिन्दगी जोंक थी।

विशेष :

'जोंक और जिन्दगी' शब्दों में प्रतीकात्मकता है। रजुआ की अदम्य जिजीविषा व्यक्त हुई है।

18.4 कहानी का प्रतिपाद्य

'जिन्दगी और जोंक कहानी' एक यथार्थवादी कहानी है। इस कहानी की गिनती हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में होती है। 'जिन्दगी और जोंक' कहानी का पात्र रजुआ अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहता है। उसकी अदम्य जिजीविषा के विभिन्न रूपों को आलोच्य कहानी में दर्शाया गया है। कहानी का पात्र रजुआ शरीर से दुर्बल और बीमारियों से ग्रस्त है तथा भिखमंगा और बेसहारा है पर वह जिन्दगी से जोंक की तरह चिपका हुआ है। उसके जीवन में कोई उमंग शेष नहीं है न ही कोई रस। इस पर भी वह विषय परिस्थितियों से जूझता रहता है और उसमें जीने की लालसा कम नहीं होती है। रजुआ लोगों की गालियां सुनकर, भूखा रहकर तथा बीमारियों को सहन करता हुआ अपनी जीवनी शक्ति को बटोरता रहता है।

इस कहानी में मोहल्ले में रहने वाले लोगों की स्वार्थपरता और उनकी संवेदनशून्यता को भी यथार्थ रूप से अभिव्यक्त किया गया है। मोहल्ले के लोग भले ही उसे पसंद नहीं करते हो पर उन्हें कोई इतना सस्ता सहज उपलब्ध नहीं हो सकता है। यह कहानी भारतीय समाज के मध्यम वर्ग की मन: स्थितियों को स्पष्ट करती है। शिवनाथ बाबू जैसे पात्र, रजुआ जैसे निम्न वर्गीय व्यक्ति पर झूठे आरोप लगाते हैं। अस्वस्थ होने पर भी उससे काम करवाते हैं। इन लोगों में संवेदना नहीं है अपितु अपने स्वार्थ के लिए अत्याचार करने में जरा भी हिचकते नहीं हैं।

18.4.1 अदम्य जिजीविषा -

प्रस्तुत कहानी का पात्र 'रजुआ' हर विषम परिस्थिति को झेलता हुआ जीवित रहना चाहता है। इस कहानी में उसकी अदम्य जिजीविषा का मार्मिक चित्रण हुआ है। 'रजुआ' शरीर से अत्यन्त दुर्बल है। वह बलिया के जिस मोहल्ले मे रहता है, वहां के लोगों के छोटे-छोटे काम कर दिया करता है और बदले में मिले बासी भोजन को खाकर एवं कई बार भूखा रहकर भी जिन्दगी व्यतीत कर रहा है। शिवनाथ बाबू की पत्नी की साड़ी के खो जाने पर मोहल्ले वाले उसकी बहुत पिटाई करते हैं लेकिन वह अकारण पिटने के बावजूद मोहल्ले को छोड़कर नहीं जाता।

गर्मियों में भयंकर हैजा हो जाने पर मरणासन्न स्थिति में अस्पताल पहुँचा दिये जाने पर वह पुन: ठीक होकर आ जाता है। सबकी यही राय थी कि रजुआ बच नहीं सकता, परन्तु वह मरा नहीं। यदि अस्पताल पहुँचने में थोड़ा भी विलम्ब हो गया होता तो बेशक काल के गाल से उसकी रक्षा न हो पाती। अस्पताल में वह चार-पाँच दिन रहा, फिर वहाँ से बरखास्त कर दिया गया। किन्तु उसकी हालत बेहद खराब थी। वह एकदम दुबला-पतला हो गया था। मुश्किल से चल पाता और जब बोलता तो हाँफने लगता। इसके बाद रजुआ को भयंकर खुजली हो गई थी, लेकिन उसने मुहल्ला नहीं छोड़ा। वह अक्सर खण्डहर में बैठकर अपने शरीर को खुजलाता रहता। खाने की आशा में वह इधर-उधर चक्कर भी लगाता। खुजली हो जाने के बाद उससे मोहल्ले वाले काम करवाना बंद कर देते हैं, तब भूखा रहकर बीमारी की मार को झेलता हुआ अपनी जिजीविषा को बनाए रखता है। कौवे

के सिर पर बैठने के अपशकुन को दूर करने के लिए अपनी मृत्यु का झूठा समाचार अपने रिश्तेदारों को भेजता है ताकि आने वाली मृत्यु को टाला जा सके।

इस प्रकार 'रजुआ' इस कहानी में एक ऐसे पात्र के रूप से आया है जो पीड़ा सहता है, पर हर स्थिति में अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है।

18.4.2 समाज की शोषण प्रवृत्ति, पर व्यंग्य -

'रजुआ' बेसहारा व्यक्ति है यह जानकर मुहल्ले का हर व्यक्ति उससे काम करवाने को तत्पर रहता है काम के बदले में उसे बासी रोटी या चावल दिया जाता है। चाहे शिवनाथ बाबू या जमनालाल या स्वयं लेखक हो सब उससे अपना काम करवाते हैं। लेखक बीमार रजुआ से घृणा करता है, किन्तु वह भी रजुआ द्वारा घर का काम कर लेने से निश्चिन्त रहता है। बासी भोजन खाकर व बेगार करके 'रजुआ' की शारीरिक स्थिति दयनीय हो गई 'उसके बाद मैंने कोई प्रश्न नहीं किया। हिम्मत नहीं हुई, वह फौरन वहां से सरक गया और मेरा हृदय कुछ अजीब-सी घृणा से भर उठा। उसकी खोपड़ी किसी हलवाई की दुकान पर दिन में लटकते काले गैस लैम्प की भांति हिल-डुल रही थी। हाथ-पैर पतले, पेट अब भी हंडिया की तरह फूला हुआ और शरीर निहायत गन्दा एवं घृणितकृत मेरी इच्छा हुई, जाकर बीवी से कह दूँ कि इससे कोई काम न लिया करो, यह रोगी है किन्तु फिर टाल गया, क्योंकि इससे मेरा ही घाटा था। मैं जानता था कि नौकरों की कितनी किल्लत थी और रजुआ के रहने से इतना आराम हो गया था कि हर पहली या दूसरी तारीख को राशन, मसाला आदि खरीद कर महीने भर के लिए निश्चिंत हो जाता।' मोहल्ले के जो व्यक्ति स्वस्थ होने पर उसकी सेवाओं का लाभ उठा रहे थे, वही लोग बीमार पड़ जाने पर उसकी सुध भी नहीं लेते हैं अपितु आस पास आने पर या घर के बाहर भी नहीं बैठने देते। सभी को यह डर सताता है कहीं रजुआ की बीमारी उनको या उनके परिवार वालों के न लग जाए। समाज के स्वार्थी एवं आत्मकेन्द्रित होने का एक उदाहरण देखिए -

शिवनाथ बाबू अपने दरवाजे पर बैठ अपने शरीर में तेल की मालिश कर रहे थे। मैंने उनसे जाकर नमस्कार करते हुए प्रश्न किया, "रजुआ खण्डहर में क्यों पड़ा हुआ है? उसे फिर हैजा हुआ है क्या?" शिवनाथ बाबू बिगड़ गए, "गोली मारिए साहब, आखिर कोई कहाँ तक करें? अब साले को खुजली हुई है। जहाँ जाता है, खुजलाने लगता है। कौन उससे काम कराये। फिर काम भी तो वह नहीं कर सकता। साहब, अभी दो-तीन रोज की बात है, मैंने कहा एक गगरा पानी ला दो। गया जरूर, लेकिन कुएँ से उतरते समय गिर गए बच्चू। पानी तो खराब हुआ ही, गगरा भी टूट-पिचक गया। मैंने तो साफ-साफ कह दिया कि मेरे घर के अन्दर पैर न रखना, नहीं तो पैर तोड़ दूँगा। गरीबों को देखकर मुझे भी दया-माया सताती है, पर अपना भी तो देखना है।"

18.4.3 यथार्थवादी चित्रण -

प्रस्तुत कहानी में व्यक्ति की सामाजिक और मानसिक स्थितियों का यथार्थवादी चित्रण हुआ है। रजुआ के माध्यम से व्यक्ति के मृत्यु भय का चित्रण हुआ है। मृत्यु से जूझता हुआ रजुआ जीना-जू चाहता है। रजुआ एक ऐसे पात्र के रूप में आया है जो कोरे

आदर्शवाद से रहित है। लेखक ने रजुआ और पगली के सम्बन्ध का यथार्थ चित्रण किया है।

जब रजुआ शारीरिक रूप से ठीक था तब मोहल्ले वाले उसे बुलाकर काम लिया करते थे, लेकिन जब रजुआ बीमार हुआ तो लोगों ने उसे मोहल्ले में रहने नहीं दिया तथा रजुआ को खण्डहर में जाकर रहना पडा। इसी प्रकार रजुआ के अपने पैसे बरन की बहू के पास रखे थे किन्तु बाद में वरन की बहू ने रजुआ के मांगने पर मना कर दिया। लेखक चाहता तो आदर्शवादी स्थिति में बरन की बहू का हृदय परिवर्तित करके पैसे लौटा सकता था। इस प्रकार पूरी कहानी यथार्थवादी चित्र को अभिव्यंजित करती है। रजुआ जैसे गरीब व्यक्ति के प्रति समाज घृणा करता है। समाज का एक वर्ग अपने स्वार्थ के कारण ऐसे व्यक्ति के प्रति संवेदन शून्य हो जाता है और उनका शोषण करता है।

18.5 संरचना

शिल्प संरचना :

शिल्प कथ्य से गहरे रूप में जुड़ा हुआ होता है। उसे कथ्य से पूरी तरह से पृथक करके देखने की परम्परा भले ही हो किन्तु वह कथ्य में पूरी तरह से मिला हुआ होता है। जब कहानी का कथ्य समय की संवेदना से प्रभावित हो रहा है तब शिल्प इस संवेदना से अछूता कैसे रह सकता है। आधुनिक कहानियों में जो दृष्टिबोध है उसी की प्रेरणा से शिल्प तैयार होता है। "किसी भी साहित्य-रूप की प्रचलित जमीन को नया शिल्प नहीं तोड़ता, तोड़ने की हौंस में वह आरोपित जरूर होने लगता है, उस जमीन को तोड़ती है 'नयी वस्तु'। वस्तु को कहे जाने की विवशता से गुजरना ही रचनाकार का शिल्प दायरे में चले आना है और वस्तु को जिस कोण से वह उठाता है, वही उसका शिल्प कोण भी होता है।' यह दृष्टि ही कहानी शिल्प को आधुनिकता प्रदान करती है।

'जिन्दगी और जोंक' कहानी शिल्प संरचना की दृष्टि से आधुनिक दृष्टिबोध से युक्त है। लेखक 'मैं के रूप में अपनी संवेदना व्यक्त करता है और पाठकों से सीधे संवाद बनाए रखता है। कहानी का प्रारम्भ मोहल्ले के लोगों द्वारा रजुआ की पिटाई किए जाने से हुआ है। कहानी का तथ्यपरक और तटस्थ प्रस्तुतीकरण प्रभावपूर्ण है। प्रतीकों, बिम्बों, संकेतों आदि का प्रयोग प्रयत्नगत न होकर सहज व सरल है। कहानी के जीवन के निकट होने के कारण कहानी शिल्प में एक प्रकार की सहजता विकसित हुई है।

कहानी का शीर्षक 'जिन्दगी और जोंक' रजुआ की विपरीत परिस्थिति से जूझते रहने के बाद अदम्य जिजीविषा को व्यक्त करता है। भयंकर बीमारियों से लड़ता हुआ रजुआ जिंदगी से जोंक की तरह चिपका हुआ है। जिस प्रकार कहानी का प्रारम्भ कथ्य को मध्य से उठाकर हुआ है, वहीं अंत भी पाठक की कल्पना के लिए छोड़ दिया गया है। कहानी के सभी पात्रों को उनके सहज-यथार्थ रूप में यहां प्रस्तुत किया गया है फिर चाहे वह लेखक स्वयं हो या रजुआ, शिवनाथ बाबू या फिर लेखक की पत्नी।

भाषा संरचना :

कहानी की भाषा के विषय में नामवर सिंह का कथन "दरअसल भाषा का सवाल केवल कुछ शब्दों को छोड़ने और लेने तक ही सीमित नहीं है। सवाल नयी वास्तविकता के

अनुरूप उतनी ही यथातथ्य, कठोर चुस्त, संवेदनशील, सजीव भाषा के निर्माण का है।..... हल्के-हल्के शब्द छोटे-छोटे वाक्य एक पर एक जमे हुए सहज प्रवाह में बहते चलते हैं, फिर भी सूक्ष्म भाव अथवा विचार का कोई रेशा छूटने नहीं पाता। तमाम अलंकरण, आवरण का कूड़ा-करकट छोड़ कर भाषा इतनी स्वच्छ और निर्मल हो उठी है कि विषय वस्तु और पाठक के बीच में भाषा का व्यवधान ही नहीं रह जाता। कहानी का कथ्य पूरी ताकत के साथ मन पर सीधा असर डालता है।" अमरकान्त की कहानी 'जिन्दगी और जोंक' पर सटीक बैठता है।

प्रस्तुत कहानी की भाषा सरल, चुस्त और सादगीपूर्ण है। कहानी में यथार्थ चित्रण के आग्रह के कारण भाषा भी यथार्थ के रंग में रंगी हुई है। जीवन की विषमताओं-विसंगतियों और चारों ओर व्याप्त असन्तोष से जन्म लेने वाली इस कहानी की भाषा जीवन के अधिक निकट है। अलंकरण से रहित सीधी सपाट भाषा में अपना एक अनोखा तराश और सहज प्रवाह है। अमरकान्त की यह सहज अर्थ सक्षम भाषा अपनी अलग पहचान बनाती है। यहां भाषा की सरलता में कहानी की वास्तविक शक्ति छिपी हुई है। यह लेखक एवं पात्रों की स्थिति के सम्बन्ध को अभिव्यक्त करती है जैसे 'कोई छुट्टी का दिन था। मैं बाहर बैठा एक किताब पढ़ रहा था, इतने में रजुआ भीतर आया और कोने में बैठकर कुछ खाने लगा। मैंने घूमकर एक निगाह उस पर डाली। उसके हाथ में एक रोटी और थोडा सा अचार था और वह सूअर की भांति चापुड़-चापुड़ खा रहा था। बीच-बीच में वह मुस्करा पड़ता, जैसे कोई बड़ी मंजिल सर करके बैठा हो।"

कहानी की भाषा में सहजता और यथार्थता को बनाए रखने के लिए ध्वनियों और शब्दों के बोलचाल के रूप को यथावत रखा गया है जैसे इनखिलाफ-जिन्दाबाद, महात्मा गांधी की जैसे। मौअत (मौत) कारड (कार्ड) समुन्दर(समुद्र) आदि। भाषा में सामान्य बोलचाल में आने वाले अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है यथा - स्टेशन, प्लेटफार्म, रेलवे लाइन आदि। यथार्थ का चित्रण करने वाली इस कहानी में अंग्रेजी शब्दों का भी देशी संस्कार हो गया है जैसे कारड (कार्ड)। अमरकान्त की संवेदनशील भाषा ने रजुआ की जिजीविषा और मौहल्ले वालों की उपयोगितावादी प्रवृत्ति को उजागर किया है। भाषा में कहीं-कहीं अलंकार भी मिल जाते है

"शिवनाथ बाबू के घर के सामने, सड़क की दूसरी ओर स्थित खण्डहर में, नीम के पेड़ू के नीचे, एक दुबला-पतला काला आदमी, गन्दी लुंगी में लिपटा चित्त पड़ा था, जैसे रात में आसमान में टपककर बेहोश हो गया हो अथवा दक्षिण भारत का भूला-भटका साधु निश्चिन्त स्थान पाकर चुपचाप नाक से हवा खींच-खींचकर प्राणायाम कर रहा हो।" अमरकान्त ने कहानी के परिवेश के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है जो पात्रों की मनःस्थिति को पूर्णरूप से अभिव्यक्त करती है।

18.5.3 संवाद संरचना

कहानी में संवाद संक्षिप्त एवं अर्थयुक्त है। संवादों में सहजता और स्वाभाविकता है, कहीं भी कृत्रिमता नहीं आई है। 'जिन्दगी और जोंक' कहानी के संवाद पात्रों के चरित्र एवं परिवेश को उद्घाटित करने में सक्षम हैं एवं कथा को गति प्रदान करते हैं। जैसे -

शाम को दफ्तर से लौटा ही था कि बीवी ने चिन्तातुर स्वर में सूचना दी, "अरे, जानते नहीं, रजुआ को हैजा हो गया है।" उन दिनों गर्मी अपनी चरम सीमा पर थी और गड्ढे तथा बम पुलिस की गली में, जो शहर के अत्यधिक गन्दे स्थान थे, हैजे की कई घटनाएँ हो गई थीं। मुझे आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि रजुआ को हैजा न होता तो और किसको होता। "जिन्दा है या मर गया ?" मैंने उदासीन स्वर में पूछा।

मेरी पत्नी ने अफसोस प्रकट करते हुए कहा, "क्या बतायें, मेरा दिल छटपटाकर रह गया। वहीं खण्डहर में पड़ा हुआ है। कै-दस्त से पस्त हो रहा है। लोग बताते हैं कि आध-एक घण्टे में मर जायेगा।" "कोई दवा-दारू नहीं हुई?"

"कौन उसका सगा बैठा है जो दवा-दारू करता। शिवनाथ बाबू के यहाँ काम कर रहा था, पर जहाँ उसको एक कै हुई कि उन लोगों ने उसको अपने यहाँ से खदेड़ दिया। फिर वह रामजी मिश्र के ओसारे में जाकर बैठ गया, लेकिन जब उन लोगों को पता लगा तो उन्होंने भी उसको भगा दिया। उसके बाद वह किसी के यहाँ नहीं गया, जाकर खण्डहर में पेड़ के नीचे पड़ गया।"

मैंने जैसे व्यंग्य किया, "तुमने अपने यहाँ क्यों न बुला लिया ?"

18.6 अभ्यास प्रश्न

1. 'जिन्दगी और जोंक' कहानी के प्रतिपाद्य को स्पष्ट करते बताइए कि यह एक यथार्थवादी कहानी है?
2. 'जिन्दगी और जोंक' अदम्य जिजीविषा और मानवीय संवेदना को अभिव्यक्ति देने वाली सशक्त कहानी है' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
3. 'जिन्दगी और जोंक' कहानी की तात्विक समीक्षा कीजिए।
4. "व्यक्ति के अस्तित्व को बनाये रखने के प्रयत्न और जिजीविषा के अनेकानेक रूप इस कहानी में उजागर हुए है।" कथन के आधार पर रजुआ की चारित्रिक विशेषताएं बताइए।

18.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. नामवर सिंह; कहानी, नयी कहानी, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद
2. कमलेश्वर; नयी कहानी की भूमिका, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
3. धनंजय वर्मा; समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद
4. पांडेय राशि भूषण शीतांशु; नयी कहानी के विविध प्रयोग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5. अमरकान्त; जिन्दगी और जोंक', नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद
6. राजेन्द्र यादव; कहानी : स्वरूप और संवेदना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली

इकाई- 19 ज्ञानरंजन कृत 'पिता' का अध्ययन व विवेचन

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 ज्ञानरंजन का परिचय

19.3 पिता कहानी की संवेदना -

19.3.1 पिता कहानी का कथ्य

19.3.2 पिता कहानी का घटनाक्रम

19.4 पिता कहानी की पात्र योजना

19.5 पिता कहानी में समाज

19.6 पिता कहानी का शिल्प विधान

19.6.1 पिता कहानी की प्रस्तुति

19.6.2 पिता कहानी की भाषा

19.6.3 पिता कहानी का शिल्प-वैशिष्ट्य

19.7 पिता कहानी का उद्देश्य

19.8 सारांश

19.9 पिता कहानी के व्याख्या योग्य पद

19.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.11 संदर्भ ग्रंथ

19.0 उद्देश्य

ज्ञानरंजन की प्रसिद्ध कहानी "पिता" कहानी के अध्ययन के बाद विद्यार्थी -

- कथाकार ज्ञानरंजन की कथायात्रा से परिचित हो सकेंगे।
- 'पिता' कहानी का कथ्य समझ सकेंगे।
- 'पिता' कहानी की मूल संवेदना को जान सकेंगे।
- 'पिता' कहानी की सामाजिक सोद्देश्यता को समझ सकेंगे।
- 'पिता' कहानी में वर्णित सामाजिक जीवन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- 'पिता' कहानी के शिल्प विधान की समीक्षा करने की क्षमता बढ़ा सकेंगे।
- 'पिता' कहानी की भाषा की समीक्षा करना जान सकेंगे।
- 'पिता' कहानी का समग्र मूल्यांकन कर सकेंगे।
- 'पिता' कहानी में कतिपय अंशों की व्याख्या करने की क्षमता में वृद्धि कर सकेंगे।
- 'पिता' कहानी के महत्व को समझ सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

साठोत्तर कहानीकारों में ज्ञानरंजन का अप्रतिम महत्व है क्योंकि उन्होंने अपनी कहानियां में भारतीय समाज में बदलते मध्यवर्ग की विसंगतियों का यर्थाथ चित्रण किया। ज्ञानरंजन उस दौर के कहानीकार है जब नयी कहानी के बनावटीपन का अवसान हो चुका

था और अकहानी की असामाजिकता और व्यक्तिवादिता से भी पाठक परिचित हो चुके थे। यह लगभग 1965 के आसपास का समय है। भारतीय जनमानस मोहभंग की स्थिति में था क्योंकि उसे अपने सारे वे सपने ध्वस्त होते दिख रहे थे, जो उसने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद साकार होने के लिए देखे थे। इसलिए आमजन में एक नैराश्य का भाव प्रभाव जमाता जा रहा था। पुराने मूल्यों से हमारी आस्था उठ चुकी थी जबकि नये मूल्यों के निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ भी नहीं हो पायी थी। इस निराशा और अनास्था भरी स्थिति का प्रभाव हमारे साहित्यिक परिदृश्य पर भी पड़ा। अकविता, अकहानी, शमशानी पीढ़ी, भूखी पीढ़ी जैसे आंदोलन इसी मोहभंग की परिणति थे। किन्तु किसी भी समाज का जीवन अराजकता की स्थिति में बहुत दिन तक नहीं रह सकता वरना उसके बिखराव की सम्भावना बन जायेगी। इस दौर में जिन कहानीकारों ने हिन्दी कहानी को नयी दिशा दी उनमें ज्ञानरंजन का नाम अग्रणी कहानीकार के रूप में लिया जाता है। उन्होंने समाज के बदलते स्वरूप को गहराई से देखा और उसकी परिवर्तित प्रवृत्तियों को समझा जिन्हें उन्होंने अपनी कहानियों का कथ्य बनाया। भारतीय मध्यवर्गीय जीवन इस सारे बदलाव को सबसे अधिक महसूस कर रहा था तथा झेल रहा था, इसलिए मध्य वर्ग में परिवर्तन की हलचल अधिक थी। ज्ञानरंजन की पीढ़ी के रचनाकारों ने मध्यवर्ग की पीड़ा को अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी। उनकी "पिता" कहानी एक ऐसी कहानी है जिसमें मध्यवर्ग के जीवन को नयी और पुरानी पीढ़ी के अंतर के रूप में देखने का प्रयास किया गया है।

19.2 ज्ञानरंजन का परिचय

कहानीकार ज्ञानरंजन का जन्म 1936 ई. में इलाहाबाद में हुआ। उनके पिता अपने समय के प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक, पत्रकार और लेखक श्री रामनाथ सुमन थे। उनकी सारी शिक्षा इलाहबाद में हुई तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. करने के बाद ज्ञानरंजन ने महाकौशल महाविद्यालय जबलपुर में अध्यापन किया जहां से वे सेवा निवृत्त हुए और जबलपुर के ही होकर रहे गये। वहीं रहते हुए उन्होंने "पहल" नामक एक साहित्यक पत्रिका निकाली जिसने एक आन्दोलन का रूप ले लिया तथा जिसके 90 अंक उन्होंने प्रकाशित किए। स्वास्थ्य के कारणों से ही उन्होंने इस पत्रिका को बंद किया। "पहल" की गिनती हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं में होती रही है तथा ज्ञानरंजन ने इस पत्रिका को मुखर तथा जनवादी मूल्यों का केन्द्र बनाया। आपातकाल के दौरान इस पत्रिका को प्रशासन द्वारा प्रताड़ित करने का प्रयास किया किन्तु ज्ञानरंजन ने कोई समझौता नहीं किया। उन्होंने अधिक संख्या में कहानियां नहीं लिखीं, पर उनकी हर कहानी चर्चित रही। पर "पहल" के सम्पादन-प्रकाशन के साथ उन्होंने लेखन लगभग बंद कर दिया क्योंकि उनके लिए "पहल" एक पत्रिका मात्र नहीं थी प्रत्युत जनवादी मूल्यों की स्थापना की दिशा में एक आंदोलन थी।

ज्ञानरंजन का बचपन पिता के कठोर अनुशासन में बीता। उनके पिता श्री राम नाथ सुमन कट्टर गांधीवादी थे तथा बच्चों से भी खादी के कपड़े पहनने का आग्रह करते थे। ज्ञान जी ने उनके अनुशासन को अपने जीवन में ढाला और उन्होंने विनम्रता, शालीनता जैसे गुणों को अपने व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बनाया। किन्तु इसी वातावरण में उनके व्यक्तित्व

में दृढ़ता भी पनपी। आरम्भ से उन्होंने कविताएं लिखीं तथा वे इन कविताओं को "अरूण शलभ" नामक साहित्यिक संस्था के मंच पर सुनाने लगे। इस संस्था पर भी सुमनजी की अनुशासनप्रियता का गहरा प्रभाव था क्योंकि वे भी इस संस्था से जुड़े थे। प्रारम्भ में इलाहाबाद के रचनाकारों ने ज्ञानरंजन के रचनाकर्म को सहानुभूतिपूर्वक नहीं देखा। कुछ तो इसलिए कि वे रामनाथ सुमन के पुत्र थे अत: उनकी प्रतिभा उनके प्रभाव के ही कारण थी। किन्तु ज्ञानजी ने अपना रचनाकर्म जारी रखा और जल्दी ही उन की कविताएँ विभिन्न पत्रिकाओं में छपने लगीं। इसके लिए उन्होंने अपने पिता की कोई मदद नहीं ली। ज्ञान की रचनाएं रेडियो पर भी प्रसारित होने लगीं और फिर वे कहानियाँ लिखने लगे। बहुत जल्दी ही एक समर्थ कहानीकार के रूप में उनकी पहचान बन गयी।

ज्ञानरंजन के व्यक्तित्व में दृढ़ता का जो तत्व था उसका असल रूप तब मिला जब उन्होंने अपनी पसंद की लड़की सुनयना से विवाह किया। विवाह में ज्ञान ने कोई नया कपड़ा तक नहीं सिलवाया था। वह पुरानी शर्ट, पैंट और फटी चप्पलों में विवाह की वेदी पर बैठे थे। सुनयना के लिए भी एक सस्ती सी साड़ी और नया ब्लाउज लाया गया था। इससे पता चलता है कि ज्ञानरंजन की करनी और कथनी में कोई अंतर नहीं है। 'फेंस के इधर उधर', 'शेष होते हुए', 'सपना नहीं' आदि ज्ञानरंजन के प्रतिनिधि कहानी संकलन है।

ज्ञानरंजन अपनी पीढी के प्रमुख कहानीकार है। ज्ञानरंजन की पहली कहानी "मनहूस बंगला" थी जो 1960 में "ज्ञानोदय" में छपी थी। यह कहानी उनके किसी संकलन में नहीं है। उसके बाद उनकी लगभग 50 कहानियाँ विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई जिनका हिन्दी जगत ने पूरी शिवदत्त के साथ स्वागत किया। दिवास्वप्नी, छलांग, घण्टा, फैंस के इधर-उधर, बहिगर्मन, अमरूद का पेड़, गोपनीयता, क्षणजीवी, चुप्पियाँ, खलनायिका और बारूद के फूल, सीमाएँ, दिलचस्पी, हास्यरस, रचना-प्रक्रिया, दाम्पत्य, एक नमूना सार्थक दिन, आत्महत्या, सपना नहीं, यात्रा, पिता आदि ज्ञानरंजन की प्रमुख कहानियाँ है। उनकी सभी कहानियों की हिन्दी जगत में खूब चर्चा हुई है। फैंस के इधर-उधर तथा पिता कहानियों को सर्वाधिक लोकप्रियता मिली और ये दोनों ही कहानियाँ विभिन्न पाठ्यक्रमों अब भी पढ़ाई जा रही है।

अपनी कहानी रचना के बारे में स्वयं ज्ञानरंजन ने लिखा है:-

"जब भी वे प्रकाश में आती थी, मेरे साथियों ने उनके प्रति चुप्पी और लगभग आतंकित हो जाने जैसा सलूक किया। मेरे अभिन्न मित्र मुझे घूरती दृष्टि से देखते और घर में मेरी कहानी (जिस पत्रिका में वह छपती।) पिताजी तकरीबन छुपी जगहों में डाल देते थे। मेरे सभी भाई-बहिन वयस्क थे। बाद में आलोचक नेमिचंद जैन ने तो मेरी कहानियों के बारे में लिखा भी कि "ज्ञान की कहानियों मे एक डरावना अनुभव संसार है।"

इसका कारण यह था कि साथी, सम्बन्धी और आलोचना मेरी कहानियों को कहीं-न-कहीं मेरी निजी जिन्दगी से जोडते रहे है। यह हिन्दी साहित्य का एक अभूतपूर्व हास्य दृश्य है। मेरी कोई भी कहानी आत्मकथा नहीं है। एक कहानी असंख्य सूत्रों, तत्वों और कल्पनाओं से निर्मित होती है। मैं इस तरीके को बहुत नापसन्द करता रहा हूं क्योंकि मेरी कहानियाँ इस देश का सार्वजनिक दृश्य है। ऊपर के व्यवहार से मुझे यह भी संदेह

हुआ कि मेरी कहानियों में कहीं न कहीं अश्लीलता मौजूद है या फिर हमारे समाज में साहित्य विरोध या साहित्य निरपेक्षता पर्याप्त मात्रा में घुसी हुई है।"

ज्ञानरंजम मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों का चित्रण करने वाले कहानीकार है। वे अपनी कहानियों में मध्यवर्ग के अंतरंग चित्र प्रस्तुत करते है और उसके खोखलेपन, बनावटीपन, उसकी घुटनभरी सड़ांध उसका जुगप्साभरा आक्रोश, उसके जीवन की टकराहट आदि का विश्वसनीय चित्रण ज्ञानरंजन की कहानियों मिलता है। डॉ. शिवकुमार मिश्र ने ज्ञानरंजन की कहानियों के विषय में अपनी राय इस प्रकार दी हैं जो बहुत सटीक है-

"मध्यवर्गीय जिन्दगी पर, क्योंकि इसी के बारे में ज्ञानरंजन ने लिखा है, लिखने वाले बहुतेरे रचनाकार आपको मिलेंगें, जिनमें से कुछ के सिक्के भी बाजार में चल रहे है, किन्तु इस मध्यवर्गीय जिन्दगी का जो रूप पिछले 10-15 सालों में रचा-पका है, उसके एक-एक तेवर की इतनी खरी और सटीक पहचान, उसकी बनती-चटखती आकृति का इतना पारदर्शी बोध, उसकी निरर्थकता और कम्पीटशन की इतनी तल्ख अनुभूति, और इस मध्यवर्गीय जिन्दगी को रचने-सिरजने वालों के मानस में इतनी गहरी पैठ, मूल्यों के टकराव की इतनी अंतरंग अभिव्यक्ति, संस्कार और विवेक के बीच होने वाली कशमकश का इतना तीखा अहसास तथा उसके खोखलेपन, बनावटीपन और उसकी घुटनभरी सड़ांघ पर एक साथ ही जुगुप्साजन्य आक्रोश का इतना सात्विक और इतना ईमानदार वर्णन आपको बहुत कम रचनाकारों- 'कहानीकारों में मिलेगा। ज्ञानरंजन मध्यवर्गीय जिन्दगी कुरूपता, वीभत्सता और अश्लीलता में गहरे धंसे है, उन्होंने उसकी कोई भी दरार अनदेखी नहीं छोड़ी और यह सब करते हुए भी रचनाकार के रूप में जिस तरह निस्संगता बनाए रखने में वे कामयाब हुए है, वह उनकी खास उपलब्धि है एक 'सर्जन' की तरह उन्होनें इस जिन्दगी पर, उसके हर सड़े-गले स्थल पर चीरे लगाए है, उस गंदगी का साक्षात्कार किया है, किन्तु उनका मानवीय रूख सदैव उनके साथ रहा है। यह उनकी मानवीय संवेदना ही है जो दलदल के बीच भी उन्हें पाक-साफ बनाये रख सकी है, वे कहीं भी अमानवीय नहीं हुए है। जहां उनके कथा-नायक अथवा नायिकाएँ, स्थितियाँ और परिवेश, अश्लील और अवांछनीय हुए है, वहां भी रचनाकार ज्ञानरंजन का मानवीय रूख बरकरार रहा है। विश्वास न हो तो उनकी 'पिता', 'शेष होते हुए, संबंध', गोपनीयता', 'सीमाएँ', 'आत्महत्या', 'कलह', 'फेंस के इधर और उधर', किसी भी कहानी को देखा जा सकता है। जिन कहानियों में एक खास किस्म की आक्रामकता है, जैसे 'घंटा', 'रचना-प्रक्रिया', 'यात्रा', 'छलांग' आदि में वहाँ भी व्यंग्य अपनी पूरी वार और पूरी काट के बावजूद अमानवीय नहीं हुआ है।"

पिता ज्ञानरंजन क एक बहुचर्चित और प्रशंसित कहानी है जिसमें परिवार में पिता की स्थिति और पुत्र-पिता के बदलते सम्बन्धों का वर्णन है। यह वर्णन परम्परागत कहानियों के वर्णन से सर्वथा भिन्न है क्योंकि इस कहानी में "बिरादरी बाहर" (राजेन्द्र यादव) तथा "वापसी" (उषा प्रियंवदा) जैसी पिता-पुत्र पर सम्बन्धित कहानियों से सर्वथा भिन्न है। इन दोनों ही कहानियों में पिता की स्थिति बहुत हास्यापद हो जाती है जिसका पिता को बहुत अफसोस होता है। किंन्तु इस कहानी में पिता का चरित्र ने हास्यास्पद है उपेक्षाजनक।

ज्ञानरंजन की ही "सम्बन्ध" और "शेष होते हुंए" जैसी कहानियों में पारिवारिक रिश्तों के टूटने का तनाव है जबकि "पिता" कहानी में यह रिश्ता टूटने को आकर भी जुड़ा हुआ है। इस कहानी में पीढ़ियों का तनाव है किन्तु यह तनाव बहुत सहज तरीके से विकसित होता है और दो पीढ़ियों के बीच का अंतराल कोई समस्या नहीं बनता। ज्ञानरंजन की कहानियाँ घर, परिवार, पिता, भाई-बहिन, अर्थात् परिवार के सम्बन्धों के बीच घटित होती है और इनके भी प्राय: सम्बन्धों का परिस्थितियों का बीतना ही लक्षित किया जाता है। पिता कहानी में यह लक्ष्य बहुत स्पष्ट और सतह पर है।

19.3 पिता कहानी की संवेदना

ज्ञानरंजन की पिता कहानी भावात्मक सम्बन्धों के निरूपण की अपेक्षा सम्बन्धों की विसंगति, जटिलता, तनाव का बोध जगाने का प्रयास करती है। यह मात्र पितापुत्र के सम्बन्धों की कहानी नहीं है बल्कि उसमें पिता और पुत्र की मनोदशाएं, व्यवहार, दुविधाएं, भय और संशय भी जुडे हुए हैं। यह कहानी दो पीढ़ियों के अंतर को बहुत सही ढ़ंग से पकड़ती है। इस कहानी में परम्परा के प्रति या परम्परा के प्रतीक पिता के प्रति रोमांटिक किस्म का विरोध या परम्परा के प्रतीक पिता के प्रति घृणा उंडेलने का भाव नहीं है। कहानी के पिता ऐसे हैं जो जीवन की आधुनिक सुविधाओं से चिड़ते है, उनके प्रति झल्लाहट दिखाते है उनसे अपने आपको असम्पृक्त रखते है। वे इन सभी सुविधाओं का निषेध करते है और निरंकुशता की सीमा तक करते हैं। कहानी का "वह" पात्र जो पुत्र है, बहुत कोशिश करता है कि उसके पिता जीवन की अनिवार्य सुविधाओं का उपयोग करें तथा कष्ट न पायें। पर पिता उसके सारे प्रयत्नों को विफल कर देते है। पर पिता न कोई शिकायत करते है न सुविधाओं का उपयोग करते हैं। टूटते सम्बन्धों की यह स्थिति न तो काल्पनिक है न सम्बन्धों के टूटने की संवेदना भावुकतापूर्ण बल्कि सहज और वास्तविक संदर्भों से जुड़ी है। ज्ञानी को यह महसूस होता है कि पिता एक भीमकाय दरवाजे की तरह खड़े है जिससे टकराकर हम सब दयनीय होते जा रहे है। पिता और पुत्र के इन तनावपूर्ण सम्बन्धों में बेटों की पिता के प्रति कोई घृणा की भावना नहीं जगती। पिता अपनी शर्त पर जीते है। कहानी में लेखक ने एक घटना का जिक्र किया जिससे पिता के व्यक्तित्व की गरिमा का भी पता चलता है।

वायु सेना में नौकरी करने वाला उसका कप्तान भाई बहिन के युनिवर्सिटी के खर्चे के लिए दो वर्ष तक पचास रूपये भेजता रहा था। एक बार अकस्मात् कप्तान भाई होली अवकाश मनाने घर आ गया था। पिता ने उसके हाथों में उसके नाम की बारह सौ रूपयों वाली एक पास बुक थमा दी। उसको यह बड़ा आकस्मिक लगा। कप्तान भाई को हैरत हुई और हल्की खुशी भी कि एकाएक काफी रूपये मिल गए। लेकिन इस बाद से उसे दुःख और पराजय का भान भी हुआ। उसने अपने को छोटा महसूस किया। दो वर्ष तक बहन के लिए उसने जो थोडा बहुत किया, वह सब एक पल में घटकर नगण्य हो गया। फिर भी वह अनुभव कर रहा था, कप्तान भाई ज्यादा सोचते नहीं। खिलाड़ी तबीयत के है। यान की तरह चुटकी में धरती छोड़ देते है। कितने मस्त है कप्तान भाई।

इस घटना से पिता के व्यक्तित्व का ममताल पहलू तो प्रकट होता ही है, वे यह भी सिद्ध कर देते है कि वे अपने बच्चों की भावनाओं का पूरा सम्मान करते है और जहां तक सम्भव हो उन्हें अपनी तरह जीने की छूट देते है। जब तक वे हैं तब तक अपनी जिम्मेदारियां वे स्वयं वहन करना चाहते है। वे स्वयं जीवन की आधुनिक सुविधाओं का प्रयोग नहीं करते पर बच्चों को किसी सुविधा भागने के लिए मना नहीं करते। इसलिए पुत्रों के मनमें उनके प्रति न उपेक्षा का भाव आता है न घृणा का। वे पिता की परिवार में उपस्थिति को पूरी तन्मयता से महसूस करते है। सम्बन्धों की यही विचित्रता इस कहानी का मूल कथ्य है।

19.3.1 पिता कहानी का कथ्य

ज्ञानरंजन की अन्य कहानियाँ की तरह "पिता" कहानी का कथानक भी बहुत क्षीण है। वस्तुतः ज्ञानरंजन अपनी कहानियों में घटनाओं के घटाटोप को उतना महत्व नहीं देते जितना पात्रों की मनःस्थितियों को देते है। ऐसा लगता है जैसे पात्रों की स्मृतियों को वे अपनी कहानियों में जीते है। उनके लिए घटनाओं शेष मनुष्य की मनःस्थितियाँ अधिक महत्वपूर्ण है। "पिता" कहानी में भी वे घटनाओं घात-संघात के स्थान पर पात्रों की मनःस्थितियों का ही चित्रण करते है। कहानी में एक पिता है जो अपनी मान्यताओं को किसी कीमत पर त्यागने को तैयार नहीं है। नयी जीवन सुविधाओं के उपयोग में लाना उन्हें ठीक नहीं लगता। वे अपने ढर्रे की जिन्दगी जीते है। गर्मी में पंखे का प्रयोग नहीं करते, खुले में नंगी चारपाई पर सोना उन्हें मंजूर है। वे बाथरूम में नही नहा सकते फिर शावर का प्रयोग तो करेंगे ही कैसे। वे खुले में नहाते है। वाश बेसिन के बजाय बाहर खुले में कुल्ला दांतुन करते है। पुत्र का उनकी जीवनचर्या से खींझ होती है क्योंकि वेसी नयी जीवन पद्धति को पसंद करता है। पिता परम्परा के प्रतीक है जबकि पुत्र आधुनिकता का। दोनों के बीच एक सा युद्ध चलता रहता है। कहता कोई किसी से कुछ नहीं पर पुत्र महसूस करता है कि पिता का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली है जिससे टकराना कोई सरल कार्य नहीं है। एक खींझ है जो पुत्र के मन में बसी रहती हे। पर पिता के प्रति उसके मन में न उपेक्षा का भाव जाता है न घृणा का। इसका कारण यह भी है कि पिता उनकी जीवनचर्या में कोई हस्तक्षेप नहीं करते। इसलिए इस कहानी में वर्णित पिता-पुत्र या पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच पनप रहे सम्बन्ध किसी कटुता में परिवर्तित नहीं होते। पुत्र की खींझ और पिता का शांतिपूर्वक अपनी इच्छानुसार जीते जाना जैसे कोई टकराहट पैदा नहीं करते। इसलिए लेखक ने पिता के चरित्र को अद्भुत और प्रभावशाली बताया है। कथानक में न घटनाओं का संघर्ष है न पात्रों की टकराहट। इस दृष्टि से यह कहानी जैसे रिपोर्ताज के रूप में लिखी गयी है। कथानक निर्वाह के विभिन्न सौपानों को इस कहानी में खोजने का प्रयास बेमानी है। यह इस कहानी की विशेषता है।

19.3.2 पिता कहानी का घटनाक्रम

जैसा कि पहले कहा गया है इस कहानी में घटनाओं का उतार-चढ़ाव या घटनाओं को किसी तरह का तनावपूर्ण संघटन नहीं है। कहानी जैसे एक परिवार में पिता, जो पुरानी या परम्परावादी पीढ़ी के प्रतीक है और पुत्र जो आधुनिक मानसिकता का प्रतीक है, के

बीच पनपे तनाव को मनःस्थितियों के माध्यम से व्यक्त करती है। कहानी में कहीं भी पिता-पुत्र के बीच संघर्ष की स्थित पैदा नहीं होती। पुत्र के सारे प्रयत्नों के बावजूद पिता अपने जीने के तरीके को नहीं छोड़ते तो पुत्र उन पर खीझ ही सकता है। उनका मुखर विरोध या उनकी उपेक्षा वह नहीं कर पाता। इसका कारण पिता का व्यक्तित्व भी है क्योंकि पिता कहीं भी पुत्र को अपनी तरह जीने का आग्रह नहीं करते। जैसे उन्होंने अपना जीने का तरीका बनाया है, उसी तरह वे अपने पुत्रों को अपनी तरह जीने की स्वतंत्रता देते है। पिता के चरित्र का उदात्त का अहसास तब होता है जब फौजी पुत्र द्वारा बहन के लिए पचास रूपये प्रतिमाह भेजने का क्रम दो वर्ष तक जारी रहता है। दो वर्ष बाद जब पुत्र वापस आता है तो पिता उसे एक पास बुक देते है जिसमें उसके बारह सौ रूपये जमा है। पिता ने पुत्र की भावना का निराद नहीं किया पर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को भी अहसान के नीचे दबने नहीं दिया। बहन की पूरी जिम्मेदारी उनकी अपनी थी जिसे उन्होंने वहन किया। वे बेटे के रूपयों का उपयोग कर सकते थे। पर जब जरूरत ही नहीं थी तो क्यों करते। यह उनकी शुद्ध व्यावहारिक बुद्धि का नतीजा हे जिसमें पुत्र के प्रति न अवज्ञा का भाव है न उपेक्षा का। यही पिता के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी ताकत है। इस ताकत के समक्ष उनके पुत्र नत शिर है। इसलिए इस कहानी की समीक्षा घटनाक्रम की दृष्टि से नहीं मनःस्थितियों क संघात के कौशल से की जायेगी।

19.4 पिता कहानी की पात्र योजना

पिता कहानी में दो ही पात्र है जिनका भी आमना-सामना लगभग नहीं होता है। पुत्र के लिए पिता की परम्परागत उपस्थिति त्रास दायक है। वे किसी भी स्थिति में अपनी जीवनशैली बदलना नहीं चाहते, बदलते भी नहीं,। पुत्र की खींझ का यही कारण है। दोनों पीढ़ियों के बीच यहीं अंतर तनाव की स्थिति बनाये रखता है। पर पुत्र पिता का विरोध भी नहीं कर सकता। इसका कारण पिता का अपराजेय व्यक्तित्व है। पिता परम्परा के प्रतीक है किन्तु वे आधुनिकता के प्रतीक पत्र के लिए एक चुनौती है जिससे टकराने की हिम्मत पुत्र में नहीं है इसलिए वह न पिता का मुखर विरोध कर पाता है न उनसे घृणा कर पता है न पिता को अस्वीकार कर पाता है। पुत्र सोचता है पिता अद्भुत और विचित्र है इस सीमा तक कि "पिता एक बुलंद भीमकाय दरवाजे की तरह खड़े है, जिससे टकरा-टकराकर हम सब निहायत पिद्दी और दयनीय होते जा रहे है।"

इस कहानी में पिता पुरानी पीढ़ी या परम्परा के प्रतीक है किन्तु ऐसी जड़ परम्परा के नहीं जो नयी पीढ़ी को कोई छूट नहीं देती। पिता का अनुशासन उनके खुद के लिए है शायद इसीलिए पुत्र का अधिक खींझ होती है। तनाव पिता को नहीं पुत्र को है और उसका तनाव बार-बार उसके व्यवहार में प्रकट होता हे। उसकी सारी खींझ का कारण उसके पिता का जिद्दी व्यवहार है जिसे न तो वह रोक सकता है न जिसे वह सहन ही कर पाता है। पर इन चरित्रों की सबसे बड़ी खूबी यह है कि परस्पर विरोध लगते हुए भी कहीं न कहीं गहरायी और आत्मीयता के साथ जुड़े हुए है। ज्ञानरंजन ने इस कहानी में पिता की एक नयी छवि गढ़ने का प्रयास किया है जो उनसे पूर्व किसी कहानी या उपन्यास में नहीं दिखी।

19.5 पिता कहानी में समाज

पिता कहानी में हमारे समक्ष जो समाज प्रकट होता है, वह मध्यवर्गीय समाज है। वैसे ज्ञानरंजन इसी वर्ग की कहानियाँ लिखने वाले सिद्धहस्त रचनाकार है। पिता कहानी में भी जिस परिवार का चित्रण हुआ है वह मध्यवर्ग का परिवार है। हमारे जीवन में मध्यवर्ग ही परिवर्तन के तथा परम्परा और आधुनिकता के सारे द्वन्द्वों को झेलता है। इस कहानी के परिवार में भी यही द्वन्द्व हे। पिता परम्परा के प्रतीक है जबकि पुत्र आधुनिकता के। पुत्र अपने घर में आधुनिक जीवन की सारी सुख-सुविधाएँ जुटाते हैं - गर्मी से बचने दे लिए पंखें है, नहाने के लिए शाव के साथ बाथरूम है, आधुनिक फैशन के कपड़े है तथा औपचारिक जिन्दगी के सारे उपादान है। पुत्र को पिता का बाहर सोना, बाहर बैठकर नहाना, बाहर खुले में कुल्ला, दांतुन करना अच्छा नहीं लगता जबकि पिता इन्हीं चीजों से चिपके है। पुत्र चाहता है कि पिता अच्छे सिले कपड़े पहनें पर पिता को यह ठीक नहीं लगता। वे अपनी जिद के अनुसार जीते है। डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव ने ठीक ही लिखा है:-

"ज्ञानरंजन की कई कहानियाँ घर, परिवार, पिता, भाई-बहिन अर्थात् पारिवारिक सम्बन्धों के बीच घटित होती है और इनके भी प्राय: सम्बन्धों का परिस्थितियों को इतिहास का बीतना ही लक्ष्य किया जाता है।"

कहानी में अभिव्यक्त मध्यवर्गीय द्वन्द्व को पिता कहानी के इस अंश में समझा जा सकता है:-

"आज तक किसी ने पिता को वाश बेसिन में मुंह हाथ धोते नहीं देखा। बाहर जाकर बगिया वाले नल पर ही कुल्ला-दांतुन करते है। दादा भाई ने अपनी पहली तनख्वाह से गुसलखाने में बड़े उत्साह के साथ एक खूबसूरत शावर लगवाया, लेकिन पिता को अर्से से हम सब आंगन में धोती को लंगोट की तरह बांधकर तेल चुपड़े बदन पर बाल्टी-बाल्टी पानी डालते देखते आ रहे है। खुले में स्नान करेंगे, जनेऊ से छाती और पीठ का मैल काटेंगे। शुरू में दादा भाई ने सोचा, पिता उसके द्वारा शावर लगवाने से बहुत खुश होंगे और उन्हें नई चीज का उत्साह होगा। पिता ने जब कोई उत्साह प्रकट न किया, तो दादा भाई मन ही मन काफी निराश हो गए। एक-दो बार उन्होंने हिम्मत करके कहा भी, "आप अन्दर आराम से क्यों नहीं नहाते?" तब भी पिता आसानी से उसे टाल गए।"

19.6 पिता कहानी का शिल्प विधान

19.6.1 पिता कहानी की प्रस्तुति

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, ज्ञानरंजन अपनी कहानियों में घटनाओं के स्थान पर पात्रों की मनःस्थितियों तथा जीवन की परिस्थिति को पुस्तत करते है। पिता कहानी की आलोचना कहानी के परम्परागत तत्वों के आधार पर नहीं की जा सकती क्योंकि इस कहानी में न कथानक का विकास है न घटनाओं की आवृत्ति। संवाद योजना नगण्य है तथा कथावस्तु अत्यंत क्षीण है। अधिकांश कहानी लेखक ने स्वयं ही कहीं है। इस कथन

में विवरण और ब्योरे बड़ी सूक्ष्मता से ज्ञानरंजन ने रखे है। जैसे भीषण गर्मी में पिता का यह चित्र-

"सड़की की बत्ती छाती पर है। गर्मियों में यह बेहद अखर जाता है। पिता ने कई बार करवट बदली। फिर शायद चैन की उम्मीद में पाटी पर बैठे पंखा झलने लगे है। पंखे की झण्डी से पीठ का वह हिस्सा खुजाते है जहां हाथ की उंगलियां दिक्कत से पहुंचती है। आकाश और दरख्तों की तरफ देखते है। रिलीफ पाने की किसी बहुत हल्की उम्मीद में शिकायत उगलते है - "बड़ी भयंकर गर्मी है, एक पत्ता भी नहीं डोलता।" उनका यह वाक्य, जो नितान्त व्यर्थ है, अभी-अभी बीते क्षण में डूब गया। गर्मी बरकरार है और रहेगी, क्योंकि यह जाड़े-बरसात का मौसम नहीं है। पिता उठकर घूमने लगते है। एक या दो बार घर का चक्कर चौकीदारों की तरह 'हो ' करते हुए लगाते है, ताकि कोई सेंध-वेंध न लग सके। लौटकर थके स्वर में 'हे ईश्वर' कहते हुए उंगली से माथे का पसीना काटकर जमीन पर चुबाने लगते है।"

पूरी कहानी इसी तरह के रिवाजों से भरी पड़ी है। इसी तरह गर्मी और पिता के बीच चल रहे व्यवहार का यह चित्र है-

"पिता ने अपना बिस्तर गोल मोड़कर खाट के एक सिरे पर कर यिला है और वह सुराही से प्याले में पानी ले-लेकर अपनी खटिया की बाध तर कर रहे है। सुराही से खाट तक ओर खाट से सुराही तक बार-बार आते-जाते है। बहुत बार ऐसा करने पर खट का बाध तर हुआ है। इसके बाद उन्होंने पानी पिया और पुन: एक बड़ी आवाजदार जम्हाई के साथ लिपटे हुए बिस्तरे का सिरहाना बना निखरी खटिया पर लेट गए। तड़का होने में पता नहीं कितनी देर थी। थोड़ी देर बाद पंखा जमीन पर गिराकर उनका दायां हाथ खटिया की पाटी से झलने लगा।

इसमें संदेह नहीं कि यह विवरणात्मकता बहुत चित्रात्मकता लिए है। पिता कहानी कहीं रियोतजि लगती है तो कहीं आत्मलाभ। पर इसका प्रस्तुतीकरण बहुत सहज और निर्बाध है। पाठक वर्णित स्थितियों का आनन्द लेता चलता है। सारी विवरणात्मकता के बावजूद पाठक कहीं भी कहानी से ऊबता नहीं है।

अपनी कहानी रचना के विषय में ज्ञानरंजन स्वयं स्वीकार करते है:-

"कहानी रचना बहुत कठिन हो गई है और अपने दयनीय, अन्यायपूर्ण और व्यंग्यात्मक जीवन से असंयुक्त होकर कहानी निर्मित करना हमारे लिये सम्भव नहीं रहा। सुविधाओं अथवा 'इस्टैब्लिशमेन्ट' को स्वीकार करके ईमानदार और सच्चा लेखन लम्बे समय तक कर सकना काफी कठिन है।" पता नहीं यह कठिनाई 'नयी कहानी' केकितने कहानीकारों को महसूस हो रही थी लेकिन उसके प्रतिष्ठित स्तम्भ बेशक 'इस्टैब्लिशमेन्ट के भीतर ही अपना 'सच्च लेखन कर रहे थे और उनके वर्तमान के लिये जिनदगी की सारी गलाजतें- जीवन और रचना दोनों क्षेत्रों में - बड़ी मुफीद साबित हो रही थी जबकि ज्ञानरंजन महसूस करते थे कि "आज हमारा वर्तमान बीते हुए अत्याचारों के भोग से है। हमारी असंख्य तकलीफें पुराने जमाने की हजारों गफलतों का दुष्परिणाम है।" इसलिए उन्हें लगता हैं कि "नये साहित्यकार के लिये साहित्य की सारी रचनात्मक प्रक्रिया जीवन का मृत्योन्मुख भोग है और रचना का पुरस्कार हमें महज क्षय में मिलता है।" (नई

कहानियां, दिसम्बर 1764) इसके बावजूद इसमें 'जीवन के प्रति अपने दाय के निर्वाह का सुख' मानते हुए वे रचना और अपनी जिन्दगी के बीच एक स्पष्ट सम्बन्ध भावना का निर्माण करते है जिसमें रचना के प्रति प्रतिबद्धता का नारा लगाते हुए निजी जिन्दगी के लिये सुविधायें और साधन जुटाने की मंशा पूरी करने वाले तथाकथित प्रतिष्ठित रचनाकारों का घृणित छद्म नहीं है : "मेरे लिये साहित्य जिन्दगी से बड़ा प्रश्न नहीं है। साहित्य के प्रति लोभ होना आदमी का बेईमान और समाज के प्रति ऐण्टी बना सकता है, जो मुझे प्रिय नहीं है।" ('नई कहानियां'-नई कहानी विशेषांक-2, फरवरी 1765) कथा-रचना का एक स्पष्ट कन्सेप्ट ज्ञानरंजन के पास है : "कहानी न तो विण्डोड्रेसिंग है और न राजदूतों द्वारा विदेशों में देश का सम्मान बनाने वाला झूठा वक्तव्य, इसलिये कहानी में स्वस्थ जिन्दगी का ही चित्रण आज की परिस्थितियो में असम्भव है। चूंकि जिन्दगी वैसी नहीं रही है। फिलहाल असंख्य व्यंग्यों में हमारा जीवन है। नया कहानीकार अपनी निराशा से ऊपर आकर इसे स्वीकार करता है। हमें पराजय की परिस्थितियों और समस्त भ्रष्ट मुखाकृतियों को पहचानना होगा, जो बीमार है और जिन पर छद्म का गहरा मेक-अप है।" (नई कहानियाँ, दिसम्बर 1864)

इन विवरणों का तात्पर्य है कि ज्ञानरंजन समय के बदलाव के साथ अपनी कहानी के रचना विधान को बदल रहे थे।

19.6.2 पिता कहानी की भाषा

ज्ञानरंजन की कई कहानियों की भाषा पर अश्लीलता का आरोप लगा था। इसमें संदेह नहीं कि उसकी कई कहानियाँ अश्लील और भद्दे शब्दों का प्रयोग हुआ था। किन्तु 'पिता' कहानी की अपवाद है - इसमें एक शब्द भी ऐसा नहीं जिससे पाठ को किसी प्रकार का धक्का लगता है। ज्ञानरंजन भाषा के प्रयोग के प्रतिबद्ध करता है-

"कहानीकार की विशेषता यही है कि वह इनका भोक्ता होने को प्रमाणित करता हुआ इनकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से इतना दूर हो जाता है कि एक प्रकार का भाषिक निर्विकारत्व प्रतीत होता है। कहानी लिखने की यह आसक्तिरहित शैली इसके पहले के अनेक कहानीकारों ने नहीं मिलता है। काव्य में इसके एकमात्र उदाहरण रघुवीर सहाय है जिनके कविताओं की संरचना और ज्ञानरंजन की कहानियों की संरचना में विशेष रूप से भाषा की दृष्टि से केवल 'होने' का अहसास मिलता है। नितांत भावुक और वेदना की स्थितियों में भी 'रिपोर्ट' करने की यह शैली मेरे विचार से ज्ञानरंजन में और केवल ज्ञानरंजन की कुछ कहानियों में पाई जाती है। दृश्यों के प्रस्तुतीकरण के साथ 'कमेन्टरी' और वर्णन के साथ 'रिमार्क' ने कहानी को निरंतर अर्थगर्भ बनाया है। इस शैली के द्वारा उसकी एकरसता और तथ्यता को चटखाकर वे प्रकारान्तर से कहानियों की व्यक्तिमयता और पारिवारिकता को नया अर्थ देते है।

पिता कहानी की भाषा में भी यह व्यक्ति ममता और परिवादीपन मौजूद है। निम्नलिखित अंश में यह परिवादीपन देखते ही बनता है:-

"मुहल्ले में हम लोगों का सम्मान है, चार भले लोग आया-जाया करते है, आपको अन्दर सोना चाहिए, ढ़ंग के कपड़े पहनने चाहिए और चौकीदारों की तरह रात को पहरा देना

बहुत ही भद्दा लगता है लेकिन पिता की अड़ में कमी कोई झोल नहीं आता। उलटा-सीधा, पता नहीं कहां किस दर्जी से कुरता-कमीज सिलवा लेते है। टेढ़ी जेब, सदरी के बटन ऊपर-नीचे लगा, सभा-सोसायटी में चले जायेंगे। घर-भर को बुरा लगता है।

लोगों के बोलने पर पिता कह देते है, "आप लोग जाइए न भाई, कॉफी हाउस में बैठिए, झूठी वैनिटी के लिए बेयरा को टिप दीजिए, रहमान के यहां डेढ़ रूपये वाला बाल कटाइए, मुझे क्यों घसीटते है!" लोगों का बोलना चुटकी भर में धरा रह जाता है। पिता वैसे तो चुप रहते है लेकिन जब बात-बहस में उन्हें खींचा जाता है, तो काफी करारी और हिंसात्मक बात कह जाते है। उलटे, उन्हें घेरने वाले हम भाइ-बहन अपराधी बन जाते है। कमरे से पहले एक भाई खिसकेगा, फिर दूसरा, फिर बहन और फिर तीसरा, चुपचाप सब खीझें-हारे खिसकते रहेंगे। अन्दर फिर मां जायेगी और पिता, विजयी पिता कमरे में गीत पढ़ने लगेंगे या झोला लेकर बाजार सौदा लेने चले जायेंगे।

इतना ही नहीं ज्ञानरंजन छोटे-छोटे वाक्यों से जिस वार्तालाप की सृष्टि करते है वह बहुत सारे अर्थ एक साथ ध्वनित करता है। यह चित्र देखिए-

"पिता सो नहीं गए है, अथवा कुछ सोकर पुन: जगे हुए है। पता नहीं अभी नहीं उन्होंने "हे राम, तू ही सहारा है," कहकर जम्हाई लीहै। ऐसा उन्होंने कोई दबकर नहीं किया। रात के लिहाज के काफी शोध उठाते कहा है। शायद उन्हें इतमीनान है कि घर में सभी लोग निश्चित रूप से सो रहे है।

19.6.3 पिता कहानी का शिल्प-वैशिष्ट्य

पिता कहानी एकालाप के रूप में लिखी गयी है। 'वह' नामक पात्र, जो पिता या पुत्र है, पूरी कहानी जैसे कहता है। शिल्प की खूबी यह है कि पिता उपस्थित होते हुए भी अनुपस्थित है क्योंकि उन पर पुत्र कि किसी बात का असर नहीं होता। पूरी कहानी विवरणात्मक है जिसमें पिता की जिद के कारण परिवार में उपजा खींझ के बड़े प्रभावी चित्र है। कहानी में नाटकीयता नहीं थे पर पाठक उससे ऊबता नहीं। 'वह' की खींझ और पिता का यथास्थितिपन जैसे आमने-सामने है। पिता का न बदल पाने वाला रूप कहीं भी ऊबाता नहीं बल्कि उनके चरित्र को एक गरिमा प्रदान करता है। यहां दो पीढ़ियों के बीच का संघर्ष उस.....नहीं होता कि नयी पीढ़ी विजयी और पुरानी पीढ़ी पराजित आने लगे। ज्ञानरंजन ने दोनों पीढ़ियों के बीच के अन्तर को साधने का कौशल दिखाया है।

'वह' पिता के व्यवहार से परेशान है और उसकी मानसिक परेशानी पूरे वातावरण में छायी दिखती है-

"ने लोकोशेड से उठती इंजनों की शंटिंग ध्वनि, न कांकीट की ग्रेंडट्रंक पर से होकर आती धूमनगंज की ओर इक्के-दुक्के लौटते इक्कों के घोड़ों की टापें, न झगड़ते कुत्तों की भोंक-भोंक। बस कहीं उल्लू एकगति, एकवजन और एक वीभत्सता में बोल रहा है। रात्रि में शहर का आभास कुछ पलों के लिए मर-सा गया है। उसको उम्मीद हुई कि किसी भी समय दूर या पास से कोई आवाज अकस्मात् उठ आयेगी, घड़ी टनटना जाएगी या किसी दौड़ती हुई ट्रक का तेज लम्बा हार्न बज उठेगा और शहर का मरा हुआ आभास पुन: जीवित हो जायेगा। पूरा शहर, कहीं कभी नहीं सोता या मरता। बहुत से, सोते हुए जान

पड़ने वाले भी संक्षिप्त ध्वनियों के साथ या लगभग ध्वनिहीनता के बीच जगे होते है। रात काफी बीच चुकी है और इस समय यह सब (सोचने) सिवाय सोने के कितना निरर्थक है।"

यह वातावरण निर्मित इस कहानी के शिला वैशिष्ट्य है।

19.7 पिता कहानी का उद्देश्य

ज्ञानरंजन की पिता कहानी की समीक्षा परम्परागत मानदण्डों पर नहीं की जा सकती। इसलिए इस कहानी के उद्देश्य को भी परम्परागत ढ़ंग से नही समझा जा सकता। इस कहानी में दो पीढ़ियों का द्वन्द्व है किन्तु ज्ञानरंजन ने उपेन्द्रनाथ अश्क के इस कहानी के उद्देश्य को रेखांकित करते हुए लिखा है-

"यह कहानी पुराने और नये मूल्यों के टकराव की कहानी है। पिता के मूल्य न सिर्फ पुराने है, बल्कि उन्हें उनका मान है और उनमें प्रबल आस्था और उनका गर्व भी है, वेटों के नये मूल्य चकि अभी पूरी तरह बने नहीं, इसलिए जब पिता और बेटों में टकराव होता है, तो पिता, पुराने और एक दिन मिट जाने वाले मूल्यों से चिमटे रहने के बावजूद इक्कीस पड़ते है। जाहिर है कि पिता जिस तरह अपने मूल्यों पर टिके है, लड़के नहीं टिके।"

"जहां तक 'पिता' का सम्बन्ध है, वह ऐसी कहानी है, जिसमें सम्बन्धों की हास्यास्पदता को उजागर करने की कोशिश (यदि लेखक ने वह की है तो) सफल नहीं हुई। यह भी हो सकता है कि चेतन अथवा अचेतन रूप से लेखक ने वह कोशिश की ही नहीं और पिता का चरित्र स्थितियों की तमाम हास्यास्पदता के बावजूद न हास्यास्पद हुआ है, न उपेक्षाजनक। वह सटीक और सशक्त उतरा है।"

मनोरंजन को इस बात की दाद देनी चाहिए कि पुरानी पीढ़ी के एक प्रति निधि पिता का चित्रण उसने निहायत सशक्त और यर्थाथवादी ढ़ंग से किया है और उसकी कहानी का पिता अत्यन्त आथेण्टिक और सच्चा उतरा है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'पिता' कहानी में ज्ञानरंजन दो पीढ़ियों का संघर्ष तो चिचित करते है किन्तु परस्पर घृणा या उपेक्षा का भाव नही उभरने देते।

19.8 पिता कहानी के व्याख्या पद

1 आज बेहद गर्मी है। रास्ते-भर उसे जितने लोग मिले, उन सबने उससे गरम और बेचैन कर देने वाले मौसम की ही बात की। कपड़ों की फजीहत हो गइ। बदहवासी, चिपचिपाहट और थकान है। अभी जब सवारी गाड़ी शोध करती हुई गुजरी, तो उसे ऐसा नहीं लगा कि नींद लगते-लगते टूट गई हो जैसा जाड़ों में प्राय: लगता है। बल्कि यों लगा कि अब अगर सोने की चेष्टा शुरू नहीं की गई तो सचमुच देर हो जायेगी। उसने जम्हाई ली पंखे की हवा बहुत गरम थी और वह पुराना होने की वजह से चिढ़ाती-सी आवाज भी कर रहा था। उसको लगा, दूसरे कमरों में भी लोग शायद उसकी ही तरह जम्हाइयां ले रहें होंगे। लेकिन दूसरे कमरों के पंखे पुराने नहीं है। उसने सोचना बन्द करके अन्य कमरों की आहट लेनी चाही।

2 वह जब घूम-फिरकर लौट रहा था तो पिता अपना बिस्तरा बाहर लगाकर बैठे थे। कनखी से उसने उन्हें अपनी गंजी से पीठ का पसीना रगड़ते हुए देखा और बचता हुआ वह घर के अन्दर दाखिल हो गया। उसे लगा कि पिता को गर्मी की वजह से नींद नहीं आ रही है। लेकिन उसे इस स्थिति से रोष हुआ। सब लोग, पिता से अन्दर पंखे के नीचे सोने के लिए कहा करते है, पर वह जरा भी नहीं सुनते। हमें क्या, भोगें कष्ट!

3 पिता अद्भुत और विचित्र है, वह सोचते हुए उठा। कमरे में घूमने या सिगरेट पी सकने की सुविधा नहीं थी, अन्यथा वह वैसा ही करता। उसने सो जाने की इच्छा की और अपने को असहाय पाया। शायद नींद नहीं आ सकेगी, यह खयाल उसे घबराने वाला लगा। पिता अद्भुत और विचित्र है, यह बात वह भूल नहीं रहा था। पिछले जाड़ों में वह अपने लोभ को कुचलकर बमुश्किल एक कोट का बेहतरीन कपड़ा पिता के लिए लाया। पहले वह उसे लेने को तैयार नहीं हुए, लेकिन मां के काफी घुड़कने-फुड़कने से राजी हो गए और उसी खुल्दाबाद के किसी लफ्टूं मुल्ला दरजी के यहां सिलाने चल दिए। सुधीर ने कहा, 'कपड़ा कीमती है, चलिए एक अच्छी जगह में आपका नाप दिलवा दूं। वह ठीक सिएगा, मेरा परिचित भी है।"

4 बेपनाह गर्मी पड़ रही है, भयानक उमस है। सब लोक अपने-अपने कमरों में पंखों के नीचे सो रहे है, जो नया पैडस्टल फैन आया है, वह दादी के लिए आंगन में लगा दिया है, लेकिन स्वयं पिता बाहर बगीचे में खुर्री चारपाई पर पड़े है।

5 शायद पिता औंध गए है। करवट बदलने से उत्पन्न होने वाली खाट की चरमराहट, आम टटोलते समय सूखी-अधसूखी पत्तियों के कुचलने की आवाज, लाठी की पटक, मकान के फेरे के वक्त की खांस-खंखार, कुत्ते-बिल्लियों को हड़काना-कुछ सुन नहीं पड़ रहा है। इस विचार से कि पिता सो गए होंगे, उसे परमशान्ति मिली और लगा कि अब वह भी सो सकेगा।

6 चौक से आते वक्त चार आने की जगह तीन आने और तीन आने में तैयार होने पर, दो आने में तेयार हो जाने वाले रिक्शे के लिए पिता घण्टे-घण्टे खड़े रहेंगे। धीरे-धीरे सबके लिए सुविधाएँ जुटाते रहेंगे, लेकिन खुद उसमें नहीं या कम से कम शामिल होंगे। पहले लोग उनकी काफी चिरौरी किया करते थे, अब लोग हार गए है। जानने लगे है कि पिता के आगे किसी की चलेगी नहीं।

7 वह विषादग्रस्त हुआ और अनुभव करने लगा, हमारे समाज में बड़े-बूढ़े लोग जैसे बहू-बेटियों के निजी जीवन को स्वच्छन्द रहने देने के लिए अपना अधिकांश समय बाहर व्यतीत किया करते है, क्या पिता ने भी वैसा ही करना तो नहीं शुरू कर दिया है? उसे पिता के बूढ़ेपन का खयाल करके सिहरन हुई। फिर उसने दृढ़ता से सोचा, पिता अभी बूढ़े नहीं हुए है। उन्हें प्रतिक्षण हमारे साथ-साथ जीवित रहना चाहिए, भरसक। पुरानी जीवन-व्यवस्था कितनी कठोर थी, उसके मस्तिष्क में एक भिंचाव आ गया। विषाद सर्वोपरि था।

19.9 सारांश

'पिता' ज्ञानरंजन की एक प्रतिनिधि कहानी है जिसमें पिता पुरानी पीढ़ी के प्रतीक है और पुत्र 'वह' नयी पीढ़ी का। पिता अपनी जीवनशैली नहीं बदलते जबकि 'वह' उन्हें बदलना

चाहते है। 'वह' चाहता है कि पिता आधुनिक सुख-सुविधाओं का उपयोग करें और आराम से जीवन बितायें पर पिता आधुनिक जीवन की सुविधाओं से निरपेक्ष है। वे निर्विकार भाव से अपनी तरह जी रहे है। वे बदलने का प्रयास कतई नहीं करते पर पिता का दृढ़ चरित्र नयी पीढ़ी के लिए चुनौती है पर ज्ञानरंजन ने यहां दोनों पीढ़ियों के बीच न घृणा का सृजन किया है न उपेक्षा भाव का। यही इस कहानी का सबल पक्ष है।

19.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 ज्ञानरंजन की पिता कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
2 'पिता' कहानी के पिता का चरित्र चित्रण कीजिए।
3 सिद्ध कीजिए कि ज्ञानरंजन की 'पिता' कहानी में दो पीढ़ियों के अंतर का संघर्ष है।
4 'पिता' कहानी के रचना विधान पर निबंध लिखिए।
5 'पिता' कहानी की मूल संवेदना स्पष्ट कीजिए।

19.11 संदर्भ ग्रंथ

1 ज्ञानरंजन; फैंस के इधर-उधर (कहानी संग्रह)
2 ज्ञानरंजन; सपना नहीं (कहानी संग्रह)
3 ज्ञानरंजन; मेरी प्रिय कहानियाँ (कहानी संग्रह)
4 डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र (सम्पादक); कहानीकार ज्ञानरंजन, नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, 1878
5 डॉ. नरेन्द्र मोहन; समकालीन कहानी की पहचान, प्रवीण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1978
6 डॉ. नामवर सिंह; कहानी : नयी कहानी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966
7 डॉ. देवीशंकर अवस्थी (सम्पादक); नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1973
8 डॉ. गंगाप्रसाद विमल; समकालीन कहानी का रचना विधान, प्रकाशक-सुषमा कार्यालय, दिल्ली, 1967
9 मधुरेश; आज की हिन्दी कहानी : विचार और प्रतिक्रिया, प्रकाशक-सरस्वती प्रकाशन मंदिर, आगरा, 1971
10 राजेन्द्र यादव; कहानी स्वरूप और संवेदना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1968
11 ज्ञानरंजन; मेरी प्रिय कहानियां, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1979

इकाई-20 राजेन्द्र यादव की "टूटना" संवेदना व शिल्प

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 रचनाकार राजेन्द्र यादव का साहित्यिक परिचय

20.3 रचना का सारांश

20.4 'टूटना' कहानी का संवेदनात्मक परिचय

20.4.1 किशोर और उसकी संवेदना

20.4.2 लीना और उसकी संवेदना

20.5 'टूटना' कहानी का शिल्पगत विवेचन

20.5.1 यथार्थ और शिल्प

20.5.2 शैली

20.5.3 भाषा

20.5.4 संवाद

20.6 व्याख्या

20.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

20.8 संदर्भ ग्रन्थ

20.0 उद्देश्य

आधार पाठ्यक्रम स्नातकोत्तर (एम.ए.) उत्तरार्द्ध हिन्दी की यह 22 वीं इकाई है।

इस कहानी के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी -

- 'टूटना' कहानी के रचनाकार से परिचित हो सकेंगे।
- 'टूटना' कहानी की मूल संवेदना को समझ सकेंगे।
- 'टूटना' कहानी के शिल्प को समझ सकेंगे।
- 'टूटना' कहानी में आये विशेष स्थल (गद्यांश) की सप्रसंग व्याख्या कैसे होती, जानकारी मिल सकेगी।

20.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत कहानी राजेन्द्र यादव के छठवें कहानी संग्रह 'टूटना' से ली गई है। कहानीकारों में राजेन्द्र यादव नई कहानी आन्दोलन की त्रयी (मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव) में से प्रमुख कथाकार के नाम से जाने जाते हैं। राजेन्द्र यादव प्रगतिशील कहानी परम्परा में प्रेमचंद, जैनेन्द्र, अज्ञेय और रांगेय राघव के बाद महत्वपूर्ण नाम है। उपन्यास, कहानी लिखने के अलावा हंस के सम्पादकीय के नाते हिन्दी साहित्यकाश में लंबे समय से चमकते ध्रुव तारे की भांति हैं।

'टूटना' राजेन्द्र यादव की नई कहानी आन्दोलन के दौर में लिखी चर्चित व प्रसिद्ध कहानी है। कहानी में दो प्रमुख पात्र हैं। कथा वाचक, बिजारिया कम्पनी का जनरल मैनेजर है। दैनिक पत्रों में उसे एक दिन एक विशेष पत्र मिलता है। आठ वर्ष पूर्व घर छोड़ चुकी

पत्नी ने लिखा है। वह पत्र को लेकर चिंतनशील है कि आखिर इतने वर्षों बाद उसने पत्र क्योंकि लिखा? स्मृति पद्धति मे कहानी खुलती है। किशोर अपनी शिक्षा ट्यूशन करके ही अर्जित कर सकता है, इसलिए वह ट्यूशन करता है। ट्यूशन के दौरान ही उसका सम्पर्क लीना से होता है। शीघ्र ही दोनों कोर्ट में शादी कर लेते हैं। किशोर और लीना दोनों की वैचारिक टकराहट इतनी बढ़ जाती है कि लीना घर छोड़ देती है। किशोर मेहनत करता हुआ कम्पनी में जनरल मैनेजर हो जाता है और ओर अधिक ऊँचाई हासिल करने के लिए वह विदेशी कम्पनी के प्रस्ताव पर विचार कर रहा है। किशोर अंततः फैसला करता है कि रात-दिन काम करना अब संभव नहीं है और यह सब करे भी किस के लिए। वह और नया काम करने से हाथ खींच लेता है। इसी कथन के साथ कहानी का अंत होता है।

20.2 रचनाकार राजेन्द्र यादव का साहित्यिक परिचय

कथाकार राजेन्द्र यादव वर्तमान दौर में काफी प्रसिद्ध प्राप्त नाम है। नई कहानी आन्दोलन के रचनाकारों में इनका नाम आता है। कुछ समय बाद नई कहानी आन्दोलन जिन तीन नामों में सिमटकर रह जाती है, उनमें राजेन्द्र यादव के अलावा दो नाम है कमलेश्वर और मोहन राकेश। मोहन राकेश काफी समय पहले और कमलेश्वर 2008 में दुनिया छोड़ देते हैं। नई कहानी आन्दोलन में धूम मचाने वाले कथाकार राजेन्द्र यादव ने आज भी साहित्य जगत में अपने नाम की धूम मचा रखी है। पिछले पच्चीस वर्षों से साहित्य में मुख पत्र "हंस" के माध्यम से नेताओं, धर्म के ठेकेदारों और मठाधीशों की जमकर खबर लेते हैं। प्रेमचंद का हंस राजेन्द्र यादव के हाथ मे आकर काफी चर्चित हुआ है। वर्तमान समय में चोटी की पाँच साहित्यिक पत्रिकाओं में भी प्रथम है। इस पत्रिका में उदीय मान रचनाकारों को स्थान देकर, साहित्यकारों को खोजते-बनाते और उन्हें प्रसिद्धि दिलाते हैं। अपने दौर की ज्वलंत समस्याओं पर बौद्धिक, वैचारिक और तार्किक बहसे करवाते हैं। भविष्य में होने वाली चर्चित प्रवृत्ति को पहचानकर विचार करते-करवाते हैं। साम्प्रदायिकता, पाखण्ड, प्रपंच और अंधविश्वास जैसे विषयों पर अपनी लेखनी निडर होकर चलाते हैं। आये दिन मिलने वाली धमकियों की बिना परवाह किये अस्सीपार होने पर भी लिखे जा रहे हैं। समाज के हाशिये पर रहे-स्त्री और दलित,जो आदिकाल से दबे-कुचले रहे हैं। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श करके चर्चा में बने रहते हैं। अपनी पत्नी मन्नू भंडारी के साथ नये प्रयोग के साथ 'एक इंच मुस्कान' जैसा अनूठा उपन्यास लिखा। 'टूटना' कहानी स्त्री-पुरूष संबंधों में आ रहे बदलाव की चर्चित कहानी है।

20.3 रचना का सारांश

राजेन्द्र यादव की कहानी 'टूटना' स्त्री-पुरूष के रिश्तों में आ रहे बदलाव की कहानी है। देश की आजादी के साथ देश में आधुनिकीकरण और औद्योगिकीकरण की बयार चलती है। यह दो आधुनिक युवक-युवती की कहानी है। शिक्षा और जवानी के जोश के लीना प्रेम विवाह कोर्ट में करती है। इनका यह रिश्ता शीघ्र ही टूट बिखर जाता है। नायक किशोर बड़ी शिद्दत से स्वीकार करता है कि दोनों ही एक दूसरे के लायक नहीं थे। कथावाचक को अचानक आये पत्र से याद आता है कि लीना और वह आठ साल पहले तक साथ रहे थे। इन दोनों के अलावा दीक्षितत्र, गर्ग रमन का जिक्र कहानी में होता है। जयंत माला,

कन्हैया लाल, दत्ता बाबू, मिसेज गर्ग, मिसेज लाल चंदानी और किशो के भाई-भाभी है। कहानी में औद्योगिक परिवेश होने से कुछ कम्पनियों के नाम भी आते हैं - रोजर्स एण्ड नील, माडर्न रिनोवेटर्स, मैक्फरी बर्टन, क्राउन इंश्योरेंस, लीग ऑ कॉमर्स और बिजारिया इण्डस्ट्रीज जिसमें कहानी नायक मैनेजर है।

कहानी 26 पन्ने की दीर्घ कहानी है। कथा वाचक दैनिक पत्रों में से एक पत्र पढ़ कर स्मृति में चला जाता है। उसे दिन भर रह-रह कर पत्र में लिखा यह वाक्य याद आता है - 'कांट वी फारगेट द पास्ट'। वह दिन भर अपने कार्य में डूबा होने के बावजूद सोचता है कि उसने आखिर इतने वर्ष बाद पत्र क्यों लिखा? किशोर का द्वंद्व बढ़ता जाता है। एक युवती को आठ वर्ष बाद अधेड़ावस्था में देखेगा तो कैसी लगेगी? थकी हारी टूटी प्रौढ़ा का चेहरा उसके सामने घूम जाता है। वह असमंजस में है। हम दोनों एक दूसरे की जिंदगी में दुर्भाग्य बन कर ही आये थे। संयोग-वियोग को याद कर वह पश्चाताप के आँसू बहाता है।

किशोर निम्न वर्ग से आता है पर स्वयं मेहनत कर ट्यूशन के बल पर वह लीना से सम्पर्क साधता है। किशोर की मित्र मंडली से प्रतिक्रिया आती है - "छप्पर फाड़कर देना इसे कहते हैं।" जिसकी जिंदगी ट्यूशन करते फ्री शिप और स्कॉलरशिप के लिए चक्कर लगाते बीती हो वह असिसटेंट कमिश्नर की बेटी का पति बन रहा हो तो लोग कहते हैं कि "हाथी बांध रहे हो तो खिलाओगे क्या?" यही बात अंतिम निष्कर्ष साबित होती है।

किशोर की शादी नाटक के दो अंकों में पूरी होती है - शादी के पहले नायक को मार डालने, लफंगे को कहीं का न छोड़ने, सड़ने के लिए डाल देने का पहला अंक। दूसरा है - लीना भागकर किशोर के घर आती है। कानूनन कोर्ट में पति-पत्नी बनते हैं। पिता के द्वारा किया जाने वाला वैवाहिक आडंबर के स्थान पर कोर्ट विवाह पर बिगड़ना, धमकाना और मसूरी में डबल बैड होटल के इंतजाम के साथ ट्रैन की दो टिकटें किशोर को दी जाती है। दीक्षित द्वारा बंद लिफाफा में बैठकर उनकी जिंदगी में प्रवेश कर जाता है। लीना अपने पिता का घर भले ही छोड़कर आयी हो पर उसे अपने पिता के खिलाफ दो शब्द सुनना भी गवारा नहीं है। वह अपनी इच्छा, ख्वाहिशें किशोर की कम आय में पूरी नहीं कर पाती है, ऊपर से अपने पिता के खिलाफ किशोर का गुस्से में बोलना वह बर्दास्त नहीं करती और घर छोड़कर चली जाती है। किसी कॉलेज में अंग्रेजी की प्राध्यापक हो जाती है और किशोर बिजारिया कम्पनी का जनरल मैनेजर हो जाता है वह सब कुछ भूल चुका होता है जिसे लीना का पत्र सब कुछ याद दिलाता है और पूरी कहानी स्मृति पद्धति से बयान होती है।

20.4 टूटना कहानी का संवेदनात्मक परिचय

आजादी के ठीक बाद दूसरे दशक में हुए औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण के प्रभाव स्वरूप पारिवारिक स्तर पर स्त्री-पुरूष संबंधों में भी संवेदनात्मक परिवर्तन हुए हैं। आजादी के पहले दशक के बाद से लगातार आज तक काफी परिवर्तन हो रहे हैं। वैश्वीकरण से आये सामाजिक-पारिवारिक बदलाव का सीधा प्रभाव विवाह संस्था पर भी देखा गया है। वैवाहिक जीवन में बढ़ते विघटन का परिणाम तलाक है। इसके अलावा

विवाह के समानांतर रूप सामने आये हैं - लिव रिलेशनशिप (सह जीवन) महानगरों में युवक-युवती बिना विवाह किये ही 'सह जीवन' जी रहे हैं। औद्योगिकीकरण सामाजिक व पारिवारिक रिश्तों को प्रभावित करने लगा है। इसके शुरूआती प्रभाव को नई कहानी आन्दोलन के दौर में लिखी कहानिपयों में देखा जा सकता है। राजेन्द्र यादव स्त्री-पुरूष संबंधो के चितेरे कहलाते हैं। 'टूटना' कहानी एकाकीपन के यथार्थ को चित्रित करने वाली यथार्थवादी कहानी है। स्त्री के अहंवादी, उपभोक्तावादी और व्यक्तिवादी होते जाने से स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में हो रहें अलगाव की प्रक्रिया को बेहद संवेदनशीलता से चित्रित किया गया है।

कहानी 'टूटना' की मूल संवेदना है - बदलते परिवेश में, बदलते स्त्री-पुरूष संबंध और संबंधों में आ रहे विघटन से स्त्री-पुरूष में बढ़ती दूरियाँ। कहानी में समाज के आदर्श व आस्थाओ के सामाजिक रूपों में आ रहे विचलन व विघटन की संवेदनीयता के साथ देखा जा सकता है। कहानी की सुरूआत पुराने संबंधों में बची संवेदना से होती है। पाठक उत्सुक हो उठता है, अब क्याहोगा? "पता एक दम सही था।" कथावाचक किशोर अपने आप को आश्वस्त कर रहा है। वह लिफाफे पर लिखे पते को गौरसे देखता है - 'पर्सनल लिखा हुआ है' वह अपने दैनिक कार्य करते हुए याद करता है "कांट वी फारगेट द पास्ट।" उसके अन्दर संवेदना बची हुई है। एक दम मर नही गई है। कंपनी का जनरल मैनेजर हो गया है। उसका मकसद अब धन कमाना ही है पर फिर भी पत्नी के पत्र को पढ़कर उसके बारे में सोच रहा है। उसके लिए जो रहस्य है, वही पाठक के लिए भी है कि पत्नी ने उसे आठ साल बाद पत्र क्यों लिखा? लीना सेंट मैरी गर्ल्स कॉलेज में अंग्रेजी की प्राध्यापक हे। हम किशोर और लीना के माध्यम से कहानी में आये संवेदनशील दृश्य को गहराई से समझ सकते हैं। किशोर की संवेदना के दो रूप हैं - एक वह जब शिक्षा लेते हुए लीना के सम्पर्क मे आता है, प्रेमी युवक जो बाद में लीना का पति बनता है। दूसरा, वह जो बिजारिया कम्पनी का जनरल मैनेजर होते हुए भी उससे बड़ी विदेशी कम्पनी बर्टन इन कारपोरेशन में जाने का आकांक्षी है। दूसरा पक्ष है लीना का।

20.4.1 किशोर और उसकी संवेदना

'टूटना' कहानी की मूल संवेदना को समझने के लिए कहानी के मुख्य पात्र की पृष्ठभूमि समझना आवश्यक है। आर्थिक रूप से कमजोर किशोर को असमय माँ-बाप के चल बसने से, भाई-भाभी पालते हैं और शिक्षा भी वह ट्यूशन के बल पर अर्जित करता है। ग्रामीण परिवेश से होने के कारण किशोर में संवेदनशीलता है। कहानी में आये आर्थिक पहलू भी विचारणीय है। किशोर गरीबी में पल बढ़कर बड़ा होता है तो दूसरी लीना है, जिसने घर में कभी अभाव नहीं देखा। इसके पिता ने यह जानने ही नहीं दिया कि अभाव क्या होते हैं। किशोर के साथ दाम्पत्य जीवन में लीना को अर्थाभाव खटकता है। लीना की अपनी संवेदना आहत होती लगती है। जैसे किशोर का यह सब जान बूझकर कर रहा है और किशोर को लगता है कि लीना अपने अभिजात्य का प्रदर्शन कर उसकी भावनाओं के साथ सरासर मजाक कर रही है। दोनों ही विपरीत ध्रुव के प्राणी लगते हैं। एक जिसने कभी अर्थ की कमी नहीं देखी, दूसरे ने कभी इतना अर्थ नहीं देखा कि इच्छाएँ पूर्ण हो सके।

जिसने कभी यह जाना ही नहीं कि इच्छापूर्ण होना कहते किसे हैं। जिसके माँ-बाप बचपन में चल बसने से भाई-भाभी ने पाला हो। स्वयं की आय के उपाय करते हुए पढ़ा हो उसके लिए साड़ी या क्रोकरी सस्ती खरीदना ही वरीयता होगी। इसके विपरीत लीना वस्तु के स्तर के महत्व देगी रूपये को नहीं। साड़ी का स्तर, देखेगी न कि उसकी कीमत। लीना के माध्यम से पाठक महसूस करता है कि संवेदनाओं पर अर्थ का प्राबल्य है। यहाँ भावना के स्थान पर क्षणिक इच्छाएँ, व्यक्ति का सुख और स्वयं का अहं संतुष्ट होना चाहिए, भले ही पति की संवेदना आहत होती हो तो हो।

किशोर और दीक्षित के संबंध इस कहानी की संवेदनाओं का आधार रहे हैं। लीना के पिता दीक्षित की किशोर की जिंदगी में अहम् भूमिका रही है। किशोर लीना को ट्यूशन पढ़ाने जाता है तो बंगले में दबे पाँव प्रवेश करता है। वह नहीं चाहता कि आते-जाते दीक्षित की निगाह उस पर पड़े। अगर देख ले तो, तो उसका बुरा हाल हो जाता है, "वो क्षण उसके लिए हजार इम्तहानों में बैठने से ज्यादा दुस्सह हो उठते हैं।" (255-टूटना) गरीबी मे जीने वाला किशोर कीड़े-मकोड़े की भांति है। वे किशोर जैसों को इस दुनिया मे जीने का हक ही नहीं देना चाहते। ऐसे किशोर को लीना द्वारा पति चुनना दीक्षित कैसे बर्दास्त कर सकता है। किंतु बिगड़ैल औलाद अपने बाप को मजबूर कर देती है। असहमति के बावजूद हनीमून पर जाने के लिए पाँच हजार रूपये लीना को देता है। इसी लिफाफे के साथ किशोर की जिंदगी में दीक्षित प्रवेश कर जाता है। दीक्षित से आक्रांत किशोर शीध्र ही लीना से मुक्ता हो जाता है लेकिन वह दीक्षित को कभी नहीं भूल पाता। उसकी असली लड़ाई दीक्षित से थी, लीना से नहीं क्योंकि ज्यों ही लीना उसकी जिंदगी से जाती है वह उसे भूल जाता है पर दीक्षित को नहीं भुला पाता। वह दीक्षित को हर वक्त अपने सामने पाता है। जब पहली बार हॉल-एण्डर्सन से हजार रूपये का नयासूट लाया तो पहनने से पहले मन ही मन कहता है -तुमने देखा भी है ऐसा सूट? किसी कर्मचारी की गलती माफ करते वक्त ध्यान आता है 'वे' उस समय क्या रवैया दिखाते? (वही-256) वह खड़े होकर बातें करता तो सिगरेट का टिन ठीक उसी तरह उसके हाथों में खेलता, जैसे लीना को विदा करते समय 'उसे' करते देखा था। (वही-257) कीमती रेशम का गाऊन पहन कर सिगार होठों में घुमा-घुमा कर पपोलते हुए, जब वह विचार मगन बालकनी में खड़ा होता, तो कई क्षण उसे भ्रम हो जाता मानों 'वह' स्वयं दीक्षित है.... कभी कभार वह स्वयं से सवाल करता- बाहर से दीक्षित का भूत तो नहीं आता? (वही-257) दीक्षित के हाथों अपमानित किशोर हीनग्रंथि का शिकार हो जाता है। फिर भी मेहनत के बल पर वह जनरल मैनेजर हो जाता है। अन्य कम्पनी में जाने पर फैसला करते हुए उसको मानवीय संवेदना उजागर होती है - 'आखिर उसे अब जरूरत भी क्या है?'

20.4.2 लीना और उसकी संवेदना

लीना इस कहानी की प्रमुख महिला पात्र है। लीना स्त्री स्वतंत्रता, स्त्री सशक्तीकरण और महिलावादी अभियान का निष्कर्ष पात्र लगती है। सदियों की पुरूष सामंतीदासता से मुक्ति का अवसर मिलते ही महिलावादियों ने अपनी आजादी की घोषणा कर डाली। महिला

आजादी से एक मतलब साफ निकला पुरूष से आजादी। 'टूटना' कहानी की लीना जैसी नारी वास्तविक जिंदगी मे भी देखी जा सकती है या तो वे शादी ही नहीं करती और करती है तो वे शीघ्र ही अलग हो कर जीती हैं। स्त्री पुरूष से कमतर नहीं है यह भाव लीना की शुरूआती जिंदगी में झलकता है।

लीना और किशोर के संबंध जितनी तेजी से पनपते हैं, उतनी ही तेजी से ही टूट, बिखर जाते हैं। लीना किशोर से अपेक्षाएं अधिक करती है और समझौता नहीं कर पाती। लीना के सामने किशोर अपने आप को हीन महसूस करता है। किशोर लीना के आभिजात्य, अंग्रेजियत और स्वयं की पृष्ठभूमि के चलते हीन ग्रंथि से ग्रस्त हो कर रह जाता है। वह अस्वाभाविक आचरण करने लगता है, उसका व्यक्तित्व विषम हो जाता है। पत्नी के गुलदस्ता सजाने से लेकर अंग्रेजी बोलने तक से वह स्वयं को हीन अनुभव करता है। जहाज को 'वाइकांउट' की जगह 'विस्काउंट' पढता है। उसकी मध्यमवर्गीय मानसिकता लीना मेहता की दोस्ती को भी शक की निगाह से देखती है। लीना किशोर को स्वयं पसंद करती है पर आर्थिक रूप से तंगी को बर्दास्त न करने, समझौता न करने और पिता के विरोध में किशोर से कुछ भी नहीं सुन पाती है। वह अपने पिता की दरियादिली और किशोर की कंजूसी को बढ़ाचढ़ा कर बताती है। एक दिन किशोर गुस्से में लीना के पिता के लिए बोलता है - "नकलची बंदर कहीं के! साले अंग्रेजों की नकल कर-कर के, उनके जूते चाट-चाट कर आज साहब बन गये हैं..... दस सेर क्रीम लाये थे ..... बोसकी की चादरें ..... दो-दो हजार के गलीचे.....।" (वही-253) किशोर हीनग्रंथि के चलते दीक्षित साहब को सम्मान से श्वसुर नहीं कहता। इच्छाओं का दमन करती लीना पिता का अपमान नहीं सह पाती और घर छोड़ देती है।

किशोर लीना से संबंध जोड़े रखने के लिए झुकता है। लीना अपने अहं और व्यक्तिवादी सोच के चलते संबंध तोड़ देती है। किंतु आठ वर्ष बाद वह अतीत को भूल कर पुन: रिश्तों को जोड़ने के लिए पहल करती है। किशोर पत्र को पढ़कर जिस तरह से सोचता है उससे लगता है कि वह लीना के स्वभाव को देखते हुए विश्वास नहीं कर पाता कि यह वही लीना है। यह पत्र उसी का है! वह पत्र कैसे लिख सकती है? कहानी के अंत में वह लीना से रिश्ता जोड़ने का नहीं अन्य कम्पनी में जाने को जरूरी समझता है। इसके साथ ही लीना से किसी तरह से संबंध जोड़ने की उसमें अब उत्सुकता नहीं है।

इस कहानी में स्त्री-पुरूष संबंधों की परीक्षा आदर्शवादी और भावुक दृष्टि से हटकर यथार्थ की संघर्ष भूमि पर की गई है। निम्न, मध्यम और उच्च मध्यम वर्ग का यथार्थ और उनकी मानसिकता को कहानी में समग्रता मे समेटकर चलती है। इस कहानी में मनुष्य के जीवन संघर्ष, उसके पतन, उसकी सहजता, उसके मुखौटे, उसका खण्डित व्यक्तित्व, उसके अंतर्विरोध, उसकी व्यक्तिवादिता और स्त्री-पुरूष संबंधों में आई संवेदनाओं की बारीक रेखाओं को अभिव्यक्ति मिली है। जीवन के विशिष्ट परिवेश को सर्जनात्मक दृष्टि से संवेदना और बोद्धिकता का उचित संतुलन बनाये रखते हुए अभिव्यक्त किया है। व्यक्ति और समाज का संतुलन बनाने को लेकर राजेन्द्र यादव के कहनीकार पर टिप्पणी करते हुए सुरेन्द्र उपाध्याय लिखते हैं - "व्यक्ति और परिवेश की संबंध चेतना के माध्यम से व्यक्ति और समाज पर परस्पर संतुलन राजेन्द्र यादव का अपना जीवन-दर्शन या

जीवन दृष्टि है। सामाजिक संदर्भ में राजेन्द्र यादव के पात्रों की नियति समाज के समायोजन स्थापित करने की प्रक्रिया में आयशिप्त है।" (288-कहानी प्रवृत्ति और विश्लेषण, सुरेन्द्र उपाध्याय)

20.5 टूटना का शिल्पगत विवेचन

कहानी की मूल संवेदना की अभिव्यक्ति संवाद, भाषा-शैली से ही होती है। कहानी रचना को भाषा का कलात्मक उपयोग, कथा और प्रतिपाद्य को सम्प्रेष्य बनाता है। कथाकार यशपाल कथा शिल्प के बारे में लिखते हैं - "शिल्प का अर्थ विचारों के अनुसार रचना और निर्माण कर सकना है।" 'टूटना' कहानी की कसौटी और उसके प्रतिपाद्य पर विचार करने से कथाकार राजेन्द्र यादव के इस कहानी को लिखने के मंतव्य का पता चल जाता है। लोठार तुत्से ने इस कहानी के शीर्षक पर अपने विचार रखने के लिए कहा, जवाब में - राजेन्द्र यादव जो बताते है उससे कहानी के शिल्प को समझने में मदद मिलती है - "कहानी का नायक सोचता है कि वह बन रहा है, जबकि भीतर से वह टूटता जाता है, और जितना ही भीतर से टूटता जाता है, उतनी ही प्रतिहिंसा के साथ वह अपनी बाहरी धूमधाम को बनाता जाता है। इस तरीके से एक दिन जब उसका यह 'टूटना' संपूर्ण होता है, तभी कहानी खत्म होती है। अब वह अपने आपसे टूटकर एक दूसरा व्यक्ति हो गया है। दूसरे स्तर पर कहानी लीना के टूटने की भी है, मानसिक व्यथा और अहंकार से टूटने के बाद उसने समझौते, क्षमा या अपनी तरफ से हाथ बढ़ाते हुए सुलह का पत्र लिखा होगा।" (72-मेरे साक्षात्कार)

किसी भी कहानी की संवेदनात्मक अनुभूति के लिए शिल्प की मुख्य भूमिका होती है। कहानी का गठन, संरचना, स्थापत्य और शिल्प अभिव्यक्ति की कुशलता में ही निहित है। कहानी की संरचना छः तत्त्वों पर टिकी होती है। नई कहानी ने कथानक के आदि, मध्य और अंत, घटना बहुलता और चरित्र-चित्रण की प्रधानता को छोड़ दिया है। कथा को किसी निष्कर्ष तक पहुँचाने की कामना नहीं होती। 'टूटना' कहानी में चरित्र-चित्रण का परंपरागत रूप नहीं है। कहानी में पात्र अपना स्वतंत्र वजूद रखते हैं। वे कहानीकार के हाथों की कठपुतली भर नहीं है। किशोर का चरित्र पाठक को स्वाभाविक रूप से उभरता हुआ लगता है। किशोर कहानीकार के विचारों को वहन करने वाला यांत्रिक पात्र नहीं है। कहानी में गहरी अंतर्दृष्टि गोचर होती है। स्त्री-पुरूष संबंध के द्वंद्वात्मक क्षणों के छोटे-छोटे, टुकड़े, जिन्हें गहरे अर्थ देने की उतनी कोशिश नहीं की गयी जितनी उनके भीतर ही अर्थ खोजने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। पात्र चित्रण में ईमानदारी, प्रामाणिकता और तटस्थता है। 'टूटना' के शिल्प की अलग-अलग बिंदु के माध्यम से पड़ताल कर सकते हैं।

20.5.1 यर्थाथ और शिल्प

प्रामाणिकता और जीवनाभूति के दामन को पकड़कर नई कहानी आंदोलन चलता है। 'टूटना' कहानी में नई कहानी की सारी खूबियाँ देखी जा सकती है। 'टूटना' कहानी का शिल्प प्रेमचंदीय रूढ़ ढ़ांचे का अतिक्रमण है। प्रेमचंद या रेणु की कहानियों के शिल्प से 'टूटना' कहानी के शिल्प में अंतर होगा। कहानी के शिल्प से कहानीकार की यथार्थ चेतना

भी जुड़ी होती है। अभिव्यक्ति की प्रमाणिकता के आग्रह ने कहानी को जीवंत रेशों के साथ, उसकी सम्पूर्णता में पकड़ने के लिए संकेतों, ध्वनियों और बिम्बों की बहुलता देखी जा सकती है। कहानी का आरंभ पूर्व दीप्त शैली से होता है। कहानी में पुन: कथन, इतिवृत्तात्मकता भी शिल्प का हिस्सा बन गयी है - 'क्या हम अतीत को भूल नहीं सकते?' यह कथन कहानी की संरचना का जरूरी हिस्सा बन जाता है।

अनुभव की प्रामाणिकता 'टूटना' कहानी में एकदम खरी उतरती है। कहानी में किशोर और लीना कहानीकार राजेन्द्र यादव और उनकी पत्नी मन्नू भंडारी के आपसी संबंधों में आने वाले उतार-चढ़ाव, साथ रहते हुए भी औपचारिक संवाद होना इस बात का सबूत है कि 'टूटना' के कथ्य, परिवेश और संवाद में अनुभव की प्रामाणिकता अंतर्निहित है। राजेन्द्र यादव का आत्म कथ्य 'मुड़मुड़' के देखता हूँ में अपने द्वंद्व को पूरी साफगोई से उकेरा है। मन्नू भंडारी लिखित 'एक कहानी यह भी' में राजेन्द्र यादव की दोहरी जिंदगी जीने की आदत का खुलासा हुआ है। टूटते-बिखरते, कहानीकार के रिश्ते किशोर और लीना के रूप में साकार होते हैं। किशोर और लीना के बीच पनपने वाला शक और रहस्य मन्नू भंडारी की पारिवारिक ज़िंदगी में भी बराबर शीत युद्ध सा बना रहा है। मन्नू भंडारी लिखती हैं - "कोई रहस्य है जो मुझसे छिपाया जा रहा है और औरत के मन में एक बार यदि संदेह के अंकुर उग आएं तो फिर कोई भी रहस्य बहुत दिनों तक रहस्य नहीं बना रह सकता।" (204 - एक कहानी यह भी) इस कहानी में कहानीकार की यथार्थ चेतना और शिल्प में अंतर्सम्बन्ध है। मैनेजर पांडेय के शब्दों में - 'अंतर्वस्तु से रूप का, यथार्थ-चेतना से शिल्प चेतना का और ज़िंदगी की वास्तविकता से उसकी भाषा का गहरा रिश्ता होता है।"

20.5.2 शैली

इस कहानी में उपयोग की गई पूर्व दीप्ति शैली (फ्लैश बैक) कहानी की संरचना के अनुरूप है। इस कहानी में शिल्प ऊपर से देखने पर दिखाई नहीं देता, अपितु वह शरीर के ढ़ाँचे में हड्डियों की भांति समाया हुआ है। कहानी कहन शैली प्रस्तुतिकरण, पात्र, परिवेश और उसकी भाषा तक के अनुरूप है। पूर्व दीप्ति शैली को इस कहानी की सफलता व उपलब्धि कह सकते हैं।

कहानी का आरंभ वर्तमान दृश्य किशोर के कार्यालय से होता है। वह अचानक अतीत में चला जाता है और तुरंत वापस लौट आता है। शुरू में वह थोड़ी देर के लिए जाता है और शीघ्र ही लौट आता है। ज्यों-ज्यों कहानी आगे बढ़ती है, वह अतीत में अधिक देर तक ठहरने लगता है। कहानी के आठ-नौ पन्ने तक वह थोड़ी देर तक ही अतीत में रहता है। इस शैली से कहानी में रोचकता बनी रहती है। पाठक दोनों पात्रों के संबंधों में धीरे-धीरे उतरता है। मध्यांतर के बाद कहानी नायक वर्तमान में कुछ देर के लिए रहता है और तुरंत अतीत में लौट जाता है।

कहानी की पूर्व दीप्ति शैली से कहानी में अतीत के बिम्ब बनते हैं। यह बिम्ब बहुल कहानी भी कही जा सकती है। कहानी के शीर्षक के अनुसार 'टूटना' न केवल दोनों पात्रों कें संबंधों में होता है अपितु वाक्य विन्यास में भी देखा जा सकता है। किशोर पत्नी के

बिना अधूरा व टूटा हुआ दिखाई देता है - 'उठकर उसने पलंग पर डाल दिया। वह बहुत थक गया है। थकान शक्ति को चूस डालती है।.... ऐसे ढ़ीले तन और मन से अब ज़िंदगी का ढर्रा बदलना....।' शब्दों और वाक्यों के बीच-बीच में टूटन को बिंदुओं से जगह-जगह कहानी में दिखाया गया है। किशोर अपने अनुभवों को बिंबों के रूप में प्रस्तुत करता है। इस कहानी को पाठक आद्योपन्त पढ़ लेने के बाद सार्त्र के कहे शब्द को अनुभूत कर सकता है - "आज भी जो रचनाएं हमें छूती हैं उनका बड़ा रहस्य यही है कि कलाकार ने अपने अनुभवों को उनमें अतिक्रमित किया है।" (152-कहानी स्वरूप और संवेदना) इस कहानी की विशिष्टता है पुनरावलोकन। नायक के माध्यम से जिये हुए का कतर-ब्योंत करते हुए परिवेश, कथ्य और विषय से गुजरा जा सकता है।

20.5.3 भाषा

कहानी का स्थापत्य या शिल्प की दूसरी महत्वपूर्ण चीज है - भाषा। भाषा किसी रचना को पूरे कौतुक के साथ निर्धारित करती है। कथा की चरित्र योजना से लेकर भावों, स्थितियों का रूंपाकन भाषा से ही संभव होता है। कहानी संरचनाओं में शब्द, वाक्य, बोली-भाषा और कहावतों का प्रयोग होता है। कहानी में शब्द चयन-देशज, तत्सम, उर्दू और अंग्रेज भाषा का उपयोग किया गया हैं ।

तत्सम	–	अप्राप्य,अकिंचन और दुद्धर्ष
देशज	–	सड़ाकेदार, पकाव,किवाड़, खूँटी, खुर्राट और धुन्ना।
अप्रचलित शब्द (भदेस)	–	लौंडिया।
उर्दू	–	तनखा, फरमाइश, सलाम, लकदक, वर्दी, बख्शीश, गुलामी, भाईजान, मजाल, जनाब, लफंगा, फाख्ता, खास और नफासत।
अरबी	–	खातिर, बदहवास, अजीब और गुसलखाना।
फारसी	–	आमदनी।

भाषा शिल्प में शब्द चयन, विचलन और समानांतर शब्दों के उपयोग तकनीकी के रूप में देख सकते हैं - शब्द चयन में अनुप्रास अलंकार का बोध कराते वाक्य व शब्द हैं - 'ताकत आजमाती पसीने से पसीजी एक सख्त हथेली' में 'प' वर्ण की आवृत्ति होती है। एक निर्दय खुशी की 'खट' में। लयात्मक शब्दावली - गाड़ी चली - लिफाफा खुला। आवाज को शब्द वहन करते हैं - गट-गट, पानी पीला, चप-चप, खाना खाना। अटपटे शब्द भी दिखाई देते हैं - लौंडिया। आवास्तविक के बाद अनरियल का उपयोग अतार्किक व अनुपयोगी है।

शब्द विचलन भी कहानी में देखा जा सकता है - बर्दास्त के स्थान पर एफोर्ड, नयी गाड़ी के स्थान पर लेटेस्ट माडल व्यक्तिगत के स्थान पर पर्सनल, की चाकू जगह नाइफ जैसे अंग्रेजी के शब्दों की भरमार अखरती है। समानांतर शब्द अभ्यास के स्थान पर आदत शब्द का प्रयोग किया है।

राजेन्द्र यादव भाषा शिल्प को लेकर अतिरिक्त रूप से सजग नहीं रहे। न केवल अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग इस कहानी में जमकर किया गया है। अपितु उर्दू के शब्द भी बहुलता से दिखाई देते हैं। भाषा शिल्प की दृष्टि से इस कहानी में आये अंग्रेजी के शब्द परिवेश को जीवंत करने के लिए ही है। बिजोरिया कम्पनी में काम कर रहा किशोर बर्टन या किसी से बात करेगा तो उसे व्यवसाय के सिलसिले में अंग्रेजी बोलनी ही पड़ेगी। वह किशोर जो दीक्षित की अंग्रेजी और उसकी अंग्रेजियत का घोर विरोधी रहा अंततः अंग्रेजी का ही उपयोग करता है। एक तरफ भाषा शिल्प को लेकर सजग रहने वाले रचनाकार अज्ञेय है तो दूसरी तरफ राजेन्द्र यादव है। वे बताते हैं - मुझे न शब्दों की शुचिता का ख्याल रहता है कि वे अंग्रेजी के हैं या हिन्दी या उर्दू के हैं, न मुहावरे का। मेरे लिए सवाल संपूर्ण अभिव्यक्ति का है।" (75 - मेरे साक्षात्कार)

राजेन्द्र यादव भाषा शिल्प को लेकर अतिरिक्त रूप से सजग नहीं रहे हैं। 'टूटना' कहानी में अंग्रेजी शब्दों, वाक्यों का प्रयोग जम कर हुआ है। कहानी में हिन्दीतर शब्दों के प्रयोग की मनाही नहीं है, बल्कि हिन्दी को समृद्ध करने के लिए हिन्दी की बोलियों व हिन्दीतर भाषा का प्रयोग किया जा सकता है। पाठक जब कहानी पढ़ता है तो लगता ही नहीं है कि वह हिन्दी की कहानी पढ़ रहा है। रवीन्द्र त्रिपाठी ने 'अंग्रेजों के लिए बहते राजेन्द्र यादव के आँसू?" देश की आधुनिकता, सामंतवाद से मुक्ति, लोकतंत्र का आना, अंग्रेजों के बेहतर शासन को श्रेय देना, मानसिक गुलामी का प्रतीक है। यादव के अंग्रेज प्रेम पर तीखी टिप्पणी के बाद लिखते है - राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में मानसिक गुलामी का परिचय नहीं दिया हैं।

भाषा शिल्प की दृष्टि से टूटना कहानी में अंग्रेजी शब्दों की मार बिजोरिया कम्पनी में जनरल मैनेजर है वह देशी विदेशी मैनेजरों से वार्तालाप करता है। दीक्षित इन्कम टैक्स कमिश्नर है वह भी अंग्रेजी में बोलता है। जिसका शुरू में किशोर स्वयं विरोध करता है, लेकिन आसपास के वातावरण में अंग्रेजी बोलना आवश्यक लगता है। इसलिए कहानी में आये अंग्रेजी के शब्द भाषा शिल्प की जरूरत है, मांग है।

इस कहानी में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के पीछे की कहानी राजेन्द्र यादव बताते हैं - 'हमारे एक मामाजी थे, जो हमारे स्तर से बहुत ऊँचे स्तर के थे। उनका रहन-सहन बड़ा साहबी था ..... वहाँ जो घुटन, बेचैनीहोती थी, शायद कुछ उसी को किसी रूप में मैंने किशोर के माध्यम से दिखाया है।" (74-मेरे साक्षा) अज्ञेय जैसे भाषा शिल्प को लेकर सजग रहने वाले रचनाकार है तो दूसरी तरफ राजेन्द्र यादव है। वे बताते हैं - 'मुझे न शब्दों की शुचिता का ख्याल रहता है कि वे अंग्रेजी के है या हिन्दी या ऊर्दू के हैं, न मुहावरे का। मेरे लिए सवाल संपूर्ण अभिव्यक्ति का है।" (75-मेरे साक्षा.)

भाषा की दृष्टि से संस्कृतनिष्ठ शब्दावली की कृत्रिमता को छोड़कर अरबी, फारसी, ऊर्दू और अंग्रेजी के शब्दों को जीवन के अनुकूल भाव-विचार को वहन करने योग्य बनाकर सहज, सरल और संवेदनशील भाषा का प्रयोग करते हैं। कहावत, मुहावरों का प्रयोग भी देखा जा सकता है - सिर कड़ाही में और पाँचों घी में, जिसके सिर पर छत हो, और न तले फर्श, सफेद हाथी बांधना और छप्पर फाड़कर देना जैसे मुहावरे आदि से युक्त भाषा आधुनिक संवेदना को वहन करने में सक्षम होती है।

20.5.4 संवाद

कहानी शिल्प में भाषा की भांति कहानीकार चरित्रानुसार संवाद के प्रयोग करने की तकनीकी से लगाया जाता है। कुशल कथाकार राजेन्द्र यादव भावों, स्थितियों के रूपांकन और परिवेश को साकार करने में पूरी तरह सफल रहे हैं। कहानी के पात्रों के मनोभावों को उजागर संवादों द्वारा ही किया जा सकता है।

किशोर जब स्मृति में लीना को याद करता है तो छोटे-छोटे वाक्य में भाव प्रवण हो उठता है - 'लीना, मेरी लीना, मुझे माफ कर दो! कैसी हो गयी होगी इन आठ वर्षो में लीना?" प्रश्नवाचक और विस्मयादि बोधक वाक्य विन्यास में रोमांटिकता और प्रश्नाकुलता एक साथ झलकती है।

बिम्बात्मकता झलकाते हुए - 'जिसको वह सुबह से टाले जा रहा है, वह जूते की कील की तरह और बाहर निकल आयी है।" सड़क तनी हुई डोरी की तरह हवा में, थरथराती लगती थी। बिंबधर्मिता और काव्यात्मकता, इनके अनेक संवादों में दिखाई देती है।

"टूटना" कहानी के पाठक अंदाजा लगा सकते हैं, जो हेतु भारद्वाज मानते हैं - "राजेन्द्र यादव शिल्प गढने के प्रति अधिक सचेत रहते हैं।" इस कहानी को पढते समय यदि पाठक को दुरूहता का बोध हो तो नामवरसिंह का यह कहना भी अपना अर्थ रखता है - "वे प्राय: चक्रधर शिल्प गढ़ने के चक्कर में रहते हैं और उनकी भाषा की पेचीदगी भी संभवत: इसी का परिणाम है।" अगर पाठक दत्तचित्त होकर कहानी का दो बार पढ़ ले तो वह वैश्विकता के परिणाम स्वरूप स्त्री-पुरूष संबंधों में आ रही टकराहट, विघटन और टूटन को सहज ही इस कहानी के माध्यम से समझ सकता है। तब उसे लगेगा कि चार-पाँच दशक पूर्व लिखी कहानी आज और अधिक सार्थक हो उठी है।

"ऊपर से वह किसी तरह 'या: या: राइट-राइट ..... बट यू सी, बर्टन ..... के साथ अपनी बात कर रहा है।"

"लेकिन सौभाग्य किसे कहते हैं, इसे जिंदगी में पहली बार किशोर ने उसी दिन जाना था, जिस दिन लीना का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा 'लीना, तुम एक बार अपने मुंह से कह दो ..... कहो लीना! देखो मेरे पास तुम्हें देने को एक प्यार-भरे दिल के सिवाय कुछ भी नहीं हैं.....।"

"देखो किशोर, आज से - बल्कि इसी क्षण से हम लोग साथ नहीं रहेंगे। मैं भी सोच रही थी कि अब तुमसे बात कर ही ली जाये।"

लीना के संवाद स्पष्ट और निर्णयात्मकता लिये हुए हैं। किशोर के संवादों में मानसिक द्विविधा झलकती है। वह अटक-अटक कर संवाद बोलता है। संवाद, स्पष्ट, सरल है और अकृत्रिमता से मुक्त हैं।

20.6 व्याख्या

1. किस अतीत को भूलने की बात लीना करती है? इन पिछले आठ वर्षो वाला अतीत या वह, जो इनके पहले बीता था? और इसी तरह की कोई चीज लगातार कहीं घुमड़ रही है, इसे वह जरूर महसूस करता रहा। इस समय लगता घुमड़ते हुए उस निराकार ने प्राय: स्पष्ट प्रश्न एक रूप ले लिया है। आखिर उसने क्यों लिखा?

संदर्भ :

ये पंक्तियाँ राजेन्द्र यादव की 'टूटना' कहानी से ली गई हैं।

प्रसंग :

किशोर जनरल मैनेजर की हैसियत से बिजारिया कम्पनी में काम कर रहा है। उसे एक दिन दैनिक डाक में एक विशेष पत्र मिलता है। पत्र देखते ही अविश्वास से भरकर उस पर लिखे पते को देखता है। वह असमंजस में है कि आखिर आठ वर्ष बाद लीना में पत्र क्यों लिखा।?

व्याख्या :

किशोर पिछले आठ वर्षों से लगातार अपना काम कर रहा है। कम्पनी के व्यवसाय के सिवा उसके मन में दूसरी बात नहीं आती और आयी थी तब जब लीना का अचानक आठ वर्ष बाद यह पत्र मिलता है। पत्र में लिखे पर व न चाहते हुए भी रह-रह कर विचार करने लगता है। लीना किन आठ वर्षों को भूलने की बात कर रही है? उसकी जिंदगी में एक नहीं दो-दो आठ वर्ष रहें हैं। पहले वे जो लीना के साथ गुजारे। दूसरे वे जो लीना के बिना ही गुजारे। लीना कौन से आठ वर्षों को भुलने के लिए कह रही है।

लीना उन आठ वर्षों को भूलने के लिए लिखती है जिन दिनों दोंनो साथ रहकर भी साथ न रह सके। कडुवे अनुभवों को भुलाकर भी वह नये सिरे से जीने की तमन्ना रखती है। जीवन को फिर से नई शुरुआत के साथ जीना चाहती है। उसका विश्वास ही है जो पत्र लिखवाता है। उस काले अतीत को भूलकर भी नये सिरे से आरंभ किया जा सकता है।

किशोर अपनी समझ और याददास्त पर जोर डाल रहा है कि आखिर उस औरत ने अतीत को भूलने के लिए लिखा है, जो स्वयं पहल करके घर छोड़ जाती है। ऐसी स्वाभिमान, जिद्दी और दंभी और न किन परिस्थितियों में पत्र लिखा होगा, जो अपने अहं में घर छोड़ती है और आज पत्र लिख रही है। इसलिए वह विचारने पर मजबूर होता है।

विशेष :

आठ साल में लिखा पत्र, जो कहानी की मनोभावनाओं को उजागर किया गया है। किशोर के मन में उठ रहे सवाल उस चिंतन करने में मजबूर कर रहे हैं।

2. "सारा खेल रूपये का है, और अब रूपया कमाना है" उसने निश्चय किया और भूत की तरह रूपये के पीछे लग गया - भूल गया, कहीं कोई लीना है, कहीं कोई दीक्षित साहब है और कहीं कोई अतीत है। एक नौकरी पर पाँव टिकाकर दूसरी का सौदा होता रहा ..... पहला तल्ला ..... दूसरा तुल्ला और एक दिन लिफ्ट उसे दसवें तल्ले के इस चैम्बर में ले आयी जिसके दरवाजे पर लिखा था, 'जनरल मैनेजर ..... '

संदर्भ :

यह गद्यांश राजेन्द्र यादव की कहानी 'टूटना' से लिया गया है। किशोर मे आये बदलाव को बतलाया गया है। किशोर निम्न परिवार से है। ट्यूशन करके शिक्षा और लीना मिलती है। धनाभाव के चलते लीना उसे छोड़ जाती है। गरीबी के कारण ही दीक्षित के लिए किशोर की कोई अहमियत नहीं होती है। दीक्षित द्वारा उसे गरीबी का अहसास कदम-कदम पर करवाया जाता है। ऐसी परिस्थिति में किशोर अंतिम रूप से मान लेता है कि सारा खेल ही रूपयों का है।

व्याख्या :

किशोर की जिंदगी से लीना के निकल जाने के बाद ही अपनी जिंदगी का एक लक्ष्य बनाया -रूपया।

रूपया कमाने में वह अपने आप को तन और मन दोनों से ही लग जाता है। रूपया कमाने में सारे रिश्तों को भुला देता है। उसे किसी तरह के रिश्ते अब याद नहीं आते। घर छोड़ देने वाली पत्नी को याद नहीं करता। जिन माँ-बाप के समान भाई-भाभी ने उसे पाला उन्हें भी भूल जाता है। उस धन कमाने में अपना प्रतिद्वंद्वी दीक्षित नजर आता है इसलिए वह उसे याद अवश्य करता है। रूपये कमाने में नौकरी को भी पायदान की तरह इस्तेमाल करता है। जब अधिक आय देने वाली नौकरी मिलती है तो पुरानी को छोड़ देता है। नौकरी बदलते-बदलते जनरल मैनेजर हो जाता है।

रूपया कमाने में वह दीक्षित को अपना प्रतिद्वंद्वी मानता है। अब दीक्षित उसे हर कदम पर अयाद आते हैं। तो इस तरह-नया सूअ पहन रहा है तो दीक्षित याद आता है। नई गाड़ी में बैठ रहा है तो दीक्षित याद आ रहा है। लेकिन एक बार घर छोड़कर कई लीना को यह कभी याद नहीं करता। अब उसकी एक ही मंजिल है, जिंदगी का एक ही मकसद है - रूपया। उसको कोई रिश्ता नहीं है, सिवाय धन कमाने के।

विशेष :

उद्योगीकरण में रूपया वैसे भी महत्वपूर्ण हो उठा है। किशोर कई पायदान पार करता हुआ जनरल मैनेजर तक पहुंचा है। गद्यांश की भाषा सीधी और सरल है।

3. 'इन दोनों के पीछे कहीं छिपे खड़े दीक्षित साहक को यह सब सुना रहा है, "साले हमारी जबान को कहेंगे वर्नाक्यूलर .....! जानते हैं, वर्नाक्यूलर माने क्या होता है? वर्नाक्यूलर मीन्स द लैंग्वेज ऑफ रोमन स्लेव्ज ..... जन्म जन्मांतर के गुलामों की जबान ..... "

संदर्भ :

ये गद्यांश राजेन्द्र यादव द्वारा लिखित कहानी 'टूटनां' से उद्धृत है। लीना और मेहता अंग्रेजी में बातें करते हैं। किशोर विस्काउंट बोलता है। लीना और मेहता दोनो ही कहते हैं - प्रोफेसर वाइकांउट है विस्काउंट नहीं। मेहता, लीना दोनों पर ही किशोर गुस्से से भड़क उठता है। वह अंग्रेजों और अंग्रेजी दोनों पर बोलने लगता है।

व्याख्या :

हिन्दी जानते हुए भी अंग्रेजी मानसिकता से ग्रस्त कुछ लोग अक्सर अंग्रेजी में ही बोलना अपनी शान समझते हैं। वे अंग्रेज हमारी हिन्दी भाषा को तो गुलामों की भाषा कहते थे और आज भारत में रहकर अंग्रेजी में पले-बढ़े भी वेसा ही व्यवहार कर रहे हैं। वर्नाक्यूलर उसे कहा जाता है जो गुलामों की भाषा रही है।

हिन्दी बोलने वालों में एक तरह की हीनता ग्रंथी होती है। वही किशोर में साफ दिखाई देती है। वह दीक्षित को अंग्रेजी मानसिकता से ग्रस्त ऐसा प्रतीक मानता है कि मेहता और लीना पर आये गुस्से को भी दीक्षित पर ही उतारता है। क्योंकि दीक्षित अंग्रेजी वस्त्र पहनता है, अंग्रेजी छूरी-काँटे से खाना खाता है और जुबान खोलता है तो अंग्रेजी ही

बोलता है। किशोर जैसा को कुछ नहीं समझता है। इसलिए किशोर दीक्षित को अंग्रेजी बोलने वाला ऐसा शख्स मानता है जिसका विरोध किया जाना चाहिए।

विशेष :

किशोर का हिन्दी प्रेम और अंग्रेजी से नफरत साफ झलकती है। किशोर का गुस्सा लीना, मेहता और दीक्षित जैसे लोगों पर उतरता है। गद्यांश में अंग्रेजी युक्त शब्द वाक्यों का प्रयोग हुआ है।

20.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "राजेन्द्र यादव की 'टूटना कहानी स्त्री-पुरूष संबंध के टूटने बिखरने की कहानी हैं।" विवेचन करें।
2. लीना की चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए।
3. किशोर और लीना का संवेदनात्मक विवेचन कीजिए।
4. एक प्रबंधक की दृष्टि से किशोर का मूल्यांकन कीजिए।
5. 'टूटना' कहानी का शिल्पगत विवेचन कीजिए।
6. "टूटना' कहानी स्त्री-पुरूषों कें आए बदलाव की कहानी है।" स्पष्ट करें।
7. "वैश्वीकरण के कारण स्त्री-पुरूष संबंधों में बदलाव आ रहा है।" 'टूटना' कहानी के आधार पर सिद्ध कीजिए।
8. रचनाकार राजेन्द्र यादव पर टिप्पणी लिखिए।

20.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. हेतु भारद्वाज, (सं.); आधुनिक हिन्दी कहानियाँ, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
2. सुरेन्द्र उपाध्याय; कहानी : प्रवृत्ति और विश्लेषण, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, चौड़ा रास्ता, जयपुर
3. राजेन्द्र यादव; मेरे साक्षात्कार, किताब घर प्रंकाशन, नई दिल्ली
4. यशपाल; लोक गंगा, कथा में शिल्प, फरवरी, 09, उत्तराखण्ड
5. रवीन्द्र त्रिपाठी; कथादेश जू. 06, "अंग्रेजों के लिए बहते राजेन्द्र यादव के आँसू?"
6. राजेन्द्र यादव; 'कहानी स्वरूप और संवेदना', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
7. मन्नू भंडारी; 'एक कहानी यह भी', राधाकृष्ण, दिल्ली
8. डॉ. मैनेजर पाण्डेय; 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़

इकाई- 21 उषा प्रियंवदा कृत 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' का अध्ययन व विवेचन

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 जिन्दगी और गुलाब के फूल

21.2.1 कहानी का कथानक

21.2.2 कहानी की मूल संवेदना

21.3 जिन्दगी और गुलाब के फूल -पात्र योजना

21.4 जिन्दगी और गुलाब के फूल-संवाद योजना

21.5 जिन्दगी और कूलाब के फूल-देश काल, वातावरण

21.6 जिन्दगी और गुलाब के फूल-शिल्प विधान

21.6.1 कहानी की भाषा

21.6.2 कहानी की शिल्प विधान

21.7 कहानी का उद्देश्य

21.8 व्याख्या के अंश

21.9 सारांश

21.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

21.11 संदर्भ ग्रन्थ

21.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी -

- नयी कहानी के परिदृश्य से परिचित हो सकेंगे।
- कहानीकार उषा प्रियवंदा के व्यक्तित्व और कृतित्व की भी जानकारी कर सकेंगे।
- 'जिन्दगी' और गुलाब के फूल' कहानी की कथावस्तु स्पष्ट कर सकेंगे।
- 'जिन्दगी' और गुलाब के फूल' कहानी की पात्र योजना समझ सकेंगे।
- 'जिन्दगी' और गुलाब के फूल' कहानी में वर्णित समय और समाज से परिचित हो सकेंगे।
- 'जिन्दगी' और गुलाब के फूल' कहानी के शिल्प विधान को समझ सकेंगे।
- 'जिन्दगी' और गुलाब के फूल' कहानी के उद्देश्य स्पष्ट कर सकेंगे।
- 'जिन्दगी' और गुलाब के फूल' कहानी की समीक्षा करने की क्षमता विकसित कर सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

नयी कहानी आन्दोलन के दौर में हिन्दी की जिन कथा लेखिकाओं की कहानियों ने आलोचकों और पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया उनमें उषा प्रियवंदा एक विशिष्ट नाम है। मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती तथा उषा प्रियंवदा की त्रयी नयी कहानी आन्दोलन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। उषा प्रियवंदा का जन्म कानपुर में 1934 ई. में हुआ था। उन्होंने

अंग्रेजी साहित्य में एम.ए., पी-एच.डी. की और विसकांसिन, संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रोफेसर हो गयीं। सम्प्रति वे अमेरिका में हीं हैं।

विदेश में रहने के बावजूद उनकी आरम्भिक कहानियों ने संवेदनात्मक स्तर पर भारतीय समाज की विसंगतियों को रेखाकिंत किया। उनकी 'वापसी' कहानी ने हिन्दी कहानी के बदलते स्वरूप को रेखाकिंत किया और इस कहानी के साथ ही उनकी गिनती हिन्दी के नये और अग्रणी कहानीकारों में होने लगी। यद्यपि उन्होंनें विदेशी परिवेश और भावभूमि पर भी अनेक कहानियों की रचना की तथापि भारतीय जीवन पर केन्द्रित उनकी कहानियाँ बहुत प्रभावशाली हैं उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार है-उपन्यास- पचपन खंभे लाल दीवारों, रूकोगी नहीं राधिका, शेष यात्रा। कहानी संग्रह-जिन्दगी और गुलाब के फूल, फिर बसंत आया, कोई एक दूसरा, कितना बड़ा झूठ आदि।

अपनी समकालीन कहानी लेखिकाओं की तुलना में उषा प्रियवंदा के सामाजिक सरोकार बहुत सीमित हैं। क्योंकि उनका अनुभव संसार बहुत व्यापक नहीं है। मन्नू भण्डारी तथा कृष्णा सोबती की तुलना में उनकी कहानियों का संसार बहुत बड़ा न होकर मनुष्य के मन की दुनिया से अधिक सम्बन्धित है। 'पैरेम्बुलेटर', कच्चे धागे'। दो अंधेरे', जैसी कहानियों में जरूर उन्होंने आर्थिक दृष्टि से विपन्न वर्ग की अनुभूतियों का चित्रण किया है अन्यथा तो उनकी कहानियों का समाज सम्पन्न और समृद्ध समाज है जिसकी समस्याएँ व्यक्तिगत अधिक हैं। उनकी कहानियों की नायिकाएँ भी इसी वर्ग की हैं ओर वे अपनी वर्जनाओं में डूबी हैं। उनकी एक मात्र समस्या प्रेम है। 'मोहबंध', पूर्ति', चांद चलता रहा' आदि कहानियों में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। उनकी कहानियों की नायिकाएँ देहवादी पवित्रता को ढ़ोने का निषेध करती है। इस दृष्टि से उनकी कहानियाँ बदलते स्त्री-पुरूष सम्बन्धों को रेखाकिंत करती है।

21.2 जिन्दगी और गुलाब के फूल- कहानी का परिचय

जिन्दगी और गुलाब के फूल उषा प्रियवंदा की एक प्रतिनिधि कहानी है, जिसके नाम से उनकी 12 कहानियों का संग्रह भारतीय ज्ञानपीठ से 1961 में प्रकाशित हुआ था। इसी संकलन में 'वापसी' शीर्षक से एक कहानी संकलित है, जिसे लेकर हिन्दी में कहानी अच्छी और नयी कहानी नाम से बहस भी चली थी जो कौतुकपूर्ण अधिक थी तथा निर्णय हीन रही थी। तथापि उषा प्रियवंदा के कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठा मिल गई थी। उनका नाम नयी कहानी आन्दोलन से भी जोड़ दिया गया था।

यह संयोग ही है कि 1961 में ही उनका एक और कहानी संग्रह 'फिर बसंत आया' नाम से दिल्ली प्रेस से छपा था। इसकी सभी कहानियाँ 'सरिता' नामक पत्रिका में छपी थीं। यह सर्वविदित तथ्य है कि अपनी सारी लोकप्रियता के बावजूद 'सरिता' को किसी साहित्यिक पत्रिका का आदर नहीं मिला। शायद इसी बात को ध्यान में रखकर उषा प्रियंवदा ने 'मेरी प्रिय कहानियाँ' की भूमिका में लिखा है, 'मेरी पहली कहानी जो सरिता में छपी, वह 'लाल चूनर' थी। उसके बाद तीन साल की अवधि में मैंने तमाम कहानियाँ लिखी - तभी अपने लिखे गये के प्रति तीव्र असंतोष उभरा, ऐसा जान पडा कि ऐसी कहानी लिखने में कोई चैलेन्ज नहीं है।' शायद 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी

संकलन में छपी कहानियाँ उनके पश्चाताप का उत्तर हैं। तथ्य तो यही है कि नयी कहानी आन्दोलन के दौर में मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा तथा कृष्णा सोबती ऐसी लेखिकाएँ थीं जिन्होंने अग्रणी कथाकारों में अपनी पहचान बनायी।

21.2.1 'जिन्दगी और गुलाब के फूल" कहानी का कथानक

इस कहानी का मुख्य पात्र सुबोध बेरोजगार युवक है। वह अपने आत्म सम्मान की कीमत पर समझौता न कर पाने के कारण लगी नौकरी से त्यागपत्र दे देता है। नयी नौकरी मिलती नहीं इसलिए घर में उनकी स्थिति दूसरे दर्ज के नागरिक जैसी हो जाती है। उसकी बहन वृंदा नौकरी करती है जिसके वेतन से घर का खर्च चलता है। विवश और असहाय होने के कारण उसे अपनी बहन के समक्ष अपमानित होना पड़ता है। इसलिए उसके कमरे की चीजें धीरे-धीरे वृंदा के कमरे में चली जाती हैं। बेरोजगारी के कारण उसकी प्रेमिका शोभा का विवाह उसके पिता किसी अन्य युवक से करने का निर्णय लेते हैं परन्तु वह कुछ नहीं कर पाता। शोभा उससे प्यार करती है पर वह भी क्या करें। सुबोध स्वयं अनुभव करता है कि शोभा का अन्यत्र विवाह ठीक ही रहेगा उसमें हीनभावना बढ़ती जाती है। शोभा उसके लिए गुलाब के फूल की तरह है, पर उसकी जिन्दगी में उसका सुख नहीं है। इसी कुण्ठा में उसकी जीवन शैली भी बिगड़ती जाती है। उसका एक्सीडेंट भी होता है पर अपने घर माँ और वृन्दा के समक्ष वह अत्यंत दीन है। वह शोभा तथा एक अन्य सहेली को छोड़ने जाता हे तो शोभा का प्यारभरा व्यवहार उसे और दुखी कर देता हैं। उसके मैले कपड़ों को कोई धोता नहीं। उसे लगता है जैसे उसका जीवन ही निरर्थक हो गया है। वह भीतर से घुटता रहता है।

कहानी के कथानक में सुबोध की उस विवशता को उजागर किया गया है जो उसे टूट जाने की सीमा पर ले आता है। वह अपने जीवन में असफल होकर माँ और बहन की उपेक्षा को झेलता हुआ भीतर ही भीतर तनावग्रस्त रहता है। निरंतर अपमान सहते-सहते उसका व्यक्तित्व इतना कंठित हो जाता है कि वह मां, वृंदा और शोभा तीनों के समक्ष स्वयं को बेचारा पाता है। वह मौन होकर सबकुछ सहता रहता है। उसकी प्रेमिका उससे दूर चली जाती है, इस तरह वह प्रेम में मोहभंग की पीड़ा को भोगता है।

कहानी के कथानक में घटनाएँ अधिक नहीं है पर जो भी है वे सुबोध के मानसिक संताप से जुड़ी हैं। कहानी सुबोध के संताप को बड़ी कुशलता से चित्रित करती है। पाठक की सहानुभूति उसके साथ बनी रहती है। कहानी रोचक है तथा पाठक को अन्त तक बांधे रहती हे। कहानी एक प्रकार से सुबोध के संघर्ष की रोचक कथा है।

21.2.2 जिन्दगी और गुलाब के फूल कहानी की मूल संवेदना

कवि कुंवर नारायण ने 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' संकलन की समीक्षा करते हुए उषा प्रियवंदा को 'आधुनिकता की तरफदार' कहानीकार कहा था। स्पष्ट है कि उषा प्रियवंदा आधुनिकता की दृष्टि लेकर कथा लेखन में प्रवृत्त हुई। उनका जीवन अमेरिका में भी व्यतीत हुआ है तथा उन्होंने विदेशी जीवन की कहानियाँ लिखी हैं। पर भारतीय जीवन की आधुनिक विसंगतियों को उभरने में वे पूरी तरह सक्षम है। प्रस्तुत कहानी में भी एक

आधुनिक युवक के कुंठित व्यक्तित्व और मानसिक संघर्ष का चित्रण है। इस कहानी की संवेदना पर विचार व्यक्त करते हुए आलोचक मधुरेश ने लिखा है-

"जिन्दगी और गुलाब के फूल' उस व्यापक मोहभंग और हताशा की कहानी है जिसमें पढ़े-लिखे युवकों की बेरोजगारी एक समूचा राष्ट्रीय संदर्भ लेकर सामने आती है। इसमें जो स्थितियां बनती हैं, वे एक ओर यदि सुबोध को शोभा से काट देती हैं तो दूसरी ओर अपनी ही बहन वृंदा की नौकरी के बाद, परिवर्तित संदर्भों में उसे और भी अपदार्थ बनाकर छोड़ देती हैं लेकिन अपने कमजोर ट्रीटमेंट के कारण कहानी व्यापक राष्ट्रीय संदर्भों का भी कोई सर्जनात्मक उपयोग कर सकने में असफल रहती हैं। अच्छी-भली लगी-लगायी नौकरी छोड़कर सुबोध की यह आरोपित हताशा और वृंदा की उसके प्रति यह तर्कहीन कटुता स्थितियों को आरोपित और भावुकतापूर्ण बनाकर कहानी के प्रभाव को क्षति पहुंचाती है।"

21.3 जिन्दगी और गुलाब के फूल कहानी की पात्र योजना

इस कहानी में कुल चार पात्र हैं- सुबोध, मां, वृन्दा और शोभा। प्रमुख पात्र सुबोध है जो कुंठित युवक है। वह अपनी असफलता से बेजारगार है। मां और वृंदा उसकी उपेक्षा करते हैं उसकी असफलता के कारण शोभा भी उसके हाथ से निकल जाती है। लेखिका ने उसकी मनस्थिति का वर्णन बड़ी कुशलता से किया है-

"सुबोध कोट पहने बिना ही बाजार चल दिया। यह पतलून वह काफी दिनों से पहन रहा था। कमीज के फटे हुए कॅफ और कालर गन्दे थे, पर उसने परवाह नहीं की। दोनों हाथो से थैले का मुँह पकड़कर उसमें गन्दी तराजू से मिट्टी लगे आलू डलवाते हुए सुबोध को एक झटका-सा लगा। उसके पास ही किसी का पहाड़ी नौकर भाव पूछ रहा था। उसके चीकट बालों से माथे पर तेल बह रहा था। मुँह से बीड़ी का कड़वा धुआँ निकल रहा था। वह भी थैला लिये था और तरकारी लेने आया था। सुबोध अचानक ही सोच उठा कि वह कहाँ से कहाँ आ पहुँचा है। अपने अफसर की अपमानजनक बात सुनकर तो उसने अपने आत्म - सम्मान की रक्षा के लिए इस्तीफा दे दिया था, लेकिन अब कहाँ है वह आत्म सम्मान? छोटी बहन पर भार बनकर पड़ा हुआ है। उसे देखकर माँ मन-ही -मन घुलती रहती है। जिन्दगी ने उसे भी गुलाब के फूल दिये थे, लेकिन उसने स्वयं ही ठुकरा दिया और अब शोभा भी..."

माँ उसके प्रति ममतालू तो है पर उसकी बेरोजगारी माँ को भी खलती है। माँ उसे खुश देखना चाहती है पर वह क्या करें। बहन वृंदा उसके प्रति पूरी उपेक्षा बरतती हैं उसे व्यंग्य वचनों से घायल करती रहती है। शोभा सुबोध से प्यार करती है। उसका प्यार सच्चा है, पर वह अपने पिता के निर्णय का विरोध नहीं कर पाती क्योंकि सुबोध बेरोजगार है। जब वह शोभा को छोड़ने जाता है तो शोभा अपने मन की पीड़ा व्यक्त करती है कि वह पिता को कैसे समझाए पर सुबोध उससे कहता है - "मैं जिन्दगी में फैलियर हूँ। कम्पलीट फैलियर। कुछ नहीं कर सका। जैसे मेरी जिन्दगी में अब फुल स्टॉप लग गया है। अब ऐसे ही रहूंगा। तुम्हारे फादर ने ठीक ही किया। तुम सुखी

होओगी। प्यार से बड़ी एक और आग होती है, भूख की, पेट की। वह आग धीरे-धीरे सबकुछ छीन लेती है।"

शोभा फिर भी उससे कहती है कि वह इतना बिटर क्यों हो गया है तो वह कहता है कि जिन्दगी ने उसे बिटर बना दिया है। वृंदा उसकी असहायता के प्रति संवेदनशील नहीं है। वह अपने कटाक्षों से उसे अपमानित करती रहती है। पर कहानी का मुख्य पात्र सुबोध ही है जिसकी मानसिक पीड़ा और कुंठा को इस कहानी में कुशलता से उकेरा गया है।

21.4 संवाद योजना

कहानी में सुबोध के मानसिक द्वन्द्व को बड़ी सजीवता से उभारा गया है तथा कहानी में पात्रों के बीच संवाद योजना भी बड़ी मार्मिक है। बहुत छोटे-छोटे संवादों में व्यंग्य और चुटीलापन है। एक प्रसंग प्रस्तुत है-

"तभी बाहर का दरवाजा अचानक खुला और वृन्दा ने कुछ तीखे स्वर में पूछा, "अम्मा, दादा घर में हैं?"

सुबोध सुनकर भी न उठा। माँ का उत्तर सुन वृन्दा उसके कमरे के दरवाजे पर खड़ी होकर बोली, 'दादा, ताँगेवाले को रूपया भुनाकर बारह आने दे दो।"

सुबोध ने चप्पलों में पैर डाले, उसके हाथ से रूपया लिया और बाहर आया।

उसकी दृष्टि सामने खड़ी शोभा से मिल गयी। उसके नमस्कार का संक्षिप्त उत्तर दे वह बाहर आ गया। नोट तुड़ाकर ताँगे वाले को पैसे दिये और फिर अन्दर नहीं गया। पड़ोस में एक परिचित के घर बैठ गया, और शतरंज की बाजी देखने लगा।

वहाँ बैठे-बैठे जब उसने मन में अन्दाज लगा लिया कि अब तक शोभा और निर्मला खाना खाकर चली गयी होंगी, तो वह घर आया। सड़क पर सन्नाटा हो गया था। बत्तियों के आसपास धुँधले प्रकाश का घेरा था, और पानवाला, ग्राहकों की प्रतीक्षा में चुप और स्थिर बैठा था।

वृन्दा ने झुँझलाकर कहा, "कहाँ चले गये थे, दादा? शोभा और निर्मला कब से घर जाने को बैठी है! तुम्हें पहुँचाने जाना है।"

"मुझे मालूम नहीं था," सुबोध ने कहा।

"जैसे कभी शोभा को घर पहुँचाया नहीं है!" वृन्दा ने कहा।

"तब" सुबोध ने सोचा, तब शोभा की सगाई कहीं ओर नहीं हुई थी, तब वह बेकार न था। शोभा उससे शरमाती थी, पर उसके गुलदान में फूल लगा जाती थी। माँ नये गहने बनवा रही थीं, और वृन्दा अपने कमरे में बैठी-बैठी कुढ़ती थी, क्योंकि वह बदसूरत थी और उससे कोई शादी करने को राजी नहीं होता था.....

"अच्छा तो चलें," सुबोध ने शोभा की ओर नहीं देखा।

पर शोभा बोल पड़ी, "हमें जल्दी नहीं है। आप खाना खा लीजिए।"

इस बातचीत से वृंदा का उपेक्षापूर्ण व्यवहार सुबोध की विवशता का सजीव चित्र उपस्थित हो जाता है।

एक अन्य स्थल पर भी संवादों के द्वारा सुंबोध की बिटरनैस का खुलासा बड़ी कुशलता से किया गया है-

"चाय पीकर वह बाहर चला आया। कोट की जेबों की तलाशी करने पर उँगलियाँ एक इकन्नी से जा टकरायीं। पान वाले की दुकान पर सिगरेट खरीदा और जलाकर एक गहरा कश खींचा, और दो-एक जगह रूककर वापस चला। रास्ते में धोबी मिला, और उसने सुबोध को दोबारा सलाम किया।

"कपड़े जरा जल्दी लाना, समझे?" कुछ रोब से सुबोध ने कहा।

"अच्छा बाबूजी," धोबी चला गया।

कमरे में घुसते ही मैले कपड़ों का ढेर उसे वैसे ही दिखाई पड़ा, जैसा कि छोड़ गया था। उसने वहीं रूककर पुकारा, "अम्मा! मेरे कपड़े धुलने नहीं गये।"

"पता नहीं, बेटा। वृन्दा दे रही थी, उससे कहा भी था तुम्हारे भी दे दे..."

सुबोध को न जाने कहाँ का गुस्सा चढ़ आया। चीखकर बोला, "कितने दिनों से गन्दे कपड़े पहन रहा हूँ! पन्द्रह दिन में नालायक धोबी आया, तो उसे भी कपड़े नहीं दिये गये। तुम माँ-बेटी चाहती क्या हो? आज मैं बेकार हूँ, तो मुझसे नौकरों सा बरताव किया जाता है! लानत है ऐसी जिन्दगी पर।"

माँ त्रस्त हो उठीं। जब सुबोध का कण्ठ-स्वर इतना ऊँचा हो गया कि बाहर तक आवाज जाने लगी तो वह रो दीं। उन्होंने कुछ कहना चाहा, मगर सुबोध ने अवसर नहीं दिया। कहता गया, "मुझे मुफ्त का नौकर समझ लिया है? पहले कभी तुमने मुझे यह सब काम करते देखा था।" फिर उसके कण्ठ की नकल करता हुआ बोला, "घर में तरकारी नहीं है! वृन्दा की सहेलियाँ खाना खाएँगी। उधर हमारी बहन हैं कि हुकूमत किया करती हैं! अब मैं समझ गया हूँ कि मेरी इस घर में क्या कद्र है। मैं आज ही चला जाऊँगा। तुम दोनों चैन से रहना।"

स्पष्ट है कि कहानी की संवाद योजना बहुत सधी हुई है।

21.5 देशकाल वातावरण

यह कहानी घटना प्रधान न होकर मानसिक संघर्ष को रूपायित करने वाली कहानी है। कहानी में व्यंजित सारा वातावरण सुबोध की मनःस्थितियों के अनुरूप है। सुबोध आधुनिक युग का युवक है जो अपनी बेरोजगारी के कारण माँ तथा बहन की उपेक्षा झेल रहा है। वह अपनी प्रेयसी को भी खो चुका है। पूरी कहानी में उषा प्रियंवंदा ने सुबोध की मनःस्थितियों के अनुरूप चित्रण किया है।

"सुबोध दोनों हाथों की उँगलियाँ एक-दूसरे में फँसाये बैठा रहा। उसके कन्धे झुक गये और उसके चेहरे पर विषाद और चिन्ता की रेखाएँ गहरी हो गयीं। सशंक नेत्रों से माँ उसे देखती रही। मन-ही-मन कई बातें सोचीं कहने की, मौन का अन्तराल तोड़ने की, पर न जाने क्या वाणी न दे सकी। उसकी आँखों के सामने ही सुबोध बदलता जा रहा था। इस समय उसके नेत्र माँ पर अवश्य थे, पर वह उनसे हजारों मील दूर था। मौन रहकर जैसे वह अपने अन्दर अपने आपसे लड़ रहा हो। काश, सुबोध फिर वही छोटा-सा लड़का हो जाता, जिसके त्रास वह अपने स्पर्श से दूर कर देती थी। पर सुबोध जैसे अब उसका बेटा नहीं रहा था, वह एक अनजान, गंभीर, अपरिचित पुरूष हो गया था, जो दिनभर भटका करता था, रात को आकर सो रहा था। सुख के दिन उसने भी जाने थे। अच्छी नौकरी

थी, शोभा थी। अपने पुराने गहने तुड़ाकर माँ ने कुछ नयी चीजें बनवा ली थीं, और अब वे नये बुन्दे और बालियाँ, हार और कंगन बक्से में पड़े थे। शोभा की शादी होने वाली थी और सुबोध बदलता जा रहा था।

दो धुँधली, जलभरी आँखें दो उदास आँखों से मिलीं। उनमें एक मूक अनुनय थी। सुबोध ने माँ के चेहरे को देखा और मुसकरा दिया। शब्द निरर्थक थे, दोनों एक-दूसरे की गोपन व्यथा से परिचित थे। उनमें एक मूक मझौता था। माँ ने इधर बहुत दिनों से सुबोध से नौकरी के विषय में नहीं पूछा था, और सुबोध भी अपने आप यह प्रसंग न छेड़ना चाहता था।"

इस अंश में उषा प्रियवंदा ने माँ और सुबोध के बीच सम्बन्धों की जो तरलता और निसंगता है उसका चित्र उभारा है। इसी तरह सुबोध के मन की हताशा निम्नलिखित अंश में बह रही है-

"बिना कुछ कहे सुबोध उठ गया। दो-एक कमदम लड़खड़ाया, फिर चलने लगा। हर बार जब बाँया पैर रखता, तो दर्द होता। धीरे-धीरे लँगड़ा-लँगड़ाकर वह पार्क से बाहर निकल आया।

दरवाजा खुला था। बरामदे में मद्धिम रोशनी थी। चौके में अँधेरा। वह अपने कमरे में आया। कोने में मैले कपड़ों का ढेर था। ढीली चारपाई, गन्दा बिस्तर, तिपाई पर खाना ढका हुआ रखा।

सुबोध चारपाई पर बैठ गया, और तिपाई खींचकर लालचियों की तरह जल्दी-जल्दी बड़े-बड़े कौर खाने लगा।"

21.6 कहानी का शिल्प विधान

21.6.1 भाषा

उषा प्रियवंदा का लेखन नयी कहानी के आरम्भिक दौर में ही प्रारम्भ हो जाता है। इसलिए वे भी अपनी कहानियों में एक नयी भाषा की तलाश करती नजर आती है। 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी की भाषा भी सुबोध की मनःस्थितियों को व्यक्त करने की दृष्टि से संयोजित की गयी है। कहानी की भाषा में कहीं निस्संगता है तो कहीं व्यंग्य की उक्तियाँ हैं। भाषा पर लेखिका पूरा अधिकार है। इस कहानी में भाषा की जो विविध अभिव्यक्ति भंगिमाएँ हैं उन्हें इस अंश से समझा जा सकता है-

"हाथ झाड़कर सुबोध ने पैसे दिये और चल पड़ा। इस सबके बावजूद उसके अन्दर एक तुष्टि का हलका-सा आलोक था कि इस्तीफा देकर उसने ठीक ही किया। उसके जैसा स्वाभिमानी व्यक्ति अपमान का कड़वा घूँट कैसे पी लेता? स्वाभिमान? सुबोध के ओठ एक कड़ी मुसकान से खिंच उठें वाह रे स्वाभिमानी! उसने अपने आपसे कहा। उसे यह सब बातें स्पष्ट होकर फिर याद आ गयीं, वे बातें, जो रह-रहकर टीस उठती थीं। सुबोध स्मृति का एलबम खोलने लगा। हर चित्र स्पष्ट था।

नौकरी छोड़कर वह कुछ महीने घर नहीं लौटा, वहीं दूसरी नौकरी खोजता रहा और जब लौटा तो उसने घर का चित्र ही बदला हुआ पाया। उसकी अनुपस्थिति में वृन्दा ने उसकी

मेज ले ली थी और उसके लौटने पर वृन्दा ने अवज्ञा से कहा था, "दादा, आप क्या करेंगे मेज का? मुझे काम पड़ेगा।"

सुबोध कुछ तीखी-सी बात कहते-कहते रूक गया। कई साल में घिसट-घिसटकर बी.ए.एल.टी. कर लेने और मास्टरनी बनजाने से ही जैसे वृन्दा का मेज पर हक हो गया हो! कोई अध्यापिका होने से ही पुस्तकों का प्रेमी नहीं हो जाता। सुबोध की उस मेज पर अब जूड़े के काँटे, नेल-पॉलिश की शीशी और गर्द-भरी किताबें पडी रहती थीं और फिर कुछ दिनों बाद माँ ने कहा, "वृन्दा को रोज स्कूल जाने में देर हो जाती है। अपनी अलार्म घड़ी दे दो, सुबोध!"

सुबोध ने कठोर होकर कहा था, "नयी घड़ी खरीद क्यों नहीं लेती? उसे क्या कमी है?"

माँ ने आहत और भर्त्सनापूर्ण दृष्टि से उसे देखकर कहा, "उसके पास बचता ही क्या है! तुम खर्च करते तो जानते!"

"नहीं, मुझे क्या पता? हमेशा से तो वृन्दा ही घर का खर्चा चलाती आयी है। मैं तो बेकार हूँ निठल्ला।" और झुँझलाकर सुबोध ने घड़ी उसे दे दी थी।"

21.6.2 शिल्प विधान

उनकी कहानियों के शिल्प विधान के विषय में मधुरेश लिखते हैं :-

"उषा प्रियवंदा अपनी कहानियों में शिल्प और भाषिक संरचना को लेकर शुरू से ही बहुत सजग रही है। शुरू की कहानियों की प्रतीक-बहुलता परवर्ती कहानियों में काव्यात्मक ब्यौरों और वर्णनात्मकता में बदल गयी हैं। कहानियों के शीर्षकों के प्रति भी वह कुछ अधिक ही सचेत दिखाई देती हैं। परवर्ती कहानियाँ सांकेतिकता की जगह काव्यात्मक ब्यौरों में अधिक समझती है। शिल्प की दृष्टि से वे इकहरी बनावट की जगह संश्लिष्टता का आग्रह दिखाती है।"

प्रस्तुत कहानी शिल्प की दृष्टि से एक चुस्त-दुरूस्त कहानी है। लेखिका ने कहीं सांकेतिकता का प्रयोग किया है तो कहीं प्रतीकात्मकता। कहानी का शीर्षक ही प्रतीकात्मक है, 'गुलाब के फूल' पद सुबोध की जीवन की त्रासदी की ओर संकेत करता है। मैले कपड़ों के ढेर का बिम्ब खड़ाकर लेखिका सुबोध की पीड़ा को और भयावाह बना देती हैं। सुबोध के मानसिक द्वन्द के चित्रण में वे पूर्वदीप्ति शैली का भी प्रयोग करती हैं।

21.7 उद्देश्य

उषा प्रियवंदा ने यह कहानी कोई सामाजिक संदेश देने की दृष्टि से नहीं लिखी है। वे इस कहानी में जीवन की उन भयावह स्थितियों का वर्णन करना चाहती हैं जो हमारे आत्मीय संबंधों में दरार पैदा करती हैं। सुबोध की बेरोजगारी के कारण माँ, वृन्दा तथा शोभा के, उसके साथ सम्बन्धों में जो कड़वाहट, पीड़ा, असंवेदना, कठोरता आ गयी है, उसे चित्रित करना ही लेखिका का मूल लक्ष्य है।

21.8 व्याख्या के अंश

1. दो धुँधली, जलभरी आँखों दो उदास आँखें से मिली। उनमें एक मूक अनुनय थी। सुबोध ने माँ के चेहरा को देखा और मुसकरा दिया शब्द निरर्थक थे, दोनों एक-दूसरे की गोपन

व्यथा से परिचित थे। उनमें एक मूक समझौता था। माँ ने इधर बहुत दिनों से सुबोध से नौकंरी के विषय में नहीं पूछा था, और सुबोध भी अपने आप यह प्रसंग न छेड़ना चाहता था।

2. वह टीकोजी वृन्दा ने काढी थी और उसकी शादी की आशा में बरसों माँ बक्स में रखें रखी। अब उसे रोज व्यवहार करना माँ की पराजय थी। उससे बड़ी पराजय थी सुबोध की, जो अपनी छोटी बहन की शादी नहीं कर पाया था। टीकोजी पर एक गुलाब का फूल बना था और सुबोध उन गुलाब के फूलों की याद कर रहा था, जो शोभा उसके कमरे में सजा जाती थी, उन बाली और बुन्दों की सोच रहा था, जो शोभा अब नहीं पहनेगी.....
3. सुबोध कोट पहने बिना ही बाजार चल दिया। यह पतलून वह काफी दिनों से पहन रहा था कमीज के फटे हुए कॅफ और कालर काफी गन्दे थे, पर उसने परवाह नहीं की। दोनों हाथों से थैले का मुँह पकड़कर उसमें गन्दी तराजू से मिट्टी लगे आलू डलवाते हुए सुबोध को एक झटका-सा लगा। उसके पास ही किसी का पहाड़ी नौकर भाव पूछ रहा था। उसके चीकट बालों से माथे पर तेल बह रहा था, मुँह से बीड़ी का कड़वा धुआँ निकल रहा था। वह भी थैला लिये था और तरकारी लेने आया था। सुबोध अचानक ही सोच उठा कि वह कहाँ-से-कहाँ आ पहुँचा है!
4. सबसे अधिक आश्चर्य तो उसे वृन्दा पर था। अकसर वह सोच उठता कि वह वही वृन्दा है, जो उसके आगे-पीछे घूमा करती थी, उसके सारे काम दौड़-दौड़कर किया करती थी। जब भी उसने चाय माँगी, वृन्दा ने चाय तैयार कर दी। और अब? एक रात जरा देर से आने पर उसने सुना, वृन्दा बिगड़कर माँ से कह रही थी, "काम न धन्धा, तभी भी दादा से यह नहीं होता कि ठीक वक्त पर खाना खा लें। तुम कब तक जाड़े में बैठोगी, माँ? उठाकर रख दो, अपने आप खा लेंगे।"
5. "मैं तो कुछ भी नहीं कह रहा हूँ। इस बात को स्वीकार कर लो कि मैं जिन्दगी में फेलियर हूँ कम्पलीट फेलियर। कुछ नहीं कर सका! जैसे मेरी जिन्दगी में अब फुलस्टॉप लग गया है। अब ऐसे ही रहूँगा। तुम्हारे फादर ने ठीक ही किया। तुम सुखी होओगी। प्यार से बड़ी एक और आग होती है, भूख की, पेट की! वह आग धीरे-धीरे सब कुछ लील लेती है....."
6. कहता-कहता वह घर से बाहर आ गया। अपनी छटपटाहट में उसके अन्दर एक तीव्र विध्वंसक प्रवृत्ति जग उठी थी। उसका मन चाह रहा था कि जो कुछ भी सामने पड़े, उसे तहस-नहस कर डाले। वह चलता गया और उसी धुन में एक साइकिल-सवार से टकरा गया। वह गिर पड़ा, उसके ऊपर साइकिल आ गयी और वह व्यक्ति सबसे ऊपर। जब उसकी कोहनियाँ खुरदुरी सड़क से छिली और एक तीव्र पीड़ा हुई, तो उसका ध्यान बँटा। वह कुछ हक्का-बक्का सा रह गया।
7. दिन कितना लम्बा हो गया था कि बीत ही नहीं रहा था। जैसे एक युग के बाद आकाश में एक तारा चमका और फिर अनेक तारे चमक उठें। सुबोध घास से उठकर फिर बेंच पर लेट गया। उसके सिर में भारीपन था, मुँह में कड़वाहट, पैर में जैसे एक भारी पत्थर बँधा था। सारा दिन हो गया था, पर उसे कोई खोजता हुआ नहीं आया। वृन्दा को तो पता था कि वह अकसर पार्क में बैठा करता है मगर उसे क्या फिक्र?

21.9 सारांश

उषा प्रियवंदा नयी कहानी आन्दोलन के आरम्भिक दौर की समर्थ कथाकार है। उन्होंने अपनी कहानियों में बदलते जीवन मूल्यों और सम्बन्धों की टकराहट को उतारा है। 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी में भी प्रेम के मोहभंग तथा परस्पर सम्बन्धों मे आये बदलाव का सजीव चित्रण हुआ है। कहानी की मुख्य समीक्षा सुबोध की बेरोजगारीजन्य पीड़ा है और यही पीड़ा माँ, बहन और प्रेमिका के साथ उसके बदलते सम्बन्धों की त्रासदी को व्यक्त करती है।

21.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उषा प्रियवंदा की कहानी कला पर निबंध लिखिए।
2. 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी का कथानक अपने शब्दों में लिखिए।
3. सुबोध की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी की मूल संवेदना स्पष्ट कीजिए।
5. 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी की भाषा और उसके शिल्प विधान पर निबंध लिखिए।
6. सिद्ध कीजिए कि जिन्दगी और गुलाब के फूल कहानी वर्तमान समय में बदलते सम्बन्धों की कहानी है।
7. 'जिन्दगी और गुलाब के फूल कहानी' की समीक्षा कीजिए।

21.11 संदर्भ ग्रंथ

1. उषा प्रियवंदा; जिन्दगी और गुलाब के फूल, भारतीय ज्ञान पीठ, द्वितीय संस्करण 1969
2. उषा प्रियवंदा; मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 1978
3. डॉ. नरेन्द्र मोहन; समकालीन कहानी की पहचान, प्रवीण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1978
4. डॉ. नामवर सिंह; कहानी : नयी कहानी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966
5. डॉ. देवीशंकर अवस्थी (सम्पादक); नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1973
6. डॉ. गंगाप्रसाद विमल; समकालीन कहानी का रचना विधान, प्रकाशक-सुषमा कार्यालय, दिल्ली, 1967
7. मधुरेश; आज की हिन्दी कहानी : विचार और प्रतिक्रिया, प्रकाशक-सरस्वती प्रकाशन मंदिर, आगरा, 1971
8. राजेन्द्र यादव; कहानी : स्वरूप और संवेदना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1968
9. सीता सूद; महिला कहानीकारों की कहानियों में प्रेम का स्वरूप, सूर्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978

इकाई-22 कृष्ण बलदेव वैद की 'मेरा दुश्मन' का अध्ययन व विवेचन

इकाई की रूपरेखा :

22.0 इकाई का उदेश्य
22.1 प्रस्तावना
22.3 कथाकार का परिचय
22.4 कथा का वाचन
22.5 प्रतिपाद्य
22.6 शिल्प
22.7 अतीत का साया
22.8 व्याख्या
22.9 सारांश
22.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
22.11 संदर्भ ग्रंथ

22.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप कृष्ण बलदेव वैद की प्रसिद्ध कहानी 'मेरा दुश्मन' का अध्ययन करेंगे।

- हिन्दी कहानी में पारम्परिक यथार्थ के समानान्तर कथा प्रवृत्ति का महत्व जान सकेंगे।
- संरचना एवं शिल्प की दृष्टि से इस कथा प्रवृत्ति में वैद की मौलिकता का साक्षात्कार कर सकेंगे।

22.1 प्रस्तावना

'मेरा दुश्मन' कृष्ण बलदेव वैद की प्रतिनिधि कहानी है जो उनके दूसरे कहानी संग्रह 'मेरा दुश्मन' मे (1966) संकलित है। उपने विशिष्ट मौलिक अंदाज के कारण 'मेरा दुश्मन' हिन्दी कहानी के अनेक महत्वपूर्ण संकलनों में संगृहीत की गई है। अपने भीतर की आवाज को पहचान कर अभिव्यक्त करना इस कहानी की सुंदरता है। जीवन के अंतर्विरोधों की पड़ताल करना किसी भी लेखक के लिए एक जरूरी काम है, वैद इस कहानी में एक व्यक्ति के भीतर बैठे द्वन्द्व और संकट को पहचान कर उसे अभिव्यक्त करते हैं। अपनी पुस्तक चर्चित कहानियाँ की भूमिका में अपने पाठक को संबोधित करते हुए वैद ने लिखा है- 'लिखते समय मैं यथा सम्भव तुमसे बेखबर ही रहना चाहता हूँ, अपने अधेरे मे एकदम अकेला हो जाना चाहता हूँ, उस ईश्वर की तरह जिसमें मुझे अविश्वास है, यह मानते हुए कि यह मेरे लिए सम्भव नहीं। लिखते समय में असम्भव का ही सामना करना चाहता हूँ, तुम्हारा नहीं।' जिसे वैद असंभव कहते हैं उसी असंभव से मुठभेड़ करने का साहस 'मेरा दुश्मन' में मिलता है। हिन्दी कहानी में यह अकेला उदाहरण नहीं है तथापि अभिव्यक्ति की नवीनता और भाषा की लाक्षणिकता इसे मौलिक बनाते हैं।

हिन्दी कहानी का अध्ययन-अध्यापन आम तौर पर सतही खाँचों में करने का चलन रहा है। यथार्थवादी शैली, प्रेमचंद की परंपरा या प्रसाद स्कूल जैसे खाँचे किसी विधा का वास्तविक मूल्यांकन करने में अवरोध है। वैद भी इस प्रवृत्ति का कड़ा विरोध करते हैं। वैद ने कहा है 'किसी भी लेखक के काम में भाषा कई दिशाओं से आती है, कई दरवाजे से दाखिल होती है, लेखक का काम है उस भाषा को एक विशिष्ट शैली का रूप देना, उसमें से एक विशिष्ट आवाज निकालना।' वैद यह भी कहते हैं 'प्रगतिशीलता के नाम पर निहायत सरलीकृत पैमाने गढ़ लिए गए हैं, यथार्थवाद की दुहर्क दे देकर यथार्थ तक पहुँचने के अन्य विकल्पों की उपेक्षा की जा रही है।' कहना न होगा कि 'मेरा दुश्मन' इस यथार्थ की तलाश में वैद का अपना मौलिक ढ़ंग है।

22.2 कथाकार का परिचय और साहित्यिक अवदान

कृष्ण बलदेव वैद की पहली पुस्तक 1957 में प्रकाशित हुई थी। 'उसका बचपन' नाम का यह उपन्यास हिन्दी कथा साहित्य में आज भी श्रेष्ठ कृतियों के रूप में समादृत है। अविभाजित भारत के पंजाब के सिन्ध कस्बे में 27 जुलाई 1927 को पैदा हुए वैद की ख्याति अपने कथा लेखन में सर्वथा विशिष्ट भाव भंगिमा के लिए रही है। अपने लेखन की प्रेरणा के संबध में वैद बताते हे - 'लिखने की प्रेरणा' एक महत्वपूर्ण हद तक, मुझे अतीत के उस काले शोर को बार बार भोगने और बराबर उससे भागते रहने की परस्पर विरोधी विवशताओं से ही मिलती हो कोशिश यह रहती है कि भोगने और भागने के बीच कोई ऐसी भयवर्जिता रेखा खींच सकूं, कोई ऐसा सूक्ष्म और सही संतुलन पैदा कर सकूं जहाँ से उन तमाम निजी चीखों को किसी ऐसे सन्दर्भ में सजाकर सुन पाने का अवसर मिले कि उनका वह वहशियाना शोर संगीत में परिणत हो जाए।'

वैद का रचना संसार वहशियाना शोर से अपने ढ़ंग से जूझने की कवायद है जो कभी भाषा की नयी अर्थ छवियाँ प्रस्तुत करता है तो कभी किस्सागोई का मौलिक अंदाज। उनके प्रकाशित उपन्यासों में 'विमल उर्फ जाये तो जायें कहाँ' (1974), नसरीन (1975), दूसरा ना कोई (1978), दर्द ला दवा (1980), गुजरा हुआ जमाना (1981), काला कोलाज (1989), नर नारी (1996), मायालोक (1999) है तो 'भूख आग है', 'हमारी बुढ़िया', 'परिवार अखाड़ा', 'मोनालीसा की मुस्कान', 'कहते है जिसको प्यार' उनके चर्चित नाटक हैं। उनके लगभग बारह कहानी संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। बीते दिनों आई उनकी डायरी 'ख्वाब है दीवाने का' तथा कृष्णा सोबती से लम्बी संवाद पुस्तक 'सोबती-वैद संवाद' को पाठकों ने खूब पसंद किया। वैद ने कुछ महत्वपूर्ण पुस्तको का भी स्वयं अंग्रेजी में अनुवाद कर बड़े पाठक वर्ग के लिए इन्हें उपलब्ध करवाया। कुछ समय दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ाने के बाद वैद 1966 में अमरीका की यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क में चले गए जहाँ उन्होंने 1988 तक अंग्रेजी का अध्यापन किया। इन दिनों वे दिल्ली में रहते हैं तथा अपने सृजन में अविराम सन्नद्ध हैं।

वैद के साहित्यिक अवदान पर विख्यात कवि और संस्कृतिकर्मी अशोक वाजपेयी ने कहा है 'समाज और व्यक्ति दोनों के कचरे और गलीज पर वैद साहब बयान देते रहे हैं और हस कोशिश में वे भाषा और औपन्यासिक कल्पना को अनेक बार वहाँ ले गए हैं जहाँ वह

हिन्दी में पहले कभी गयी ही नहीं। वे एक दुस्साहसी लेखक हैं।' वहीं वरिष्ठ समालोचक प्रो. नवल किशोर ने लिखा है- वैद की एक दर्जन के उयर कलाकृतियाँ आ चुकी हैं और आज उनकी गिनती हमारी भाषा के सर्वाधिक शित्य चेतस कथाकारों में होती है।' वस्तुतः यथार्थवादी कथा लेखन की रूढ़ ढाँचागत परिपाटी के समानान्तर वैद का कथा लेखन सर्वथा मौलिक प्रयास है।

22.3 कथा का वाचन

वह

वह इस समय दूसरे कमरे में बेहोश पड़ा है। आज मैंने उसकी शराब में कोई चीज मिला दी थी, कि खाली शराब वह शरबत की तरह गट-गट पी जाता है, और उस पर कोई खास असर नहीं होता। आंखों में लाल डोरे-से झूलने लगते हैं, माथे की शिकनें पसीने में भीगकर दमक उठती हैं, होठों का जहर और उजागर हो जाता है और बस-होशोहवास बदस्तूर कायम रहते हैं।

अन्देशा

आज भी मुझे अन्देशा तो था कि वह पहले ही घूँट में जायका पहचानकर मेरी चोरी पकड़ लेगा लेकिन गिलास खत्म होते-होते उसकी आँखे बुझने लगी थीं और मेरा हौसला बढ़ गया था। जी में आया था कि उसी क्षण उसकी गरदन मरोड़ दूँ, लेकिन फिर नतीजों की कल्पना से दिल दहलकर रह गया था। मैं समझता हूँ हर बुजदिल आदमी की कल्पना बहुत तेज होती है, हमेशा उसे हर खतरे से बचा ले जाती है। फिर भी हिम्मत बॉधकर मैंने एक बार सीधे उसकी ओर देखा जरूर था। इतना भी क्या कम है कि साधारण हालात में मेरी निगाहें सहमी हुईसी उसके सामने इधर-उधर फड़फड़ाती रहती है। साधारण हालात में मेरी स्थिति उसके सामने बहुत असाधारण रहती है।

दुराशा

वैसे मैं न जाने कैसे समझ बैठा था कि इतने अर्से की अलहेदगी के बाद अब मैं उसके आतंक से पूरी तरह आजाद हो चुका हूँ। इसी खुशफहमी में शायद उस रोज उसे मैं अपने साथ ले आया था। शायद मन में कहीं उस पर रोब गांठने, उसे नीचा दिखाने की दुराशा भी रही हो। हो सकता है कि मैंने सोचा हो कि वह मेरी जीती-जागती खूबसूरत बीवी, चहकते-मटकते तन्दुरुस्त बच्चों, और आरास्ता-पैरास्ता आलीशान कोठी को देखकर खुद ही मैदान छोड़कर भाग जाएगा, और हमेशा के लिए मुझे उससे निजात मिल जाएगी। शायद मैं उस पर यह साबित कर दिखाना चाहता था कि उससे पीछा छुड़ा लेने के बाद किस खुशगवार हद तक मैंने अपनी जिन्दगी को सँभाल-सँवार लिया है।

पीछा

मुझे उस कमबख्त से, वहीं घर से दूर, उस सड़क के किनारे किसी-न-किसी तरह निबट लेना चाहिए था। अगर अपनी उस सहमी हई खामोशी को तोड़कर मैंने अपनी तमाम मजबूरीयाँ उसके सामने रख दी होतीं, माला का एक खाका-सा खींच दिया होता, साफ-साफ उससे कह दिया होता -देखो गुरु, मुझ पर दया करो और पीछा छोड़ दो-तो शायद वहीं हम किसी समझौते पर पहुँच जाते। और नहीं तो वह मुझे कुछ मोहलत तो दे ही

देता। छूटते ही दो मोरचों को एक साथ संभालने की दिक्कत तो पेश न आती। कुछ भी हो, मुझे उसे अपने घर नहीं लाना चाहिए था। लेकिन अब यह सारी समझदारी बेकार थी। माला और वह एक-दूसरे को यूं घूर रहे थे जैसे दो पुराने और जानी दुश्मन हों।

माला

फिर माला ने मौका पाते ही मुझे अलग ले जाकर डांटना-डपटना शुरू कर दिया था- मैं पूछती हूं कि यह तुम किस आवारगर्द को पकड़कर साथ ले आये हो? जरूर कोई तुम्हारा पुराना दोस्त होगा? है न? इत्ते बरस शादी को हो चले, लेकिन तुम अभी तक वैसे के वैसे ही रहे। मेरे बच्चे उसे देखकर क्या कहेंगे? पड़ोसी क्या सोचेंगे? अब कुछ बोलोगे भी?

पहचान

खैर! कुछ देर यों ही सर नीचा किये खड़े रहने के बाद आखिर मैंने निहायत आजिजाना आवाज में कहना शुरू किया था- अरे भई, मैं तो उस कमबख्त को ठीक तरह से पहचानता भी नहीं, उससे दोस्ती का तो सवाल ही पैदा नहीं होता अब अगर रास्ते में कोई आदमी मिल जाए तोकृकृ।

तो

तो उस शाम न जाने किस धुन में मैं घर से बहुत दूर निकल गया था। आमतौर पर घर से दूर रहने पर भी मैं घर के ही बारे में सोचता रहता हूँ, इसलिए नहीं कि घर में किसी किस्म की कोई परेशानी है। गाड़ी न सिर्फ चल रही है, बल्कि खूब चल रही है।

हो सकता है कि उस शाम दिमाग कुछ देर के लिए उसी गुजरे हुए जमाने की ओर भटक गया हो। कुछ भी हो, मैं घर से बहुत दूर निकल गया था, और अचानक वह मेरे सामने आ खड़ा हुआ था। महसूस हुआ था जैसे मुझे अकेला देखकर घात में बैठे हुए किसी खतरनाक अजनबी ने ही रास्ता रोक लेना चाहा हो। मैं ठिठककर रूक गया था। उसकी सुती हुई आंखों से फिसलकर मेरी निगाह उसकी मुस्कराहट पर जा टिकी थी, जहां अब मुझे उसके साथ बिताये हुए उस सारे गर्दआलूद जमाने की एक टिमटिमाती हुईसी झलक दिखायी दे रही थी। महसूस हो रहा था जैसे बरसों तक रूपोश रहने के बाद फिर मुझे पकड़कर किसी के सामने पेश कर दिया गया हो। मेंरा सर इस पेशी के खयाल से दबकर झुक गया था।

भेंट

उससे मेरी कोई कमजोरी छिपी नहीं, और उससे भागकर माला की गोद में पनाह लेने की एक बड़ी वजह यही थी। उसकी हँसी मे मुझे सूखे पत्ती की हेबतनाक खड़खड़ाहट सुनायी दे रही थी, और उस खड़खडाहट में उसके साये में गुजारे हुए जमाने की बेशुमार बातें आपस में टकरा रही थी। बड़ी मुश्किल से आंख उठाकर उसी ओर देखा था। उसका हाथ मेरी तरफ बढ़ा हुआ था। मैं बिदककर दो कदम पीछे हट गया था और उसकी हॅसी और ऊंची हो गयी थी।

घर में

सो, जब माला की डांट-डपट सुन लेने के बाद, मुंह बनाये, मैं बैठक में लौटा तो वह बदजात मजे में बैठा बीड़ी पी रहा था। एक क्षण के लिए भ्रम हुआ जैसे वह कमरा उसी

का हो। फिर कुछ संभलकर, उससे नजर मिलाये बगैर, मैने कमरे की सारी खिड़कियां खोल दी, पंखे को ओर तेज कर दिया, एक झुंझलाहट हुई ठोकर से उसके जूतों को सोफे से नीचे धकेल दिया, रेडियो चलाना ही चाहता था कि उसकी फटी हुईसी हँसी सुनायी दी, और मैं बेबस हो उससे दूर हटकर चुपचाप बैठ गया।

दुश्मन

लेकिन मैंने कुछ कहा नहीं कहा भी होता तो सिवाय एक और जहरीली हँसी के उसने मेरी अपील, का कोई जवाब न दिया होता। वह बहुत जालिम है। हर बात की तह तक पहुंचने का कायल, भावकुता का दुश्मन।

उसे कमरे का जायजा लेते देख, मैने दबी निगाह से उसकी ओर देखना शुरू कर दिया। टांगे समेटे वह सोफे पर बैठा हुआ एक जानवर-सा दिखायी दिया। उसकी हालत बहुत खस्ता थी। लेकिन उसकी शक्ल अब भी मुझसे कुछ-कुछ मिलती है, इस विचार से मुझे कोफ्त भी हुई, और एक अजीब किस्म की खुशी भी।

आदर्श

एक जमाना था जब वही एकमात्र मेरा आदर्श हुआ करता था; जब हम दोनों घंटो एक साथ घूमा करते थे; जब हमने बार-बार कई नौकरियों से एक साथ इस्तीफे दिये थे; कुछ एक से एक-साथ निकाले भी गये थे; जब हम अपने-आपको उन तमाम लोगों से बेहतर ओर, ऊंचा समझते थे जो पिटी-पिटाई लकीरों पर चलते हुए अपनी सारी जिन्दगी एक बदनुमा और रिवायती घरौंदे की चहारदीवारी में कैद रहते हैं।

वह यूं मुस्करा रहा था जैसे उसने मेरे अन्दर झांक लिया हो। उसे इस तरह आसानी से अपने ऊपर काबिज होते देख मैंने बात बदलने के लिए कहा-कितने रोज यहां ठहरोगे?

खुशी

मैं बहुत खुश हुआ और जब माला खाना लगवाने के लिए बाहर गयी तो उस शाम पहली बार मैंने बेधड़क उस कमीने की तरफ देखा। वह तीन-चार गिलास बीअर के पी चुका था, और उसके चहरे की जर्दी कुछ कम हो चुकी थी। लेकिन उसकी मुसकराहट में माला के बाहर जाते ही फिर वही जहर और चैलेंज आ गया था; और मुझे महसूस हुआ जैसे वह कह रहा हो-बीवी तुम्हारी मुझे पसन्द है, लेकिन बेटे, उसे खबरदार कर दो, मैं इतना पिलपिला नहीं जितना वह समझती हैं।

दो पति

तीन दिन तक माला उसकी खातिर-तवाजो करती रही। मेरे कपड़ो में वह अब बिलकुल मुझ जैसा हो गया था। यूं नजर आता था जैसे माला के दो पति हों। मैं तो सुबह-सुबह गाड़ी लेकर दफ्तर को निकल जाता था, पीछे उन दोनों में न जाने क्या बातें होती थीं। लेकिन जब कभी उसे मौका मिलता, वह मुझे अन्दर ले जाकर डांटने लगती-यह मुरदार यहां से निकलेगा भी कि नहीं!

आज

आज माला को गये पांच रोज हो गये हैं। मैंने दफ्तर जाना छोड़ दिया है। वह फिर अपने असली रंग में आ गया है। मेरे कपड़े उतारकर उसने फिर अपना वह मैला-सा कुर्ता-

पाजामा पहन लिया है। कहता कुछ भी नहीं, लेकिन मैं जानता हूं कि वह क्या कहना चाहता है-यह मौका पाकर फिर हाथ नहीं आयेगा।

कौन सा रास्ता

और आज आखिर मैं उसे थोड़ी देर के लिए बेहोश कर देने में कामयाब हो गया हूं। अब मेरे सामने दो ही रास्ते हैं। एक यह कि होश आने से पहले मैं उसे जान से मार डालूं और दूसरा यह कि अपना जरूरी सामान बांधकर तैयार हो जाऊं, और ज्यूं ही उसे होश आये, हम दोनों फिर उसी रास्ते पर चल दें, जिससे भागकर कुछ बरस पहले मैंने माला की गोद में पनाह ली थी। अगर माला इस समय यहां होती तो वह कोई तीसरा रास्ता भी निकाल लेती। लेकिन वह नहीं है, और मैं नहीं जानता कि मैं क्या करूं।

22.4 प्रतिपाद्य

'मेरा दुश्मन' वैद की प्रतिनिधि कहानी है जो नयी कहानी आंदोलन के दिनों में प्रस्तुतीकरण के नयेपन के कारण पर्याप्त चर्चित हुई थी। राजेन्द्र यादव द्वारा नयी कहानियों के संपादित प्रसिद्ध संकलन 'एक दुनिया समानान्तर' में इसे शामिल किया गया था। 'मेरा दुश्मन' कहानी का प्रतिपाद्य यह है कि यहाँ मध्यवर्गीय परिवार में आ गए एक अवांछित व्यक्ति से पीछा छुड़ाने की बेचैन कवायद है। कहानी के वाचक 'मैं' का यह मित्र असल में उसका दुश्मन है क्योंकि 'मैं' नहीं चाहता कि उसके साथ व्यतीत समय किसी भी तरह फिर लौट कर आए। अपने अतीत से पीछा छुड़ाकर ओढी हुई खुशियों में रहना नितांत मध्यवर्गीय कांइयापन है जो 'मैं' के मार्फत आया है। दरअसल सच तो यह है कि 'मैं' के साथ कोई व्यक्ति आया ही नहीं है, जो आया है वह और कोई नहीं 'मैं' का ही अतीत है जिससे 'मै' डरकर भाग रहा है। 'मै' की पत्नी माला का चरित्र मध्यवर्गीय अवसरवादिता को और अधिक मुखरित करने वाला है वह भीतर ले जाकर 'मैं' को खरीखोटी सुनाती ओर बाहर उस 'दुश्मन'- का भलीभाँति आतिथ्य भी कर रही है। दुसरी ओर मैं के व्यक्तित्व का ढुलमुलपन दिखाई देता है जब वह 'दुश्मन' की चुनौती को खुद न उठाकर पत्नी के भरोसे छोड़ रहा है- 'मैं बहुत खुश हुआ। अब मामला माला ने अपने कुशल हाथ में ले लिया था। मन हुआ कि उठकर माला को चूम लूं। मैंने कनखियों से उस हरामजादे की तरफ देखा। वह वाकई सहमा हुआ- सा दिखाई दिया। मैंने सोचा, अब अगर वह खुद-ब-खुद ही न भाग उठा तो मैं समझूंगा कि माला की सारी समझ- सीख और रंग- रूप बेकार है। कितना लुत्फ आये, मैं उससे पूछुं-अब बता साले, अब बात समझ में आई? अंत में जब माला इस 'दुश्मन' के कारण घर छोड़कर चली गई है और 'मैं' उसकी शराब में कुछ मिला दिया है जिससे वह बेहोश पड़ा है तब भी 'मैं' की अनिश्चितता दिखाई दे रही है-' और आज आखिर मैं उसे थोड़ी देर के लिए बेहोश कर देने में कामयाब हो गया हूं। अब मेरे सामने दो ही सस्ते है। एक यह कि होश आने से पहले मैं उसे जान से मार डालूं और दूसरा यह कि अपना जरूरी सामान बांधकर तैयार हो जाऊं, और ज्यूं ही उसे होश आये, हम दोनों फिर उसी रास्ते पर चल दें, जिससे भागकर कुछ बरस पहले मैंने माला की गोद में पनाह ली थी। अगर माला इस समय

यहां होती तो वह कोई तीसरा रास्ता भी निकाल लेती। लेकिन वह नहीं है और मैं नहीं जानता कि मैं क्या करूं।'

वस्तुत: मनुष्य का असली दुश्मन उसके व्यक्तित्व का दोहरापन और दोगलापन है जिसका सामना करना उसे स्वीकार्य नहीं है। मनुष्य अपने सुख-ऐश्वर्य के बीच उपने अतीत से आ गई किसी भी चुनौती को अनदेखा करना चाहता हैं आधुनिक जीवन का यह संत्रास कहानी को बड़ी अर्थछवि प्रदान करने में सफल हुआ है।

22.5 शिल्प

'मेरा दुश्मन' ठीक वैसी कहानी नहीं हे जो हमें प्रेमचंद, यशपाल ओर रांगेय राघव की परंपरा में मिलती है। जातीय वृतान्त ओर देसी जबान से कुछ अलहदा यह कहानी पाठक को चौंकाती है और अंतत: एक उलझन में छोड़ जाती है कि आखिर यह दुश्मन है कौन? वैद के कथाकर्म पर विचार करते हुए प्रभात त्रिपाठी ने लिखा है- क्या कथा तत्व की विरलता पात्रों की विरलता ओर सुदीर्घ आत्मविश्लेषण के चलते, उनकी कथा की बनावट में अन्तर्निहित आशयों की गझिनता को पाठक देख समझ नहीं पाते, इसीलिए वे दुर्बोध हैं?"

क्या यह वैद की कहानियों के शिल्प को खोलने समझने की कुंजी है? यह सही है कि वैद को 'मेरा दुश्मन' में अपना मंतव्य व्यक्त करने के लिए बहुत ज्यादा घटनाओं और पात्रों की जरूरत नहीं होती तथापि हम न भूलें कि वाचक और दुश्मन का एक ही व्यक्तित्व के दो पहलू होने पर भी हम द्वन्द्व की सघनता के लिए एक स्त्री पात्र की अनिवार्यता थी। घटनाएँ यहाँ नहीं है और न ही त्रासद-अपूर्व स्थितियाँ। वैद का कथा शिल्प इस तरह का है कि वे वाचक ओर उसके दुश्मन को बगैर किसी नाजुक घटना / मोड़ के आमने सामने कर देते हैं कि सपाट उत्तर की गुंजाइश समाप्त हो जाती है। इसके लिए वे शिल्प पात्रों कथानक और शिल्प की गझिन बुनावट करते है-

- उसकी हँसी मुझे सुखे पत्तो की हैबतनाक खड़खड़ाहट सुनाई दे रही थी, और उस खड़खड़ाहट में उसके साये में गुजारे हुए जमाने की बेशुमार बातें आपस में टकरा रही थीं।
- महसूस हुआ, जैसे वह फिर उसी दुनिया से एक पैगाम लाया हो, फिर मुझे उन्हीं रोमानी विरानों में भटका देने की कोशिश करना चाहता हो, जिनसे भागकर मैंने अपने लिए एक फूलों की सेज संभाली है, जिस पर माला करीब हर रात मुझसे मेरी फरमाबरदारी का सबूत तलब किया करती है, और जहां मै बहुत सुखी हूँ।

उक्त दोनों उद्धरण कहानी के संश्लिष्ट कथानक और पात्रों के मध्य जमा द्वन्द्व को बारीकी से उघाड़ते हैं। कहानी में यह द्वन्द्व जब तनाव की हद तक बढ़ता है तब वहीं कहानी एकाएक ठहर जाती है और पाठक का इस समस्या का उत्तर स्वयं खोजने के लिए छोड़ देती हैं। अपनी भाषा के सर्वथा नये इस्तेमाल के कारण भी वैद का कथा कर्म खास चर्चा में रहा है। 'पूर्वग्रह' के विशेषांक में एक बातचीत में उन्होंने कहा- मेरी भाषा के दरवाजे उर्दू के लिए हमेशा खुले रहते हैं, क्योंकि उर्दू और फारसी मेरे भाषाई संस्कारों में रची हुई है। कृकृकृकृमेरे स्कूल में उर्दू और फारसी के उस्ताद न सिर्फ एहलेजुबान थे बल्कि एहलेज़ौक भी। जुबान और अदब में रस लेने की बीमारी मुझे उनके प्रभाव से, और

उसी स्कूल में अपने अंग्रेजी के एक उस्ताद के प्रभाव से लगी। तो उर्दू ओर फारसी के लफ्ज़ों का इस्तेमाल मैं अनायास करता हूँ लेकिन सचेत रूप से करता हूँ। यह विशेधाभास जानबूझकर।' कहना न होगा कि भाषा का ऐसा खिलन्दड़ापन इस कहानी में भी बार-बार आता है और उलझन को गम्भीर ही बनाता है। दरअसल इस उलझन को बारीकी से बताने के कारण ही इस कहानी की प्रशंसा हुई है। वैद की इसी शिल्प सजगता के लिए डा. इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है कि 'इनकी कहानी कला इस बात की साक्षी देती है प्रयोग की खोज में, अपरिचीत की तलाश में असफलता का मुहं ताकना परिचीत चेहरे को देखने से बेहतर है।'

22.6 अतीत का साया

मध्यवर्ग की अवसरवादिता पर नयी कहानी आन्दोलन में बेहद सटीक कहानियां लिखी गई थीं। अमरकान्त की 'डिप्टी कलक्टरी' और उषा प्रियंवदा की 'वापसी' इसी स्वार्थी मध्यवर्ग की दास्तान हैं। 'मेरा दुश्मन' का वाचक भी इसी खाते पीते मध्यवर्ग का प्रतिनिधि है जो अपने ऐश्वर्य ओर विलास में डूबा है, जिसे अतीत की याद भी उलझन में डालती हैं क्या आश्चर्य की वैद इसी मध्यवर्गीय नैतिकता की कलई खोलते हैं- महसूस हुआ, जैसे वह फिर उसी दुनिया से एक पैगाम लाया हो, फिर मुझे उन्हीं वीरानों में भटका देने की कोशिश करना चाहता हो, जिनसे भागकर मैंने अपने के लिए एक फूलों की सेज संवार ली है।'

अतीत पीछा नहीं छोडता। मध्यवर्ग की चालाकियों में वर्गीय चाह अपने अतीत के साये से पीछा छुड़ाने की चाह भी है। तभी तो वाचक कहता है- 'क्योंकि आखिर उठी से पीछा छुड़ाने के लिए ही तो मैंने माला की गोद में पनाह ली थी। अगर आज से कुछ बारस पहले मैंने उसके खिलाफ बगावत न की होती तोकृकृ। लेकिन उस भागने को बगावत का नाम देकर मैं अपने -आपको धोखा दे रहा हूँ, मैने सोचा था, और मेरा मुँह शर्म के मारे जल उठा था। मेरा मुँह अक्सर इस आग में जलता रहता है।'

वैद का कौशल है कि वे इस मध्यवर्गीय सोच को व्यक्त ही नहीं करते अपितु इस शर्म से जल रहे मुँह को बार-बार उघाड़ भी देते है। तभी तो वाचक की कामना है- 'मैंने सोचा अब अगर वह खुद -ब- खुद ही न भाग उठा, तो मैं समझूँगा कि माला की सारी समझ सीख और रंग रूप बेकार है। कितना लुत्फ आए अगर वह कमबख्त भी भाग खड़ा होने के बजाय माला के दाँव मे फंस जाए, और फिर मैं उससे पूछूँ- अब बता, साले अब बात समझ में आई?"

नयी कहानी के दौर में भी इस तरह एकाएक अपने आप को सवालों के घेरे में लाना जीवन के नये आयामों को पकड़ने का सर्वथा अभिनव प्रयास ही था।

22.7 दुश्मन कौन?

कहानी का अंत पाठक को किसी सरलीकृत समाधान तक पहुँचने से रोक देता है और पाठक ठिठक कर फिर शुरुआत पर पहुँच जाता है कि यह कौन है जिसे वाचक 'दुश्मन' कह रहा है? दरअसल वैद मनुष्य के भीतर खुद ही गढ़ लिए गए उस द्वीप से लड रहे हैं जो मनुष्य को जीवन की सच्चाई से दूर ले जाता है। यह द्वीप मनुष्य अपने लोभ,

कामना, वासना, और विलास के कारणों से बनाता जाता है। जब उसका सामना इनसे होता है तो वह बेचैन होकर इनसे पीछा छुड़ाने की हरसंभव कोशिश भी करता हैं। वैद इसी प्रवृत्ति का खुलासा करने के लिए कथा में पुराने दोस्त का ऐसा रूपक गढते हैं जो बिल्कुल वाचक जैसा है और थोड़ी देर दुनियावी रहकर वह अंततः अपने असली रंग में भी आ गया है। नयी कहानी ने मनुष्यता के इस विरोधी चेहरे को पहचानने का काम सफलता पूर्वक किया है। मोहन राकेश के नाटक 'आधे -अधूरे' के पुरुष- 1, पुरुष -2, पुरुष-3 और 'आषाढ़ का एक दिन' के 'कालिदास' व 'विलोम' इसी प्रवृत्ति के विस्तार कहे जा सकते हैं। अपनी डायरी 'ख्वाब हे दीवाने का' में वैद ने किसी अन्य प्रसंग में 'मेरा दुश्मन' को याद करते हुए लिखा है कि 'इस कहानी में मैंने अपनी एक उलझन को मेरा दुश्मन की तरह खुब गहराई से आंका या पकड़ा है। वस्तुतः यह उलझन ही असल दुश्मन है। इसे कहानी में वैद पहचानकर पाठक के सामने रख देते हैं ताकि वह स्वयं कोई निर्णय ले सके।

22.8 संदर्भ सहित व्याख्या

1. कुछ, या शायद कितनी ही देर हम सड़क के उस नंगे और आवारा अँधेरे में एक दूसरे के रूबरू खड़े रहे थे। अगर कोई तीसरा उस समय देख रहा होता, तो शायद समझता कि हम किसी लाश के सिरहाने खड़े कोई प्रार्थना कर रहे हैं, या एक दूसरे पर झपट पड़ने से पहले किसी मन्त्र का जाप।

सन्दर्भ :

ये पंक्तियाँ कृष्ण बलदेव वैद द्वारा लिखित कहानी 'मेरा दुश्मन' से उद्धृत है। कहानी का वाचक एक शाम कहीं घूमने गया हे और उसे वहां अपना पुराना मित्र मिल गया हे। उसे देखकर वाचक के भीतर एक विचित्र उहापोह हो रही है।

व्याख्या :

वाचक को मित्र से भेंट एक अपूर्व स्थिति में ला पटकती है। वह मित्र के सामने देर तक खड़ा है, उसके सम्मुख। लेकिन दोनों में कोई संवाद नहीं है क्योंकि वाचक उससे पीछा छुड़ाना चाहता है और वह छोड़ने को तैयार नहीं। यही कारण है कि कथाकार इस अप्रिय स्थिति को सड़क के नंगे -आकाश अंधेरे में रखकर वाचक के भीतर की बेचैनी को व्यक्त कर रहा है। वाचक स्वयं इस स्थिति को अप्रिय मान रहा है जहां वे दोनों किसी लाश के किनारे खड़े हैं ओर बात करने की कोई सूरत ही न बची हो या एक दूसरे को झपट्टा मारकर नोच डालने से ठीक पहले की अप्रिय स्थिति।

विशेष :

अपने अतीत के यथार्थ से पीछा छुड़वाना असम्भव होता है, लेखक इस अतीत को मित्र के प्रतीकार्थ में जीवित कर वाचक को ऐसी स्थिति में डाल देता है जहां उसके पास संवाद का कोई शब्द नहीं है।

2. अब मेरे सामने दो ही रास्ते है। एक यह कि होश आने से पहले मैं उसे जान से मार डालूं ओर दूसरा यह कि अपना जरूरी सामान बांधकर तैयार हो जाऊं, और ज्यूं ही उसे

होश आये, हम दोनों फिर उसी सस्ते पर चल दें, जिससे भागकर कुछ बरस पहले मैंने मालो की गोद में पनाह ली थी।

व्याख्या :

वाचक अपने अतीत का साक्षात्कार कर विस्मित है। लम्बे इंतजार के बाद भी यह अतीत (मित्र) उसे छोड़ने को तैयार नहीं है। जबकि उसकी पत्नी इससे व्यथित होकर जा चुकी है। अंत में वह तय करता है कि इससे पीछा छुड़ाना जरूरी है। वाचक इस मित्र को ढेर सारी शराब पिलाकर बेहोश कर देता है। अब उसके सामने दो रास्ते हैं, पहला-मित्र को जहर देकर मार डालने का और दूसरा-फिर लौट जाने का, वह इसी उहापोह में है।

वस्तुत: यह मित्र उसका अतीत है जिससे पीछा छुड़वाना वाचक की अभिलाषा है लेकिन क्या अतीत से नाता तोड़ा जा सकता है? कहानी इसी उलझन पर समाप्त हो जाती है।

विशेष :

कहानी में अर्न्तद्वन्द्व और तनाव का यह चरम बिन्दु है जहां वाचक अपने अतीत से पीछा छुड़वाने के लिए मित्र को जहर देना चाहता है। उसके सामने एक और मार्ग है फिर लौट जाने का। कहानी कोई सपाट समाधान नहीं देती और पाठक को स्वयं निर्णय प्रक्रिया में सम्मिलित कर लेती है।

22.9 सारांश

कृष्ण बलदेव वैद हिन्दी के ऐसे कथाकार हैं जो आमतौर पर किसी रूढ़ परम्परा, शैली या वर्ग में नहीं आतें कथा साहित्य के क्षेत्र में उनका दाय विविधतापूर्ण व्यापक ओर गंभीर है। उनके लेखन में आत्मानुभव का एक विशिष्ट तत्व मौजूद होता है जिस पर उन्होंने कहा कि आत्मानुभव किसी न किसी रूप में मेरी हर कृति में मौजूद रहता है और कुछ का तो वह मूलाधार भी होता है।

'मेरा दुश्मन' उनकी प्रतिनिधि कहानी है जो मनुष्यता के व्यापक मूल्यों के विरुद्ध संकुचित आत्मद्वीपों के द्वंद्व को प्रस्तुत करती है। अपनी लेखन शैली और भाषिक सजगता के कारण यह कहानी पाठक को भी एक सर्वथा नये द्वन्द्व से जूझने के लिए छोड़ने में सफल रही है।

22.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'मेरा दुश्मन' में पत्नी का चरित्र सबसे आकर्षक है, क्यों?
2. कहानी 'मेरा दुश्मन' मनुष्यता के वास्तविक दुश्मनों की तलाश करती है। बताइए।
3. आपको वाचक या दुश्मन में से किसका चरित्र अधिक आकृष्ट करता है और क्यों?
4. कृष्ण बलदेव वैद के कथाकर्म पर एक आलेख लिखिए।
5. 'मेरा दुश्मन' नयी कहानी की प्रतिनिधि कहानी हे जो अपने शैल्पिक गठन के कारण आज भी नयी है। स्पष्ट कीजिए।
6. 'मेरा दुश्मन' में वैद एक उलझन से जूझते हैं। वह उलझन क्या है?
7. 'मेरा दुश्मन' से हिन्दी की किस अन्य कहानी से तुलना की जा सकती है?

22.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. बेद, कृष्ण बलदेव; मेरा दुश्मन-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1966
2. बेद, सोबती; बैद संवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2007
3. वैद; ख्वाब है दीवाने का, राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, संस्करण 2005
4. यादव, राजेंद्र(सं.); एक दुनिया समानान्तर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सस्करण 1993
5. वाजपेयी, अशोक(स.); बहु वचन, वर्धा, अंक-4, वर्ष 2000
6. वाजपेयी, अशोक(सं); पूर्वग्रह, कृष्ण बलदेव वैद विशेषांक, अगस्त 1995
7. दईया, पूनम (सं.); मधुमती, उदयपुर, कृष्ण बलदेव वैद विशेषांक, अक्तूबर 1999

इकाई-23 कृष्णा सोबती कृत 'सिक्का बदल गया' का अध्ययन एवं विवेचन

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

23.1 प्रस्तावना

23.2 कृष्णा सोबती का साहित्यिक परिचय

23.3 सिक्का बदल गया कहानी का सारांश

23.4 सिक्का बदल गया (सवेदनागत विवेचन)

23.4.1 साम्प्रदायिक भयावहता

23.4.2 विस्थापन की मर्मस्पर्शी पीड़ा

23.4.3 ऐतिहासिक यथार्थ का अंकन

23.5 सिक्का बदल गया (शिल्पगत विवेचन)

23.5.1 शैली

23.5.2 संवाद

23.5.3 भाषा

23.6 व्याख्या

23.7 शब्दावली

23.8 सारांश

23.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

23.10 संदर्भ ग्रन्थ

23.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम प्रसिद्ध कथाकार कृष्णा सोबती द्वारा लिखित 'सिक्का बदल गया' कहानी का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- कहानी को संक्षेप में जान सकेंगे।
- कृष्णा सोबती का साहित्यिक परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- कहानी की मूल संवेदना को समझ सकेंगे।
- कहानी की शिल्पगत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- कहानी का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- कहानी के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे।

23.1 प्रस्तावना

कृष्णा सोबती महिला कथाकारों में ही महत्वपूर्ण हस्ताक्षर नहीं हैं बल्कि उन्होंने स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी कथा साहित्य को एक नया आयाम प्रदान किया है। उनका साहित्य गहन संवेदना से युक्त है। उसमें जिन्दादिली और गहरे सामाजिक सरोकार हैं। उनकी रचनाओं के चरित्र हमारे अपने समाज के ही हैं। उनकी रचनाओं के कथानकों में

वैविध्य है। उन्होंने केवल स्त्री जीवन से जुड़े प्रश्नों को ही अपने साहित्य में नहीं उठाया है बल्कि हमारे अपने समाज की विभिन्न समस्याओं का सम्पूर्ण यथार्थ के साथ उद्घाटन किया है। उनकी रचनाओं में जन-जीवन भी साकार हो उठा है। पंजाबी परिवेश की झलक संवेदना और भाषा - दोनों स्तरों पर दिखाई पड़ती है। देश विभाजन की त्रासदी को लेकर हिन्दी कथा-साहित्य में उल्लेखनीय कृतियों का सृजन हुआ है। इन रचनाओं में कृष्णा सोबती की 'सिक्का बदल गया' अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

23.2 कृष्णा सोबती का साहित्यिक परिचय

कृष्णा सोबती हिन्दी कथा साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर है। इनका जन्म 18 फरवरी 1925 को पंजाब के शहर गुजरात (अब पाकिस्तान) में हुआ था। ये पचास के दशक से लेखन में निरन्तर सक्रिय रही हैं। 'नफीसा', 'डरो मत मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा', 'लामा' इनकी प्रारम्भिक रचनाएँ हैं। इनकी पहली कहानी 'लामा' सन् 1950 में छपी थी। इन शुरूआती दौर की रचनाओं ने ही पाठकीय संवेदना को झकझोर दिया था। उनकी रचनाओं की एक विशेषता यह रही है कि उनमें एक ताजगी निरन्तर विद्यमान रही है। अपनी रचनात्मक प्रक्रिया के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है - "मेरे आस - पास की आबोहवा ने मेरे रचना संसार और उसकी भाषा को तय किया। जो मैंने देखा जो मैंने जिया वही मैंने लिखा।" इसी का परिणाम है कि उनकी सभी कृतियों के रंग अलग है, कहीं दोहराव नहीं है। उनके गहरे सामाजिक सरोकार उनकी रचनाओं में साफ दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है कि - "मेरा मानना है कि लेखक सिर्फ अपनी लड़ाई नहीं लड़ता और न ही सिर्फ अपने दुःख-दर्द और खुशी का लेखा जोखा पेश करता है।" विसंगतियों के प्रति विद्रोह का भाव उनकी रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित हुआ है। यही नहीं उनकी इतिहास की समझ बहुत साफ है। वे स्वीकार करती हैं - "लेखन को उगना होता है भिड़ना होता है हर मौसम और हर दौर से। नजदीक और दूर होते रिश्तों के साथ, रिश्तों के गुणा और भाग के साथ। इतिहास के फसलों और फासलों के साथ।" उनके लेखकीय व्यक्तित्व की विशेषता है कि उन्हें अपने लेखन का दंभ नहीं है। " दोस्तों! हर लेखक है अपने किए लेखक है। वो अपने चाहने से लेखक है। अगर वो संघर्ष में जूझता है, हालात से टक्कर लेता है तो अहसान किसी दूसरे पर नहीं सिर्फ उसकी कलम पर है। कोई भी अच्छी कलम मूल्यों के लिए लिखती है। मूल्यों के दावेदार के लिए नहीं लिखती। अगर ऐसा नहीं तो लेखक और कलाकार शामियानों और विज्ञान भवनों की शोभा बन कर रह जाएँगे।" उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं -

उपन्यास साहित्य

1 मित्रो मरजानी
2 जिन्दगीनामा
3 दिलोदानिश
4 डार से बिछुड़ी
5 सूरजमुखी अंधेरे के
6 ग्यारह सपनों का देश

7 यारों के यार - तिन पहाड़

8 ऐ लड़की

9 समय सरगम

कहानी साहित्य

1 बादलों के घेरे

2 सिक्का बदल गया

संस्मरण साहित्य

1 हम हशमत

अन्य साहित्य

1. शब्दों के आलोक में

'मित्रो मरजानी', 'जिन्दगीनामा' और 'दिलोदानिश' उनके बेहद चर्चित उपन्यास हैं। 'मित्रो मरजानी' में परम्परागत दिखावटी नैतिकता के विरूद्ध मुखर नारी स्वर की अभिव्यक्ति है वहीं 'जिन्दगीनामा' में पूरे पंजाब की जन संस्कृति अपने सम्पूर्ण रूप में प्रतिफलित हो उठी है। 'दिलोदानिश' में भी जन संस्कृति से साक्षात्कार कराया है। 'जिन्दगीनामा' में पंजाब का परिवेश दिखाई पड़ता है तो 'दिलोदानिश' में दिल्ली का एक हिस्सा। इसमें स्त्री अस्मिता का प्रश्न भी उठाया है।

कृष्णा सोबती साहित्य अकादमी की महत्तर सदस्यता समेत अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों एवं अंलकरणों से शोभित हैं। हिन्दी अकादमी दिल्ली की ओर से वर्ष 2000-2001 के शलाका सम्मान से सम्मानित हैं।

23.3 सिक्का बदल गया कहानी का सारांश

'सिक्का बदल गया' कहानी देश विभाजन की त्रासदी की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति है। कहानी शाहनी के इर्द - गिर्द घूमती रहती है। शाहनी लम्बी अवधि से चनाब में प्रात: काल में स्नान करती आ रही है। लेकिन आज परिस्थितियाँ परिवर्तित हो गयी हैं। उसकी अपनी जमीन पर उसे बेगानापन महसूस हो रहा है। वह सोचती है कि एक दिन इसी दरिया के किनारे वह दुल्हन बनकर उतरी थी और आज.....। शाहनी इस दुनिया में अब बिल्कुल अकेली रह गयी है क्योंकि न तो उसके पति (शाहजी) ही रहे और न ही पढ़ा - लिखा लड़का। हांलाकि उसके पास अकूत सम्पत्ति है - गाँवों तक फैली जमीनें, जमीनों में कुएँ - सब उसके अपने हैं। वह स्नान करने के उपरान्त शेरे को पुकारती हुई आती है। शेरा देश विभाजन के समय उभरी साम्प्रदायिक हिंसा में बढ़ - चढ़ कर हिस्सा ले रहा है। इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि वह तीस चालीस कत्ल कर चुका है। शेरा के अंदर शाहजी के द्वारा किये गये शोषण के प्रति आक्रोश है। एक क्षण के लिए उसके मन में शाहनी के प्रति प्रतिहिंसा का भाव जाग्रत हो जाता है लेकिन शाहनी के वात्सल्य और उदारता को स्मरण कर वह विचलित हो गया और महसूस किया कि शाहनी ने हमारा क्या बिगाड़ा है। लेकिन साम्प्रदायिक विद्वेष की ज्वाला भड़की हुई है। इसका परिणाम शाहनी को भुगतना पड़ता है। शाहनी अपने ही घर में अपने ही गाँव वालों के बीच अकेली रह गयी है। हांलाकि गाँव के सभी लोग किसी न किसी रूप में शाहनी से

उपकृत हैं। उसने लोगों की भरपूर मदद की है। उसने मस्जिद बनाने तक के लिए चन्दा दिया है। कभी किसी का बुरा नहीं चाहा है। लेकिन अब वही गाँव छोड़ने के जिए मजबूर की जा रही है। दरोगा दाऊद खाँ उससे कुछ सोना - चाँदी साथ ले जाने के लिए कहता है लेकिन शाहनी सोना - चाँदी साथ ले जाने से साफ इंकार कर देती है और कहती है कि मेरा सोना तो एक - एक जमीन में बिछा है। शाहनी नकद रूपया ले जाने से भी मना कर देती है और कहती है मुझे नकदी प्यारी नहीं। यहाँ की नकदी यहीं रहेगी। उसने लड़खड़ाते कदमों को संभालकर दुपट्टे से आँखे पोंछते हुए अपनी हवेली की ड्योड़ी पार की। पूरा गाँव उसको विदाई देने के लिए खड़ा है। पूरा जनसमूह रो रहा है अथवा उनके गले रूंधे हुए हैं। शाहनी सबको आशीर्वाद देते हुए विदा होती है। यह विडम्वना ही है कि पूरा जनसमूह साम्प्रदायिकता की दानवी प्रकृति के सामने लाचार है और शाहनी को अपनी मातृभूमि को छोड़ने के लिए विवश होना पड़ता है।

23.4 सिक्का बदल गया (संवेदनागत विवेचन)

कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' में देश विभाजन के समय उत्पन्न साम्प्रदायिकता के परिणामस्वरूप लोगों को अपना घर - द्वार छोड़ देना पड़ा। सब कुछ होते हुए भी लोगों को शरणार्थी बनना पड़ा। इस विभाजन ने लोगों को एक दर्दनाक पीड़ा दी। कहानीकार ने इस दुखद घटना को बड़े मार्मिक अंदाज में पाठक के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

23.4.1 साम्प्रदायिक भयावहता

अंग्रेजो की 'फूट डालो और राज करो' की नीति तथा कुछ लोगों के निहित स्वार्थों के चलते साम्प्रदायिकता का बीज बोया गया जो आखिरकार वटवृक्ष बन गया और जिसकी परिणति देश विभाजन के रूप में हुई। यह कोई मामूली विभाजन नहीं था बल्कि इसने एक मिले - जुले समाज को विखण्डित किया। कहानी की मुख्य चरित्र शाहनी का गाँव मुस्लिम बाहुल्य है लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन सम्पन्नता और प्रेम के साथ यहीं व्यतीत हुआ है। उसकी यादें इसकी एक-एक चीज से जुड़ी हुई हैं लेकिन साम्प्रदायिकता की जाला उसे अपने ही गाँव में अकेलेपन का अहसास करा देती है। इस गाँव के लोगों को उससे कोई खतरा नहीं है। वह उनके हर सुख-दुख में शामिल रही है। लेकिन वे उसकी कोई सहायता करने में असमर्थ हैं। इसी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के चलते जमकर निर्दोषों का खून बहाया गया, आग लगाई गयी। शेरा तीस चालीस खून कर चुका है। शाहनी के प्रति भी उसके ऊपर यह साम्प्रदायिक मनोवृत्ति एक पल के लिए उत्पन्न हो जाती है लेकिन उसके सद्व्यवहार की स्मृति उसके प्रति कोई बुरा बर्ताव करने से उसे रोक लेती है। अन्ततः इस साम्प्रदायिक दबाव के चलते शाहनी को अपना घर-बार त्यागना पड़ता है।

23.4.2 विस्थापन की मर्मस्पर्शी पीड़ा

देश विभाजन की घटना बीसवीं सदी की बड़ी त्रासदियों में से एक है। कृष्णा सोबती ने एक पात्र शाहनी के विस्थापन के माध्यम से इस विस्थापन की एक मार्मिक तस्वीर

प्रस्तुत की है। शाहनी इस साम्प्रदायिक वातावरण एवं विस्थापन की पीड़ा को हृदय में महसूस करती है। इस विस्थापन के परिणामस्वरूप उसका अपना सब कुछ होते हुए भी समाप्त हो गया। कहानीकार ने उसकी अवस्था का बड़ा जीवन्त चित्रण किया है -

"आज शाहनी नहीं उठ पा रही है। जैसे उसका अधिकार आज स्वयं ही उससे छूट रहा है। शाहजी के घर की मालकिन..... लेकिन नहीं, आज मोह नहीं हट रहा है मानो पत्थर हो गयी हो। पड़े - पड़े शाम हो गयी; पर उठने की बात फिर भी नहीं सोच पा रही है।"

वास्तव में इस विस्थापन ने शाहनी को जड़वत बना दिया है। क्योंकि उसने कभी भी यह नहीं सोचा था कि पुरखों के इस गाँव से उसे बेदखल होना होगा। यह वही गाँव है जो उसके इशारे पर नाचता था। इस गाँव के लोगों को उसने अपने नाते - रिश्तों से कभी कम नहीं समझा। लेकिन यह विड़म्बना ही है कि इन सबके होते हुए भी वह अकेली है। ये लोग उसको रोकने में असमर्थ हैं। वह इस गाँव को छोड़कर जा रही होती है तो दाऊद खाँ उससे कुछ सोना-चाँदी अथवा नकदी ले जाने के लिए कहता है ताकि उसके शरणार्थी जीवन में कुछ काम आये लेकिन वह स्पष्ट कहती है कि "सोना-चाँदी बच्चा, वह सब कुछ तुम लोगों के लिए है। मेरा सोना तो एक-एक जमीन में बिछा है।" "नकदी प्यारी नहीं। यहाँ की नकदी यही रहेगी।" शाहनी को धन-सम्पति का लालच नहीं है बल्कि उसको उसकी मातृभूमि से वंचित करने की पीड़ा है। उसको दुख है कि उसको उसके अपने ही घर से निकाला जा रहा है। यह विभाजन का परिणाम है कि शाहनी एक सुविधा सम्पन्न जिन्दगी से शरणार्थी शिविर में पहुँच जाती है। कहानीकार ने विभाजन के पूरे परिवेश को उभारकर इससे उत्पन्न होने वाली शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा से पाठकों का साक्षात्कार कराया है।

23.4.3 ऐतिहासिक यथार्थ का अंकन

कृष्णा सोबती ने इस कहानी में उस ऐतिहासिक यथार्थ की सटीक अभिव्यक्ति की है जो देश के विभाजन के समय इस देश में घटित हुआ और जिसे लाखों लोगों ने भोगा। इस बँटवारे के समय लोगों को अपनी सारी सम्पत्ति, भावनाएँ छोड़कर जाने के लिए मजबूर होना पड़ा। रातों-रात उनका सब कुछ उजड़ गया और वे शरणार्थी जीवन जीने के लिए विवश हो गये। आगजनी, लूटपाट, हत्या इस विभाजन के हिस्से आये। लोगों का एक दूसरे पर से विश्वास उठ गया। वस्तुतः भारत विभाजन उस दर्द का पर्याय था जिसे देख मानवता कराह उठी थी। यह विभाजन केवल जमीन के बँटवारे की पीड़ा न होकर आत्मीय रिश्तों के विभाजन की त्रासदी बन गयी। विश्व के इतिहास में ऐसा उदाहरण मिलना मुश्किल है कि जब वर्षों से साथ रहते आये साझी विरासत वाले दो धर्मों के लोग एक दूसरे के शत्रु बन गये हों। कृष्णा सोबती ने 'सिक्का बदल गया' कहानी में इसी ऐतिहासिक यथार्थ का कलात्मक ढ़ग से उद्घाटन किया है।

शहानी, शेरा और दाऊद खाँ वर्षों से साथ रहते आ रहे थे लेकिन इस विभाजन की रेखा ने उनको अलग कर दिया। कहानी में आगजनी, लूछपाट, और हत्याओं का जिक्र विभाजन का तांडव ही है जिसे इस देश के लोगों ने भोगा है। कहानीकार ने विभाजन के समय के वातावरण को साकार कर दिया है।

23.5 सिक्का बदल गया (शिल्पगत विवेचन)

'सिक्का बदल गया' को कृष्णा सोबती ने इस तरह गड़ा है कि विभाजित देश का वातावरण जीवंत हो उठा है। कहानी को हृदयस्पर्शी बनाने में इसके शिल्प की भी भूमिका है।

23.5.1 शैली

'सिक्का बदल गया' कहानी में विभाजन की पीड़ा को अत्यन्त सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। यह प्रस्तुतीकरण इतना सशक्त है कि शाहनी और उसके गाँव के लोग हमारी स्मृति पर छा जाते हैं और हमें विभाजन के सम्बन्ध में सोचने को मजबूर कर देते हैं। कहानी में वर्णन, विचार एवं भावों का अनूठा संगम है। इसके परिणामस्वरूप पाठक को विभाजन के समय के वातावरण का अहसास हो जाता है। इसके साथ - साथ ही विभाजन की पीड़ा झेल रह लोगों की मनोस्थिति का अंकन भी होता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है -

"आज इस प्रभात की मीठी नीरवता में न जाने क्यों कुछ भयावह - सा लग रहा है। वह पिछले पचास वर्षों से यहाँ नहाती आ रही है। कितना लम्बा अरसा है। शहानी सोचती है, एक दिन इसी दरिया के किनारे वह दुल्हन बनकर उतरी थी और आज....."

लेखिका ने पात्रों के हाव-भावों के माध्यम से ही बहुत सी बातों को कह दिया है अथवा स्थिति से अवगत करा दिया है। विस्मय, विद्रोह, व्यंग्य और पीड़ा को बहुत कम शब्दों में व्यक्त कर दिया है। कृष्णा सोबती कहानी को एकदम स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करने में सफल रही हैं।

23.5.2 संवाद

संवाद प्रमुखतः नाटक का तत्व है। किन्तु कहानी में संवाद पात्रों की मनोदशा को व्यक्त करने के साथ साथ कहानी को भी आगे बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। 'सिक्का बदल गया' में भी कृष्णा सोबती ने छोटे एवं सार्थक संवादों का प्रयोग कर कथानक एवं चरित्रों को स्पष्ट करने में सफलता प्राप्त की है। संवाद वातावरण को साकार करने में भी सफल रहे हैं। संवादों में स्नेह, आक्रोश, पीड़ा एवं विवशता के भाव भली-भांति उभरकर आये हैं। गाँव से विदा होते समय शाहनी और उसके गाँव के लोगों के बीच हुए वार्तालाप में मार्मिक दृश्य उभरकर आया है -

"इस्माइल ने आगे बढ़कर भारी आवाज से कहा, "शाहनी, कुछ कह जाओं, तुम्हारे मुँह से निकली असीस झूठ नहीं हो सकती।" और अपने साफे से आँखों का पानी पोंछ लिया। शाहनी ने उठती हुई हिचकी को रोककर रूँधे - रूँधे गले से कहा, "रब्ब तुहानू सलामत रक्खे बच्चा, खुशियाँ बख़्शे.....!"

वह छोटा - सा जनसमूह रो दिया। जरा भी दिल में मैल नहीं शाहनी के। और हम ..... हम शाहनी को नहीं रख सके। शेरे ने बढ़कर शाहनी के पाँव छुए, "शाहनी कोई कुछ नहीं कर सकता। राज भी पलट गया....." शाहनी ने काँपता हुआ हाथ शेरे के सिर पर रखा और रूक रूककर कहा, "तैनू भाग जगण चन्ना।"

23.5.3 भाषा

भाषा कहानी का अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। भाषा के माध्यम से ही लेखक कथ्य को वयक्त करता है। कहानी की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि भाषा पात्रों के परिवेश के अनुकूल हो। कृष्णा सोबती की कहानियों की भाषा पात्रों और परिवेश के अनुकूल रहती है। कहानी की भाषा में पंजाबी के शब्दों का बाहुल्य है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं - रब्ब तुहानू सलामत रक्खे बच्चा, खुशियाँ बख़्शे, तैनू भाग जगण चन्ना।

23.6 व्याख्या

व्याख्या खण्ड - 1

चनाब का पानी आज भी पहले-सा सर्द था, लहरें - लहरों को चूम रही थीं। सामने कश्मीर की पहाड़ियों से बर्फ पिघल रही थी। उछल - उछल आते पानी के भँवरों से टकराकर कगार गिर रहे थे लेकिन दूर -दूर तक बिछी रेत आज न जाने क्यों खामोश लगती थी। शाहनी ने कपड़े पहने, इधर - उधर देखा, कहीं किसी की परछाई तक न थी। पर नीचे रेत में अगणित पाँवों के निशान थे। कुछ सहम सी उठी!

आज इस प्रभात की मीठी नीरवता में न जाने क्यों कुछ भयावह- सा लग रहा है। वह पिछले पचास वर्षों से यहाँ नहाती आ रही है। कितना लम्बा अरसा है। शहानी सोचती है, एक दिन इसी दरिया के किनारे वह दुल्हन बनकर उतरी थी और आज.....

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत गद्यांश 'सिक्का बदल गया' शीर्षक कहानी से उद्धृत है। इसकी लेखिका प्रसिद्ध कथाकार कृष्णा सोबती हैं। इस प्रसंग में लेखिका ने विभाजन के समय के वातावरण को प्रस्तुत किया है।

व्याख्या -

कहानीकार विभाजन के समय के वातावरण का वर्णन करते हुए स्पष्ट करती है कि चनाव का पानी आज भी हमेशा की तरह ठण्डा था और नदी में लहरें एक दूसरे को चूम रहीं थी। सामने कश्मीर की पहाड़ियों से बर्फ पिघल रही थी। पानी के उछाल एवं भँवरों से टकराकर नदी के किनारे गिर रहे थे। स्वाभाविक है पानी का बहाव तीव्र था। लेखिका ने प्रकृति के इस सुन्दर रूप का वर्णन करते हुए वातावरण में विद्यमान विषाक्तता का आभास भी कराया है। शाहनी ने नदी में स्नान करने के उपरान्त इधर-उधर देखा, उसे कोई नजर नहीं आया लेकिन नदी के किनारे बिछे रेत में उसे अनेक पैरों के निशान दिखाई पड़े जिन्हें देखकर उसे भय का अहसास हुआ। लेखिका शाहनी की मनोस्थिति का वर्णन करते हुए कहती है कि वह इसी नदी में पिछले पचास वर्षों की लम्बी अवधि से स्नान करती आ रही है। इसी नदी के किनारे वह एक दिन दुल्हन बनकर उतरी थी लेकिन आज जैसा भय उसे कभी महसूस नहीं हुआ। लेखिका ने पाठकों को विभाजन के समय के परिवेश से रू-बरू कराया है कि उस समय लोगों के अन्दर अपने ही क्षेत्र में भय और असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो गयी थी।

विशेष -

1 वर्णनात्मक शैली का प्रयोग कर विभाजन के समय के वातावरण से परिचित कराया है।
2 यह वर्णन ऐतिहासिक यथार्थ है।
3 प्रकृति का सुन्दर चित्रण है।
4 भाषा सरल एवं सांकेतिक है।

व्याख्या खण्ड - 2

क्या कह रही है शाहनी आज! आज शाहनी क्या, कोई भी कुछ नहीं कर सकता। यह हो के रहेगा - क्यों न हो? हमारे ही भाई - बंदो से सूद ले - लेकर शाहजी सोने की बोरियाँ तोला करते थे। प्रतिहिंसा की आग शेरे की आँखों में उतर आयी। गँड़ासे की याद हो आयी। शाहनी की ओर देखा - नहीं-नहीं, शेरा इन पिछले दिनों में तीस - चालीस कत्ल कर चुका है पर.... पर वह ऐसा नीच नहीं..... सामने बैठी शाहनी नहीं, शाहनी के हाथ उसकी आँखों में तैर गये। वह सर्दियों की रातें - कभी-कभी शाहजी की डाँट खा के वह हवेली में पड़ा रहता था और फिर लालटेन की रोशनी में वह देखता है, शाहनी के ममता - भरे हाथ दूध का कटोरा थामे हुए, 'शेरे - शेरे उठा, पी ले।'

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत पंक्तियाँ प्रसिद्ध कथाकार कृष्णा सोबती द्वारा लिखित 'सिक्का बदल गया' कहानी से ली गयी हैं। विभाजन के समय विद्वेष की ज्वाला भड़क रही थी। शाहनी इस भयावह वातावरण में अपने पति शाहजी को याद करती हुई शेरे से कहती है कि वे आज होते तो इस बिगड़ी स्थिति को शायद संभालते। इस माहौल में शेरा के अन्दर चल रहे अन्तर्द्वन्द का चित्रण किया है -

व्याख्या -

शेरा सोचता है कि शाहनी यह क्या कह रही है कि शाहजी होते तो यह स्थिति सुधर जाती। नहीं। आज कुछ नहीं हो सकता अर्थात वे कुछ नहीं कर सकते थे। वह सोचता है कि यह जो कुछ घटित हो रहा है उचित ही तो है। हमारे ही भाई - बन्धुओं से ब्याज ले - लेकर तो शाहजी ने सम्पत्ति अर्जित की है यदि हम शाहनी को इस गाँव से भगाकर या मारकर उस सम्पत्ति पर कब्जा कर रहे हैं तो इसमें अनुचित क्या है। यह सोचते - सोचते बदले की भावना उमड़ आयी और उसे गँड़ासे की याद आ गयी ताकि वह शाहजी के शोषण का बदला शाहनी से ले सके लेकिन जैसे ही उसने शाहनी की ओर देखा तो उसकी स्मृति ने उसे झकझोरा कि यह वही शाहनी है कि वह जब हवेली में सर्दियों की रात कभी - कभी शाहजी की डाँट खाकर पड़ा रहता था तब शाहनी वात्सल्य भावना से उसे दूध पिलाती थी। इस शाहनी ने उसका क्या बिगाड़ा है वह उसको क्यों मारे। कहानीकार ने यहाँ स्पष्ट किया है कि यह वही शेरा है जो साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का शिकार हो पिछले दिनों तीस - चालीस कत्ल कर चुका है।

विशेष -

1 विभाजन के समय उत्पन्न स्थितियों की ओर संकेत किया है।
2 शेरा के अन्तर्द्वन्द के माध्यम से व्यक्ति चरित्र का उद्घाटन किया है कि नफरत के माहौल में भी आत्मीय रिश्तों की डोर मजबूत होती है।

3 भाषा सरल एवं शेरा के मन में चल रहे विचारों को व्यक्त करने में सफल है।

व्याख्या खण्ड - 3

शेरा कब लौट गया उसे कुछ पता नहीं, दुर्बल - सी देह और अकेली, बिना किसी सहारे के न जाने कब तक वहीं पड़ी रही शाहनी। दुपहर आयी और चली गयी। हवेली खुली पड़ी है। आज शाहनी नहीं उठ पा रही है। जैसे उसका अधिकार आज स्वयं ही उससे छूट रहा है। शाहजी के घर की मालकिन .... लेकिन नहीं, आज मोह नहीं हट रहा है मानो पत्थर हो गयी हो। पड़े-पड़े शाम हो गयी; पर उठने की बात फिर भी नहीं सोच पा रही है।

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत गद्यांश 'सिक्का बदल गया' शीर्षक कहानी से उद्धृत है। इसकी लेखिका प्रसिद्ध कथाकार कृष्णा सोबती हैं। इन पंक्तियों में लेखिका ने शाहनी के माध्यम से विभाजन की पीड़ा झेल रहे लोगों की तस्वीर प्रस्तुत की है।

व्याख्या -

शाहनी लम्बी अवधि से इसी गाँव में रहती आ रही है लेकिन विभाजन के परिणामस्वरूप उसे सब कुछ बदला - बदला नजर आ रहा है। नदी से स्नान करने के उपरान्त वह शेरा के घर जाती है। शेरा आने वाले खतरे को जानकर शाहनी को उसकी हवेली तक छोड़ने आता है। लेखिका शाहनी की मनोस्थिति का वर्णन करते हुए कहती है कि उसे इस बात का अहसास भी नहीं है कि शेरा लौटकर कब चला गया। विभाजन की पीड़ा ने दुर्बल एवं अकेली शाहनी को इतना झकझोर दिया कि उसे समय का आभास भी नहीं हुआ कि दुपहर कब हुई और चली गयी। यहाँ तक कि हवेली भी खुली पड़ी रही। यहाँ तक कि उसे लेटे - लेटे शाम हो गयी। उसे ऐसा लग रहा था कि उसका सब कुछ समाप्त हो गया है। शाहनी गाँव की सम्पंन महिला है लेकिन विभाजन के परिणामस्वरूप उसका सब कुछ छूट रहा है। इसके परिणामस्वरूप वह जड़ता की स्थिति में आ गयी है।

विशेष -

1 विभाजन की त्रासदी झेल रहे लोगों की दशा का मनोवैज्ञानिक धरातल पर अंकन हुआ है।
2 वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।
3 भाषा सरल एवं प्रवाहमान है।

व्याख्या खण्ड - 4

कौन नहीं है आज वहाँ? सारा गाँव है, जो उसके इशारे पर नाचता था कभी। उसकी आसामियाँ हैं जिन्हें उसने अपने नाते - रिश्तों से कभी कम नहीं समझा। लेकिन नहीं, आज उसका कोई नहीं, आज वह अकेली है? यह भीड़ की भीड़, उनमें कुल्लूवाल के जाट। वह क्या सुबह ही न समझा गयी थी?

संदर्भ एवं प्रसगं -

प्रस्तुत पंक्तियाँ कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में विभाजन के समय उत्पन्न स्थितियों का वर्णन है जब लोगों के बीच आपसी विश्वास और भाईचारा समाप्त हो गया। अपनी ही मातृभूमि में वे अकेला महसूस करने लगे।

व्याख्या -

कृष्णा सोबती ने देश विभाजन की त्रासद स्थितियों का मार्मिक उद्घाटन किया है कि शाहनी इस गाँव में वर्षों से रहती आ रही है लेकिन विभाजन के परिणामस्वरूप वह अपने ही गाँव में अकेली हो गयी है। शाहनी सोचती है कि गाँव में कौन नहीं है सब के सब लोग वहीं हैं। ये वही लोग हैं जो कभी उसके इशारों पर नाचते थे क्योंकि ये सभी उसके अधीन कृषक थे और इन्हें उसने कभी अपने नाते - रिश्तेदारों से कम नहीं समझा था। इनके साथ उसके आत्मीय सम्बन्ध रहे हैं लेकिन इस बदली हुई परिस्थिति में व उसे गाँव छोड़कर चले जाने के लिए समझा रहे हैं। वास्तव में वह अपने ही लोगों के बीच में अकेली

विशेष -

1. उपर्युक्त अंश में लेखिका ने देश विभाजन की त्रासदी पर प्रकाश डाला है।
2. भाषा सरल, सहज और आम बोलचाल के निकट है।
3. आत्मपरक शैली का प्रयोग किया गया है।

23.7 शब्दावली

त्रासदी	–	दु:खद घटना
परिवर्तित-	–	बदला हुआ
अकूत	–	बेहिसाब, अपरिमित, जिसका अनुमान न लगाया जा सके
आक्रोश	–	गुस्सा
विद्वेष	–	वैर, जलन
स्मरण	–	याद
ड्योड़ी	–	दहलीज
स्मृति	–	याद
परिवेश	–	वातावरण
दुर्बल	–	कमजोर
खामोश	–	शांत
दरिया	–	नदी
कगार	–	किनारे
सहम उठना -	–	भयभीत होना
असामियाँ -	–	काश्तकार
इशारे	–	- संकेत

23.8 सारांश

कृष्णा सोबती अत्यन्त प्रतिभाशाली रचनाकार हैं। उन्होंने साहित्य की परम्परागत मान्यताओं को नकारते हुए कई उत्कृष्ट रचनाओं का सृजन कर हिन्दी कथा - साहित्य को समृद्ध किया है। उनकी रचनाओं में सत्य का सफल उद्घाटन ही नहीं हुआ है बल्कि परिवेश भी जीवन्त हो उठा है। समाज एवं देश में होते परिवर्तनों पर उनकी पैनी दृष्टि रही है। देश का विभाजन 20 वीं सदी की बड़ी त्रासदी थी जिसने समूची मानवता को

झकझोर कर रख दिया। हिन्दी साहित्य में यशपाल (झूठा सच), भीष्म साहनी (तमस), राही मासूम रजा (आधा - गाँव) आदि रचनाकारों ने इस त्रासदी के सच से विस्तारपूर्वक साक्षात्कार कराया है वहीं कृष्णा सोबती ने 'सिक्का बदल गया' कहानी में इस दुर्घटना का मार्मिक अंकन किया है। यह कहानी अपने शिल्प में बेजोड़ है जिसके परिणामस्वरूप समूचा परिवेश जीवन्त हो उठा है।

23.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 कृष्णा सोबती का साहित्यिक परिचय दीजिए।

2 'सिक्का बदल गया' कहानी का कथानक स्पष्ट कीजिए।

3 'सिक्का बदल गया' कहानी की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

4 " 'सिक्का बदल गया' कहानी में देश विभाजन की त्रासदी का मार्मिक अंकन हुआ है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

5 " 'सिक्का बदल गया' कहानी में ऐतिहासिक यथार्थ का चित्रण हुआ है।" इस कथन पर विचार प्रकट कीजिए।

6 'सिक्का बदल गया' कहानी के शिल्पगत वैशिष्टय को रेखांकित कीजिए।

7 'सिक्का बदल गया' कहानी की समीक्षा कीजिए।

23.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. गोपाल राय; हिन्दी कहानी का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
2. डॉ. बच्चन सिंह; हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
3. डॉ. नगेन्द्र; हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
4. प्रकाश मनु; बीसवीं शताब्दी के अंत में उपन्यास, नमन प्रकाशन,नई दिल्ली

ISBN - 13/978-81-8496-104-1